शांतिप्रिय द्विवेदी : जीवन और साहित्य

पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत प्रबन्ध

शांतिप्रिय द्विवेदी

जीवन और साहित्य

डॉ॰ मालती रस्तोगी

मूल्य ◈ पचास रुपये
प्रथम सस्करण ◈ अक्टूबर, १९७४

प्रकाशक ◈ कल्पकार प्रकाशन
५२, बादशाह नगर,
लखनऊ—७.
मुद्रक ◈ रचना आर्ट प्रिंटर्स
लखनऊ—३.

प्राक्कथन

आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी का योगदान अपनी मौलिकता और विशिष्टता के कारण महत्वपूर्ण है । उन्होने गद्य और पद्य साहित्य की रचनात्मक और आलोचनात्मक विधाओ के क्षेत्र मे समान रूप से अपनी प्रतिभा और पाडित्य का परिचय दिया । द्विवेदी जी के विषय मे हिन्दी साहित्य के अनेक शीर्षस्थ विद्वानो ने जो उद्गार प्रकट किये हैं वे एक स्वर से उनकी उपलब्धियो और महत्ता को मान्य करते हैं । अनेक कारणो से द्विवेदी जी का जीवन अत्यन्त सघर्षपूर्ण रहा और उन्हे साहित्यिक वाद विवाद का भी भागी बनना पडा । यह एक विडबना है कि जब द्विवेदी जी के साहित्यिक योगदान के विषय मे विद्वान एकमत हैं तब भी उनकी उपलब्धियो के मूल्याकन की दिशा मे कोई प्रयत्न अब तक नही हुआ है । केवल कुछ स्फुट निबध एव सस्मरणात्मक रचनाएँ ही उनके विषय मे प्रकाशित हुई हैं । यह तथ्य एक साहित्यनिष्ठ लेखक के प्रति उपेक्षा भाव का द्योतक है । लेखिका इसे अपना सौभाग्य समझती है कि हिन्दी के इस तपस्वी के साहित्य पर शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत करने की दिशा मे उसका यह प्रयास सम्भवत अपने क्षेत्र मे सर्वप्रथम हे । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे विषय-प्रवेश शीर्षक के अन्तर्गत स्वर्गीय श्री शातिप्रिय द्विवेदी का सक्षिप्त जीवन वृत्त देते हुए उनकी रचनाओ से सम्बधित सक्षिप्त परिचयात्मक विवरण दिया गया है । प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है । आलोचना साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की लिखी हुई 'हमारे साहित्य निर्माता', 'ज्योति विहग', 'सचारिणी', 'कवि और काव्य' तथा 'स्मृतियाँ और कृतिया' आदि रचनाएँ है । आधुनिक हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे जो प्रमुख प्रवृत्तिया विकासशील मिलती हैं उनका समावेश इन कृतियो मे भी हुआ है । शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना मे द्विवेदी जी के स्थान निर्धारण तथा उनके चिन्तन वैशिष्ट्य के परिचय की दृष्टि से भी इनका महत्व है । इस अध्याय मे इन कृतियो के विषय तत्व का परिचय देते हुए हिन्दी आलोचना मे द्विवेदी जी का स्थान निर्धारण किया गया है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के तृतीय अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। निबन्ध साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की लिखी हुई 'जीवन यात्रा', 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'धरातल , 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास', 'समवेत', एव 'परिक्रमा' आदि रचनाएँ है । ये निबन्ध कृतिया लेखक की रचनात्मक क्रियाशीलता, सूक्ष्म लोक

निरीक्षण दृष्टि एव बहुक्षेत्रीय चिन्तन की परिचायक हैं। इस अध्याय मे इन कृतियो मे सगृहीत विविध विषयक निबन्धो का यथार्थ परिचय देते हुए हिन्दी निबन्ध मे द्विवेदी जी का स्थान निर्धारण किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास साहित्य का विश्लेषण एव उपन्याम के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की मौलिक उपलब्धियो के साथ हिन्दी उपन्यास के विकास मे द्विवेदी जी के योगदान को रूपायित किया गया है। उपन्यास साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी द्वारा रचित 'दिगम्बर', 'चारिका', तथा 'चित्र और चिन्तन' आदि औपन्यासिक कृतिया हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के पचम अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरणात्मक साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। द्विवेदी जी की सस्मरणात्मक कृतियो मे मुख्यत. 'पथचिन्ह', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' आदि है। लेखक की ये रचनाए आत्मव्यजना प्रधान है तथा इनमे लेखक के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न सस्मरणो का प्रस्तुतीकरण हुआ है। प्रस्तुत प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के काव्य साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। काव्य साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी रचित 'नीरव' तथा 'हिमानी' आदि मौलिक काव्य रचनाए है। इसके अतिरिक्त 'परिचय' तथा 'मधुसचय' काव्य सकलन का भी उल्लेख किया गया है। 'परिचय' काव्य सकलन मे छायावादी कवियो की काव्यात्मा का भावात्मक परिचय एव उनकी कविताओ का सकलन हुआ है तथा 'मधुसचय' मे ब्रज भाषा के विशिष्ट शृगारिक कवियो की कविताओ का सकलन है। 'नीरव' तथा 'हिमानी' काव्य कृतियाँ कवि के अपने कलेवर के सदृश ही क्षीण है। इन काव्य कृतियो मे सगृहीत कविताएं कवि के सौन्दर्यपरक प्रवृत्ति एव भावुक हृदय की परिचायक है। प्रस्तुत प्रबन्ध के सप्तम एव अन्तिम अध्याय मे उपसहार के रूप मे प्रबन्ध मे किये गये अध्ययन का साराश दिया गया है। निष्कर्ष रूप मे इस अध्याय मे यह सकेत किया गया है कि शांतिप्रिय द्विवेदी जी की साहित्य क्षेत्रीय उपलब्धिया अनेक दृष्टियो से विशिष्टता रखती हैं। अनेक सघषो के बीच जीवित रह कर भी उन्होने महत्वपूर्ण देन हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओ के क्षेत्र मे प्रस्तुत की।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध लखनऊ विश्वविद्यालत के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डा० प्रतापनारायण टडन के निर्देशन मे लिखा गया था। मै डा० टडन के प्रति कृतज्ञता प्रगट करती हूँ जिनके विद्वत्तापूर्ण निर्देशन एव स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन के फलस्वरूप यह प्रबन्ध इस रूप मे प्रस्तुत किया जा सका। प्रबन्ध के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन के लिए मैं कल्पकार प्रकाशन के स्वामी श्री देवकान्त के प्रति भी आभार प्रकट करती हू।

विजया दशमी, —मालती रस्तोगी
स० २०३१ वि०

विषय-क्रम

विषय-प्रवेश

आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी का योगदान अनेक दृष्टियो से मौलिक और विशिष्ट है। गद्य और पद्य साहित्य की विभिन्न विधाओ के क्षेत्र मे उन्होने जो कृतियाँ प्रस्तुत की है ये उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की असमानता की द्योतक हैं। हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे 'ज्योति विहग', 'कवि और काव्य', 'हमारे साहित्य निर्माता' तथा 'सचारिणी' शीर्षक से जो कृतियाँ प्रस्तुत की हैं वे उनके आलोचनात्मक दृष्टि की गम्भीरता और सम्यक्ता का परिचय देती है। उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण मे जहाँ एक ओर प्राचीन शास्त्रीय मानदण्डो को मान्य किया गया है वहाँ दूसरी ओर आधुनिक जीवन सिद्धान्तो पर आधारित मूल्यो का भी उसमे समावेश मिलता है। निबन्ध साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी ने 'आधान', 'पद्मनामिका', 'वृन्त और विकास', 'धरातल', 'जीवन यात्रा', 'साकल्य', 'सामयिकी', 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'परिक्रमा' तथा 'समवेत' आदि जो कृतिया प्रस्तुत की है वे विषयगत विस्तार, रचनात्मक उत्कृष्टता तथा वैचारिक परिपक्वता की दृष्टि से महत्वपूर्ण कही जा सकती हैं। इनमे लेखक की रचनात्मक क्रियाशीलता के साथ-साथ बहुक्षेत्रीय चिन्तन का भी परिचय मिलता है। शुक्लोत्तर युग की विचारात्मक, आलोचनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक, सस्मरणात्मक आदि निबन्ध-क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ इनमे स्पष्टत परिलक्षित की जा सकती हैं। यह कृतिया लेखक की वैचारिक जागरूकता के साथ उस पर पूर्ववर्ती प्रभाव को भी स्पष्ट करती है। उपन्यास साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी ने 'चारिका', 'दिगम्बर' तथा 'चित्र और चिन्तन' शीर्षक से जो रचनाए प्रस्तुत की है वे हिन्दी उपन्यास के समकालीन शिल्प रूपो से सर्वथा भिन्न है। औपन्यासिक रेखाकन के रूप मे प्रस्तुत की गयी ये रचनाए सैद्धान्तिक, वैचारिक एव कलात्मक दृष्टियो से अपने स्वरूपगत वैशिष्ट्य की द्योतक है। सस्मरण साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी ने 'पथचिन्ह', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतियाँ और कृतिया' नामक जो कृतिया प्रस्तुत की है वे आज कथात्मक एव आत्मव्यजना प्रधान रचनाओ के रूप मे हिन्दी आत्म कथा और साहित्य के क्षेत्र मे एक नई दिशा का निदर्शन करती है। काव्य साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी ने 'नीरव' तथा 'हिमानी' आदि जो कृतियाँ प्रस्तुत की है वे उनकी समवेदनशीलता, भावात्मकता, अनुभूत्यात्मकता तथा अभिव्यजना वैशिष्ट्य का द्योतक है। इस प्रबन्ध मे द्विवेदी

जी के समग्र साहित्य के आधार पर उनके जीवन और साहित्य का अनुसन्धानपरक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी का जीवन वृत्त

आधुनिक हिन्दी साहित्य के बहुर्मुखी प्रतिभा सपन्न साहित्यकार श्री शाति-प्रिय द्विवेदी जी का जन्म सन् १९०६ ई० मे काशी के भदैनी मुहल्ले मे हुआ था। अपनी एक सस्मरणात्मक कृति मे उन्होने स्वय यह बताया है कि आज जहा माता आनन्दमयी का आश्रय है, वही भदैनी मुहल्ला मेरे बचपन का निवास स्थान है। लेखक ने स्वय काशी को अपनी जन्मभूमि स्वीकार किया है तथा उसकी महत्ता का दिग्दर्शन इम प्रकार मे किया है "काशी–विद्यागुरु विश्वनाथ की काशी, गगाधर चन्द्रशेखर भगवान भूत भावन की काशी, शिव के त्रिशूल पर टिकी तीन लोक से न्यारी पाप-ताप नाशिनी काशी! इसके घाटो की छटा देखने के लिए यहा पर्यटक भी आते है और अपने पापो के प्रक्षालन के लिए तीर्थयात्री भी। सदियो के उलट फेर मे भी इसकी सास्कृतिक परम्परा अभी तक बनी हुई है। वस्तुत' काशी और बनारस दो भिन्न क्षेत्र हैं। बनारस मे व्यापार है, काशी मे अन्त साक्षात्कार। यह काशी सरस्वती की तरह मुमुक्षुओ और पिपासुओ के हृदय मे बसी हुई है। बनारस तो दिखाई देता है, किन्तु काशी अपने आराधको के अन्त.करण मे अदृश्य है। यही काशी मेरी जन्मभूमि है।"[1] काशी के एक विप्र विपन्न घराने मे इनका जन्म हुआ था जो अपनी सास्कृतिकता एव रुचिता-शुचिता मे सम्पन्न था। उन्होने स्वय ही सकेत किया है कि "यद्यपि पिता जी हमारे लिए कोई लौकिक सपत्ति नही छोड गये, तथापि अपने मानसिक सस्कारो की छाप हमारे हृदयो पर अवश्य छोड गये थे। वे तपोधन थे।" उनका बचपन का नाम "मुच्छन" था। लेखक ने सकेत किया है—"घर मे सबसे सादा नाम मेरा था—मुच्छन : श्मश्रु विहीन शिशु।" अपने जीवन के विषय मे लेखक ने इस प्रकार किया है जिसमे उनकी आयु से सम्बन्धित व्याख्या है और उसके निराकरण मे स्वय लेखक की अबोधता परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी के शब्दो मे . "मै शिशु से किशोर हुआ, किशोर से युवक। किन्तु मैंने जाना ही नही कि कब शैशव छोड़कर वयस्क हो गया, मस्तक पर बहिन के वात्सल्य का अचल जो था। उसके साया मे यह नन्हा सा बिरवा जीवन ही जीवन पा रहा था। जीवन के अतिरिक्त ससार मे और भी कुछ है, यह मैंने नही जाना था, न आयु, न मृत्यु।···लोगो ने अपने हिसाबी स्वर मे मुझसे भी पूछना शुरू किया—तुम्हारी उमर क्या है जी? · मैं क्या जानूँ मेरी उमर क्या है। बहुत छुटपन मे मा मरी थी, तब मैं रोया था मा के दूध के लिए। मेरे अबोध आसुओ को पोछने के लिए मा से भी करुण, कोमल एक

---

१. 'परिव्राजक की प्रजा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३।

स्नेहाचल बढ आया था बहिन का। बहिन से पूछता—'बहिन, मेरी उमर क्या है ?' उ गलियो पर मानो दुख की घडिया, अश्रु की अविरल झडियो को जुगो कर वह कहती—'अरे, तू मुझसे बारह बरस छोटा है रे।'·· इससे मैं क्या जानूँ कि मेरी बहिन मुझसे कितनी बडी है, या मै उससे कितना छोटा। मैं लोगो से यही कह दू—मुझे मालूम नही अपनी उमर। या कहू, जीवन के पथ मे मैं अपनी बहिन से बारह वर्ष छोटा शिशु हू। मैं बारह वर्ष पीछे के नन्हे पैरो से उस करुण साधना का अनुगमन कर रहा हू।"

नामकरण श्री शातिप्रिय द्विवेदी का बचपन के नाम मुच्छन के अतिरिक्त एक अन्य नाम भी था। द्विवेदी जी की मझली बहिन के वृद्ध श्वसुर उन्हे 'गुडिया' नाम से भी सम्बोधित करते थे। इसका उल्लेख लेखक ने इस प्रकार से किया है - "उन्ही को पाकर वहाँ भी मैंने पिता का हृदय पा लिया था। उनका सारा वात्सल्य मुझी पर केन्द्रित हो गया था। मैं उन्हे बाबा कहता, वे मुझे 'गुडिया' कहते। देहात में नगर की तरह ही मै पतग को 'गुड्डी' कहा करता। इसलिए मेरा नाम भी साथियो मे 'गुड्डी' और बडो मे 'गुडिया' हो गया। गाँव के सभी बडे 'गुडिया' को बहुत प्यार करते। और साथी अपने पतग की तरह ही 'गुड्डी' से भी अपना मन बहला लेते।" श्री द्विवेदी के बाल्यकाल के नामो के उपरान्त जो नवीन नामकरण हुआ उसका उल्लेख उन्होने इस प्रकार से किया है कि जब वह देहात से काशी मे आए, उन्ही दिनो सन् १९२२ के ग्रीष्मावकाश मे आदरणीय प० रामनारायण मिश्र भी काशी आए हुए थे। सयोगवश वह एक दिन उनके आवास मे आ पहुँचे और वही स्मृति उनके नाम के साथ जुड सी गई है जिसको इन्होने इस रूप मे अकित किया है : "पडितजी ने कहा—'आपका नया नामकरण होना चाहिए। मुच्छन नाम अच्छा नही लगता।'... . मैंने अपना कोई नवीन स्वरूप पाने की आशा से पडित जी से कहा—'कृपया आप ही कोई नया नाम रख दीजिये।'..... कुछ सोच कर उन्होने कहा—'आपको शाति की आवश्यकता है, इसलिए आपका नाम शातिप्रिय होना चाहिए।'. ...यह नाम आर्य समाजी ढग का जान पडता है। मै आर्यसमाजी नही, वैष्णव कुमार हूँ। साहित्यिक क्षेत्र मे आने पर न जाने अपना कैसा कवित्वपूर्ण नाम रखता। फिर भी इस नाम मे मेरे जीवन का एक इतिहास है। स्वामी राम के अनुगामी का कुछ ऐसा ही नाम होना चाहिए था।...... मैंने नतमस्तक होकर आशीर्वाद के साथ यह सात्विक नाम शिरोधार्य कर लिया।"

वश परिचय श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी के पिता उनके बचपन मे ही सन्यासी हो गए थे। द्विवेदी जी ने लिखा है कि काशी मे उनके पिता की गृहस्थी किसी सुदामा की ही गृहस्थी थी किन्तु वे आजन्म तन मन धन से 'दुर्बली महाराज' थे। उन्होने अपनी गृहस्थी के लिए कुछ भी नही जुटाया था, वे तो 'सब तज राम भज' का सन्देश ग्रहण कर चुके थे। अत· उनकी यह निर्धनता स्वेच्छा से अगीकृत थी।

श्रद्धालू भक्त उन्हे तरह-तरह के अन्न वस्त्र धन भेट मे दे जाते लेकिन उन्हे तो केवल एकान्त ध्यान ही अभीष्ट था, वे उन उपहारो को स्पर्श भी न करते थे। द्विवेदी जी के पिता का निवास स्थल आजमगढ जिले का बरहपुर गाँव था। यहाँ पिता के पूर्व वशजो का भी वास रहा था। बरहपुर ब्राह्मणो का गाँव था जहाँ प्रकृति अपने सपूर्ण वैभव मे विचरण करती थी। इसी प्रकार वहाँ राग-द्वेष, हर्ष-विषाद सब कुछ प्रकृति की तरह ही उन्मुक्त थे। द्विवेदी जी कई भाई-बहिन थे। सबसे बडी बहिन काशी-वासिनी थी, सबसे बडे भाई वह स्वय थे। इन दोनो के बीच मे मझली बहिन ग्राम्यगृहिणी बन गयी थी। इनसे छोटे दो भाई थे, दो बहिने थी। इन सबका नाम-करण बडी बहिन ने अपने स्नेह के अनुरूप ही किया था—एक का नाम था रुच्चन, दूसरे का नाम था हीरामन, छोटी बहनो मे एक थी कलावती, दूसरी थी मुन्नी। ये सभी अपने दुधमुँहे दिनो मे ही चल बसे थे।

प्रारम्भिक शिक्षा . द्विवेदी जी की शिक्षा का श्री गणेश इनके पूर्वजो के स्थल आजमगढ के बरहँपुर ग्राम मे ही हुआ। परन्तु पढने की अपेक्षा इनका चित्त प्रकृति प्रागण मे क्रीडा करने तथा विचरण करने मे ही अधिक लगता था। ग्राम के प्राकृतिक वातावरण मे द्विवेदी जी अधिक दिनो तक न रह सके और उन्हे काशी के सास्कृतिक वातावरण मे प्रवेश करना पडा। यहाँ भदैनी के प्राइमरी स्कूल मे इनकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। लेकिन हिन्दी की प्रथम कक्षा मे पहुँचते ही पुन इनको अपने ग्राम की ओर प्रस्थान करना पडा। किन्तु वह अपने ग्राम मे भी अधिक दिनो तक न रह सके। बडी बहन के अनुरोध पर छोटी बहन की ससुराल से जो अमिला मे ब्याही थी, निमत्रण आ गया। अत उन्हे अब अपने जीजा जी के सरक्षण मे रहने का अवसर मिला। अमिला मे मदरसे मे मास्टर का अनुशासन तो दु सह्य था ही, घर का अनुशासन भी असह्य था। कक्षा मे भी साथी इन्हे अपनी पक्ति मे बैठाना नही चाहते थे और इसका मुख्य कारण इनके कानो का निरन्तर बहते रहना ही था। धीरे-धीरे अमिला में इनका ध्यान पढाई की ओर रमने लगा और परिणामस्वरूप यह कक्षा मे अग्रगण्य हो गये। अपनी छोटी बहन एव जीजा के सरक्षण मे रह कर सन् १९१५ ई० से १९१८ ई० तक उन्होने वही पर तीन कक्षाए अच्छे नम्बरो से उत्तीर्ण की। चौथे दर्जे मे भी वह सदा अग्रगण्य रहे परन्तु अपनी दो तीन महीने की लम्बी बिमारी के कारण वे चौथी कक्षा न पास कर सके। अन्ततः वह पुन· अपनी बडी बहन के सरक्षण मे काशी पहुँच गए। सन् १९१९ मे इनका नाम भदैनी के उसी स्कूल मे चौथे मे लिखाया गया जहाँ वह बचपन मे भी पढ चुके थे। अपने पूर्व पाठ्यक्रम को यहाँ भी पाकर उनका मन उत्साहित हो उठा और अपने इसी उत्साह एव स्वाभाविक रुचि के कारण वह वहाँ भी छात्रो मे सर्वदा अग्रगण्य रहे। अपनी इस रुचि एव लगनशीलता के कारण उन्होने म्युनिसपल बोर्ड के सभी प्राइमरी स्कूलो के क्षात्रो को हरा कर वार्षिक छात्रवृत्ति प्रतियोगिता मे सबसे

अधिक अक प्राप्त कर अपनी तेजस्विता का परिचय दिया। सन् १९२० ई० मे इनका नाम कबीर चौरा के मिडिल स्कूल मे पाँचवी कक्षा मे लिखाया गया। परन्तु वह वहाँ अपने को व्यवस्थित न कर पाए। इनका बधिरपन और कृशकाय शरीर इन्हे आगे पढने के लिए प्रोत्साहित न कर सका और पढाई से चित्त के उतर होने पर उन्होने ऐसी शिक्षा पद्धति से प्राप्त विद्या को तिलाजलि देकर स्वय स्वाध्याय करना आरम्भ कर दिया। उनकी विशेष रुचि साहित्य की ओर उन्मुख हुई और उन्होने विभिन्न उपलब्ध पत्र-पत्रिकाओ का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार इनकी शिक्षा का प्रारम्भ और अन्त इन्ही कटु परिस्थितियो के मध्य ही हो गया। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि उन्होने वास्तविक विद्याध्ययन से भी मुख मोड लिया था।

पारिवारिक जीवन · उस समय परिवार की मुख्य विशेषता उसकी सयुक्तता होती थी। ऐसे ही आजमगढ के बरहपुर गाँव के एक परिवार मे द्विवेदी जी के अन्य वशज निवास करते थे। खेती के लिए जमीन कम होने और उस पर भार अधिक होने पर भी असन्तोष और अभाव न था, उनकी कमी जजमानी से पूर्ण हो जाया करती थी। काशी मे भी अगर वह इच्छा करते तो सरलता से परिवार के लिए सभी सामग्रियाँ जुटा सकते थे परन्तु उन्होने तो 'सब तज राम भज' का सन्देश ग्रहण कर लिया था। उनकी यह निर्धनता स्वेच्छा से अगीकृत थी। वे भिक्षुक न होकर सन्यासी थे। इस परिवार के आश्रयदाता दुक्खू चाचा (पुण्यश्लोक प० दु खभजन मिश्र) स्वय भी अपने बडे भाई के आश्रय मे थे और इसका मुख्य कारण यह था कि दुक्खू चाचा के पिता ने अपनी सारी जायदाद बडे पुत्र के ही नाम कर दी थी और इस प्रकार द्विवेदी जी का परिवार भी एक आश्रित के आश्रय मे सरक्षण पा रहा था। अन्य छोटे भाई-बहिन यही पर दिवगत हो गए। इसके साथ ही माँ का भी स्वर्गवास हो गया और श्री द्विवेदी जी के सरक्षण का सपूर्ण भार इनकी एक मात्र बडी बहन कल्पवती पर ही आया। वह स्वय भी बाल विधवा थी और ससार की विभीषिकाओ एव विडम्बनाओ से अभिशप्त थी। अतएव इस काशीवास तथा अपने पैतृक ग्राम के मध्य ही इनके जीवन का प्रस्फुटन हुआ। कभी वह काशी मे रहते तो कभी अपने ग्राम मे। ग्राम मे केवल वृद्धा दादी का ही स्नेह श्री द्विवेदी जी प्राप्त कर सके और अन्य सदस्य अपने मे ही आत्मलीन थे। अत. ग्राम मे भी पालन-पोषण की समुचित व्यवस्था न थी। ग्राम के प्रकृति प्रागण मे क्रीडा करते हुए अन्य बच्चो के साथ श्री द्विवेदी जी का भी कुछ स्वास्थ्य सबर्द्धन और मनोरजन होता था तथा प्रकृति से ही पोषण के लिए भी कुछ आहार मिल जाता था। प्रकृति की कोई अदृश्य शक्ति एव चेतना ही उन्हे लाड-दुलार देती थी। अन्यत्र जिसका आभास उन्हे अपनी बडी बहिन मे मिलता था। बडी बहिन भी हस्तकारी के माध्यम से ही जीवन के लिए कुछ अर्जन कर पाती थी। दोनो भाई-बहिन ही एक तरह से निराश्रय से ही थे। बचपन के

कुछ वर्ष श्री द्विवेदी जी के अमिला ग्राम मे भी व्यतीत हुए जहाँ इनकी छोटी बहिन की ससुराल थी। यहाँ भी आपका पोषण प्राकृतिक माध्यम से ही होता था अन्यथा इस प्रवास काल मे भी शारीरिक और मानसिक पोषण का अभाव था। इसका मुख्य कारण यह था कि बहिन की स्थिति भी वहाँ पिंजडे मे कैद पक्षी के सदृश्य थी अत· वह कितनी ममता, प्यार-दुलार दे सकती थी और कितना उनका पोषण कर सकती थी। जीजा जी का घर मे पूर्णरूपेण आधिपत्य था जो उचित पालन-पोषण की ओर ध्यान न देकर केवल मार-पीट पर ही अधिक विश्वास करते थे। इस अमिला के प्रवास काल मे ही इनके पिता का भी देहान्त हो गया। अमिला मे लम्बी बिमारी के बाद उन्हे पुन. काशी की शातिप्रदायिनी भूमि मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बडी बहन स्वय ही इन्हे आकर स्कूल से ले गयी। माँ की मृत्यु के उपरान्त बहन ने अपने पहले निवास स्थान को बदल दिया था और उसका मुख्य कारण दुक्खू चाचा की कर्कशा भौजाई का दुर्व्यवहार था, स्वय दुक्खू चाचा की दुहिता 'पियारी' जो कि बाल विधवा थी, उसका जीवन भी उनसे आक्रान्त रहता था। अब उनकी बहिन वृद्ध ब्राह्मण पुरुषोत्तम बाबा के घर मे रहने लगी थी जिसे एक माँझी परिवार ने खरीद लिया था। काशी मे स्कूल मे दाखिला के उपरान्त उसमे चित्त न रमने के कारण उन्होने पढाई छोड दी। परन्तु बहिन इन्हे अकर्मण्य नहीं रहने देना चाहती थी अत इनके शिक्षा से असहयोग करने पर बहिन ने भी इनसे असहयोग करना प्रारम्भ कर दिया। श्री द्विवेदी अपनी बहिन से भी झगडा करके ज्ञान और धान्य (अन्न) के लिए भ्रमण करने लगे। इस प्रकार प्रारम्भ से ही यह अस्त-व्यस्त पारिवारिक जीवन मे निरन्तर अभाव मे और निराहार रहे। जीवन की कठोर भूमि मे पग रखते ही अभावो से प्रेरित हो कर वह अपने एकान्त जीवन से बाहर समाज मे अन्यो के सम्पर्क मे आये। प्रारम्भ से ही इनका भावुक स्वभाव इन्हे अब साहित्य के क्षेत्र मे खीच लाया। श्री द्विवेदी के सस्कार और स्वाध्याय स्वभाव ही इनके जीवन का सम्बल बना। अन्त मे इनका अपना कोई परिवार न था। आज के इस आर्थिक युग मे वह अपना विवाह न कर पाये थे। समाज मे उन्हे कही न कही आश्रय मिल जाता था और कही पर तो स्नेह वत्सल अचल की छाया भी। सन् १९५३ मे इनका जीवन अपनी फुफेरी बहन के यहाँ व्यतीत हुआ था जो स्वय विधवा थी और उनके दोनो लडके भी निकम्मे थे। उन्हें तो केवल नशा और मौज चाहिए। उनकी शादी भी न हो सकी थी। उनकी विधवा माँ को भी अभावो ने कूटनीतिज्ञ बना दिया था। अब वही श्री द्विवेदी का शोषण करके अपनी गृहस्थी चलाती थी। इसके उपरान्त अपने जीवन काल मे इन्होने कितनी ही यात्राए की। बहिन का देहान्त भी १९३९ में हो चुका था। अत. अन्यत्र कही आश्रय का सम्बल भी न था।

स्वर्गवास श्री द्विवेदी अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे भदैनी के लोलकि

कुण्ड मे रहते थे। यह काल उन्हे अनेक कष्टो मे व्यतीत करना पडा था। इस सम्बन्ध मे जो विवरण उपलब्ध होता है वह उनकी मनोदशा और व्यथा का परिचायक है। मृत्यु के पूर्व भयानक रोग से अनवरत सघर्ष करते हुए जब वह टूट-से गये तब उन्हे अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया। उन्होने अन्तिम साँस लेने से पूर्व अपने दाह सस्कार के विषय मे यह इच्छा व्यक्त की थी कि "मेरी अन्त्यष्टि वहाँ न की जाए जहाँ राजा महाराजाओ या महान् नागरिको की होती है वरन् मेरे शव को हरिश्चन्द्र घाट के उस स्थान पर जलाया जाए जहाँ सामान्य नागरिक जलाए जाते है।"[१] यह शब्द द्विवेदी जी की निराश मन स्थिति के परिचायक है। उदर रोग के अत्यन्त नाकु दौर से गुजरते हुए और मर्मान्तिक व्यथा को सहन करते हुए २७ अगस्त, सन् १९६७ को द्विवेदी जी का काशी मे स्वर्गवास हो गया।

स्वभाव और प्रकृति

श्री शातिप्रिय द्विवेदी को अन्य ब्राह्मणो के सदृश्य ही मधुरता प्रिय थी क्योकि ब्राह्मणो के लिए प्रमुखत यह विख्यात है कि 'ब्राह्मणम् मधुर प्रिया'। श्री द्विवेदी जी की यही स्वाभाविक प्रवृत्ति इन्हे प्राकृतिक वातावरण की ओर अग्रसर करती थी। प्रकृति के ससर्ग से प्रकृतिफल कनेर जो अपनी मधुरता के लिए प्रसिद्ध है, से मित्रता-सी हो गयी थी। श्री द्विवेदी का स्वभाव बचपन मे इतना भोला-भाला एव निष्कलक था कि बचपन मे एक बार कुछ गोद खा लेने पर इनको यह भय हुआ कि कही नीम का वृक्ष इनके सिर पर ही न उग आए। जीवन के प्रारम्भिक क्षणो से ही प्रकृति के प्रति अनुराग था, प्रकृति की चतुरगिनी कलाएँ इन्हे सर्वदा अपनी ओर आकर्षित करती रहती थी। अपने स्वभाव की सरलता-तरलता मे वे मानव जगत और प्रकृति जगत मे भिन्नता लक्ष्य नही कर पाते थे। बाल्यावस्था मे बालको का जिस प्रकार हठी स्वभाव होता है परन्तु वह हमेशा हठ नही करते, कुछ यही स्वभाव श्री द्विवेदी का भी था। उनमे भी प्रतिद्वन्द्वता का भाव जाग चुका था परन्तु उनका यह स्वभाव हमेशा नही बना रह सका। पढने की अपेक्षा इन्हे प्रकृति प्रागण मे अकेले घूमना अधिक अच्छा लगता था। देहाती मदरसे मे इन्हे उत्तराधिकार के रूप मे काव्य का प्रेम तथा आदर्श का आभास मिला था। परन्तु स्वभाव लजालू और झेंपू था। वह सबके अहकार का भार वहन करते-करते स्वय अह शून्य हो गये थे। प्रारम्भ से ही द्विवेदी आत्मलीन, भावुक व्यक्ति थे। ये काव्य प्रेमी थे और भावना के भीतर से जीवन का स्पर्श चाहते थे। इसके साथ ही इनकी वृत्ति कोमला थी। बचपन मे प्रकृति की निर्द्वन्द्वता और प्रफुल्लता के वातावरण के आभास

---

१ दे० 'नवजीवन' हिन्दी दैनिक मे श्री रजन सूरि दवे लिखित 'शातिप्रिय द्विवेदी व्यक्तित्व और कृतित्व' शीर्षक निबन्ध, ७ अगस्त सन् १९६१।

को ही कवि और उसके काव्य मे परिलक्षित करना चाहते थे। इनके स्वभाव की एक मुख्य विशेषता स्वाध्याय करना भी था जो कि बौद्धिक प्राणायाम का एक मुख्य साधन है। अपनी विभिन्न कमियो एव कठिनाइयो मे भी अपना मनोबल एकत्र करके वे उनका निराकरण कर लेते थे। यह प्रवृत्ति उनमे बचपन से ही आभासित होने लगी थी। अन्ततोगत्वा उनकी स्वाध्याय प्रवृत्ति ही उनके जीवन का सम्बल बनी। श्री द्विवेदी ने अपनी पढाई की इति करके स्वय ज्ञान और अन्न, जल आदि जीविका के प्रसाधन के लिए भ्रमणशील प्रवृत्ति को अपना लिया। परन्तु इन्हे मित्र और शत्रु की पहचान न थी और वे अपने सरल, सहज स्वभाव के कारण अपनी व्यथा कथा भी सुना देते थे। वह किसी से भी मीठे वचनो को सुन कर उस पर विश्वास कर लेते थे। शत्रुगण इससे अपने विद्वेष को दूसरे रूप मे प्रकट कर स्वार्थसिद्धि मे लग जाते थे। श्री द्विवेदी की एक अन्य प्रवृत्ति उनकी टिकट सग्रह करने की थी परन्तु एक बार जब बहुत परेशानी हुई और इनके आत्म सम्मान को ठेस पहुँची तभी से उन्होने अपने इस स्वभाव को तिलाजलि दे दी।

मित्र समाज

मानव जीवन की बाल्यावस्था एक ऐसी अवस्था होती है, जिसमे वह निर्द्वन्द्व, निर्भय और स्वच्छन्दता से समाज और प्रकृति की वस्तु को आत्मसात करने की चेष्टा करता है। इस अबोध काल मे तो समस्त बाल जगत, वह जिसके भी सपर्क मे आता है, ही एक मित्र मडली-सी हो जाती है परन्तु समय के व्यवधान से उनमे अल्पता आती जाती है। मानव जीवन पर अपने वातावरण का प्रभाव अत्यधिक पडता है अतएव स्थान परिवर्तन से मित्र समाज औ॰ खेलकूद मे भिन्नता आ जाती है। मानव का मित्र समाज कितना विस्तृत होगा यह उसकी मिलनसार प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। कुछ बालक बहुत शीघ्र ही अन्यो से सपर्क स्थापित कर लेते है परन्तु कुछ आत्मकेन्द्रित ही रहते है। उनमे दूसरो से वर्तालाप करने और सपर्क स्थापित करने मे सकोच-सा होता है। मानव की भ्रमणशील प्रवृति भी उसकी मिलनसारिता की द्योतक है। श्री शांति-प्रिय द्विवेदी का स्वभाव आत्मकेन्द्रित था। यद्यपि उनकी प्रवृत्ति भ्रमणशील थी तथापि वे प्रकृति प्रागण मे ही अठखेलियाँ करते थे वही पर उनका मित्र समाज, बाल मंडली एकत्र हो जाती थी। वस्तुतः इनके मित्रो की सख्या बहुत ही अल्प अथवा नही के बराबर है। उन्होने स्वय स्वीकार किया है "मेरा जीवन बचपन से ही नि.संग रहा है। सबके बीच मे भी एकाकी रहा हूँ। जन्म से ही अल्पश्रुत होने के कारण बहिर्जगत से वंचित हूँ। आज भी मन स्थिति उस असमर्थ भिक्षु की सी है जो न तो अपने को व्यक्त कर पाता है, न विश्व की अभिव्यक्ति ग्रहण कर पाता है। वह न सुन सकता है, न गुन सकता है। स्वय भी जो कुछ कहना चाहता है, भाषा उसका साथ नही दे पाती।" इस प्रकार जीवन के प्रारम्भ से ही वह नितान्त एकान्तवासी रहे हैं।

यही प्रवृत्ति उनमे आत्मलीनता के रूप मे प्रस्फुटित हुई। घर से बाहर उनका परिचय केवल उस विशाल वटवृक्ष से ही हुआ था जिसकी छाया जगत इनका क्रीडा स्थल था। परन्तु धीरे-धीरे वह बाल सखाओ के साथ मिल कर उनके खेलो मे भी सम्मिलित होने लगे। परन्तु बालको मे जो सयानापन और चालाकी होती है, इनमे न आ सकी। वातावरण परिवर्तन से पहले के साथी छूट जाते है, उस समय के खेल भी समाप्त हो जाते है। नये वातावरण मे, नये स्थान मे पुन नये साथी और नये खेलो के सपर्क मे मानव आता है। अपने सहपाठियो के अतिरिक्त प्रसाद जी और राय कृष्णदास से भी बाल्यावस्था से ही मित्रता थी। श्री द्विवेदी अपने साहित्यिक जीवन मे पदार्पण के पूर्व कई साहित्यिको के मध्य मे पहुँचे जहाँ इन्हे प्रोत्साहन एव प्रेरणा मिली। इसके साथ ही वह पत और निराला के काव्य प्रभाव से मुक्त न हो सके थे। इन दोनो से उनका साक्षात्कार एव सपर्क भी स्थापित हुआ। उनका सपर्क पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र', प० कमलापति त्रिपाठी, श्री प्रकाश जी ('आज' के प्रमुख सपादक), रायसाहब गोस्वामी रामपुरी, श्री काशीनाथ पढरी नाथ तैलग, बाबू हरिदास माषिक, आदरणीय प० रामनारायण मिश्र, डा० सपूर्णानन्द एव उनके परिवार, ब्रह्मचारी प्रभुदत्त, क्रातिकारी चन्द्रशेखर 'आजाद', सर्वश्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', मदन मोहन मिहिर, भगवतीचरण वर्मा, प्रेमचन्द, बाबू शिवपूजन सहाय, पं० कृष्ण बिहारी मिश्र, आचार्य प० केशव प्रसाद मिश्र, सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, मुन्शी अजमेरी जी, श्री सियारामशरण, प० केदारनाथ पाठक, आदरणीय मित्र श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला, श्री भगवती प्रसाद चन्दोला, पं० केशवदेव शर्मा, बाबू विश्वनाथ प्रसाद, श्री दुलारेलाल भार्गव आदि से हुआ। इन लोगो के सन्निकट आने के साथ ही कई महानुभावो से तो सहयोग भी प्राप्त हुआ। गुरुदेव रवि बाबू और शरद बाबू से भी इनका साक्षात्कार हुआ था।

साहित्यिक प्रतिभा

श्री शातिप्रिय द्विवेदी मे साहित्यिक प्रतिभा के स्फुरण का आभास उनकी बाल्यावस्था से ही परिलक्षित होने लगा था। इनके छात्र काल मे ही काव्य के प्रति अनुराग का आभास मिलने लगा था। ओजस्वी प्रवाहमय काव्य का सस्वर पाठ करने से इनके हृदय मे भी काव्य का रसोद्रेक होने लगता था और उसी लय मे यह भी अपनी तुकबन्दियाँ लिखने लगते थे। लेकिन वह तुकबन्दियाँ आज विलीन हो चुकी हैं। उनका रूप इनकी तीसरी-चौथी कक्षा तक ही सीमित रहा। बाद मे वह लुप्त हो गया था। उपरोक्त तथ्य को कि प्रारम्भ मे वह काव्य की ओर ही आकर्षित हुए थे, उन्होने स्वय भी स्वीकार किया है "कविताओ के गुनगुनाने से मेरी सुकुमार स्नायुओ मे भावना का स्वाभाविक स्फुरण होने लगा। एक-एक शब्द मुझे रहस्यगर्भित जान

पडते थे, शैशव के अछूते हृदय का मर्मस्पर्श कर लेते थे ।'[1] 'उस समय मै अबोध, भावुक किशोर था । बचपन मे ही मुझमे काव्यानुराग था ।'[2] अपनी प्रतिभा की ओर तथा अपनी प्रेरणा की ओर उन्होने स्वय ही सकेत किया है "अपनी सुकोमल स्नायुओ के कारण मै बचपन से भावुक था, दूसरे, पिता की एकान्त साधना और बहिन की गृह साधना से प्रभावित था । स्वभावत साहित्य क्षेत्र मे चला आया । जन्म का ब्राह्मण कुमार कर्मक्षेत्र मे भी सरस्वती हो गया ।"[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री शातिप्रिय द्विवेदी मे साहित्य के प्रति अतीव अनुराग था । उनके सपूर्ण साहित्य को देखते हुए कहा जा सकता है कि उनमे साहित्यिक प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी । हिन्दी साहित्य की विविध विधाओ मे आपने प्रवेश किया और उसे अपनी सशक्त लेखनी से परिपक्वता प्रदान की । विभिन्न साहित्यिक विधाओ मे मुख्यत उपन्यास, निबन्ध, समीक्षा, आलोचना, काव्य, सस्मरण आदि विधाओ पर आपकी दृष्टि केन्द्रित हुई तथा इन विधाओ मे भी आपकी रचनात्मक प्रवृत्ति एव रचनात्मक उद्बोधन का ही रूप लक्षित होता है । इस प्रकार विभिन्न विधाओ के नवीन शैली का प्रयोग श्री द्विवेदी को अन्य समसामयिक साहित्यकारो से कुछ विलग-सा कर देता है और यही कारण है कि कुछ विद्वान भ्रमवश आपको आलोचक न मान कर शैलीकार के रूप मे आख्यायित करते है । परन्तु यह कहना कि वह आलोचक न होकर शैलीकार है, युक्तिसगत नही है । इसका मुख्य कारण यही है कि कोई भी शैलीकार कवि, आलोचक आदि हो सकता है । वह साहित्य की विविध विधाओ को शैली के ही माध्यम से चित्राकित करता है । अतएव स्पष्ट ही है कि सामाजिक जीवन की विविध विडम्बनाओ ने और परिवार के सदस्यो के भावनात्मक जीवन के कारण ही इनमे भी साहित्यिक प्रतिभा का स्फुरण हुआ और साहित्य रचना की प्रेरणा मिली । यही कारण है कि इनका सपूर्ण साहित्य मुख्यत. अनुभूतिपरक है ।

साहित्यिक प्रेरणा और प्रभाव श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने अपनी साहित्यिक प्रेरणा के लिए यह स्वीकार किया है कि "यो तो द्विवेदी युग के गद्य-पद्य के प्रभाव से मैं साहित्य क्षेत्र मे सन् १९२० के कुछ ही बाद आ गया था, किन्तु मेरा रागात्मक सस्फुरण छायावाद के प्रभाव से सन् २४ मे हुआ । छायावाद युग का जिन कवियो ने प्रतिनिधित्व किया उनके शुभ नाम है—प्रसाद, निराला, पत, महादेवी । यद्यपि छायावाद के सर्वप्रथम प्रतिनिधि कवि प्रसाद जी है तथापि उनकी अपेक्षा मे निराला जी और पन्त जी की कविताओ से ही प्रभावित और उत्प्रेरित हुआ । निराला जी के मुक्त छन्द और ओजस्वी स्वर से उत्साहित होकर मैं भी कविता लिखने लगा था।...

---

१ 'परिव्राजक की प्रजा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६२ ।

२. 'स्मृतियाँ और कृतियाँ', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३१ ।

३. 'परिव्राजक की प्रजा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १२९ ।

परन्तु 'कमला' मे काम करते समय मुझमे एक प्रतिक्रिया हो गयी। जिन निर्मम परिस्थितियो मे बहिन का देहावसान हुआ उन परिस्थितियो ने मुझे सामाजिक चिन्तन के लिए प्रेरित कर दिया। मैं छायावाद के बाद प्रगतिवाद की ओर उन्मुख हो गया।"[१] अत स्पष्ट है कि श्री द्विवेदी अपनी अविकच वय मे ही सन् १९२० मे प्रचलित पढाई-लिखाई के कार्यक्रम को तिलाजलि दे कर विभिन्न सामाजिक विडम्बनाओ को झेलते हुए तथा निरुद्देश्य इधर-उधर भटकते हुए स्वाध्याय के माध्यम से वह भी धीरे-धीरे साहित्य मे प्रवेश करते गये। वह स्वाध्याय के लिए विभिन्न पुस्तकालयो और छात्रावास मे जाने लगे तथा सभाओ मे जाकर राष्ट्रीय जानकारी भी प्राप्त करने लगे। परन्तु उन्हे उस समय अपने अभ्यन्तर की अभिव्यक्ति के लिए आत्मोन्मेष की आवश्यकता थी। प्रारम्भ मे श्री द्विवेदी जी स्वामी सत्यदेव जी के भाषण श्रवण तथा उनके साहित्य की वर्णन शैली से अत्यन्त प्रभावित हुए। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप वह भी एक स्वतन्त्र रचनाकार होना चाहते थे। अतएव सुस्पष्ट पथ प्रदर्शन और सामाजिक सम्वेदन के लिए वह अचानक भैय्या मणिशकर पड्या से परिचित हो गए तथा उनसे सपर्क स्थापित किया जिनका व्यक्तित्व स्वय ही किसी सात्विक काव्य की तरह शातिप्रदायक था। पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी ने श्री द्विवेदी जी को 'विशारद' करने का प्रोत्साहन दिया परन्तु उन्होने स्वय को इसके लिए सर्वथा असमर्थ पाया। इसके साथ ही 'उग्र' जी के साथ सामाजिक सम्पर्क मे आने की भी प्रेरणा मिली। प्रत्यक्ष सम्पर्क से प्रेरणा के साथ ही साथ श्री द्विवेदी ने विभिन्न पुस्तको एव जीवनियो से भी प्रेरणा ग्रहण की है। उन्होने इसे स्वीकार किया है कि स्वामी रामतीर्थ की जीवनी पढने से उनकी आत्मा का उद्घाटन हो गया था। उनमे भी एक लेखक बनने की लालसा का जागरण हुआ। स्वयं काशी भी साहित्यिक प्रोत्साहन देने मे अपना विशिष्ट महत्व रखती है और प्रयाग भी। श्री द्विवेदी जी को काशी के साथ ही प्रयाग तीर्थ से साहित्यिक प्रेरणा और आध्यात्मिक सम्बल प्राप्त हुआ। इसके साथ ही श्री द्विवेदी निराला जी की रचनाओ के स्वाध्ययन के द्वारा काव्य प्रेरणा को ग्रहण करते रहे थे। इसी मध्य श्री द्विवेदी जी का सम्पर्क आचार्य केशव प्रसाद मिश्र से हुआ जिन्होने श्री द्विवेदी को रामायण पढने के लिए प्रोत्साहित किया। रामायण से वह अत्यधिक प्रभावित थे। इन्ही के माध्यम से रामकृष्ण दास जी से भी सौजन्य का लाभ प्राप्त हुआ। श्री मदन मोहन मिहिर से भी श्री द्विवेदी को प्रोत्साहन एव प्रेरणा मिली थी। कविता के अनन्तर श्री द्विवेदी जी को कथा साहित्य ने आकर्षित किया। शरद और विक्टर ह्यूगो की रचनाओ से इन्हे विशेष तथ्य उपलब्ध हुए। इसके अतिरिक्त रेनाल्ड्स के "लन्दन रहस्य" ने भी इन्हे आकृष्ट किया जिसमे कविता और उपन्यास दोनो का रस मिश्रित है। इसमे सौन्दर्य और

---

१ 'स्मृतियाँ और कृतियाँ', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५--९।

यौवन के उन्मादक चित्र के साथ मानवी आत्मा का करुण स्पर्श भी है। श्री शाति-प्रिय द्विवेदी के साहित्यिक जीवन का विधिवत् श्रीगणेश प्रयाग के सुदर्शन भवन मे ही हुआ।

द्विवेदी जी की कृतियो का सक्षिप्त परिचय

श्री शातिप्रिय द्विवेदी का साहित्य रचना काल लगभग चार दशक तक प्रशस्त है। प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त उन्होने साहित्य रचना आरम्भ कर दी थी और जीवन के अन्तिम वर्षों तक वह अनवरत रूप से साहित्य प्रणयन करते रहे थे। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है गद्य और पद्य साहित्य की अनेक विधाओ के क्षेत्र मे द्विवेदी जी ने अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। उनमे से विविध विषयक् कृतियो का अध्ययन इस प्रबन्ध के विभिन्न अध्यायो मे प्रस्तुत किया जा रहा है। यहा पर श्री शातिप्रिय द्विवेदी की सभी प्रकाशित पुस्तको का उनके प्रकाशन वर्ष के क्रमानुसार सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है.

[१] **'परिचय'** · प्रस्तुत काव्य ग्रथ का प्रकाशन साहित्य सदन, चिरगाव (झासी) से सन् १९२७ मे हुआ। 'परिचय' मे श्री द्विवेदी जी ने विभिन्न कवियो की कविताओ के आधार पर उनकी काव्यात्मा का भावात्मक परिचय दिया है जिससे कवि और काव्य दोनो का ही सम्यक् रूप मे पाठको को परिचय प्राप्त हो जाए। लेखक इसी दृष्टि को सम्मुख रख कर इस नवीन पथ पर अग्रसर हुए है जिसमे वह पूर्णत सफल भी हुए। अपनी इस कृति के माध्यम से श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने साहित्यिक जगत् मे प्रवेश किया तथा लोकप्रिय भी हुए। इसका प्रमुख प्रमाण यह है कि उनकी उपरोक्त कृति हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे एम० ए० के पाठ्य ग्रन्थ के रूप मे स्वीकृत हो गयी थी। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की उत्कट इच्छा थी कि प्रस्तुत कृति मे अन्य कवियो के साथ मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा आदि को भी स्थान दें परन्तु किसी कारणवश वह ऐसा न कर सके। 'परिचय' के आधार पर श्री द्विवेदी जी ने विभिन्न कवियो के काव्यो की आत्मा—उनके गूढ भावो—को व्यक्त करने की चेष्टा की है।

[२] **'नीरव'** . श्री शातिप्रिय द्विवेदी की प्रमुख काव्य कृति 'नीरव' सवत् १९८६ (सन् १९२९) मे भारती भडार, लीडर प्रेस, काशी से प्रकाशित हुई। श्री द्विवेदी ने मानव की प्राकृतिक मनोवृत्ति से प्रभावित होकर काव्य सृजन किया। इसमे द्विवेदी जी रचित सैंतीस मौलिक कविताएँ सगृहीत हैं। यह कविताए सग्रह रूप मे प्रकाशित होने के पूर्व 'शेष', 'प्रभा', 'त्यागभूमि', 'विशाल भारत', 'सरस्वती', 'चाँद', 'सुधा', 'माधुरी', 'मनोरमा', 'युवक', 'मतवाला', 'प्रताप' तथा 'अभ्युदय' आदि पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होकर प्रशंसा प्राप्त कर चुकी थी। कवि का प्रस्तुत काव्य सग्रह निराला के 'परिमल' तथा पन्त के 'पल्लव' से प्रभावित है। सग्रह की प्रथम

रचना 'उपक्रम' है । यह गीत कवि के हृदय की उल्लासमयी भावनाओ के साथ वेदना की भी अभिव्यजना करता है । दूसरी रचना 'मलयानिल' श्रृगारिक भावो से पूर्ण है । कवि ने प्रकृति व्यापारो मे, जड और चेतन के मिलन मे, सूक्ष्म आलिंगन की अभिव्यक्ति की है । तीसरी कविता 'अधखिली कली से' मे कवि ने शैशव की अबोधता का परिचय दिया है जो सासारिक जीवन की यथार्थ पृष्ठभूमि से अलग तथा अनजान रहती है । परन्तु समय उसे भी कुचल कर अपनी कठोरताओ से परिचित करा जाता है । 'पद अक' शीर्षक कविता मे कवि का वेदनात्मक रूप मुखरित हुआ है । 'यमुने' मे कवि यमुना के कल-कल शब्द प्रवाहित होने मे तथा उसके निरन्तर अबाध गति से बहने मे किसी महान् सन्देश का अनुभव करता है । 'तितली' कविता कवि की सूक्ष्म विश्लेषण दृष्टि की परिचायक है । प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है वह दुख मे नही बधना चाहता परन्तु तितली अपनी प्रणय की करुण कथा का प्रचार करते हुए भी, व्यथा को दिग्दर्शित करते हुए प्रफुल्लित रहती है । 'स्वागत फूल' शीर्षक कविता मे प्रेमातिरेक से पूर्ण युवती के हार्दिक भावो का चित्रण है जो अपने प्रिय का स्वागत अपने नेत्र फूलो के माध्यम से करती है । 'मनोवेग' कविता मे नव नवोढा नारी की लज्जा सुलभ भावनाओ का चित्रण है । 'निवेदन' मे सात्विक एव अलौकिक प्रेम को महत्ता प्रदान करते हुए कवि ने मानव से निवेदन किया है । 'लग सुहागिन' मे शैशव सखी की यौवनावस्था का रूप चित्रित है जो अनजान मे अपने प्रिय से बद्ध हो जाती है । 'अरुण तितली' मे कवि की कल्पना श्रृगार की ओर उन्मुख है । 'निराश' मे मलय पवन थक कर विश्राम हेतु स्थल खोजता है । परन्तु उसे केवल निराशा ही प्राप्त होती है । 'प्रतीक्षा' कविता मे कवि ने अपने हार्दिक वेदनापूर्ण भावो को व्यक्त किया है । 'स्नेह स्मृति' मे प्रकृति के सुन्दर व्यापारो के द्वारा अपनी प्रेयेसी को स्मरण किया है । 'दीवाली' मे कवि ने प्रकृति के उपादानो के माध्यम से दीवाली आगमन का चित्र एक सखी को सम्बोधित करते हुए प्रस्तुत किया है । 'सशय' मे कवि अपने निरुद्देश्य पथ मे आशकित हो उठता है । 'आकाक्षा' मे कवि की इच्छा है कि वह स्वय दूसरो के दग्ध हृदय का भार वाहक बन कर विश्व मे पूर्णिमा के शशि के सदृश्य हो जाए । 'शरच्चन्द' मे शरद् पूर्णिमा के उत्सव रूप मे कवि किसी प्रिय के स्वागत को आभासित करता है । 'निर्झरिणी की स्वतन्त्रता' मे कवि गीतात्मक रूप मे, परोक्षत मानव स्वतन्त्रता की ओर सकेत करता है । 'पथिक' मे कवि की राष्ट्रीय भावना उद्घाटित मिलती है । 'खादी' मे कवि की गाधीवादी विचारधारा तथा खादी की सात्विक भावना के साथ खादी के प्रति ममत्व प्रदर्शित किया गया है । 'छिद्र' शीर्षक कविता मे कवि ने परोक्ष रूप मे निम्न मानवो के गुणो की ओर सकेत किया है । 'याचना' मे मानवीय कुप्रवृत्तियो पर विजय पाने की कवि ने प्रभु से याचना की है । 'उत्सर्ग' मे सौन्दर्य एव हर्षित जीवन मे दृगो के मोती रूप मे दु ख को स्थान मिला है । 'वेदना से' मे कवि ने वेदना का प्रिय रूप मे चित्र प्रस्तुत किया है ।

'व्यथित वशी' जो हृदय के द्रवित उद्गारो को मधुरता से व्यक्त करके दूसरो को आकर्षित करती है। 'मौन विषाद' मे कवि के भावुक हृदय मे जग के ताप के प्रति एक विषाद भाव अकित है। 'बालुके' मे तट पर बिखरी बालू के प्रति कवि ने करुणा-पूर्ण शब्दो मे उसकी विकलता का आभास करके उसके प्रति सद्भावना व्यक्त की है। 'विकल समीर' मे कवि ने समीर की विकलता का कारण किसी विरहणी के उच्छ्वास अथवा दोनो की चीत्कार की कल्पना करके उसके प्रमुख कार्यों की ओर सकेत किया है। 'मुरझे फूल से' मे कवि ने विकसित पुष्पो के सुन्दर सौभाग्य की ओर निर्देश कर कुम्हलाये पुष्प के उच्छ्वासो को अकित किया है। 'तरु पात' मे कवि ने नश्वर जीवन की ओर सकेत कर उसके प्रति तटस्थ रहने का निर्देश दिया है। 'विजन मे' कविता मे विश्व मे आसू एकान्त मे बहाने की ओर सकेत है। विजन अपने दुखी जनो को आश्रय देती है। 'कोलाहल' मे कवि की दार्शनिक विचार धारा का परिचय मिलता है। कोलाहल प्रकृति के, सृष्टि के कण-कण मे विद्यमान है। 'मा' मे कवि की भावात्मक कल्पना का विकास है। मा के मगलमय मन्दिर के द्वार पर व्याकुल, विकल हृदयो के उच्छ्वास ही गुजित हो, ऐसी कवि की कामना है।

[३] हिमानी श्री शातिप्रिय द्विवेदी की दूसरी काव्य कृति 'हिमानी' हिन्दी मन्दिर प्रेस, प्रयाग से मार्च सन् १९३४ मे प्रकाशित हुई। प्रस्तुत काव्य कृति की भी अनेक रचनाएँ इसमे सगृहीत होने से पूर्व ही पत्र-पत्रिकाओ मे स्थान पा चुकी थी। इसमे द्विवेदी जी की इक्कीस मौलिक रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त काव्य कृति के प्रारम्भ मे भी एक कविता माँ को सम्बोधित करके लिखी गयी है, तथा उसे बन्दना रूप मे प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत काव्य सग्रह में सगृहीत कविताओ मे कवि सुमित्रानन्दन पन्त के 'गुंजन' काव्य का प्रभाव है। कवि के भावो से पूर्ण इन कविताओ मे अधिकाश कविताएं शीर्षक रहित हैं। प्रस्तुत काव्य कृति की प्रथम कविता 'हिमानी' है जिसमे कवि ने अपने हृदयोदगार को व्यक्त किया है। प्रकृति जिन गीतो की सृष्टि कवि के मानस मधुवन मे करती है कवि उसी का आभास अन्य प्रकृति के उपादानो मे भी करता है। दूसरी कविता कवि हृदय के राग-विराग सम्बन्धी विचारो को व्यक्त करती है। सुख और दुख दोनो मे ही प्रियतम की उज्ज्वलतर और करुणतर मूर्ति के दर्शन कवि करता है। तीसरी कविता मे कवि ने सरिता का मानव जीवन से सामजस्य स्थापित किया है। मानव भी सरिता के प्रवाह के सदृश्य अपनी इच्छाओ मे लघु गुरु गति मे बहकर सुख-दुख को स्पर्श करता हुआ जीवन यापन करता रहता है। चौथी कविता मे कवि ने प्रकृति के प्रणय व्यापारो का श्रृगार रस से पूर्ण चित्रण किया है परन्तु कविता मे अश्लीलता नही है। 'शिशु' कविता मे शैशवावस्था की अबोधता, सारल्य है तथा उनके सौन्दर्य मे निहित उनके भविष्य की उज्ज्वल रूप रेखा को कवि ने प्रस्तुत किया है। 'जुगनू की बात' मे कवि ने अपने हृदय की लालसा को अभिव्यक्त किया है। कवि भी जुगनू के सदृश्य निर्जन मे

माँ के प्रेम प्रकाश को खोजता रहता है। 'भिखारिणी' शीर्षक कविता मे कवि ने एक भिखारिणी स्त्री की करुण रूप रेखा को प्रस्तुत कर अपने जीवन से उसकी समता स्थापित की है। 'भिखारिणी' कविता मे कवि विश्व का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए भिखारिणी को प्रकृति की ओर ले जाने की चेष्टा करता है जहाँ मानव अपने सहज, सरल जीवन मे आनन्दित होता है। कवि विहग कुमार बन कर कल्पना के पखो मे आधार खोजता है तथा इस सुख-दुख मय ससार मे मधुर प्रेम के उद्‌गारो को सुनने की आकाक्षा करता है। 'अधे का गान' मे कवि ने अधे के माध्यम से प्रभु के प्रति भक्ति व्यक्त की है तथा 'स्वर' को जग एव जगदाधार का रूप माना है। 'गगन के प्रति' कविता मे कवि गगन मे निहित अनादि युगो के इतिहास के करुण पृष्ठो को खोलता है। चेतन व्यापारो को कवि आत्मसात् करना चाहता है परन्तु नभ के रुदन पर कवि भी द्रवित हो उठता है। 'हल्दी घाटी' शीर्षक कविता ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे लिखी हुई है। इसमे कवि ने मानव जीवन के शाश्वत मूल्यो को निर्दिष्ट करके मानव मे राष्ट्रीय चेतना की प्रेरणा दी है।

[४] **'मधु सचय' :** प्रस्तुत काव्य सकलन हिन्दी पुस्तक भडार, लहरिया सराय से प्रकाशित हुआ। इसमे कवि ने ब्रज भाषा के शृगारिक कवियो की रचनाओ का सकलन किया है। कवि स्व० लक्ष्मीनारायण सिंह 'ईश' की कृपा एव प्रेरणा से द्विवेदी जी ने ब्रज भाषा के रसास्वादन के आधार पर प्रस्तुत सकलन प्रकाशित किया। प्रस्तुत काव्य सकलन अप्राप्य है।

[५] **'मोतियो की लड़ी'** प्रस्तुत काव्य का उल्लेख कही भी नही मिलता है। केवल एक सूचीपत्र ही इसका साक्षी है और यह सर्वथा अप्राप्य है।

[६] **'हमारे साहित्य निर्माता'** · ग्रन्थमाला कार्यालय, बाकीपुर से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की दूसरी गद्य पुस्तक 'हमारे साहित्य निर्माता' का प्रकाशन समय सन् १९३५ ई० है। इसके द्वितीय सस्करण का समय सन् १९३७ है। इसमे लेखक ने विभिन्न साहित्यिको के विचार, भाव विकास, उनके दृष्टिकोण का निदर्शन और उनकी शैली पर सामान्य दृष्टिपात किया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक मे सगृहीत लेख व्यावहारिक आलोचना के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' शीर्षक लेख मे उनके जीवन परिचय, हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे पदार्पण, 'सरस्वती' पत्रिका के सपादन कार्य मे उनका व्यक्तित्व, भाषा-शैली, विभिन्न साहित्य का उन पर प्रभाव—मराठी साहित्य और अग्रेज कवि वर्डसवर्थ आदि का, इनकी आलोचनापूर्ण सहित्यिक प्रवृत्ति आदि का दिग्दर्शन कराया गया है। 'अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध' विगत युग की हिन्दी कविता के महारथी कवि हैं। 'श्यामसुन्दर दास' लेख मे काशी की नागरी प्रचारिणी सभा का सपूर्ण इतिहास ही बाबू श्यामसुन्दर दास जी का सपूर्ण जीवन चरित है। 'रामचन्द्र शुक्ल' के साहित्य के माध्यम से उनके भावोद्‌गारो, दृष्टिकोण एव कविता, काव्य मे रहस्यवाद के प्रति आपकी विचारधारा

के साथ ही शुक्ल जी के गद्य ओर पद्य साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत की है। 'प्रेमचन्द' लेख मे कहानियो और उपन्यास साहित्य के यशस्वी लेखक प्रेमचन्द जी के जीवन चित्र को प्रस्तुत किया गया है, 'मैथिलीशरण गुप्त' लेख मे गुप्त जी की कविताओ से जन-जीवन मे जागृति, स्फूर्ति और प्रेरणा का चित्रण, गुप्त जी के काव्यो का महत्व, हिन्दी कविता का भावात्मक रूप प्रस्तुत करने का श्रेय तथा खडी बोली की वर्तमान हिन्दी कविता के प्रधान और सर्वप्रथम प्रतिनिधि कवि के रूप मे द्विवेदी जी ने उनके जीवन तथा साहित्य का मूल्याकन किया है। 'जयशकर प्रसाद' शीर्षक लेख मे प्रसाद जी की मौलिक प्रतिभा का आभास एव जीवन परिचय के साथ उनके सपूर्ण साहित्य की विवेचना सक्षेप मे प्रस्तुत की गयी हे। 'रायकृष्ण दास' शीर्षक लेख मे भारत कला-भवन के सग्राहक और सस्थापक रायकृष्ण दास हैं। 'राधिकारमण प्रसाद सिंह' शीर्षक लेख मे गद्य शैली की पूर्ण परिपक्वता से पूर्व ही लिखे सुन्दर कवित्व पूर्ण भाषा की छटा दिखाने वाले लेखक राजा राधिकारमण के जीवन वृत्त का चित्र अकित है। 'माखनलाल चतुर्वेदी' शीर्षक लेख मे हिन्दी ससार की एक भारतीय आत्मा श्री माखन लाल चतुर्वेदी जी के देश प्रेम के साथ ही उनका कवित्व पूर्ण उपास्य भाव चित्रित है। 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' शीर्षक लेख मे हिन्दी कविता की वाह्य कला के स्वतत्र सूत्राधार एव कविताओ मे अपरान्ह-सी प्रखरता को प्रतिबिम्बित करने वाले निराला जी के जीवन परिचय, काव्य कृतियो की समीक्षा के साथ विभिन्न विचारको के मत मे निराला जी की कला की आलोचना तथा निराला जी के विचारो को प्रकट किया गया है। 'सुमित्रानन्दन पत' शीर्षक लेख मे कविता मे प्रभात की गुलाबी छटा को दिखाने वाले तथा अपनी भावनाओ को प्रकृति सौन्दर्य मे समाविष्ट करने वाले कवि पत के जीवन परिचय, उनकी विचारधारा, उनकी काव्य शैली तथा विभिन्न काव्य कृतियो का समीक्षात्मक परिचय सन्निहित है। 'सुभद्रा-कुमारी चौहान' शीर्षक लेख मे वाह्य विश्व की स्थूल वास्तविकता को प्रत्यक्ष करने वाली कवियित्री सुश्री सुभद्रा कुमारी चौहान का जीवन परिचय, राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत कविताओ के अन्तर्गत उनकी विचारधारा आदि का दिग्दर्शन किया गया है। 'महादेवी वर्मा' शीर्षक लेख मे आन्तरिक भावनाओ के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर को प्रकट करने वाली सुश्री महादेवी वर्मा के जीवन परिचय के साथ ही उनके काव्य के आन्तरिक पक्ष का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

[७] 'साहित्यिकी' श्री शातिप्रिय द्विवेदी का निबन्ध सग्रह 'साहित्यिकी' का प्रकाशन समय सन् १९३८ है। इसके अन्तर्गत लेखक ने साहित्यिक और रचनात्मक लेखो को सगृहीत किया है। प्रस्तुत निबन्ध सग्रह मे भावात्मक, संस्मरणात्मक, सैद्धान्तिक और वैचारिक आदि निबन्ध कोटियाँ दृष्टिगोचर होती है। 'प्रेमपूर्ण मानवता की पुकार' भावात्मक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने कवि हृदय की भावुकता के साथ ही उसकी मानवता के प्रति सवेदनशील दृष्टि को भी प्रकट किया है। 'शरद

की औपन्यासिक सहृदयता' व्यावहारिक आलोचनात्मक निबन्ध मे श्री द्विवेदी जी ने शरद बाबू को आदर्शवादी और यथार्थवादी कलाकार के रूप मे चित्रित कर उनकी कहानियो और उपन्यासो की सम्यक् विवेचना प्रस्तुत की है। 'मानव समाज की एक समस्या—अन्ना' मनोवैज्ञानिक निबन्ध के अन्तर्गत श्री द्विवेदी ने टाल्स्टाय के लोक विख्यात उपन्यास 'अन्ना' के अन्तर्गत आए अन्ना के चरित्र का विश्लेषण प्रस्तुत किया है जो अनमेल विवाह समस्या से ग्रसित थी। 'ब्रजभाषा का माधुर्य विलास' शास्त्रीय आलोचनात्मक लेख मे ब्रजभाषा के सगुणोपासक काव्य के माध्यम से कृष्ण गोपी के रास रग एव उनके माधुर्य विलास का चित्रण किया है जो आज भी अपने अनुरागियो को भाव विभोर किए रहती है। 'नव पलको मे सौन्दर्य और प्रेम' सौन्दर्य शास्त्रीय निबन्ध के अन्तर्गत सौन्दर्य और प्रेम की शास्त्रीय मीमासा प्रस्तुत की है। 'औपन्यासिकता पर एक दृष्टि' सैद्धान्तिक निबन्ध के अन्तर्गत श्री द्विवेदी ने आदर्श और यथार्थ की सैद्धान्तिक विवेचना प्रस्तुत की है। 'कबि और कहानी' सैद्धान्तिक निबन्ध मे कविता और कहानी के उद्भव, विकास और उसके क्षेत्र का दिग्दर्शन कराया है। 'काशी के साहित्यक हास्य रसिक' सस्मरणात्मक परिचयात्मक लेख मे काशी की आध्यात्मिक, धार्मिक चर्चा करते हुए वहाँ के सभी कालो के साहित्यिक हास्य रसिको की उनकी कविताओ के माध्यम से विवेचना प्रस्तुत की है। 'भारतेन्दु जी का साहित्यिक हास्य' सस्मरणात्मक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने भारतेन्दु जी की कृतियो के दृष्टान्तो के माध्यम से उनकी हास्य प्रवृत्ति की सम्यक् विवेचना की हैं। 'समालोचना की प्रगति' साहित्यिक (ऐतिहासिक) निबन्ध के अन्तर्गत भारतेन्दु युग की विभिन्न गद्य अगो मे से एक अग समालोचना साहित्य का विकासात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है। 'प्रवास' सस्मरणात्मक निबन्ध मे दिल्ली और इलाहाबाद यात्रा सस्मरण के साथ वहाँ की वाह्य साज सज्जा का बडा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण है। 'हमारे साहित्य का भविष्य' वैचारिक निबन्ध के अन्तर्गत श्री द्विवेदी जी ने प्राचीन साहित्य के मूल्याकन को प्रस्तुत करके आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियो मे रचे गये साहित्य का मूल्याकन किया है। 'महापथ के पथिक प्रसाद' सस्मरणात्मक निबन्ध मे श्री द्विवेदी ने जयशकर प्रसाद जी से अपने परिचय का उल्लेख करते हुए उनकी जीवन सम्बन्धी विचारधारा और उनकी भावुकता को व्यक्त किया है। 'गोदान और प्रेमचन्द' व्यावहारिक आलोचना मे श्री द्विवेदी ने प्रेमचन्द जी के उपन्यास गोदान की आलोचना प्रस्तुत की है। 'सास्कृतिक कवि मैथिलीशरण गुप्त' व्यावहारिक निबन्ध मे श्री द्विवेदी ने कवि मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य साहित्य के माध्यम से उनके सस्कृति के प्रति अनुराग को प्रतिबिम्बित किया है। 'साकेत मे उर्मिला' व्यावहारिक आलोचना मे श्री मैथिलीशरण गुप्त के प्रबन्ध काव्य साकेत की प्रमुख नायिका उर्मिला के अन्तर्पक्ष की विवेचना प्ररतुत की है। 'सहज सुषमा के कवि गोपालशरण' व्यावहारिक निबन्ध मे श्री मैथिलीशरण गुप्त

और ठाकुर गोपाल शरण सिंह के विचारो की तुलनात्मक विवेचना के साथ गोपल शरण सिंह जी के काव्य मे स्थित कोमल एव सरल सहज सुषमा को प्रस्तुत किया गया है। 'गार्हस्थिक रचनाकार सियारामशरण' व्यावहारिक आलोचनात्मक निबन्ध मे श्री मैथिलीशरण गुप्त के अनुज श्री सियाराम शरण गुप्त की साहित्य मे पैठ का उल्लेख है। 'एकान्त के कवि मुकुटधर' व्यावहारिक आलोचना निबन्ध मे द्विवेदी युग और छायावाद युग के सन्धि काल के कवि श्री मुकुटधर की काव्य प्रतिभा के दिग्दर्शन के साथ उनकी सौन्दर्य प्रेमी प्रकृति, प्रकृति के प्रति अनुराग एव उनकी भक्ति भावना का चित्रण है। 'गद्यकार निराला' व्यावहारिक आलोचना निबन्ध मे उन्हे सक्षेप मे कवि रूप मे प्रस्तुत करके उनके गद्य साहित्य का उल्लेख किया है। 'प्रगतिशील कवि पन्त' वैचारिक निबन्ध मे पत जी के साहित्य के माध्यम से उनके जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण तथा उनके प्रगतिशील भावो को व्यक्त किया गया है। ' 'नीहार' मे करुण अध्यात्मक की कवि महादेवी' व्यावहारिक आलोचना निबन्ध मे श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य ग्रन्थ नीहार के माध्यम से श्री द्विवेदी ने कवियित्री की आराधना पद्धति की विश्लेषणात्मक विवेचना प्रस्तुत की है। 'एक अतीत स्वप्न' वैचारिक निबन्ध मे 'मानव समाज जैसे अतीत का शिशु रहा है वैसे ही वह वर्तमान युग का भी शिशु है' के साथ मानव समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है। 'कवीन्द्र एक बाल्य झलक' शीर्षक परिचयात्मक निबन्ध मे कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के बाल्य काल जीवन की एक स्पष्ट झलक प्रस्तुत की गयी है।

[८] **'संचारिणी'** इडियन प्रेस (पब्लिकेशस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की निबन्ध पुस्तक 'सचारिणी' के प्रथम सस्करण का प्रकाशन काल सन् १९३९ है और पाचवे सस्करण का सन् १९५७ ई०। प्रस्तुत पुस्तक मे भावात्मक तथा साहित्यिक लेख सगृहीत किये गए है। सचारिणी मे लेखक की अन्तरोन्मुखता से प्रतिभासित होकर, उनके प्रयत्न और विश्वास की बहिर्मुखता आभासित होती है। 'सचारिणी' के निबन्धो मे विविध वादो मे सहयोग और सामजस्य का आभास होता है जो लेखक के रचनात्मक दृष्टिकोण को इगित करती है। 'भक्तिकाल की अन्तश्चेतना' वैचारिक निबन्ध के अन्तर्गत भक्ति काल के साहित्य की मूल चेतना को स्पर्श किया है। 'ब्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि' वैचारिक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने कवि जगन्नाथ 'रत्नाकर' को अन्तिम प्रतिनिधि कवि माना है। 'शरत्साहित्य का औपन्यासिक स्तर' सैद्धान्तिक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने साहित्यिक और तात्कालिक समाज एव उसकी विभिन्न सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं का अकन करते हुए शरत्साहित्य मे उनके प्रतिबिम्ब को देखने की चेष्टा की है। 'कला मे जीवन की अभिव्यक्ति' वैचारिक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने कला के लिए विशिष्ट अर्थ उद्घोषित किया है जो एक निश्चित अभिप्राय से प्रयुक्त होना चाहिए। कला साहित्य का वाह्य रूप है, जीवन उसका अन्त स्वरूप। 'कला जगत्

और वस्तु जगत्' सैद्धान्तिक निबन्ध मे वस्तु जगत् और काव्य जगत् के पार्थक्य को प्रकट किया है। 'भारतेन्दु युग के बाद की कविता' व्यावहारिक साहित्यिक निबन्ध मे उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से छायावादी युग तथा बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक की कविता के गुणो का दिग्दर्शन तथा मूलयाकन किया है। 'नवीन मानव साहित्य' व्यावहारिक साहित्यिक निबन्ध मे कल्पना के महत्व पर विशेष जोर दिया गया है जिससे हृदय को कोमल विश्राम मिलता है। 'छायावाद का उत्कर्ष' व्यावहारिक आलोचनात्मक निबन्ध मे द्विवेदी युग के उपरान्त छायावाद की कविता मे शृगार और भक्तिमूलक प्रवृत्ति के मध्य मार्ग अनुराग का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत किया है। 'हिन्दी गीतिकाव्य' विचारात्मक निबन्ध के अन्तर्गत उसके विकासात्मक स्वरूप की ओर दृष्टिपात किया गया है जो अपने शैशव मे लहरा कर यौवन मे ही सूख सा गया था। 'कवि का आत्म जगत्' भावात्मक लेख के अन्तर्गत मानव जीवन मे कविता के स्वत प्रस्फुटन की ओर सकेत किया है।

[९] 'युग और साहित्य' इडियन प्रेस (पब्लिकेशस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की 'युग और साहित्य' पुस्तक का प्रकाशन समय सन् १९४० है। इसके तृतीय सस्करण का प्रकाशन समय १९५८ है। लेखक ने इसमे साहित्यिक, सामाजिक और राष्ट्रीय सन्दर्भ मे ऐतिहासिक लेखो का सग्रह किया है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखो मे प्रगतिवादी दृष्टिकोण का प्राधान्य है और गान्धीवाद अन्त स्पन्दन की भाँति उसके अन्तस् मे विद्यमान है। द्विवेदी जी न केवल गाधीवाद और छायावाद से प्रभावित थे प्रत्युत वह समाजवाद और प्रगतिवाद को भी अन्तश्चेतना की आधुनिक विकृतियो के बन्धन से मुक्ति के लिए महत्वपूर्ण मानते थे। इसमे लेखक ने युग द्वन्द्वो और तद् जनित सम्भावनाओ को उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। विभिन्न वादो के चित्रण मे द्वन्द्व नही, ऐक्य, सामजस्य और सयोजन है। वस्तुत इसमे वर्तमान हिन्दी साहित्य का इतिहास चित्रित है जो लेखक के प्राचीन इतिहास लेखन शैली से भिन्न अपनी नवीनता और मौलिकता लिए हुए प्रतिभासित होती है। 'युग और साहित्य' का रचनात्मक दृष्टिकोण वैज्ञानिक नही, सास्कृतिक है तथा साधन ग्रामीण है। 'नखविन्दु' व्यावहारिक लेख मे श्री द्विवेदी ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे समाज का चित्र अंकित कर के उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे रूढियो एव अकर्मण्यता के विरुद्ध समाज सुधारको का असन्तोष एव उनके दृष्टिकोण को अकित किया है। 'साहित्य के विभिन्न युग' लेख मे ऐतिहासिक विकासात्मक युग का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करके आधुनिक युग के साहित्य का पर्यावलोकन किया है। 'युग का आदान' लेख मे प्रत्येक युग की महत्ता दर्शित है जो आने वाले युग को कुछ न कुछ उपलब्धियाँ एव विशिष्ट विचारधाराओ से आप्लावित करता है। 'प्रगति की ओर' लेख के अन्तर्गत प्राचीन काव्य साहित्य की अन्तश्चेतना का दर्शन कराते हुए लेखक ने आधुनिक कविता साहित्य को प्रगति की ओर उन्मुख होने का सकेत किया

है। 'हिन्दी कविता मे उलट फेर' लेख मे कविता का विभिन्न युगो मे अन्तर का कारण स्पष्ट किया है जो मानव और समाज की आवश्यकताओ की ओर सकेत करता है। 'इतिहास के आलोक मे' एक अत्यन्त विस्तृत लेख है। इसमे लेखक ने सन् १९४० के सत्याग्रह से पूर्व तक की साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियो का निरूपण किया है। 'वर्तमान कविता का क्रम विकास' लेख मे हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग से छायावाद के पूर्व तक की कविता का क्रम विकास निरूपित हुआ है। 'छायावाद और उसके बाद' सैद्धान्तिक लेख मे पत, निराला, प्रसाद और महादेवी आदि छायावादी कवियो की मान्यताओ एव विचारधाराओ का उल्लेख है। 'कथा साहित्य का जीवन पृष्ठ' साहित्यिक लेख मे समाज एव राजनीति का स्पर्श करते हुए कथा साहित्य का विकासात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है। 'प्रसाद और कामायनी' व्यावहारिक आलोचनात्मक लेख मे प्रसाद के साहित्यिक व्यक्तित्व एव साहित्य की विभिन्न विधाओ मे उनकी पहुच के दिग्दर्शन के साथ कामायनी के कला पक्ष और भाव पक्ष की विवेचना और प्रसाद के व्यक्तित्व का कामायनी महाकाव्य पर प्रभाव को प्रतिबिम्बित किया है। 'प्रेमचन्द और गोदान' व्यावहारिक लेख मे प्रसाद और प्रेमचन्द की भिन्न परिस्थितियो का उल्लेख कर उनके साहित्य मे भी उसके प्रभाव को दर्शित किया है। इसमे गोदान की समीक्षा के साथ प्रेमचन्द साहित्य के विभाग को प्रस्तुत किया है। 'निराला' लेख मे श्री द्विवेदी ने निराला और जैनेन्द्र का सक्षिप्त कलात्मक व्यक्तित्व अकित करके निराला जी के परिचय, उनके दृष्टिकोण, तथा उनकी मान्यताओ को दर्शित करते हुए उनके अभूतपूर्व व्यक्तित्व को उभारा है। 'पत और महादेवी' व्यावहारिक लेख मे क्रमश. सौन्दर्य और वेदना की प्रतिमूर्ति को स्थापित करके इन दोनो के दृष्टिकोण का तुलनात्मक परिचय दिया है तथा उनके काव्यात्मक व्यक्तित्व का दिग्दर्शन कराया है।

[१०] **'सामयिकी'** ज्ञान मडल लिमिटेड, कबीर चौरा, वाराणसी से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की आलोचनात्मक कृति 'सामयिकी' का प्रकाशन समय सन् १९४४ ई० है। इसका तृतीय सस्करण सन् १९६१ ई० मे प्रकाशित हुआ। 'सामयिकी' आलोचना कृति मे युग की सार्वजनिक विचारधाराओ और साहित्यिक प्रवृत्तियो की विवेचना की गयी है जिसमे लेखक ने अपने मतो का निर्धारण किया है। 'सामयिकी' मे उनका दृष्टिकोण गाधीवादी है। गाधीवाद ही प्रस्तुत पुस्तक का मुख्य सवेदन बन गया है। 'सामयिकी' कृति के 'युग दर्शन' सास्कृतिक आलोचनात्मक लेख मे 'श्रूयते हि पुरा लोके' के अन्तर्गत पतनोन्मुख जीवन प्रणाली, नारी का व्यक्तित्व, समस्याओ के मूल मे नारी समस्या, आध्यात्मिक स्तर पर सृष्टि मे सत् चित् आनन्द की एकताभग के कारण और आनन्द मे विलास के समावेश के कारण शिव के प्रलयनेत्र के उन्मीलित होने फलत. ससार मे महानाश की ज्वाला आदि के चित्रण के माध्यम से लेखक ने आधुनिक युग का अत्यन्त ही

सूक्ष्मता से छायाचित्र प्रस्तुत कर दिया है। 'रवीन्द्रनाथ' शीर्षक व्यावहारिक आलोचनात्मक लेख मे श्री द्विवेदी ने ऐश्वर्य और कवित्व का सम्मिलन, जीवन निर्माण के लिए माडल, महात्मा जी से मतभेद, जीवन और कला का समन्वय, आर्ष भारत के अर्वाचीन कवि, रवीन्द्र युग और गान्धी युग का भविष्य, बहुमुखी प्रतिभा और बहुमुखी कृतियाँ, विस्मयजनक व्यक्तित्व आदि शीर्षको के अन्तर्गत कवीर्यनीषी रवीन्द्रनाथ टैगोर के जन्म, जीवन, व्यक्तित्व, दृष्टिकोण, युग विश्लेषण, साहित्यिक प्रतिभा एव बहुमुखी कृतियो मे दृष्टिकोण एव शैली की नवीनता आदि उनसे सम्बन्धित विविध क्षेत्रो का स्पर्श किया है। 'कवि, कलाकार और सन्त' शीर्षक व्यावहारिक आलोचनात्मक लेख मे भारतीय साहित्य के त्रिदेव रवीन्द्र, शरद् और गाधी के दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। 'शरच्चन्द्र शेष प्रश्न' पुस्तक समीक्षा मे श्री द्विवेदी ने शरद् के उपन्यास 'शेष प्रश्न' की समीक्षा कलात्मक गूढता, नारी का रूपान्तर, मानवता की पृष्ठभूमि, बन्धनो की स्वामिनी, नारी का आधुनिक परिष्कार, प्राच्य और प्रतीच्य, लोकान्तर, प्रेम की नीरव अभिव्यक्ति आदि शीर्षको के अन्तर्गत प्रस्तुत की है। 'जवाहरलाल एक मध्य विन्दु' व्यावहारिक आलोचना मे श्री द्विवेदी जी ने प० जवाहरलाल नेहरू को आधुनिक एव अपने समकालीन युग के तरुण विचारो का केन्द्र मान कर उनकी कृति 'मेरी कहानी' के आधार पर नेहरू जी के व्यक्तित्व एव उनके दृष्टिकोण का चित्रण किया है। 'हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि' साहित्यिक आलोचना लेख मे खडी बोली की कविता के विकासात्मक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए प्रगतिवादी युग की कविता मे मानवमन की ज्वालाओ एव आधुनिक युग की विभीषिका की आलोचना प्रस्तुत की है। 'आधुनिक हिन्दी कविता के मार्ग चिन्ह' आलोचना के अन्तर्गत लेखक ने आधुनिक हिन्दी कविता में मार्ग चिन्हो को पाँच कालो मे विभक्त किया है। 'शुक्ल जी का कृतित्व' व्यावहारिक आलोचना मे आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल जी का अजलि, पूर्व पीठिका, काव्य मे प्रकृति, रहस्यवाद, अन्तराल, कलात्मक धरातल, मानसिक निर्माण, समालोचना की सम्मिलित पृष्ठभूमि, प्रभाविक समालोचना, वैधानिक समालोचना, व्यक्तिप्रधान साहित्यिक रुचि, छायावाद, रहस्यवाद और समाजवाद, युग निर्देशन, हिन्दी साहित्य का इतिहास आदि शीर्षको के अन्तर्गत उनका जन्म जीवन, श्रद्धाजलि के साथ उनके कृतित्व एव व्यक्तित्व की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए उनके दृष्टिकोणो को अभिव्यक्त किया है। 'प्रगतिवादी दृष्टिकोण' मे आत्मविवृत्ति शीर्षक लेख गद्य काव्यात्मक स्वरूप का बोध कराता है। इसमे लेखक ने अपने गन्तव्य की ओर दृष्टिपात किया है। 'छायावादी दृष्टिकोण' मे वैभव विलास और भाव विलास, छायावाद और प्रगतिवाद, वातावरण, प्रवृत्ति और निवृत्ति, रूप और अरूप, समन्वय, गाधीवाद और बुद्धवाद, छायावाद का व्यक्तित्व, वास्तविकता और कविता आदि शीर्षको के अन्तर्गत छायावाद के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन तथा छायावाद का प्रतिनिधित्व करने वाले

प्रमुख साहित्यिको के दृष्टिकोण की आलोचना प्रस्तुत की है। 'हिन्दी साहित्य' मे द्वितीय विश्व युद्ध और उसके बाद अणु युग का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करते हुए हिन्दी साहित्य के विकासात्मक स्वरूप और उसके व्यक्तित्व के विविध रूपो पर प्रकाश डाला है। 'भविष्य पर्व' लेख मे चेतन प्रकाश की अमिट रेखा बापू शीर्षक के अन्तर्गत आधुनिक विभीषिका और मानवीय बौद्धिक प्रवृत्ति का मूल्याकन करते हुए महात्मा गाधी को इस तामसिक युग के चेतन प्रकाश की अमिट रेखा के रूप मे अकित किया है। 'प्रकृति पुरुष का उत्तराधिकार' लेख मे बापू के देहावसान के बाद आधुनिक युग के वास्तविक रूप को परिवेष्ठित किया गया है।

[११] **'पथचिन्ह'** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत सस्मरणात्मक पुस्तक चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से सन् १९४६ मे प्रकाशित हुई थी एव चतुर्थ सस्करण का प्रकाशन काल सन् १९६६ ई० है। 'पथ चिन्ह' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इसमे आधुनिक युग के आक्रान्त समय मे भी मानव के लिए एक पथ निश्चित किया गया है जो भारत के शाति पूर्ण पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार 'पथचिन्ह' मे अशात और अव्यवस्थित युग के बाद भविष्य मे जीवन की रूपरेखा खीचने का प्रयास किया गया है एव जीवन के स्वाभाविक निर्माण को अकित किया गया है। अत पथ-चिन्ह लोक जीवन के निर्माण का पथ निर्देशक है। 'पथचिन्ह' मे लेखक ने अपनी स्वर्गीया भगिनी को भारत माता की आत्मा के रूप मे स्मरण किया है, उसी के व्यक्तित्व को केन्द्र विन्दु मानकर अपने जीवन और युग की समस्या को स्पर्श किया है। लेकिन बहिन के 'स्मृति चिन्तन' के रूप मे इस सस्मरण पुस्तक को छ अध्यायों मे बाँट दिया है। 'वह स्वर्गीया निधि' की 'आहुत्ति' के पश्चात् स्वय 'अभिशापो की परिक्रमा' करते हुए इस विश्व का पूर्णत 'पर्यवेक्षण' करके स्वय अपने जीवन एव विश्व जीवन मे 'अन्त सस्थान' को महत्व दिया है जिससे आज भटकती मानवता सजग होकर पुन. उस मायाजाल के कीचड मे न फसे। यही लेखक की अभिलाषा है। कही-कही पर श्री शातिप्रिय ने ऐसे गूढ तथ्यो का निर्देश किया है जो वास्तव मे आज समाज के अन्दर घटित हो रहे है। आज धर्म के पर्दे के अन्दर भी आर्थिक सत्ता का बोलबाला है। धर्म कर्म के आधार पर आज अर्थ कर्म को ही धर्म कर्म मान लिया गया है जिससे आज मानव समाज मे अनाचार, छद्माचार की अत्यन्त घातक वृद्धि हुई है। लेखक ने अपने भावो को व्यक्त करने एव उनकी तात्विक व्यजना के लिए श्लाघनीय नवीन शब्दो की सृष्टि की है एव उनकी शैली आत्म परिचयात्मक है।

[१२] **'जीवन यात्रा'** . प्रस्तुत ग्रन्थ ग्रन्थ कार्यालय, पटना से अगस्त १९५१ मे द्वितीय सस्करण मे प्रकाशित हुआ है। यह पुस्तक रचनात्मक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमे मानव जीवन के विविध पक्षो की सरचनात्मक एव दार्शनिक विवेचना है। जीवनोपयोगी विभिन्न तथ्यो को दृष्टि मे रख कर जीवन का सूक्ष्म

पर्यावलोकन किया गया है । श्री शातिप्रिय द्विवेदी के समकालीन निबन्धकार जिस धरातल पर निबन्ध साहित्य मे अपना योगदान दे रहे थे उसका परित्याग कर आपने अपने नवीन दृष्टिकोण एव नवीन पद्धति के द्वारा नवीन धरातल पर निबन्ध साहित्य को विशिष्ट स्थान प्रदान किया । इस प्रकार आपने निबन्ध साहित्य की धारा को एक मोड-सा देकर उसके साहित्य की परिपक्वता मे प्रशसात्मक योगदान दिया । 'यात्री' शीर्षक निबन्ध मे मानव को एक यात्री के रूप मे चित्रित कर उसे किसी आज्ञात लोक का वासी माना है । 'जीवन का लक्ष्य' और 'जीवन का उद्देश्य' शीर्षक निबन्धो मे लक्ष्य और उद्देश्य की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है । 'मृग तृष्णा' निबन्ध मे मावन की अतृप्त महत्वाकाक्षाओ का दिग्दर्शन करते हुए उसकी दो प्रखर लपटो—द्वेष और ईर्ष्या—की ओर सकेत किया है जो मानव को निरन्तर अवनति की ओर ले जाती है । इनसे आत्मशाति और आत्मानन्द नही प्राप्त हो सकता । ससार मे जीवन के निर्वाह के लिए लौकिक योग्यता की आवश्यकता एव अनिवार्यता है, इससे रहित मानव जीवन की कसौटी पर पूर्णरूपेण खरा नही उतर सकता । यही निर्देशन 'लौकिक योग्यता' नामक निबन्ध मे किया गया है । जीवन मे स्थायी सुख शाति के लिए 'आत्म चिन्तन' मनन अधिक आवश्यक है तथा जीवन पथ के अधकार को मिटा कर उत्तरोत्तर जीवन विकास के लिए 'आत्म विश्वास' भी एक प्रधान गुण है । जीवन के आगन मे सुख-दुख के पौधे तो विकसित होते ही रहते हैं लेकिन निरन्तर दुख ही दुख की कल्पना कर हृदय द्रवित करना हानिकर है । जीवन की श्रेष्ठता के लिए हसना एव मुस्कराना भी आवश्यक है जिससे उर के सौरभ से जग का आँगन भी सुवासित हो उठे । यही सार 'हसता जीवन' मे अकित किया गया है ।

[१३] **'ज्योति विहग'** : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की 'ज्योति विहग' आलोचना का प्रकाशन काल १९५१ है । प्रस्तुत आलोचनात्मक पुस्तक मे लेखक ने सौन्दर्य और सस्कृति के सुकुमार कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी की कृतियो की आलोचना प्रस्तुत की है । द्विवेदी जी ने प्रस्तुत आलोचनात्मक पुस्तक के 'साकल्य सत्य शिव सुन्दरम्', 'सुन्दरम् : छायावाद युग', 'शिवम् प्रगतिशील युग' तथा 'सत्यम् : सास्कृतिक युग' आदि शीर्षको के अन्तर्गत पत जी की समस्त कृतियो का विभाजन प्रस्तुत किया है । प्रथम शीर्षक मे लेखक ने 'शिल्पी' अध्याय के अन्तर्गत हिन्दी कविता की कमनीयता और उदयाचल के छायावादी कवि पत को एक उत्कृष्ट शिल्पी के रूप मे अकित किया है । 'हिन्दी कविता का क्रम विकास' अध्याय के अन्तर्गत ब्रजभाषा और खडी बोली, द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि, छायावाद युग, विरोध और विकास, तथा छायावाद के वृहत्त्रयी आदि शीर्षको के अन्तर्गत आधुनिक हिन्दी कविता के विकास क्रम को प्रतिबिम्बित किया है । 'अन्तरदर्शन' मे बालिका . एक भाव प्रतीक, रवीन्द्र और पत, सस्मरण, सौन्दर्य की साधना, युग का प्रभाव, पत की प्रगति शीर्षको के अन्तर्गत पत जी के छायावादी

दृष्टिकोण सुन्दरम् को स्पष्ट करते हुए प्रगति युग मे उनकी पैठ तथा पत कला का विभाजन प्रस्तुत किया गया है। 'काव्यारम्भ वीणा' मे रचनाओ का कालक्रम, नवोन्मेष और नैवेद्य के अन्तर्गत पत की प्रारम्भिक प्रतिभा एव साहित्यिक प्रभाव का उच्छ्वास, आसू, नवजीवन की साधना आदि शीर्षको के अन्तर्गत द्विवेदी जी ने पत के प्रकृति के प्रति अनुराग, उनके रचित प्रणय काव्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'नारी' मे पत के नारी के प्रति विचारो का दिग्दर्शन उन्ही के काव्यो के आधार पर किया गया है। 'काव्य कला' मे शब्दो का व्यक्तित्व, चित्रभाषा और चित्रराग, छन्दो की परख, अतुकान्त और मुक्त छन्द, तुकान्त और गीतिकाव्य, अलकार आदि शीर्षको के अन्तर्गत पत जी के काव्य के वाह्यावरण एव वाह्य उपकरणो को विश्लेषित किया गया है। सुन्दरम् छायावाद युग के 'उद्घाटन' मे प्रकृति का वरदान, कवि का स्वप्न, साधना की व्यापकता शीर्षको के अन्तर्गत व्यक्त किया गया है कि पत की कला की सधना प्रकृति प्रदत्त है। 'पल्लव' मे पत द्वारा रचित अनेक कविताओ का सग्रह है। 'गुजन' मे पत जी की नवप्राण प्रेरणाओ का उद्घोष होता है। 'ज्योत्सना' मे पन्त जी ने गुन्जन की अप्सरा का ही सार्वजनिक रूप प्रतिष्ठित किया है। 'पाँच कहानियाँ' पुस्तक मे पत जी की पाँच कहानियाँ सगृहीत है—पानवाला, उस बार, दम्पति, बन्नू, अवगुठन। इन कहानियो मे लेखक चित्रकार के सदृश्य ही अत्यन्त मुखर हो उठा है। अतएव ये शब्द चित्र-सी आभासित होती है। 'युगान्त' मे द्विवेदी जी ने धुधले पद चिन्ह, मन स्थिति, नव सृजन की प्रेरणा, जीवन और कला के अन्तर्गत 'युगान्त' के प्रकाशन काल मे पत जी की परिस्थितियो के आभास के साथ उनके दृष्टिकोण मे परिवर्तन का उल्लेख किया है। 'प्रगति, सस्कृति और कला' अध्याय के अन्तर्गत 'आधुनिक कवि' की विवेचना की गयी है। 'ग्राम्या' अध्याय के अन्तर्गत सामाजिक स्थिति, बौद्धिक सहानुभूति, सास्कृतिक दृष्टि, भाव सृष्टि शीर्षको मे 'ग्राम्या' मे सगृहीत कविताओ के माध्यम से कवि पत की परिस्थितियो का उल्लेख एव उनकी विचारधारा के नवीन मोड का प्रस्तुतीकरण है। 'रचनात्मक निर्देशन' अध्याय मे युगवाणी काल मे पत को ऐतिहासिक और उपनिषद् युग मे चित्रित किया है। 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि, 'उत्तरा' और 'युगपथ' मे कवि उसी ओर उन्मुख हुआ है। 'कवि की श्रद्धांजलि' अध्याय मे स्वर्णधूलि मे सगृहीत कविता कवि की श्रद्धाजलि का विवेचन है। 'स्वर्ण किरण' अध्याय मे कला मे नवीनता, द्युतिमती चेतना, सास्कृतिक वातावरण, रहस्यवाद, प्रकृति की परमात्य सत्ता, चित्र गरिमा, गीत निबन्ध रजतालय, हिमाद्रि, इन्द्रधनुष, स्वर्ण निर्झर, ऊषा, स्वर्णोदय, अशोक वन आदि शीर्षको के अन्तर्गत पत जी की 'स्वर्ण किरण' मे सगृहीत कविताओ की आलोचना प्रस्तुत की है। 'स्वर्णधूलि' मे कला का सामंजस्य, पद्य और गीत गद्य, कथा काव्य, साधना और आराधना, मानसी आदि शीर्षको के अन्तर्गत उसमे सगृहीत कविताओ की आलोचना के साथ उसके अन्तरदर्शन को प्रकट किया गया है। 'उत्तरा' मे क्रान्ति का स्वरूप, चेतना का अव-

तरण, प्रकृति का निरूपण, गीति काव्य की नवीन प्रगति आदि शीर्षको के अन्तर्गत उनमे सगृहीत कविताओ के माध्यम से पत के विभिन्न दृष्टिकोणो को प्रस्तुत किया गया है । 'युग पथ' मे अतीत का आविर्भाव, राष्ट्रीय सगीत, कला के विविध प्रयोग, चेतना का मानवीकरण, त्रिवेणी शीर्षक के अन्तर्गत पत जी की कला का रचनात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है ।

[१४] **'परिव्राजक की प्रजा'** इडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की सस्मरणात्मक पुस्तक 'परिव्राजक की प्रजा' का प्रकाशन काल सन् १९५२ है । इसमे लेखक ने साहित्यिक आत्मकथा का परिचयात्मक इतिहास प्रस्तुत किया है । 'परिव्राजक की प्रजा' श्लिष्ट पद है जिनमे ध्वन्यार्थ भी आभासित होता है । लेखक की यह आत्मकथा ही सबकी 'आप बीती जग बीती' हो गयी है । प्रस्तुत पुस्तक के क्रमबद्ध सस्मरणो ने 'पर्सनल एसे' का रूप धारण कर लिया है । श्री द्विवेदी ने 'परिव्राजक की प्रजा' सस्मरणात्मक पुस्तक को दो भागो मे विभक्त कर दिया है—बाल्य काल और उत्तर काल । बाल्य काल के विभिन्न लेखो के अन्तर्गत लेखक ने प्रारम्भिक दिनो से शिक्षा ग्रहण करने तक के अपने जीवन को आबद्ध किया है । उत्तर काल मे उसके अनन्तर से साहित्यिक क्षेत्र मे आने तथा विभिन्न सपादन कार्यो का उल्लेख है । प्रथम खड बाल्य काल के लेखो मे क्रमानुसार 'मुक्त पुरुष' मे श्री द्विवेदी के पिता के निवास स्थान, उनकी प्रकृति आदि का चित्रण है । 'सगुण शिशु' सस्मरण लेख मे स्वय लेखक के शैशव काल मे निवास स्थान तथा भाई का चित्र प्रस्तुत किया गया है । 'मातृ विसर्जन' मे माँ के और छोटे भाई हीरा के निधन के साथ बहिन कल्पवती का दारुण विलाप है । 'वनदेवी के अचल मे' लेख मे लेखक की शैशवावस्था के देहात के उन्मुक्त वातावरण मे प्रकृति प्रागण मे क्रीडा कौतुक के दृश्य प्रस्तुत किये गये है । 'साधना की साध्वी' मे बहिन के वैधव्य जीवन की विडम्बनाओ के साथ उसके स्वावलम्बन की ओर सकेत है । 'बाल्य क्रीडा' मे प्राइमरी स्कूल की पढाई, वहाँ की पुस्तको की व्याख्या, बाल्य काल के खेल कूद का चित्रण, रामलीला मेले, उत्सव आदि के साथ लेखक के कुएँ मे गिरने का सकेत आदि भी सन्निहित है । 'लीला और मेला' लेख मे भी रामलीला और कृष्ण लीला तथा वहाँ के वातावरण का सजीव चित्र मेले के रूप मे प्रस्तुत किया गया है । 'अप्रत्याशित निमत्रण' मे लेखक का पुन· अपने गाँव मे जाना तथा वहाँ रहने का चित्रण है । 'अन्त प्रस्फुटन और वातावरण' मे अमिला कस्बे के प्राकृतिक वातावरण के चित्रण के साथ वहाँ की पढाई लिखाई और घर के कठोर वातावरण का चित्र प्रस्तुत हुआ है । 'जीवन के तट पर' लेख मे अपने नये आवास का चित्रण है तथा लेखक की स्वय चौथी कक्षा उत्तीर्ण करने का सकेत है । 'परिपाटी का त्याग' मे लेखक की तेजस्विता का सकेत है जिसके परिणामस्वरूप इन्हे छात्रवृत्ति मिली । द्वितीय खड उत्तर काल के लेखो मे 'आधार की खोज मे' लेख मे लेखक की नि सहाय अवस्था, फलस्वरूप भ्रमणकारी प्रवृत्ति के

साथ ही स्वअध्ययन की प्रवृत्ति और विभिन्न छात्रो से सपर्क का चित्रण है। 'कुतूहल और प्रेरणा' मे पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र' से परिचय, पुस्तक मे अपना नाम छपवाने की लालसा, त्रिदडी से परिचय और उन्ही के द्वारा 'प्रकाश पचक' मे 'आज' के प्रमुख सपादक श्री प्रकाश जी और द्विवेदी जी के पूर्वनाम का उल्लेख कर पाँच दोहो की रचना आदि का उल्लेख है। सन् २० के असहयोग आन्दोलन, उग्र जी के मित्र प० कमलापति त्रिपाठी से परिचय, विश्वविद्यालय के छात्रावास मे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ के अध्ययन तथा श्री प्रकाश जी और प० जवाहरलाल नेहरू से भेट का चित्रण है। 'नेताओ की झाकी' लेख मे गाधी जी का भाषण, अवध के एक किसान कार्यकर्ता बाबा रामचन्द्र की गिरफ्तारी, भिन्न-भिन्न नेताओ के दौरे—राजेन्द्र बाबू, टडन जी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, डा० भगवानदास, सी०एफ० एन्ड्रूज, मालवीय जी, स्वामी सत्यदेव आदि के व्यक्तित्व एव भाषणो के साथ ही स्वामी सत्यदेव के साहित्य का अध्ययन और श्री द्विवेदी जी का प्रतिलिपि के काम का प्रारम्भ परन्तु रुचि के अनुरूप न होने पर उसके परित्याग आदि का उल्लेख है। 'अलक्षित भविष्य की ओर' मे प्रारम्भ मे श्री प्रकाश जी के द्वारा 'आज' कार्यालय गुरुधाम, कबीर चौरा' मे काम मिला, वहाँ से छोड कर रायसाहब गोस्वामी रामपुर के आवास मे शरण ली परन्तु उसे भी मनोनुकूल न पाकर उसका परित्याग आदि का चित्रण है। 'आनन्द परिवार' मे श्री द्विवेदी जी के लेख 'स्त्री दर्पण' के उपरान्त 'विद्यर्थी' मे छपे, डा० सपूर्णानन्द जी के परिवार का चित्रण है, जहाँ श्री द्विवेदी जी को भी आश्रय मिला। 'रोमान्टिक अनुभूति' मे ज्ञानमडल मे प्रेमचन्द जी से परिचय, उनकी सहायता से 'माधुरी' के सपादकीय विभाग मे क्लर्क का काम, वहाँ से अलग होकर पत और निराला के साहित्य का अध्ययन, वही पर हिन्दू-मुस्लिम दगे आदि का चित्रण, इस दगे के फलस्वरूप मन की दहशत का अकन उल्लिखित है। 'मानसिक स्थिति' लेख मे काशी मे आकर निराला काव्य से काव्य प्रेरणा ग्रहण कर काव्य साधना का चित्रण है। 'सस्कृति की आत्मा' मे बहिन के देहात मे स्कूल खोलने आदि का वर्णन है। 'अध्ययन और अनुभव' मे विभिन्न साहित्यकारों से सपर्क और परिचय के उपरान्त उनके साहित्यिक अध्ययन और विभिन्न पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव आदि का चित्रण है। 'छायावाद की स्थापना' लेख मे छायावाद का एक सुव्यवस्थित पृष्ठभूमि मे स्पष्टीकरण 'हमारे साहित्य निर्माता' आलोचनात्मक ग्रन्थ मे हुआ है। 'नीरव और हिमानी' लेखक की काव्य कृतियाँ है जिनमे सन् १९२४ से १९३४ तक की लिखी कविताए सग्रहीत है। 'बहिन का बलिदान' मे बडी बहिन के दिवगत होने का उल्लेख है। बहिन के श्राद्ध सस्कार मे बनारस आने पर वह बनारस मे रुककर बहिन की स्मृति मे उनके कमरे को 'कल्पवती कुटीर' बना कर उसी मन्दिर मे साहित्य की आराधना करने लगे। इसी की स्वीकृति इस लेख मे है।

[१५] **'प्रतिष्ठान'** . इडियन प्रेस (पब्लिकेशस) लिमीटेड, इलाहाबाद से

प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की पुस्तक 'प्रतिष्ठान' का प्रकाशन समय सन् १९५३ ई० है। विविध लेखो के सग्रह 'प्रतिष्ठान' मे लेखक की लेखन शैली की विविधता दृष्टिगोचर होती है। यही विविधता लेखक की रचनात्मक प्रवृत्ति की द्योतक है। इसमे वैयक्तिक तथा समीक्षात्मक साहित्यिक निबन्धो के अतिरिक्त सस्मरण एव रिपोर्ताज भी सगृहीत है। अतएव प्रस्तुत पुस्तक मे लेखक ने जीवन और साहित्य के सस्थापन का सक्रिय प्रयास किया है। प्रस्तुत निबन्ध सग्रह मे बाल्य स्मृति सस्मरणात्मक लेख है जिसमे लेखक अपने अतीत के स्वप्निल भावो मे लीन होता है। 'पद्य सन्धान' सस्मरण मे लेखक के स्वभाव, समाज मे यथार्थ स्थिति, आधुनिक युग मे मनुष्य और प्रकृति दोनो के शोषण आदि का चित्रण है। 'प्रकृति, सस्कृति और कला' सास्कृतिक निबन्ध मे लेखक ने जीवनदायिनी नदियो के प्रति श्रद्धा का दिग्दर्शन करके प्रकृति के प्रति अपने आकर्षण को व्यक्त किया है। इसके साथ ही आपने सस्कृति के आध्यात्मिक तत्वो का भी स्पर्श किया है। 'युग निर्माण की दिशा' मे मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी के रूप मे लिया है परन्तु आधुनिक मानव सामाजिक न होकर आर्थिक प्राणी बन गया है। 'छायावाद का प्राकृतिक दर्शन' साहित्यिक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने रहस्यवाद और छायावाद के काव्य में वस्तुगत तथा उसके वाह्य अन्तर को स्पष्ट किया है। 'मिथिला की अमराइयो मे' लेख मे यात्रा सस्मरण के रूप मे रिपोर्ताज का एक नमूना-सा लक्षित होता है। 'सस्कृति की साधना' सास्कृतिक निबन्ध के अन्तर्गत साम्प्रदायिक उपद्रवो के कारण धर्म के स्थान पर सस्कृति के प्रयोग को दर्शित किया है। 'त्रिवेणी के अचल मे' एक साहित्यिक सस्मरण है जिसमे लेखक ने प्राक्कथन के अन्तर्गत वैयक्तिक दृष्टिकोण से सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियो का स्पर्श किया है। 'समकालीन साहित्य' एक साहित्यिक निबन्ध है जिसमे लेखक ने उसके शीर्षक के अनुरूप ही आधुनिक हिन्दी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियो की ओर दृष्टिपात किया है।

[१६] **'दिगम्बर'** हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय द्वारा इस पुस्तक का प्रथम एव द्वितीय सस्करण क्रमश नवम्बर ५४ और मार्च ५६ मे प्रकाशित हुआ। औपन्यासिक क्षेत्र मे आपकी औपन्यासिक कृतियो मे 'दिगम्बर' उपलब्धि आपको सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए यथेष्ठ है। उपन्यास विधा के लिए आपने कम ही अपनी लेखनी चलाई है। उपन्यास के क्षेत्र मे सास्कृतिक पृष्ठभूमि मे रचनात्मक दृष्टिकोण स्पष्टत लक्षित होता है। शास्त्रीय दृष्टि से उपन्यास विधा की विशेषताओ को दृष्टि मे रख कर यह कहा जा सकता है कि इसमे उपन्यास के तत्वो का अशत अभाव है। प्रस्तुत उपन्यास मे गद्य साहित्य की अन्य विधाए कहानी, शब्द चित्र, पर्सनल एसे आदि भी पुष्प की पखुडियो के सदृश्य इसमे सामाहित हो गए है। इस प्रकार कथा साहित्य के क्षेत्र मे यह आपका नवीन रचनात्मक प्रयोग है। इसमे आधुनिक और प्राचीन उपन्यास कला का सम्मिश्रण है। उपन्यास का कथानक

कथात्मकता की पृष्ठभूमि मे न होकर रेखाचित्र का आश्रय लेकर क्रमबद्ध कथानक का औपन्यासिक विन्यास है। सस्मरणात्मक शैली पर लिखा यह पूर्णत उपन्यास नही उसका रेखाकन मात्र है। उपन्यास के कथानक मे सत्यता है पर कही-कही कल्पना का भी पुट है। नवीन कथा शिल्प की रचनात्मक पद्धति के कारण इसकी लिखावट मे एकलयता, एकरूपता एव समरसता नही प्रत्युत् खुरदुरापन है। इसका अपना एक स्वतत्र शिल्प है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक, काव्यशास्त्र मे वर्णित नायकत्व के गुणो से ओतप्रोत न होकर इसी दूषित समाज के एक मानव के रूप मे अपनी समस्त विशेषताओ के साथ चित्रित है। जीवन पथ पर चलते-चलते अनुभवो की शृखला ने लेखक को स्तम्भित एव आक्रान्त कर दिया था परन्तु 'दिगम्बर' शिवत्व की ओर है, उसकी अनावृत्त आत्मा पर सभ्यता का कोई आडम्बर नही है। उपन्यास मे लेखक ने मनन चिन्तन के आधार पर आधुनिक मानव जीवन की विभिन्न समस्याओ की ओर सकेत किया है। मानव चेतना जहाँ मानव को आदर्श शिव की ओर प्रेरित करती है वही वाह्य परिस्थितिया एव उसका यथार्थ उसे पशुत्व की ओर ले जाता है। इन दोनो के मध्य मानव सघर्ष करता हुआ आत्म विस्मृत हो जाता है, निरन्तर वह वाह्याडम्बरो मे सघर्षरत रहता है और अन्त मे वह सुख-शाति की खोज मे भटकता है। वह शाति उसे स्वय की आत्मा एव प्रारम्भिक प्राकृतिक जीवन मे ही उपलब्ध होती है। यही उपन्यास का परिपेक्ष है जिसमे लेखक की भावनाएँ, उसका युग और उसका रचनात्मक चिन्तन है।

[१७] **'साकल्य'** हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की 'साकल्य' का प्रकाशन समय सन् १९५५ है। इसके द्वितीय सस्करण का प्रकाशन सन् १९६१ है। इसमे लेखक के आर्थिक, साहित्यिक और सास्कृतिक लेखो का सग्रह है जिसके आधार पर श्री द्विवेदी ने उद्योग, सस्कृति, साहित्य और सौन्दर्य का सयोजन प्रस्तुत किया है। 'साकल्य' मे सगृहीत लेखो मे 'युग का भविष्य' वैचारिक लेख के अन्तर्गत श्री द्विवेदी ने अपने मनोभावो की अभि-व्यक्ति के साथ भूदान यज्ञ के सयोजक विनोबा भावे तथा गाधी जी के दृष्टिकोण को प्रमुखता दी है। 'सस्कृति का आधार' सास्कृतिक निबन्ध मे युग की सामाजिक सास्कृ-तिक परिस्थितियो का चित्र अकित कर उसके इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। 'समन्वय अथवा एकान्वय' बौद्धिक लेख के अन्तर्गत आधुनिक युग के भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय के प्रयास को एक स्लोगन कहा गया है।। 'साहित्य का व्यवसाय' शीर्षक वैचारिक लेख के अन्तर्गत श्री द्विवेदी ने व्यवसाय के विभिन्न दोषो का एव साहित्यिक क्षेत्र मे हुए दोषपूर्ण व्यवसाय का दिग्दर्शन कराया है। आज जीवन का प्रत्येक क्षेत्र व्यवसाय से आक्रान्त है जिसमे केवल स्वस्वार्थो की पूजा होती है। 'हिन्दी का आन्दोलन' वैचारिक लेख के अन्तर्गत लेखक का सास्कृतिक तथा रचनात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। 'जन क्रान्ति का आह्वान' वैचारिक लेख

मे आदिम मानव को आधुनिक मानव से श्रेष्ठता प्रदान की गयी है । 'ग्राम्य जीवन के काव्य चित्र' शीर्षक सास्कृतिक लेख के अन्तर्गत ग्राम्य जीवन की प्राकृतिक रूपरेखा एव नैसर्गिक जीवन का चित्र अकित करके आधुनिक युग मे उनकी विकृतियो का आभास कराया है । 'प्रसाद और प्रेमचन्द की कृतियाँ' मे द्विवेदी जी ने दोनो लेखको की कृतियो एव दृष्टिकोण का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है । 'वर्मा जी के उपन्यास' व्यावहारिक आलोचना के अन्तर्गत उपन्यास की कला एव अन्तरपक्षो का विवेचन किया गया है । 'गुप्त बन्धु और छायावाद' मे बाबू मैथिलीशरण गुप्त और बाबू सियारामशरण गुप्त के काव्यो मे छायावादी प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया है । 'पन्त का काव्य जगत' मे प्रकृति की उपासना, 'वीणा' से 'युगान्त' तक, ग्राम्या, नयी रचनाएँ आदि शीर्षको के अन्तर्गत पन्त के काव्य की आलोचना प्रस्तुत की है । 'महादेवी की मधुर वेदना' मे फ्रायड के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करके विराट पुरुष की प्रेयसी, हृदयोल्लास, करुणा का मागल्य, अभिव्यक्ति और अनुभूति, वेदना और आराधना, साधना का स्वरूप आदि शीर्षको के अन्तर्गत महादेवी जी की काव्य कृतियो के माध्यम से उनकी मधुर वेदना का रूप अकित किया गया है । 'छायावाद के बाद' वैचारिक लेख मे वर्तमान हिन्दी कविता का छायावाद युग मे सर्वोच्च विकास दिखाते हुए प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का एक धुँधला चित्र प्रस्तुत किया है । 'नयी हिन्दी कविता' वैचारिक लेख मे छायावाद युग के बाद प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की कविताओ की विवेचना की गयी है । 'दिव्या' मे यशपाल के बौद्धकालीन ऐतिहासिक उपन्यास की आलोचना एव यशपाल का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । 'साहित्य मे अश्लीलता' मे मानव की आर्थिक और मनोवैज्ञानिक विकृति का दिग्दर्शन करते हुए समाज मे व्याप्त और साहित्य मे व्याप्त अश्लीलता के कारणो का उल्लेख किया है । 'हिन्दी का आलोचना साहित्य' मे रीतिकाल से प्रारम्भ हुई हिन्दी आलोचना का विकासात्मक रूप है । 'दिगम्बर' मे स्वरचित औपन्यासिक रेखाकन 'दिगम्बर' का विश्लेषण प्रस्तुत है । 'सौन्दर्य बोध' लेख मे चेतना के अमूर्त और अदृश्य सत्ता से आभासित सौन्दर्य के मूर्त रूप प्रकृति की नैसर्गिक शोभा सुषमा के चित्रण के साथ उसके कलात्मक एव सास्कृतिक पक्ष का प्रतिबिम्ब दर्शित किया गया है ।

[१८] 'धरातल' ज्ञान मडल लिमिटेड, बनारस से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन काल चैत्र सवत् २००५ (सन् १९४८) है । 'धरातल' के परिचय मे निबन्धकार ने सकेत किया है कि धरातल लोक जीवन का धरातल है, गाधी जी जिस धरातल पर रामराज्य की स्थापना करना चाहते थे यह वही धरातल है । आज के इस उथल-पुथल एव उलझन वाले युग मे जब कि अनेक वादो एव विचारो का चारो ओर बोलबाला है एव समस्त मानव-समाज इस पृथ्वी पर प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर अपना-अपना स्थान बनाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं, ऐसे उद्भ्रान्त युग मे मानवता की सुस्थिरता एव सुरक्षा के लिए एक निश्चित बिंदु

की ओर सकेत किया गया है और वह केन्द्र है ग्राम । 'धरातल' मे विविध कोटि के निबन्ध सगृहीत है । मानव के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओ पर विचारपूर्ण लेख है —नैतिक हिंसा, मनुष्य और यत्र, रोटी और सेक्स आदि । 'जीवन दर्शन' मे मानव की विभिन्न समस्याओ को उद्घाटित किया गया है । सपन्नता और विपन्नता दोनो की सामाजिक अधोगति एक सी हो गयी हे । इन समस्याओ के निराकरण के लिए लेखक ने तपस्या एव श्रम के द्वारा मनुष्यो को श्रमण बनने के लिए अनुप्रेरित किया है । किसान और मजदूर, प्रत्यावर्तन श्रम धर्म की ओर, टाल्स्टाय की श्रम साधना, गावो की सास्कृतिक रचना आदि भी इसी कोटि के निबन्ध है । साथ ही साहित्य से सम्बन्धित लेख भी है—साहित्यिक सस्थाओ का गन्तव्य, तुलसी दाम का सामाजिक आदर्श, सूरदास की काव्य साधना आदि । दूसरे महायुद्ध के बाद, जन सस्कारिता, भाषा, साम्प्रदायिकता, सन् ४२ के बाद की भूल, गाधी जी का बलिदान आदि अपनी मौलिकता से पूर्ण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे लिखे विचारपूर्ण लेख है । अत 'धरातल' मे उद्योग, सस्कृति और कला का स्वाभाविक समन्वय हुआ हे । इसके साथ ही आज के यात्रिक युग के दुष्परिणामो की ओर सकेत करते हुए ग्रामो की महत्ता पर विशेष बल दिया गया है ।

[१९] **'पद्मनामिका'** श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की पुस्तक 'पद्मनामिका' कल्याणदास एन्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी से प्रकाशित हुई है । इसका प्रकाशन काल सवत् २०१३ वि० (सन् १९५६) है । प्रस्तुत निबन्ध सग्रह मे आर्थिक, सास्कृतिक और साहित्यिक लेख है जिनमे निबन्ध विधा के विविध रूप दृष्टिगोचर होते है । इस निबन्ध सग्रह मे लेखक ने सस्कृति को दृष्टि मे रखते हुए साहित्यिक तथा सास्कृतिक लेखो को सगृहीत किया है जो वस्तुत प्रकृति के मूल तत्वो से ओतप्रोत है । द्विवेदी जी ने स्वय इसे स्वीकार किया है कि आधुनिक यथार्थवादियो से भिन्न वह प्रकृतिधर्मा देहात्मवादी है । प्रस्तुत निबन्ध सग्रह के अन्तर्गत 'गोस्वामी तुलसीदास की भगवद्भक्ति' व्यावहारिक निबन्ध मे तुलसीदास जी का जन्म परिचय तथा उनकी सस्कृति का उल्लेख करते हुए राम और रामनाम के प्रति उनके दृष्टिकोण को लेखक ने अभिव्यक्त किया है । 'नूतन और पुरातन' वैचारिक निबन्ध मे मानव और विश्व की नश्वरता का ज्ञान कराते हुए समय के प्रवाह की ओर सकेत किया है । परिवर्तन सृष्टि का एक प्राकृतिक नियम है, इसी आधार पर लेखक ने नूतन और पुरातन काल की सभ्यता को स्पर्श किया है । 'सवेदना की शिराए' वैचारिक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने आधुनिक युग मे वास्तविक व्यवहार को स्पष्ट किया है । 'ग्रामगीत' सैद्धान्तिक निबन्ध मे लेखक ने सकेत किया है कि ग्राम गीतो के माध्यम से ही जीवन के निर्माण जगत मे प्रवेश किया जा सकता है । इसमे लेखक ने गीतो की महत्ता के साथ ग्राम्य गीतो का उल्लेख किया है । 'छायावाद और प्रकृति' वैचारिक निबन्ध मे गाधीवाद के स्थूल औद्योगिक रूप और छायावाद के भावात्मक रूप मे तादात्म्य

स्थापित किया गया है । 'पत जी की अतिमा' व्यावहारिक निबन्ध मे पन्त जी की अतिमा की आलोचना के साथ ही साहित्यिक दृष्टिकोण से उनकी अन्य रचनाओ पर भी दृष्टिपात किया है । 'यशपाल की कला और भावना' व्यावहारिक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने यशपाल जी के उपन्यासो के माध्यम से जीवन के प्रति यशपाल के दृष्टिकोण को प्रत्यक्ष किया है । 'नया कथा साहित्य' वैचारिक निबन्ध मे कला और जीवन की दृष्टि से कथा साहित्य मे अतीत और वर्तमान युग परिवर्तन की ओर सकेत किया गया है । 'बोधिसत्व' कथात्मक निबन्ध मे कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ के जन्म एव जीवन का परिचय दिया गया है । नगर भ्रमण, मनोमन्थन, महाभिनिष्क्रमण, तत्वान्वेषण, नैवेद्य, सम्बोधित आदि शीर्षको के अन्तर्गत सपूर्ण जीवन के चित्रण के साथ सम्बोधि प्राप्ति तक की कथा का उल्लेख है ।

[२०] 'आधान' हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवाणी, वाराणसी से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी की साहित्यिक, सास्कृतिक लेखो से पूर्ण पुस्तक 'आधान' का प्रकाशन समय सन् १९५७ ई० है । 'आधान' का अभिप्राय स्थापन से है अत स्पष्ट है कि प्रस्तुत पुस्तक मे श्री द्विवेदी ने अपनी विचारधारा, दृष्टिकोण तथा मतो की प्रतिस्थापना की है । 'आधान' पुस्तक के 'काव्य मे भक्ति भावना' वैचारिक लेख के अन्तर्गत भक्ति भावना का वास्तविक अर्थ बतलाते हुए हिन्दी साहित्य के भक्ति काल की सगुण और निर्गुण काव्यधारा की विवेचना की गयी है । 'रवीन्द्रनाथ का रूपक रहस्य' व्यावहारिक आलोचना मे नाटको और निबन्धो मे अन्तर्निहित साकेतिक रूपक रहस्यवाद का विवेचन तथा कवि रवीन्द्रनाथ के नाटको की आलोचना की गयी है । 'प्रसाद की भाव सृष्टि' व्यावहारिक आलोचना मे जयशकर प्रसाद की काव्य कृतियो एव नाटको के माध्यम से प्रसाद जी के काव्यारम्भ एव उसके क्रमिक विकास पर दृष्टिपात किया गया है । 'मौलिकता का प्रतिमान' शीर्षक वैचारिक लेख के अन्तर्गत श्री द्विवेदी ने मौलिकता के वास्तविक अर्थ, उसकी व्यापकता का मूल्याकन करते हुए उसके मानदण्डो की बडो ही सजीव विवेचना की है । 'निराला जी की काव्य दृष्टि' के अन्तर्गत निराला जी की काव्यात्मक दृष्टि का परिचय दिया गया है । 'निबन्ध का स्वरूप' मे निबन्ध शब्द के आविर्भाव की पुष्टि विभिन्न प्राचीन साहित्यिक कृतियो के माध्यम से हुई है । 'प्रभाववादी समीक्षा' वैचारिक लेख मे साहित्य के शास्त्रीय पक्ष एव प्रभाववादी समीक्षा पर श्री द्विवेदी ने अपने मौलिक विचारो को प्रस्तुत करते हुए साहित्य समालोचना की अनेक प्रचलित पद्धतियो की विवेचना की है । 'विश्वविद्यालयो मे साहित्य का ह्रास' मे आधुनिक युग की सकीर्ण मनोवृत्ति स्वरूप अर्थोपार्जन ही जीवन का मुख्य ध्येय और विश्वविद्यालय मे व्यापारिक भावना के प्रवेश से उसकी शिक्षा प्रणाली मे भी दोष प्रारम्भ हो गए तथा धीरे-धीरे साहित्य के ह्रास का लेखक ने मनोवैज्ञानिक चित्र अकित किया है । 'धुरीहीनता . एक नैतिक समस्या' मे भारती के लेख 'धुरीहीनता' के आधार पर ही द्विवेदी

जी ने इस पर अपने विचार प्रकट किये है। 'उद्योग और आत्मयोग' विचारात्मक लेख मे २७ अप्रैल सन् १९५७ को प्रयाग मे उत्तर प्रदेशीय शिक्षा अधिकारी सघ के आठवे अधिवेशन मे मुख्य मन्त्री डाक्टर सपूर्णानन्द जी द्वारा दिये गये भाषण के अन्तर्गत शिक्षा के प्रति उनके विचारो का अकन तथा उनके विपरीत द्विवेदी जी ने अपने विचारो को प्रस्तुत किया। 'सास्कृतिक चेतना' सास्कृतिक लेख मे पराधीन युग मे भारत के जन जीवन की सास्कृतिक चेतना को कुठित दर्शित किया गया ह। 'रचनात्मक योजना' वैचारिक लेख मे सस्कारिता और सामाजिक चेतना को अन्त प्रस्फुटन माना है। 'दिग्दर्शन' मे स्वर्गीय प्रधानमन्त्री नेहरू के अखिल भारतीय युवक काग्रेस के दूसरे अधिवेशन मे दिये गये भाषण की कुछ भावभीनी पक्तियो को उल्लिखित करते हुए जनता को सास्कृतिक अभावमय और अन्त करण शून्य माना है।

[२१] 'चारिका' राष्ट्रीय प्रकाशन मदिर, अमीनाबाद, लखनऊ से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की औपन्यारिक कृति 'चारिका' का प्रकाशन काल अक्तूबर १९५८ है। वस्तुत यह उपन्यास न होकर उसका ही एक अन्य रूप आख्यायिका है जिसे लेखक ने अपने शब्दो मे आचारिका कहा है। 'चारिका' मे भगवान बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा का चित्रण है अत इसका कथानक सस्कृति प्रधान एव दार्शनिक आध्यात्मिक विचारो से ओतप्रोत है। 'चारिका' मे भगवान बुद्ध के सम्बोधि प्राप्ति से उनकी सम्पूर्ण आध्यात्मिक यात्रा की कथा को लेखक ने सोलह अध्यायो मे विभक्त किया है। इस कथा मे लेखक ने भगवान बुद्ध के जीवन का भी स्पर्श किया है। भगवान बुद्ध ही उपन्यास के प्रमुख नायक के रूप मे हमारे सम्मुख आते हैं। 'धर्मचक्र प्रवर्तन' मे बोधिवृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध की सम्बोधि प्राप्ति तथा उसके प्रवर्तन हेतु चारिका एव उनके प्रभाव का उल्लेख है। 'युग दर्शन' अध्याय के अन्तर्गत गौतम बुद्ध के पूर्व जीवन का चित्रण है। स्वय गौतम उसे स्मरण कर रहे हैं। 'अन्तर्निवेष' मे श्रेष्ठिपुत्र यश का परिव्राजक की शरण मे प्रव्रज्या लेने का उल्लेख है। 'अनुसन्धान' मे श्रेष्ठिपुत्र यश के माता-पिता की विकलता एव उसे खोजने का प्रयत्न इगित है। 'प्रबोधन' मे यश की माता की इन सासारिक प्रवृत्तियो का उल्लेख तथा मन मे उठती विभिन्न शकाओ का समाधान तथागत के माध्यम से किया गया है। 'पथ निर्देश' मे श्रेष्ठिपुत्र यश के प्रव्रज्यित हो जाने के उपरान्त उसके अन्तरग सखा के प्रव्रज्या धारण करने का उल्लेख और विश्व शान्ति के लिए विभिन्न दिशाओ मे चारिका के लिए प्रस्थान का उल्लेख है। 'समर्पण' मे बुद्धगया के महतव उरुबेल काश्यप, उरुबेल काश्यप, राजगृह के प्रमुख शिष्यो—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन—की पारिव्रज्यत धारण करने का चित्रण है। 'सान्त्वना' मे यशोधरा अपने अतीत जीवन की स्वर्णिम स्मृतियो मे खो जाती है। 'वात्सल्य' मे राजा शुद्धोदन की पुत्र वियोगावस्था एव विकलता का चित्रण है। 'परितोष' मे भगवान बुद्ध के बारे मे कपिलवस्तु की प्रजा एव राजा-रानी को ज्ञात होता है। 'सम्मिलन' मे राजा शुद्धोदन, महाप्रजावती, यशोधरा और

राहुल आदि का गौतम बुद्ध से मिलाप का चित्रण है। 'उत्सर्ग' मे श्रावस्ती के गृहपति का लोक कल्याण के लिए अपना सब वैभव आदि के उत्सर्ग करने का चित्रण है। 'लोकमाता' मे महाप्रजावती तथा महिलाओ को प्रव्रज्यित करने, न करने की दुविधा और अन्त मे आनन्द के तर्क युक्त वाद-विवादो के उपरात महिलाओ को भी उप सम्पदा ग्रहण करने की स्वतन्त्रता मिल गयी, ऐसा इसमे उल्लेख है। 'हृदय परिवर्तन' मे श्रावस्ती के वन्य प्रान्त के नर पशु अगुलिमाल की कथा है जो अन्त मे गौतम बुद्ध के प्रभाव से प्रभावित हो प्रव्रज्यित हो जाता है और स्वय को समर्पित कर देता है। 'विसर्जन' मे लोकविश्रुत आम्रपाली की कथा का उल्लेख है जो अन्त मे तथागत की शरणागत हो जाती है। 'प्रस्थान' मे गौतम बुद्ध के भशाप्रणयन का चित्रण है जिसका आभास उन्हे उससे कुछ समय पूर्व ही हो गया था और वे अपने मे ही समहित होकर महापरिनिर्वाण के पथ पर अग्रसर हुए। इस प्रकार 'चारिका' की सपूर्ण कथा इतिहास से सम्बन्धित है और इसमे गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा का चित्रण है।

[२२] **'वृन्त और विकास'** भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुन्ड रोड, वाराणसी से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन समय सन् १९५९ है। इसमे आर्थिक, साहित्यिक और सास्कृतिक लेख सगृहीत है। 'वृन्त और विकास' साधन और साध्य का प्रतीक है। वृन्त मे साधन कृषि और ग्रामोद्योग है, साहित्य सस्कृति कला उसी का भाव विकास है। 'वृन्त और विकास' मे 'नेहरू जी विचार और व्यक्तित्व' लेख मे नेहरू जी के भव्य व्यक्तित्व एव उनके अहिंसावादी और राष्ट्रीय विचारो की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। 'नेहरू जी की काव्यानुभूति' लेख मे नेहरू जी का अपनी सस्कृति, अपने भारत और भारत की प्राकृतिक जलवायु, प्रकृति के अपूर्व सौन्दर्य सुषमा के प्रति अनुराग दर्शित है। 'छयावाद' लेख मे आधुनिक भारतीय साहित्य के एक युग 'छायावाद' का उद्भव और विकास दिखाया गया है। 'पन्त की काव्य प्रगति और परिणति' लेख के अन्तर्गत क्रम विकास, समन्वय और अन्विति, कला और रागात्मकता शीर्षको के अन्तर्गत श्री सुमित्रा नन्दन पन्त के सपूर्ण साहित्य के क्रमिक विकास, उनमे समयानुसार वैचारिक विभिन्नता, कला के प्रति उनका अनुराग तथा धरा एव प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध आदि का स्पष्टीकरण हुआ है। 'नयी पीढी—नया साहित्य' लेख मे नवीन तरुण युवको के विभिन्न पाश्चात्य वादो से प्रभावित उनके नवीन साहित्य का मूल्याकन किया गया है। 'नाटक और रगमच' लेख मे नाटक को जीवन का कलात्मक सकलन माना गया है, और रगमच को ससार का सक्षिप्त क्रीडा क्षेत्र। 'यत्र युग की कविता' लेख मे वातावरण और सचरण, कला और जीवन दर्शन शीर्षक के अन्तर्गत आधुनिक युग की कविता मे पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव को प्रतिबिम्बित किया है। 'वीरेन्द्र की काव्य सृष्टि' लेख मे श्री वीरेन्द्र कुमार जैन की विभिन्न साहित्यिक उपलब्धियो के अन्तर्गत आए उनके

विचारो को स्पष्ट किया गया है। 'युगाभास' मे लेखक ने छात्रो की अनुशासनहीनता, बेकारी की समस्या, दूषित शिक्षा प्रणाली, दूषित अर्थ प्रणाली, आदि समस्याओ का चित्रण करके उनके निराकरण एव निदान रूप मे रचनात्मक कार्य प्रणाली से प्रभावित गाधी जी की बुनियादी शिक्षा, ग्रामीण एव सामुदायिक उद्योग धधो तथा रचनात्मक कार्यो को प्राधान्य माना है।

[२३] **'समवेत'** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की विभिन्न निबन्धो से सगृहीत पुस्तक 'समवेत' नन्द किशोर एन्ड सन्स, चौक, वाराणसी से प्रकाशित हुई जिसका प्रकाशन काल सन् १९६० ई० है। प्रस्तुत पुस्तक मे लेखक ने साहित्य, सस्कृति, कला, उद्योग के सामजस्य के द्वारा एक मौलिक आधार प्रस्तुत किया है जो लेखक की क्रियात्मक एव रचनात्मक साहित्यिक प्रवृत्ति की ओर सकेत करती है। 'सौन्दर्य और कला' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने साहित्य, सगीत, कला के शब्द वैविध्य मे भी एकरूपता तथा अर्थबोधता का दिग्दर्शन किया है। 'छायावाद का सगुण' साहित्यिक निबन्ध के अन्तर्गत मध्य युग के सगुण और आधुनिक युग के छायावाद के सगुण के अन्तर को लेखक ने स्पष्ट किया है। 'रागात्मकता की समस्या' साहित्यिक निबन्ध मे कलानिधि एव प्रकृति के सुकुमार कवि पन्त के साहित्य का पर्यावलोकन प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही 'हार पन्त का रचना सूत्र' पुस्तक समीक्षात्मक निबन्ध की कोटि मे आता है। 'शिवपूजन की साहित्य साधना' साहित्यिक व्यावहारिक निबन्ध मे पद्मभूषण बाबू शिवपूजन सहाय की साहित्य सेवा का मूल्याकन कर उनको 'हिन्दी भूषण' से विभूषित किया गया है। 'हुतात्मा 'नवीन'' व्यावहारिक निबन्ध मे बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के जीवन के विषय मे उल्लेख करते हुए उनके जीवन दर्शन को भी प्रतिष्ठित किया गया है। 'प्रगति और सस्कृति' वैचारिक निबन्ध मे हिन्दी मे मार्क्सवाद के प्रभाव के फलस्वरूप प्रगतिवाद की समीक्षा कवि सुमित्रानन्दन पन्त और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के माध्यम से प्रस्तुत की है। 'नयी कविता के पाच रूप' साहित्यिक निबन्ध मे श्री द्विवेदी ने हिन्दी कविता के नवीन पाँच रूपो का उल्लेख किया है। 'नये उपन्यास और नये उपन्यासकार' साहित्यिक निबन्ध मे प्रसाद और प्रेमचन्द के बाद कालक्रमानुसार जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यास की मुख्य विशेषता की ओर सकेत है। 'झूठा सच एक युग निरीक्षण' पुस्तक समीक्षात्मक निबन्ध मे यशपाल के झूठा सच उपन्यास की आलोचना प्रस्तुत की गयी है। 'परिव्राजक का जीवन और चिन्तन' व्यावहारिक निबन्ध मे स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के जीवन का परिचय देते हुए उनके बौद्धिक चिन्तन को स्पष्ट किया है। 'विज्ञान और ग्रामोद्योग' वैचारिक निबन्ध मे विनोबा जी के 'भूदान यज्ञ' का उल्लेख करते हुए स्वावलम्बन से ओतप्रोत नैसर्गिक एव घरेलू ग्रामोद्योगो की ओर मानव को प्रेरित किया है। 'प्रकृति और सहअस्तित्व' वैचारिक निबन्ध मे प्रकृति को ही जीवन का मूल आधार माना गया है। अतएव सहअस्तित्व के लिए गाधी जी के ग्रामीण प्रयासो के अन्तर्गत चरखा खादी आदि को महत्व देते

हुए उसी को सहअस्तित्व का प्रतीक माना है। 'साधन और माध्यम' वैचारिक निबन्ध मे 'सर्वोदय सम्मेलन के लिए विचारणीय मुद्दे' के अन्तर्गत भूदान यज्ञ के सपादक श्री सिद्धराज चड्ढा के विचारो का उल्लेख करते हुए कुमरप्पा के विचारो का भी उल्लेख किया है और स्वय के मतो का स्थान-स्थान पर वैचारिकता के क्षेत्र मे सस्थापन किया है।

[२४] **'कवि और काव्य'** इडियन प्रेस (पब्लिकेशस) प्राइवेट लिमीटेड, प्रयाग से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की पुस्तक 'कवि और काव्य' का प्रकाशन काल सन् १९६० है। प्रस्तुत निबन्ध पुस्तक मे लेखक ने प्राचीन और नवीन हिन्दी कविता तथा काव्य सम्बन्धी व्यापक प्रसगो पर विविध समीक्षात्मक निबन्धो का सग्रह किया है। 'काव्य चिन्तन' मे कविता और सभ्यता का मानव जीवन मे महत्व एव कविता की ही प्रतिस्थापना लेखक ने इस सैद्धान्तिक निबन्ध में प्रस्तुत की है। 'नूतन और पुरातन काव्य' मे काव्य का अमरत्व, भाव और सूक्ति, हृदय की कविता, सहृदयता और सद्भाव की आवश्यकता, प्रेम का स्वप्न, रहस्यमय चेतन आदि शीर्षको के अन्तर्गत नूतन और पुरातन काव्य की विवेचना प्रस्तुत की गयी है। 'मीरा का तन्मय सगीत' व्यावहारिक समीक्षात्मक निबन्ध मे निर्गुण और सगुण, आर्य जाति का कला प्रेम, वह पगली, साधना की तल्लीनता, उपासना पद्धति, निर्गुण की ओर, तथा अपनी गैल बताजा आदि शीर्षको के अन्तर्गत मीरा की उपासना पद्धति एव सगुण निर्गुण का पर्यावलोकन किया गया है। 'प्राचीन हिन्दी कविता' मे भक्तो की भाव दृष्टि, मथुरा यात्रा, श्रृगारिक कवियो का कवित्व, सास्कृतिक काव्यादर्श, विजातीय सहयोग, साहित्यिक सगम आदि शीर्षको के अन्तर्गत निर्गुण और सगुण धारा के कवियो की भक्ति के प्रति भावात्मक दृष्टि का विवेचन किया गया है। 'आधुनिक हिन्दी कविता' विचारात्मक निबन्ध मे श्री द्विवेदी जी ने उन्नीसवी शताब्दी के विभिन्न कवियो का परिचय दिया है। 'छायावाद, रहस्यवाद और दर्शन' मे काव्य सगम, छायावाद का महत्व, वर्तमान जीवन, भिन्नता मे नूतनता, वस्तुपाठ और छायावाद, रहस्यवाद, दार्शनिकता और रहस्यवादिता आदि की विचारात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। 'कविता मे अस्पष्टता' वैचारिक निबन्ध मे भाषा और भाव, साहित्य और कला, साहित्यिक सरलता, कुलवधू कविता, टैनीसन का परिहास, कवि की शिशु दृष्टि, दृश्य और अदृश्य, अस्पष्टता का अपर कारण, अन्तर और वाह्य चेतना आदि पर क्रमबद्ध विचार प्रस्तुत किये है। 'नवीन काव्य क्षेत्र मे महिलाएँ' व्यावहारिक निबन्ध मे ससार के शुष्क जीवन मे नारी की करुण और ममता का महत्व बतलाते हुए श्री द्विवेदी जी ने नवयुग की हिन्दी कविता मे महिलओ के योगदान का दिग्दर्शन किया है। 'ठेठ जीवन और जातीय काव्य कला' विचारात्मक निबन्ध मे लेखक ने मानव के नैसर्गिक जीवन को स्पर्श करते हुए आधुनिक युग मे उसका विश्लेषण किया है। 'कवि की करुण दृष्टि' व्यावहारिक निबन्ध के अन्तर्गत श्री द्विवेदी ने

विभिन्न कवियो के माध्यम से नवीन हिन्दी कविता मे करुणानुभूति का चित्रण किया है। 'कवि का मनुष्य लोक' वैचारिक निबन्ध मे कर्म मे बसते है भगवान, देवता नही मनुष्य, नर रूप नारायण शीर्षको के अन्तर्गत भक्तिकाल से आधुनिक काल तक के काव्य मे निर्दिष्ट ईश्वर के रूपो का वर्णन करते हुए उसमे निहित वास्तविक जीवन की ओर सकेत किया है। 'वेदना का गौरव' वैचारिक निबन्ध मे वेदना को विश्व एकता की जननी माना गया है। इसमे दु ख की सात्विकता और विश्ववीणा का प्रथम स्वर शीर्षको के अन्तर्गत वेदना के महत्व को दर्शित किया किया है। 'काव्य की लाछिता कैकेयी' व्यावहारिक निबन्ध के अन्तर्गत गोस्वामी तुलसीदास रचित रामायण मे कैकेयी को कुछ सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से देखा है। परन्तु वाल्मीकि कृत रामायण मे उसे सर्वथा उपेक्षा ही मिली। 'काव्य की उपेक्षिता उर्मिला' मे विधि की वक्रता अकाल सन्यास, वह चिरमूक नववधू, उमा और उर्मिला आदि शीर्षको के अन्तर्गत लक्ष्मण की नववधू उर्मिला के विरह क्रन्दन को काव्य मे स्पर्श किया गया है।

[२५] 'परिक्रमा' चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन समय सन् १९६२ है। इसमे लेखक ने साहित्यिक सास्कृतिक लेखो का सामजस्य किया है। 'परिक्रमा' मे द्विवेदी जी ने भारतवर्ष की आत्मा को पहचानने एव उसे समष्टि रूप मे स्पष्ट करने का प्रयास किया है। 'कालिदास की कला सृष्टि' लेख के अन्तर्गत विभिन्न शीर्षको मे श्री द्विवेदी जी ने महाकवि कालिदास के व्यक्तित्व एव काव्य के प्रति अनुराग को दर्शित करते हुए उनके काव्यो एव नाटको की आलोचना प्रस्तुत की है। 'समष्टि के स्वरसाधक रवीन्द्रनाथ' लेख मे श्री द्विवेदी ने युग पुरुष शीर्षक के अन्तर्गत दु ख दैन्य और पराधीनता के अन्धकार से पीडित आधुनिक मानव समाज को दीप्यमान करने वाले रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा गाधी के विषय मे विवेचना प्रस्तुत की है। 'व्यक्तित्व और कला' शीर्षक के अन्तर्गत उनके साहित्य मे उनके व्यक्तित्व का अकन है तथा कला के क्षेत्र मे श्री द्विवेदी जी ने अपने विचार प्रकट किये है और अन्य विचारको के दृष्टान्त भी रवीन्द्रनाथ जी की काव्य कला के प्रति दिये है। 'कुसुमकुमार कवि पन्त' लेख मे हिन्दी कविता के गौरव कुसुम, विश्व काव्य के नवोन्मेष सुसस्कृत कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त के जीवन परिचय एव काव्य कला की विवेचना की गयी है। 'अन्तर्निर्माण' शीर्षक के अन्तर्गत जीवन परिचय तथा उनके साहित्य के माध्यम से सस्कृति को स्पष्ट किया है जो पन्त जी को प्रेरणा प्रदान करती थी। 'काव्य कला' शीर्षक मे पन्त जी के काव्य साहित्य को विभिन्न युगो मे बाटते हुए उसी दृष्टि से उसकी कलानुभूति की विवेचना की है। 'सस्मरण' शीर्षक के अन्तर्गत श्री द्विवेदी ने अपने जीवन से पन्त जी के जीवन के साथ सामजस्य स्थापित किया है। 'शून्य मन्दिर की प्रतिमा' लेख मे काव्य देवी सुश्री महादेवी जी के सूक्ष्म अन्य परिचय के साथ श्री द्विवेदी जी के अपने कुछ सस्मरण भी प्रस्तुत हैं। वस्तुत इसकी शैली ही सस्मरणात्मक है।

[२६] 'चित्र और चिन्तन' श्री शातिप्रिय द्विवेदी की तृतीय औपन्यासिक कृति चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित हुई। इसका प्रकाशन काल १९६४ ई० है। श्री द्विवेदी ने 'चित्र और चिन्तन' उपन्यास मे मानव के दैनिक जीवन के विभिन्न अनुभवो का चित्र अकित किया है और चिन्तन के अन्तर्गत सामाजिक परि-स्थितियो से साथ-साथ विभिन्न समस्याओ का चित्रण एव नव निर्माण का रूप प्रस्तुत किया है। 'चित्र और चिंतन' विचार प्रधान सामाजिक उपन्यास है जिसमे लेखक ने बौद्धिकता के आधार पर युग का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही इसमे चारित्रिक विशिष्टता के फलस्वरूप कथानक सशक्त न होते हुए भी विश्रृखल नही है जैसा कि 'दिगम्बर' उपन्यास मे लक्षित होता है। उपन्यास के कथानक मे एक क्रम-सा है, इसका कथानक विभिन्न अध्यायो के अन्तर्गत रखा गया है जिनमे भूख और हूक, काफी हाउस की बातचीत, व्यवधान, विडम्बना, अन्तर्मिलन, निर्लिप्त, वातावरण, तीर्थ स्मृति, पश्चाताप, विद्रुप, व्यक्ति और युग, शेष चिन्ह, खादी एक सार्वभौम, खादी एक नैसर्गिक साधना, लक्ष्मी की प्रतिष्ठापना, विज्ञान और अध्यात्म, युग और जीवन तथा भविष्य की चिन्ता आदि अठारह निबन्धो का सकलन है। प्रथम अध्याय 'भूख और हूक' मे जीवन की नश्वरता का बोध कराया गया है। यहाँ व्यक्ति को अपनी आत्मप्रिय रुचिरता, साहित्य, सौन्दर्य एव कला का समन्वय दृष्टिगोचर नही होता है। ऐसा व्यक्ति जो अपने रागात्मक सस्कारो से युक्त है उसे यह ससार 'सास्कृतिक चेतना के अभाव मे जीवन्मृत निश्चेतन जनता का महाश्मशान'-सा प्रति-भासित होता है। 'काफी हाउस की बातचीत' मे वहाँ का वातावरण, विभिन्न सस्कृति, वर्ग एव विचारधारा के व्यक्तियो की विविधता के साथ ही उनकी मनोवृत्ति का भी अकन किया है जो उनके आत्मिक पतन का द्योतक है। 'व्यवधान' मे मान-सिक तथा शारीरिक तृप्ति के मध्य सदैव पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था बाधक रही है। 'विडम्बना' मे विधि की विडम्बना की ओर सकेत है। जहाँ उज्ज्वल सरलता सुकुमारता का नृत्य होता है वही पर विद्रुप ताडव नृत्य का प्रहसन भी होता है। ससार की विद्रुपता के समक्ष सरलता एव निरीहता भी दाव पर लगा दी जाती है। 'अन्तर्मिलन' मे वातावरण, सस्कार, भाषा जैसी विभिन्नता मे भी हृदय की मौन भाषा मे सभी भावात्मक प्राणियो का तादात्म्य हो जाता है, अन्तर्मिलन हो जाता है। 'निर्लिप्त' मे मनुष्य अपनी आत्मा के प्रकाश मे खो जाना चाहता है परन्तु वह उसे यहाँ अप्राप्य है। वह अपने मनोजगत का तादात्म्य ससार के वास्तविक वस्तु जगत से नही कर पाता। यथार्थ की हमेशा जीत होती है उसे भी यथार्थ वस्तु जगत की कठोर भूमि, कटु वातावरण के समकक्ष झुकना पड़ता है। 'तीर्थ स्मृति' मे लेखक का अन्तरग मित्र कमल अपने अतीत मे डूब जाता है जहाँ उसकी मा की आत्म अनुकृति अग्रजा बाल विधवा की छवि अकित है। जो अपनी ओजस्विता, रुचिरता, शुद्धता से घर को मन्दिर-सा पवित्र बना देती थी। 'पश्चाताप' मे उन्ही के प्रति किए गए

विशेष कर्मों और दु खद घटना के फलस्वरूप कमल की आत्मग्लानि एव पश्चाताप चित्रित है। 'विद्रुप' मे ससार का विद्रुप अट्टहास है जहाँ केवल यत्र ही गतिमान है, मनुष्य नही। 'व्यक्ति और युग' मे प्रकृति की सजीवता और चेतना के द्वारा कृषि व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया गया है। 'शेष चिन्ह' के अन्तर्गत द्वितीय महायुद्ध और भारतीय स्वतत्रता के चित्रण के साथ विभिन्न वादो का दिग्दर्शन है। 'खादी एक सार्वभौम समस्या' मे बेकारी की समस्या का निराकरण है। ग्रामोद्योग के द्वारा श्रम सहयोग और स्वावलम्बन सम्भव है। ग्रामीण उद्योगो के पुनरुत्थान के लिए खादी का विशिष्ट महत्व है। 'खादी एक नैसर्गिक साधना' मे खादी के महत्व की ओर सकेत है। 'लक्ष्मी की प्रतिष्ठापना' मे सास्कृतिक त्योहारो का सजीव चित्रण है जिसके अन्तर्गत सर्वकल्याण की भावना एव पुरुषार्थ का सुखद सन्देश अन्तर्निहित है। 'विज्ञान और अध्यात्म' मे औद्योगिक और वैज्ञानिक तकनीको के विरुद्ध आवाज उठाई गयी है। 'युग और जीवन' मे मनुष्य 'उदर निमित्तम् बहुकृत वैशम्' के हेतु सिक्को के सम्पर्क मे आकर स्वय टकसाली हो गया है परन्तु जीवन के स्थायित्व के लिए अर्थशास्त्र को टकसाली से और श्रम को यत्रो से मुक्त करना आवश्यक है। 'भविष्य की चिन्ता' मे लेखक के सम्मुख एक प्रश्नवाचक चिन्ह लगा हुआ है। कारण वह क्षितिज मे लुप्त है, उसी के अनुरूप अदृश्य और अप्राप्त है। वस्तुत लेखक का मुख्य उद्देश्य अपने समाज का, अपने युग का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना है जिसमे वह पूर्ण सफल हुआ है। इस उपन्यास मे लोक का सूक्ष्म एव वास्तविक निरीक्षण तथा युग विश्लेषण है।

[२७] **'स्मृतियाँ और कृतियाँ'** श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी की अन्तिम प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी से हुआ। इसका प्रकाशन काल सन् १९६६ ई० है। 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' सस्मरणात्मक और समीक्षात्मक लेखो का सग्रह है। प्रस्तुत पुस्तक मे प्रथम स्मृतियो के रूप मे कुछ सस्मरण प्रस्तुत हैं तथा कृतियो के अन्तर्गत कुछ समीक्षात्मक लेख है। संस्मरण के अन्तर्गत 'स्मृति के सूत्र' लेख मे द्विवेदी जी ने अपनी परिस्थितियो और समस्याओं को अन्य साहित्यकारो की परिस्थितियो, समस्यायो एव उनके व्यक्तित्व से तुलना प्रस्तुत की है। इसमें जीवन के विभिन्न स्मृति के सूत्र सजोये गये है। 'प्रतिक्रिया' मे पत जी ने नये जीवन के निरूपण हेतु मासिक पत्र 'रूपाभ' के प्रथम अक के सम्पादकीय मे जो कुछ लिखा था उस बात का प्रभाव श्री द्विवेदी जी पर प्रारम्भ से तो न पड सका परन्तु युग की गति और जीवन के आरोह-अवरोह से लय बद्ध न हो पाने पर उन्होने पन्त की उन पक्तियो की सार्थकता को स्वीकार किया। 'प्रभात से सध्या की ओर' मे पहले जीवन के प्रारम्भिक क्षणो का साराश उल्लिखित है और फिर अपने जीवन का साम्य चार्ल्स लैम्ब से मिलाया है। 'शेष सम्पदा' मे बहिन का देहावसान, उससे प्राप्त सूनापन और ऐसे समय मे राष्ट्रकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त का सवेदनात्मक सूचक पत्र उल्लिखित

है। 'युग सकट' मे मुक्तिबोध श्री पन्त के देहान्त के दो वर्ष पूर्व हुए साक्षात्कार को स्मृति मे सजोकर रखा गया है। 'निराला जी की प्रथम स्मृति' मे १९२५ ई० कलकत्ता मे 'मतवाला' मडल मे हुई प्रथम भेंट को स्मृति मे आक कर लेख मे बद्ध किया गया है। 'निराला जी . मेरी दृष्टि में' मे निराला जी का देहावसान, उनके जीवन का आकलन लेखक ने अपनी दृष्टि से किया है। 'निराला जी जीवन और काव्य' मे श्री द्विवेदी जी ने निराला जी से अपने प्रथम परिचय और अन्तिम परिचय का उल्लेख किया है। 'अनमिल आखर पन्त और मैं' लेख मे निराला और पन्त मे भिन्नता दर्शित करके द्विवेदी जी ने स्वय अपने प्रथम परिचय और वार्तालाप के विसम्वादी हो जाने का उल्लेख किया है। जीवन के क्षेत्र मे दोनो में बहुत अन्तर था। 'नेहरू जी की अन्तिम स्मृति' मे सन् १९६३ में विजयादशमी के अवसर पर उनकी एक झलक मात्र देखने का अकन है। समीक्षा के अन्तर्गत 'एक साहित्यिक वार्तालाप' मे साप्ताहिक 'गिरिद्वार' मे श्री अजयशेखर द्वारा लिए गए श्री द्विवेदी जी से इन्टरव्यू की समीक्षा प्रस्तुत है। समय और हम' में जैनेन्द्र जी का वृहत् नवीन सग्रह 'समय और हम' की समीक्षा प्रस्तुत है। 'नयी सर्जना' मे श्री द्विवेदी जी के 'नवलेखन' की पृष्ठभूमि मे समीक्षा प्रस्तुत की है। 'अज्ञेय जी की पूर्वा' मे श्री द्विवेदी जी ने पूर्वा की समीक्षा प्रस्तुत की है। 'प्रेम और वात्सल्य के अग्रज कवि माखनलाल' लेख मे श्रद्धेय प० माखनलाल चतुर्वेदी जी की साहित्यिक और सास्कृतिक प्रेरणा की ओर सकेत किया गया है। 'राष्ट्र कवि गुप्त जी का काव्य योग' मे गुप्त जी के काव्य मे द्विवेदी युग के प्रभाव का अकन करते हुए उसकी समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। 'गोदान और प्रेमचन्द' मे प्रेमचन्द के जीवन का चित्र खीचकर गोदान उपन्यास की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। 'प्रसाद का साहित्य' मे प्रसाद जी के सपूर्ण साहित्यिक कृतियो की साराश मे समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। 'कामायनी के बाद' मे पत और प्रसाद के साहित्य पर दृष्टि डालते हुए लेखक की दृष्टि महादेवी पर जा टिकी है। 'छायावाद पुनर्मूल्याकन' में प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अन्तर्गत निराला व्याख्यानमाला मे कविवर पन्त जी के पठित भाषणो का सग्रह है। 'लोकायतन' शीर्षक लेख मे पत जी के वृहत् काव्य लोकायतन की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। 'माधवन जी का रचनात्मक चिन्तन' शीर्षक समीक्षात्मक लेख मे श्री द्विवेदी जी ने उनके जीवन के अकन के साथ उनके विचारो को प्रदर्शित किया है और साहित्य की ओर दृष्टिपात किया है। 'बिना पैसे दुनिया का पैदल सफर' मे यात्रा वृत्तान्त है। 'सामयिक कथा साहित्य' मे प्राचीन साहित्य का पर्यावलोकन करते हुए द्विवेदी जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जीवन की तरह ही आज कथा साहित्य का शिल्प भी नवीन और आधुनिक हो गया है। उन्होने इसके कई दृष्टान्त भी प्रस्तुत किये है।

प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय क्षेत्र और मौलिकता

श्री शातिप्रिय द्विवेदी की लिखी हुई जिन कृतियो का सक्षिप्त परिचय ऊपर दिया गया है उनका सम्बन्ध साहित्य की विभिन्न रचनात्मक विधाओ से है। कविता के क्षेत्र मे उनकी रचनाए छायावादी विचारधारा से साम्य रखती है। आलोचना के क्षेत्र मे उनकी दृष्टि समन्वयवादी है। निबन्ध के क्षेत्र मे उनकी कृतियो पर शुक्ल युग की प्रवृत्तियो का स्पष्ट प्रभाव है। उपन्यास के क्षेत्र मे वह प्रेमचन्दोत्तर युग के लेखक है। आत्म कथा तथा सस्मरण साहित्य के क्षेत्र मे वह आत्मव्यजना प्रधान लेखको मे है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे आपने रचनात्मक प्रतिभा का समान रूप से परिचय दिया है यद्यपि ऐसे लेखको की सख्या बहुता बडी है जो किसी एक क्षेत्र विशेष मे विशिष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त कर चुके है। उदाहरण के लिए राहुल साकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री तथा प्रेमचन्द जैसे लेखको ने कथा साहित्य के क्षेत्र मे महान् उपलब्धियाँ प्राप्त की। शातिप्रिय द्विवेदी का स्थान इनसे पृथक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा जयशकर प्रसाद जैसे साहित्यकारो के साथ है जिन्होने उपन्यास, निबन्ध तथा कविता आदि क्षेत्रो मे अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। द्विवेदी जी का साहित्य अपने युग की प्राय सभी प्रवृत्तियो को अपने आप मे समाहृत किये हुए है। समकालीन साहित्य के गद्य और पद्य रूपो से सम्बन्धित जो आन्दोलन वैचारिक स्तर पर द्विवेदी जी के युग मे हुए उनमे छायावाद, प्रगतिवाद, यथार्थवाद तथा प्रयोगवाद आदि प्रमुख है। द्विवेदी जी ने जहाँ एक ओर इन विचारान्दोलनो से व्यापक प्रेरणा ग्रहण की है वहा दूसरी ओर इनके क्षेत्रो मे अपनी रचनात्मक प्रतिभा की मौलिकता का भी परिचय दिया है। दर्शन, सस्कृति, परम्परानुगामिता, आधुनिकता, ज्ञान विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति और साहित्य मे निहित जीवन मूल्यो का सम्यक् विवेचन उनके बहुपक्षीय चिन्तन का द्योतक है। अनेक गम्भीर समस्याओ से सम्बन्धित उनके निर्णयात्मक मन्तव्य उनके वैचारिक चिन्तन की मौलिकता के द्योतक है। यद्यपि द्विवेदी जी ने एक जागरूक साहित्यकार की भाति सतत चिन्तनशीलता का परिचय दिया है परन्तु आधुनिक राजनैतिक जीवन दर्शनो से प्रभावित मतवादों मे उनकी विचारधारा पर गाधीवाद तथा समाजवाद का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है क्योकि उनके मन से यह दृष्टिकोण व्यवहारत. आर्थिक और सास्कृतिक क्षेत्रीय एकरूपता रखते हैं। द्विवेदी जी ने अनेक समकालीन समस्याओ पर विचार करते हुए जहा एक ओर प्राचीन भारतीय जीवन के गौरवमय आदर्शों के अनुगमन पर बल दिया है तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन मे सन्तुलन की आवश्यकता भी बतायी है। द्विवेदी जी का विविध विषयक साहित्य सम्यक् मूल्याकन की अपेक्षा रखता है। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि जहा एक ओर द्विवेदी जी के जीवन काल एव उनकी मृत्यु के उपरान्त अनेक व्यक्तियो ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित बहुत-सी स्फुट रचनाए यत्र तत्र प्रकाशित की हैं वहा दूसरी ओर उनके जीवन और

साहित्य का समग्र रूप मे मूल्याकन करने वाला आलोचनात्मक अथवा शोधपरक ग्रथ एक भी प्रकाशित नही हुआ है। प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे 'ज्योति विहग', 'कवि और काव्य', 'हमारे साहित्य निर्माता' तथा 'सचारिणी' के आधार पर आलोचना साहित्य, तृतीय अध्याय से 'आधान', 'पद्मनामिका', 'वृन्त और विकास', 'धरातल', 'जीवन यात्रा', 'साकल्य', 'सामयिकी', 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'परिक्रमा' तथा 'समवेत' के आधार पर निबन्ध साहित्य, चतुर्थ अयाध्य मे 'चारिका', 'दिगम्बर' तथा 'चित्र और चिन्तन' के आधार पर उपन्यास साहित्य, पचम अध्याय मे 'पथचिन्ह', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' के आधार पर सस्मरण साहित्य तथा षष्ठ अध्याय मे 'नीरव' और 'हिमानी' के आधार पर द्विवेदी जी के काव्य साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए सप्तम और अन्तिम अध्याय मे उनकी विचारधारा और जीवन दर्शन का सम्यक् विश्लेषण किया गया है। जैसा कि ऊपर सकेत किया गया है, इस विषय पर यह सर्वप्रथम शोधपरक अध्ययन है जिसमे समकालीन पृष्ठभूमि मे द्विवेदी जी के जीवन और समस्त साहित्य का अध्ययन किया गया है। प्रबन्ध को अनावश्यक और अनपेक्षित विस्तार से बचाने के लिए इसके क्षेत्र को सीमित रखा गया है तथा इसमे यथासम्भव निष्पक्ष और तटस्थ दृष्टिकोण से शातिप्रिय द्विवेदी के विविध विषयक साहित्य का अध्ययन और मूल्याकन करते हुए आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे उनकी उपलब्धियो का निदर्शन किया गया है।

शांतिप्रिय द्विवेदी का आलोचना साहित्य

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विगत अध्याय मे इस तथ्य का उल्लेख किया जा चुका है कि श्री शातिप्रिय द्विवेदी रचित साहित्य मे उनकी आलोचनात्मक और सृजनात्मक दोनो ही प्रकार की कृतियाँ है। प्रस्तुत अध्याय मे द्विवेदी जी के आलोचना साहित्य का अध्ययन और मूल्याकन किया जा रहा है। द्विवेदी जी के आलोचना साहित्य के सम्बन्ध मे यहा पर इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक है कि उनके आलोचना ग्रन्थ मुख्यत दो वर्गो मे विभाजित किए जा सकते है। प्रथम वर्ग मे वे कृतियाँ आती हे जो उनके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षात्मक चिन्तन का समग्र स्वरूप प्रस्तुत करती हे और द्वितीय वर्ग मे वे कृतियाँ आती है जो मुख्यत समीक्षात्मक निबन्धो का सग्रह है। इनमे से प्रथम वर्ग मे 'ज्योति विहग' शीर्षक कृति को रखा जा सकता है और द्वितीय वर्ग मे 'हमारे साहित्य निर्माता', 'सचारिणी', 'कवि और काव्य' आदि को। इस द्वितीय वर्ग मे ही 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसका अर्द्ध भाग समीक्षात्मक निबन्धो के रूप मे है। इसके साथ ही इसी प्रसग मे यह उल्लेख करना भी अनावश्यक न होगा कि समीक्षा प्रधान दृष्टिकोण से लिखे गये निबन्धो का इस अध्याय मे विवेचन नही किया गया है और उनका पृथक् और स्वतन्त्र अध्ययन आगामी तृतीय अध्याय मे किया गया है क्योकि उनका औचित्य निबन्धात्मक माध्यम के रूप मे अधिक है। इस दृष्टि से इस अध्याय मे द्विवेदी जी के आलोचना साहित्य का जो अध्ययन किया जा रहा है, उसका आधार मुख्य रूप मे 'हमारे साहित्य निर्माता', 'ज्योति विहग', 'सचारिणी', 'कवि और काव्य' तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' आदि कृतियाँ ही है।

द्विवेदी जी की आलोचनात्मक कृतियो का परिचय एव वर्गीकरण

[१] **'हमारे साहित्य निर्माता'** . प्रस्तुत आलोचनात्मक कृति श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी के आलोचनात्मक दृष्टिकोण का परिचय देने मे समर्थ है। डा० नगेन्द्र ने उनके आलोचनात्मक व्यक्तित्व के प्रति अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'शातिप्रिय जी को साहित्य के मर्म की जैसी परख है वैसी कम आलोचको को है। परिमाण और गुण दोनो की दृष्टि से हिन्दी आलोचना के विकास मे उनका योगदान अक्षुण्ण है। उनकी मार्मिक रचनाओ के अभाव मे छायावादी काव्य का रस हिन्दी के सहृदय समाज तक सम्प्रेषित न हो पाता। ऐसे आलोचक कम है जिनकी समीक्षा शैली भी आलोच्य काव्य और आलोचक के हृदय रस से इस प्रकार मधुसिक्त हो

उठती है ।' वस्तुत आलोचना साहित्य के क्षेत्र मे आपकी पैठ बहुत गहरी है । आलोचना के विकासात्मक इतिहास मे आपका योगदान एव उसमे भी आपकी रचनात्मक प्रवृत्ति एव नवीनता के क्षेत्र मे पदार्पण अविस्मरणीय है । व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र मे 'हमारे साहित्य निर्माता' का विशिष्ट महत्व है । इसमे लेखक ने अपने समकालीन लेखको मे से कुछ को ही उल्लिखित किया है, जो विभिन्न शैलियो एव विचारधाराओ का अनुगमन करते थे । द्विवेदी जी ने स्वय ही 'निवेदन' मे अपने उद्देश्य को इस प्रकार व्यक्त किया है 'इस प्रस्तुत प्रयास का लक्ष्य साहित्य का ऐतिहासिक अनुसन्धान उपस्थित करना नही, बल्कि वर्तमान काल के जीवित साहित्य निर्माताओ के क्रियाकलापो के अनुशीलन के लिए कुछ उपकरण मात्र उपस्थित करना है ।'[1] स्पष्ट है कि द्विवेदी जी ने अपनी प्रस्तुत कृति को इतिहास की पृष्ठभूमि पर अवलम्बित नही किया है । इसमे साहित्यिको के विचार एव भाव विकास तथा उनके दृष्टिकोण का निदर्शन किया गया है । इसके साथ ही उनकी शैली एव भाषा पर भी विचार किया गया है । प्रस्तुत आलोचनात्मक कृति के लेख चौदह प्रमुख साहित्यकारो से सम्बन्धित हैं जिनमे महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्याम सुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, राय कृष्ण दास, राधिकारमण प्रसाद सिंह, माखन लाल चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा महादेवी वर्मा है ।

[२] **'ज्योति विहग'** द्विवेदी जी की 'ज्योति विहग' शीर्षक आलोचनात्मक रचना आधुनिक हिन्दी साहित्य के विशिष्ट कवि सुमित्रानन्दन पत के साहित्य का सम्यक् मूल्याकन प्रस्तुत करती है। लेखक ने इसमे हिन्दी कविता के विकास के अन्तर्गत ब्रज भाषा, खडी बोली, द्विवेदी युगीन काव्य तथा छायावाद की काव्यभूमि प्रस्तुत की है । पन्त के काव्य के आधार का काव्य निरूपण करते हुए लेखक ने उसकी विकास रेखा, अन्तर्दर्शन, काव्यारम्भ, वीणा, नवोन्मेष, नेवेद्य, ग्रन्थि, तथा उच्छ्वास आदि के विकास विन्दुओ को केन्द्रगत रखते हुए की है । 'ज्योति विहग' मे शातिप्रिय द्विवेदी ने शब्दो का व्यक्तित्व, चित्र भाषा और चित्र राग, छन्दो की परख, अतुकान्त और मुक्त छन्द, तुकान्त और गीति काव्य तथा अलकार आदि काव्य तत्वो के आधार पर पन्त की काव्य कला का सम्यक् निरूपण किया है । पन्त का काव्य छायावाद के स्वरूप वैशिष्ट्य का द्योतक है । जैसा कि पन्त ने अपनी काव्य धारणा का स्पष्टीकरण करते हुए स्वय लिखा है 'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणो की वाणी है, हमारे जीवन का, हमारे अन्तरतम प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही सगीतमय है, अपने उत्कृष्ट क्षणो मे हमारा जीवन छन्द ही मे बहने लगता है । उसमे एक प्रकार की सपूर्णता, स्वर ऐक्य तथा सयम आ जाता है । प्रकृति के प्रत्येक कार्य रात्रि दिवस की आख-मिचौनी,

---

१ 'हमारे साहित्य निर्माता', श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, 'निवेदन', पृ० १ ।

षड्रितु परिवर्तन, सूर्य शशि का जागरण शयन, ग्रह उपग्रहो का अशात नर्त्तन, सृजन स्थिति सहार, सब एक अनन्त छन्द, एक अखड सगीत ही मे होता है कविता विश्व का अन्तरतम सगीत है। उसके आनन्द का रोम हास है। उसमे हमारी सूक्ष्मतम दृष्टि का मर्म प्रकाश है।' इस धारणा से छायावादी कविता की कला का रूप वैशिष्ट्य स्पष्ट होता है। अपने आप मे यह उद्धरण गद्य शिल्प का जो स्वरूप उपस्थित करता है वह काव्य के अन्त· पक्ष को अपेक्षाकृत अधिक महत्ता देता है। इसलिए द्विवेदी जी ने पन्त के काव्य की जो व्यावहारिक आलोचना इस कृति मे काव्य कला से इतर विवेचन के रूप मे प्रस्तुत की है वह सत्य शिव सुन्दरम् के शाश्वत् दृष्टिकोण पर आधारित है। द्विवेदी जी का मन्तव्य है कि पन्त द्वारा अपने काव्य मे प्रयुक्त शब्द जीवन्त व्यक्तित्व से युक्त है। पन्त इस दृष्टि से एक समर्थ शब्द निर्माता है। उनके शब्द प्रयोगो मे सूझ-बूझ, सूक्ष्म दृष्टि, पर्याय प्राचुर्य के साथ-साथ शब्दो के नैसर्गिक गुण भी मूर्तिमान हो उठे है। शब्दो के व्यक्तित्व के अनुसार ही छन्द रचना भी नियोजित होती है। पन्त का यह विचार है कि प्रत्येक भाषा के छन्द उसके उच्चारण सगीत के अनुकूल होने चाहिए। साथ ही राग, ध्वनि आदि के नियोजन म पन्त ने जिम सजगता का परिचय दिया है वह सपूर्ण शब्द रचना को एक सजीव सृष्टि के रूप मे प्रस्तुत करते है।

[३] 'सचारिणी' श्री शातिप्रिय द्विवेदी लिखित 'सचारिणी' शीर्षक निबन्ध सग्रह भी विशेष रूप से आलोचना साहित्य के अन्तर्गत ही उल्लिखित किया जा रहा है। इसका कारण यह है कि इसमे जो निबन्ध सगृहीत किये गये हैं, वे भावात्मक अथवा अनुभूत्यात्यक न होकर मुख्यत. सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक आलोचना से सम्बन्धित हैं। कुछ निबन्ध इस सग्रह मे वैचारिक कोटि के भी है। इन निबन्धो मे लेखक की आलोचना दृष्टि के साथ-साथ उसके साहित्य सम्बन्धी सिद्धान्तो और मान्यताओ का भी परिचय मिलता है। 'सचारिणी' के आलोचनात्मक लेख विविध युगो के प्रतीक स्वरूप परस्पर क्रमबद्ध हैं जिनमे लेखक की अपनी मान्यताओ की अभिव्यक्ति है। 'भक्ति काल की अन्तश्चेतना' आलोचनात्मक लेख मे श्री द्विवेदी जी ने भक्ति काल के काव्य साहित्य के मार्मिक स्थल का स्पर्श किया है। यह वैष्णव साहित्य दुखान्त या सुखान्त न होकर प्रशान्त अथवा प्रसादान्त है। श्री द्विवेदी जी ने प्राचीन साहित्य के आधार पर नारी के महत्व का दिग्दर्शन किया जिसके मस्तक पर अन्तत करुणा के रूप मे दुखान्त पक्ष ही समाविष्ट हो जाता है। भारतीयो की वैष्णव सस्कृति कलात्मक है। सत्य शिव सुन्दरम् के रूप मे वह आध्यात्मिक और अलौकिक जगत को भी स्पर्श करती है। इसके विपरीत पाश्चात्य सभ्यता केवल लौकिक और वैज्ञानिक है। अतः ज्ञान के आत्मबोध के लिए और रस की आत्मीयता मे भारत का दृष्टिकोण कला का सत्य शिव और सुन्दरम् है। मध्यकाल की हिन्दी कविता गृहस्थो के नश्वर जीवन मे अविनश्वर का समावेश है। भारतीय सस्कृति

चेतनता मे विश्वास करती है। उसी के प्रति उसकी अनन्य भक्ति भावना है। फल-स्वरूप जीवन मे दार्शनिक जागरूकता जाग्रत रहती है और मानव पुनर्जन्म का विश्वासी हो जाता है। भारतीय काव्य साहित्य मे सच्चिदानन्द का करुणामय स्वरूप लोक का परमात्म रूप है। वैष्णव काव्य रहस्यवाद से ओतप्रोत है जिसमे सगुण रूप मे पार्थिव और अपार्थिव रूप विद्यमान है। तुलसी काव्य कर्म प्रधान है जब कि निर्गुण का ज्ञानमय और कृष्ण काव्य भाव योग है। ज्ञान और कर्म योग के सदृश्य भाव योग भी एक दिव्य योग है। तुलसीदास जी ने इन तीनो का सम्मिश्रण कर इसे गृहस्थो के लिए सुलभ किया है। निर्गुण का माधुर्य रूप आधुनिक युग मे रहस्य-वाद है और सगुण का परिष्कृत रूप वर्तमान का छायावादी रूप है।

[४] **'कवि और काव्य'** 'कवि और काव्य' शीर्षक कृति मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के प्राचीन और नवीन हिन्दी कविता तथा काव्य सम्बन्धी व्यापक प्रसगो पर विविध समीक्षात्मक निबन्ध सगृहीत है। स्थूल वर्गीकरण के अनुसार यह कृति द्विवेदी जी के निबन्ध संग्रहो के अन्तर्गत भी रखी जा सकती है परन्तु यहाँ पर इसका उल्लेख विशेष रूप से आलोचना साहित्य के अन्तर्गत इसलिए किया गया है कि इसमे जो निबन्ध सगृहीत है वे लेखक के आलोचनात्मक दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करने मे सहायक हैं। इनसे लेखक की आलोचनात्मक मान्यताओ का भी परिचय मिलता है। अधिकाश लेखो के विषय व्यावहारिक आलोचना से सम्बन्धित है। कुछ निबन्ध अवश्य इस कथन का अपवाद है जिनमे सैद्धान्तिक नियमन उपलब्ध होता है। कुछ निबन्ध सैद्धान्तिक व्यावहारिक आलोचना के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं जिनमे सिद्धान्त आशिक रूप मे ही उपलब्ध होते है। इसके अतिरिक्त विचारात्मक लेखो मे भी आलोचनात्मक शैली का प्रतिपादन हुआ है। प्रस्तुत कृति मे काव्य चिन्तन, नूतन और पुरातन काव्य, मीरा का तन्मय सगीत, प्राचीन हिन्दी कविता, आधुनिक हिन्दी कविता, छायावाद, रहस्यवाद और दर्शन, कविता मे अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र मे महिलएँ, ठेठ जीवन और जातीय काव्य कला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य लोक, वेदना का गौरव, काव्य की लाछिता कैकेयी और काव्य की उपेक्षिता उर्मिला आदि लेख सगृहीत हैं। इसका प्रारम्भिक लेख ही सैद्धान्तिक नियमो से ओत प्रोत है जिसमे काव्य चिन्तन के अन्तर्गत लेखक ने अपनी मान्यताओ एव सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। मानव सभ्यता के उत्थान मे कविता के वास्तविक महत्व का प्रतिपादन किया गया है। आज ससार को अपनी विद्रुपता से मोक्ष कविता के माध्यम से ही सम्भव है। काव्य मे रस की दृष्टि से मानव हृदय के कोमल रसो—शृगार, भक्ति, शान्त, करुण, वात्सल्य—के साथ मानव मे अवशिष्ट पाशविक अशो के रूप मे रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि को उद्धृत किया है। जिस प्रकार भावो के लिए समुचित शब्दो की आवश्यकता होती है उसी प्रकार भावो की गति के लिए छन्दो की भी आवश्यकता है। 'सगीत मे जो काम ताल का है, काव्य मे वही काम छन्द का।

शब्द यदि भावो मे सास भरते है तो छन्द भावो को गति देते है। काव्य मे रस का वही स्थान है जो पुष्प मे गन्ध का। जिस प्रकार विभिन्न सौरभ विभिन्न पुष्पो मे अपने अनुरूप आवास पाते है उसी प्रकार विभिन्न छन्द विभिन्न रसो के लिए पुष्प का प्रतिनिधित्व करते है। शब्द से लेकर रस तक काव्य मे प्रवाह की एक लडी-सी बधी रहती है। शब्द छन्द को अग्रसर करते हैं, छन्द भाव को और भाव रस को।' चित्र, सगीत और अलकार के साथ ही काव्य मे त्रिगुण—विभूति, श्री, ऊर्ज—के फल-स्वरूप अनुभूति के त्रिविधि स्वरूप—भावना, चिन्ता, प्रभूति—तथा त्रिमूर्ति के अनुरूप त्रिवाणी–'सत्य, शिव, सुन्दर'—की सत्ता का प्रतिपादन किया है। इसके अतिरिक्त श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी ने चिरन्तन काव्य प्रवाह मे नूतनता एव भाव अपनाव, वस्तु जगत् और भावजगत्, कविता और कला, मनुष्य और मनुष्येतर प्रकृति, कविता और विज्ञान आदि पर अपने सिद्धान्तो एव विचारो का प्रतिपादन करते हुए उपस्थित किया है।

[५] 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' समीक्षा एव सस्मरण दो खडो मे विभक्त 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' नामक कृति मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी ने अपनी नवीन रचनात्मक प्रवृत्ति की ओर सकेत किया है। प्रस्तुत कृति मे सगृहीत समीक्षात्मक लेखो मे अधिकाश लेख साहित्यिक दृष्टि से लिखे गय है। लेखक के साहित्य मे रचनात्मक शब्द का प्रयोग जीवन मे कर्म पक्ष की प्रधानता को महत्व प्रदान करता है। 'रचना शब्द मे रचने का जो भाव है वह शिल्प (लेखन कला) की अपेक्षा करता है। आचार्य पडित केशव प्रसाद मिश्र के शब्दो मे शिल्प साहित्य का क्रियाकल्प है।'[१] और इस दृष्टि से शिल्प से हिन्दी साहित्य की समस्त विधाएँ 'रचना' की कोटि मे रखी जा सकती है। श्री द्विवेदी जी के सपूर्ण साहित्य मे उनका रचनात्मक दृष्टकोण भाषा, भाव, शैली आदि समस्त क्षेत्रो मे अवलोकित होती है। 'एक साहित्यिक वार्तालाप' शीर्षक आलोचनात्मक लेख मे श्री द्विवेदी जी ने श्री अजय शेखर जी के द्वारा लिये 'इन्टरव्यू' को उसी रूप मे प्रस्तुत किया है जिस रूप मे श्री अजय शेखर ने साप्ताहिक 'गिरि द्वार' मे अपने स्नेह सौहार्द से सिक्त उद्गारो को उनके साथ हुए इन्टरव्यू के साहित्यिक वार्तालाप को प्रकाशित करवाया था। इसमे लेखक के अग्रेजी भाषा के सम्बन्ध मे विचार, नये कवियो के प्रति उनके विचार, नयी कविता का भविष्य, साहित्यिको की आर्थिक स्थिति मे सुधार, साहित्य की ओर झुकाव का कारण, आधुनिक मानव की मनोवृत्ति के सम्बन्ध मे उनके विचार, जीवन का अत्यन्त दुखमय और सुखमय दिन तथा स्वय पर आलोचक न होकर एक शैलीकार के रूप मे आक्षेप का खडन, आदि श्री द्विवेदी जी के विचारात्मक स्तर को प्रकट करता है जो उनकी नि सकोच और निष्पक्ष प्रवृत्ति का द्योतक है। अग्रेजी भाषा के सम्बन्ध मे उनका मत है कि भारत मे गाधी जी के सिद्धान्तो एव रचनात्मक कार्यों के प्रतिपादन से

---

१. 'स्मृतियाँ और कृतियाँ', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, (निवेदन), पृ० १।

स्वावलम्बी भारत स्वय ही अंग्रेजी भाषा को त्याग देगा, उसके लिए विरोध व्यर्थ है। नये कवियो के प्रति कटाक्ष करते हुए द्विवेदी जी के मत मे नये कवियो मे मनन चिन्तन का अभाव है, वह विदेशी साहित्य की नकल कर उसे देशी रूप प्रदान करते है। अत नयी कविता का भविष्य भी उज्ज्वल नही है। साहित्यकारो की आर्थिक स्थिति मे सुधार के प्रति उनकी दृष्टि मे अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के बदलने से ही समाज की स्थिति एव साहित्यकारो की स्थिति मे सुधार सम्भव है। आधुनिक मानव की साधारण मनोवृत्ति आर्थिक एव स्वार्थी हो गयी है, मानसिक विकास मे यह अवरोधक है, इसके लिए भी अर्थशास्त्र मे आमूल परिवर्तन आवश्यक है। शैलीकार तथा आलोचक के सन्दर्भ मे उन्होने उत्तर दिया 'यदि मुझे लोग शैलीकार के रूप मे मानते है तो मेरी लेखन कला को पहचानते हैं, किन्तु शैलीकार होने का अभिप्राय यह नही है कि साहित्यकार कवि और आलोचक ही नही रह जाता। साहित्य की कोई भी विधा शैली के लिए चित्रपट बन सकती है। आलोचना भी मेरा एक चित्रपट है। आलोचना मे निबन्ध कला ही शैली बनकर आलोचना को नीरस नही होने देती।'[१]

आलोचक द्विवेदी जी और हिन्दी आलोचना की पृष्ठभूमि

हिन्दी आलोचना साहित्य का अवलोकन करते हुए आज के युग को 'समीक्षा युग' से अभिहित किया जा सकता है। दूसरे शब्दो मे, आज समीक्षा साहित्य गद्य के अन्य रूपो के सदृश ही अत्यन्त विकासशील तथा प्रगति के उच्च शिखर पर आसीन है। हिन्दी आलोचना के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि वस्तुत हिन्दी आलोचना का मूल स्रोत सस्कृत साहित्य है। उसी की प्रेरणा के फलस्वरूप ही हिन्दी मे रीति शास्त्र का आविर्भाव हुआ। सस्कृत मे समीक्षा शास्त्र के पुष्ट, गहन तथा दीर्घकालीन प्रसार के दर्शन के साथ ही साहित्य शास्त्र भी अपनी प्रौढता और समृद्धता लिए हुए प्रचलित थी। हिन्दी के प्रारम्भिक साहित्य शास्त्रियो ने सस्कृत साहित्य शास्त्र की मान्यताओ का केवल समर्थन, पुष्टीकरण तथा अनुवाद ही किया। अतएव हिन्दी समीक्षा शास्त्र के क्षेत्र मे प्रारम्भिक युगो मे मौलिक चिन्तन का सर्वथा अभाव मिलता है। परन्तु आधुनिक युग मे मौलिक चिन्तन पर आधारित समीक्षा साहित्य के सर्वत्र एव अधिकाश रूप मे दर्शन होते है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी समीक्षा के विकास के स्वरूप का अध्ययन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि सस्कृत साहित्य का सैद्धान्तिक प्रभाव उसकी पृष्ठभूमि मे विद्यमान रहा है। सस्कृत साहित्य के क्षेत्र मे समीक्षा का अन्यतम महत्व निर्दिष्ट हुआ है। रस, अलकार, ध्वनि, रीति तथा वक्रोक्ति आदि सिद्धान्तो के रूप मे सस्कृत समीक्षा शास्त्र के विभिन्न सम्प्रदाय मान्य हुए है। सस्कृत के इन्ही सम्प्रदायो के अनुकरण पर रीति-

१. 'स्मृतियाँ और कृतियाँ', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५८।

काल मे लक्षण ग्रन्थो का निर्माण हुआ। हिन्दी मे रीति शब्द का अर्थ मुख्यत काव्य रचना के नियमो और सिद्धान्तो के रूप मे प्रयुक्त होता है। रीतिकाल मे यद्यपि आरम्भिक समीक्षा शास्त्रियो मे सबसे महत्वपूर्ण नाम आचार्य केशवदास का है परन्तु उनके पूर्व भी पुड अथवा पुष्य आदि के उल्लेख साहित्य ग्रन्थो मे मिलते हे। शिवसिह 'सरोज', मिश्रबन्धु 'विनोद'[1], तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास[2] मे यह नाम उपलब्ध होता है जो हिन्दी का सर्वप्रथम आचार्य है। आगे चल कर कृपाराम ने इस क्षेत्र मे अपना 'हित तरगिणी'[3] नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। कृपाराम के उपरान्त गोप कृत 'राम भूषण' और 'अलकार चन्द्रिका',[4] मोहन लाल मिश्र कृत 'शृगार सागर', नन्ददास कृत 'रसमजरी' तथा करनेस कृत 'करण भरण ', 'श्रुति भूषण' तथा 'भूप भ्रमण' आदि रचनाएँ उल्लिखित की जा सकती है। हिन्दी रीति साहित्य के प्रवर्तक के रूप मे आचार्य केशव को मान्यता दी जाती है। केशव दास ने 'रसिक प्रिया', 'नख शिख', 'कवि प्रिया', 'राम चन्द्रिका', 'वीरसिंह देव चरित', 'रतन बावनी', 'विज्ञान गीता' तथा 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' आदि की रचना की। इनमे साहित्यशास्त्र के निरूपण की दृष्टि से 'रसिक प्रिया', 'नखशिख', 'कविप्रिया' तथा 'रामचन्द्रिका' विशिष्ट है।[5] इन ग्रन्थो मे केशवदास ने कवियो के प्रकार, कवि रीति वर्णन, काव्य दोष वर्णन, रसदोष वर्णन, अलकार वर्णन, रस विवेचन, नायक भेद, जाति अनुसार नायिका भेद, अन्य नायिका प्रकार, रस के अग, वियोग शृगार आदि का विवेचन प्रस्तुत किया है। केशवदास के उपरान्त सुन्दर कवि का नाम उल्लेखनीय है जिन्होने अपने 'सुन्दर शृगार' नामक ग्रन्थ मे शृगार रस का सम्यक् विवेचन किया है।[6]

रीतिकाल के अन्य हिन्दी साहित्यचारो मे आचार्य चिन्तामणि का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चिन्तामणि ने 'काव्य विवेक', 'काव्य प्रकाश', 'कवि कुल कल्प तरु', 'रस मजरी', 'पिंगल' तथा 'रामायण' नामक ग्रन्थो की रचना करके इनमे अपने साहित्य सिद्धान्तो का निरूपण किया है। इन ग्रन्थो के अतिरिक्त चिन्तामणि लिखित 'शृगार मजरी' शीर्षक एक अन्य ग्रन्थ का भी उल्लेख किया जाता है। इन साहित्य शास्त्रीय रचनाओ मे आचार्य चिन्तामणि ने काव्य का स्वरूप, काव्य के भेद, काव्य पुरुष का रूपक, काव्य के गुण, रस निरूपण, रस के अग, काव्य दोष, अलकार निरूपण, शब्द शक्ति निरूपण तथा ध्वनि निरूपण प्रस्तुत किया है।

---

१. 'मिश्रबन्धु विनोद', भाग १, मिश्रबन्धु, पृ० ७२।
२. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३।
३. रचनाकाल सवत् १५९८ वि०।
४. दे० 'हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ४७।
. 'आचार्य केशवदास', डा० हीरालाल दीक्षित, पृ० ८९।
६. 'हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ६८।

चिन्तामणि के साथ ही आचार्य मतिराम का भी उल्लेख किया जा सकता है जिन्होने अपने 'अलकार पचाशिका', 'ललित लालभ' एव 'रस राज' आदि ग्रन्थो मे रस विवेचन, अलकार निरूपण तथा नायिका भेद प्रस्तुत किया है। कवि भूषण ने अपने लिखे हुए 'शिवराज भूषण', 'भूषण हजारा', 'भूषण उल्लास' तथा 'दूषण उल्लास' आदि ग्रन्थो मे मुख्यत अलकार निरूपण किया है। आचार्य कुलपति मिश्र ने 'द्रोण पर्व', 'युक्ति तरगिणी', 'नख शिख', 'सग्राम सार' तथा 'रस रहस्य' नामक ग्रन्थो मे अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। साहित्य शास्त्रीय दृष्टि से इनमे से अन्तिम ग्रन्थ का ही विशेष महत्व है। इस ग्रन्थ मे कवि ने काव्य के लक्षण, काव्य का प्रयोजन, काव्य के कारण, काव्य के भेद, शब्द शक्ति, ध्वनि, गुणीभूत व्यग्य, रस, काव्य के गुण, काव्य के दोष, शब्दालकार तथा अर्थालकार का निरूपण किया है। आचार्य सुखदेव मिश्र के लिखे हुए काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो मे 'वृत्त विचार', 'छन्द विचार', 'फाजिल अली प्रकाश', 'रसार्णा', 'शृगार लता', 'अध्यात्म प्रकाश' तथा 'दशरथ राय' आदि के नाम उल्लेखनीय है जिनमे शब्द विवेचन, रस विवेचन तथा नायक नायिका भेद आदि विषयो का विवेचन हुआ है। इनके अतिरिक्त इस काल के अन्य काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो मे रामजी लिखित 'नायिका भेद' गोपाल राम लिखित 'रस सागर' तथा 'भूषण विलास', बलिराम लिखित 'रस विवेक', बलवीर लिखित 'उपमालकार', तथा 'दम्पति विलास', कल्याणदास लिखित 'रस चन्द' तथा श्री निवास लिखित 'रस सागर' आदि प्रमुख है। रीतिकालीन हिन्दी समीक्षा की इस कडी मे महाकवि देव लिखित 'रस विलास', 'भवानी विलास', 'भाव विलास', 'काव्य रसायन', 'शब्द रसायन', सुजान विनोद', 'कुशल विलास' तथा 'सुख सागर तरग' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन ग्रन्थो मे देव ने काव्य निरूपण, अलकार निरूपण तथा रस निरूपण आदि प्रस्तुत किया है। आचार्य सूरति मिश्र ने 'अलकार माला', 'रस रत्नमाला', 'सरस रस', 'रस ग्राहक चन्द्रिका', 'नखशिख', 'काव्य सिद्धान्त' तथा 'रस रत्नाकर' आदि मे काव्य के प्रयोजन, काव्य के रूप, शब्द विवेचन, काव्य प्रकाश, काव्य के दोष, काव्य के गुण, अलकार निरूपण तथा छन्द विवेचन प्रस्तुत किया है। इसी परम्परा के अन्तर्गत आचार्य गोप द्वारा लिखित 'रामालकार', 'रामचन्द्र भूषण' तथा 'रामचन्द्राभरण' के नाम उल्लेखनीय है। इनमे आचार्य गोप ने अलकार की परम्परानुगामिता के साथ शब्दालकार और अर्थालकार के उदाहरण और लक्षण प्रस्तुत किये है। आचार्य याकूब खा लिखित 'रस भूषण' मे अलकार निरूपण तथा नायिका भेद के साथ ही साथ रस, स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव आदि का वर्णन किया गया है। आचार्य कुमारमणि भट्ट लिखित 'रसिक रसाल' नामक ग्रन्थ मम्मट के 'काव्य प्रकाश' से प्रभावित है। इसमे आचार्य भट्ट ने काव्य के प्रयोजन, काव्य के कारण, काव्य के भेद, विविध रसो, भाव विभाव आदि, नायिका भेद तथा विविध अलंकारो का निरूपण किया है।

रीतिकालीन अन्य हिन्दी साहित्यकारो मे आचार्य श्रीपति का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होने अपने ग्रन्थो मे काव्य शास्त्रीय विषयो पर विस्तार से एव सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थो मे 'कविकुल कल्पद्रुम', 'रस सागर', 'अनुप्रास विनोद',,'विक्रम विलास', 'सरोज,कलिका', 'अलकार गगा' तथा 'काव्य सरोज' आदि विशेष रूप से उल्लेख्य है। इन ग्रन्थो मे लेखक ने काव्य के स्वरूप, दोष, अलकार तथा रस आदि का विस्तृत निरूपण प्रस्तुत किया है। आचार्य रसिक सुमति का ग्रन्थ 'अलकार चन्द्रोदय' का नाम भी इस क्षेत्र मे उल्लिखित है। जैसा कि ग्रन्थ के शीर्षक से ही स्पष्ट होता है, लेखक ने इसमे अलकारो का विस्तृत निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कवियो एव उनके ग्रन्थो मे आचार्य श्रीधर का 'नायिका भेद, तथा 'चित्रकाव्य', आचार्य लाल का 'विष्णु विलास', आचार्य कुन्दन बुन्देल-खडी का 'नायिका भेद', आचार्य केशव राम के 'नायिका भेद, तथा 'रस लतिका', आचार्य गोदुराम रचित 'रस भूषण' तथा 'दशरूपक', आचार्य बेनीप्रसाद रचित 'रस श्रृगार समुद्र', आचार्य सग राम के ग्रन्थ 'रस दीपक'तथा 'नायिका भेद', आचार्य गजन के 'कमरुद्दीन खा हुलास', आचार्य भूपति के 'कठाभूषण' तथा 'रस रत्नाकर', आचार्य वीर रचित 'कृष्ण चन्द्रिका', आचार्य वशीधर तथा आचार्य दलपति राय के 'अलकार रत्नाकर' तथा 'भाषा भूषण' आदि के नाम भी उल्लिखित किये जा सकते है जिन्होने अपने ग्रन्थो मे साहित्य शास्त्र के विविध अगो का निरूपण किया है। रीति कालीन साहित्यकारो की परम्परा की इस कडी मे आचार्य सोमनाथ मिश्र का नाम भी उल्लेख-नीय है। इनके रचित ग्रन्थो मे 'रस पीयूषनिधि' ग्रन्थ को ही प्रमुखता मिली है। इसमे लेखक ने छन्द शास्त्र, काव्य स्वरूप, काव्य प्रयोजन, काव्य कारण, शब्द शक्ति, ध्वनि, गुणीभूत व्यग्य, दोष, गुण तथा अलकार का विवेचन किया है। इसके अति-रिक्त इनके अन्य ग्रन्थ 'श्रृगार विलास', 'कृष्ण लीलावती', 'पचाध्यायी', 'सुजान विलास' तथा 'माधव विनोद' भी उल्लेखनीय हैं। आचार्य सोमनाथ के परवर्ती साहित्यचार्यों मे आचार्य करन का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। आचार्य करन द्वारा रचित ग्रन्थ 'रस कल्लोल' मे लेखक ने रस, गुण, ध्वनि, शब्द शक्ति, काव्य भेद, वृत्ति आदि का निरूपण किया है। इसी सन्दर्भ में आचाय गोविन्द का 'कर्णा-भरण' भी उल्लिखित है। इसमे विविधि अलकारो की विवेचना हुई है। आचार्य रसलीन के ग्रन्थो 'अगदर्पण' और 'रस प्रबोध' मे क्रमश नखशिख वर्णन तथा रस की सम्यक् विवेचना प्रस्तुत की गयी है। आचार्य रघुनाथ बन्दीजन के 'काव्य कला-धर' और 'रसिक मोहन' ग्रन्थो मे भाव भेद, रस भेद, नायिका भेद तथा अलकार निरूपण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार आचार्य उदयनाथ कवीन्द्र के ग्रन्थ 'रस चन्द्रोदय' अथवा 'विनोद चन्द्रोदय' मे नायिका भेद तथा रस का निरूपण किया गया है। हिन्दी रीति शास्त्र की परम्परा मे आचार्य भिखारीदास का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होने कई समीक्षा सम्बन्धी ग्रन्थो की रचना की है जिनमे विशेष

रूप से निम्न उल्लेखनीय है . 'शृगार निर्णय', रस साराश', 'नाम प्रकाश', 'छन्दोर्णव-प्रिगल', 'काव्य निर्णय' तथा 'शृगार निर्णय' आदि। लेखक ने उपरोक्त ग्रन्थो मे काव्यागो का विश्लेषण एव सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। इन ग्रन्थो मे पदार्थ, अलकार, रस, ध्वनि, गुण, दोष, चित्रकाव्य, नायिका भेद, छन्द शास्श की व्याख्या आदि के विवेचन को प्रस्तुत किया गया है। आचार्य उदयनाथ कवीन्द्र के पुत्र आचार्य दूलह का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ 'कविकुल कठाभरण' भी रीतिकालीन अलकार ग्रन्थो की परम्परा मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है। आचार्य दूलह के साथ के आचर्यो मे आचार्य शम्भुनाथ मिश्र के ग्रन्य 'रस कल्लोल', 'रस तरगिणी' तथा 'अलकार दीपक', आचार्य हित राम कृष्ण का ग्रन्थ 'नायिका भेद', आचार्य गिरधारी लाल का 'नायिका भेद', आचार्य चन्द्रहास का 'शृगार सागर' तथा आचार्य रूप साहि का 'रूप विलास' आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

रीति कालीन लक्षण ग्रन्थो की परम्परा मे आचार्य वेरीलाल रचित 'भाषा भरण', आचार्य समनेस रचित 'रसिक विलास', आचार्य शिवनाथ की कृति 'रस वृष्टि,' आचार्य रतन रचित 'फतेह भूषण', आचार्य ऋषिनाथ का 'अलकारमणि मजरी', आचार्य जनराज रचित 'कविता रस विनोद' आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। आचार्य जनराज ने अपनी कृति मे छन्द वर्णन, काव्य की कोटियाँ, काव्य की परिभाषा, शब्द शक्ति निरूपण, ध्वनि निरूपण तथा गुणीभूत व्यग्य निरूपण, अलकार निरूपण, काव्य गुणो तथा काव्य दोषो का वर्णन, रस निरूपण, भाव, विभाव, अनुभाव तथा सचारी भाव वर्णन, नखशिख वर्णन तथा षट्ऋतु वर्णन आदि को प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त आचार्य उजियारे लिखित 'जुगुल रस प्रकाश' तथा 'रस चन्द्रिका', आचार्य हरिनाथ का 'अलकार दर्पण', आचार्य रग खाँ का 'नायिका भेद', आचार्य चन्दन का 'काव्याभरण', और आचार्य देवकी नन्दन की कृतियाँ 'शृगार चरित्र', 'अवधूत भूषण' तथा 'सरफराज चन्द्रिका' आदि भी इसी काल की प्रमुख कृतियो मे अपना स्थान रखती है। रीतिकालीन शास्त्रीय कृतियो की परम्परा मे आचार्य यश-वन्तसिंह का नाम उल्लेखनीय है। इन्होने अपने 'शृगार शिरोमणि' नामक ग्रथ मे रस निरूपण के प्रसग मे स्थायी भाव, सचारी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, विभाव, नायिका भेद, भाव वर्णन, नायक भेद, उद्दीपन वर्णन, अनुभाव वर्णन, सचारी भाव आदि का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। आचार्य जगतसिंह ने अपनी कृति 'साहित्य सुधानिधि' मे काव्य के भेद, शब्द निरूपण, वृत्ति वर्णन, शब्दालकार और कर्यालकार, काव्य गुण, भाव, विभाव, सचारी भाव, अनुभाव, सात्विक भाव, रीति निरूपण तथा काव्य दोष आदि विषयो की विवेचना प्रस्तुत की है। आचार्य महाराज रामसिंह के ग्रन्थो मे 'अलकार दर्पण', 'रस शिरोमणि', 'रस निवास' तथा 'रस विनोद' आदि उल्लेख-नीय है। इस युग के अन्य आचार्यो मे 'नरेन्द्र भूषण' तथा 'दलेल प्रकाश' के रचयिता कवि मान, 'टिकैतराय प्रकाश' तथा 'रस विलास' ग्रन्थो के रचयिता बेनी बन्दीजन

और आचार्य सेवा दास का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके रचित ग्रन्थो मे प्रमुख रूप से 'गीता महात्म', 'अलबेले लालजू की छप्पय', 'राधा कृष्ण विहार', 'रघुनाथ अलकार' तथा 'रस दर्पण' आदि उल्लेख्य है। सस्कृत भाषा हिन्दी ग्रन्थो के आधार पर साहित्य शास्त्र के विविध विषयो का निरूपण करने वाले आचार्यो मे आचार्य गोकुल नाथ के 'चेत चन्द्रिका', 'महाभारत', 'राधा नखशिख', 'सीता राम', 'गुणार्णव' तथा 'कवि मुख मडन' आदि, आचार्य पद्माकर के 'जगद् विनोद' तथा 'पद्माभरण' नामक ग्रन्थ, आचार्य यशोदानन्दन का 'बरवे नायिका भेद', आचार्य ब्रह्मदत्त के 'विद्वद् विलास' तथा 'दीप प्रकाश' ग्रन्थ, आचार्य करन कवि के 'साहित्य रस' तथा 'रस कल्लोल' आदि ग्रन्थ, आचार्य शिव प्रसाद का 'रस भूषण' नामक ग्रन्थ, आचार्य बेनी प्रवीन का 'नवरस तरग' नामक ग्रन्थ जिसमे लेखक ने नव रसो, स्थायी भाव के साथ ही नायिका के भेद प्रभेद का विस्तृत वर्णन किया है, आचार्य रणधीर सिंह के ग्रन्थ 'काव्य रत्नाकर', 'भूषण कौमुदी', 'पिगल', 'नामार्णव' तथा रस रत्नाकर' मे काव्य का पयोजन, काव्य की कोटियाँ, शब्द शक्तिया, ध्वनि निरूपण, नवरस, भाव, सात्विक भाव, स्थायी भाव, अनुभाव, नायिका भेद, अलकार निरूपण, काव्य के गुण तथा दोष आदि की विवेचना प्रस्तुत की गयी है।

हिन्दी गद्य मे नाट्य कला विषयक सर्वप्रथम रचनाकार आचार्य नारायण की 'नाट्य दीपिका' नामक कृति का हिन्दी समीक्षा साहित्य मे अपना ऐतिहासिक महत्व है। आचार्य रसिक गोविन्द कृत 'रसिक गोविन्दान नन्दघन' ग्रन्थ मे काव्य के गुण, दोष, रस, नायिका भेद तथा अलकार आदि का विस्तार से विवेचन है। आचार्य प्रतापसाहि का नाम भी इस परम्परा मे उल्लेखनीय है। आपने अपने मौलिक ग्रन्थो मे शब्द शक्तियो अभिया, लक्षणा, व्यजना के स्वरूप, काव्य के लक्षण, काव्य के प्रयोजन, काव्य के कारण और भेद, शब्द शक्ति, ध्वनि, गुणीभूत व्यग्य तथा गुण दोष आदि का निरूपण किया गया है। इनकी कृतियो मे विशेप रूप से 'जयसिंह प्रकाश', 'काव्य विलास', 'शृगार मजरी', 'व्यग्यार्थ कौमुदी', 'शृगार शिरोमणि', 'अलकार चिन्तामणि', 'काव्य विनोद' तथा 'जुगुल नखशिख' आदि उल्लेखनीय है। आचार्य नवीन रचित 'रग तरग' नामक ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है। इसमे विविध रसो का निरूपण, नायिका भेद, उद्दीपन विभाव, अनुभाव, सचारी भाव आदि की विवेचना है। यह ग्रन्थ रीति कालीन शास्त्रीय ग्रन्थो की परम्परा मे अन्तिम रचना मानी जाती है। हिन्दी समीक्षा शास्त्र की इस रीति कालीन परम्परा का प्रसार वस्तुत सवत् १७७० वि० से सम्वत् १८९९ वि० तक मिलता है। जैसा कि प्रारम्भ मे ही कहा जा चुका है कि रीति कालीन परम्परा सस्कृत साहित्य शास्त्र की अनुगामिनी रही है, उसी के अनुकरण पर रीति शास्त्रीय ग्रथो की रचना हुई है। परन्तु सूक्ष्म पर्याव-लोकन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यद्यपि रीति परम्परा सस्कृत साहित्य शास्त्रीय परम्परा पर आधारित है परन्तु उसमे यत्र तत्र स्वतत्र साहित्य चिन्तन के

भी सकेत मिलते है और सामाजिक, राजनीतिक, बौद्धिक एव भावात्मक दृष्टिकोण की विभिन्नता के कारण उनमे मौलिक भेद भी परिलक्षित होते है।

आधुनिक युग मे हिन्दी साहित्य शास्त्रीय परम्परा रीति शास्त्रीय परम्परा की ही अगली कडी के रूप मे मान्य है। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश से भारतेन्दु युग मे हिन्दी समीक्षा का नवीन रूप मे आरम्भ हुआ। इस आविर्भाव मे रीति काल के अनुकरण पर कतिपय टीका ग्रथ मिलते है जिनमे मानसी नन्दन पाठक लिखित 'मानस सकावली', शिवलाल पाठक लिखित 'मानस मयक' तथा शिवराम सिह लिखित 'मानस तत्व प्रबोधिनी' प्रमुख है।[1] इसके उपरान्त भारतेन्दु युगीन लेखको के द्वारा उस आलोचना पद्धति का आरम्भ हुआ जिसे समीक्षात्मक कोटि के अन्तर्गत रखा जा सकता है। प्रचीन एव नवीन साहित्य से सम्बन्धित इस प्रकार की आलोचना क्रमश लेखको के समीक्षा विषयक दृष्टिकोण का बोध कराने मे समर्थ है। इस आलोचना शैली मे लिखी गयी रचनाओ मे 'आनन्द कादम्बिनी', 'सयोगिता स्वयवर' तथा 'बग विजेता' आदि की आलोचनाए है। इनमे कही-कही शास्त्रीय दृष्टिकोण के साथ-साथ आलोचको की भावनात्मकता का भी परिचय मिलता है।[2] लगभग इसी काल मे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, की स्थापना हुई और नागरी प्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। शोधपरक आलोचना की दिशा मे इनके माध्यम से प्रयास किया गया। शिवसिह सेगर ने 'शिवसिह सरोज' तथा गियर्सन ने 'दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' आदि ग्रन्थो की रचना भी इसी समय की। शास्त्रीय आलोचना ग्रन्थो मे 'रस कुसुमाकर' तथा 'काव्य प्रभाकर' आदि भी इसी काल मे लिखे गये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौपरू 'प्रेमधन', तथा बालकृष्ण भट्ट आदि समालोचको ने इस युग मे समीक्षा के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्वरूप का सम्यक् परिचय प्रस्तुत किया। शास्त्रीय, गम्भीर तथा विश्लेषणात्मक शैली के साथ-साथ इस युग मे व्यग्यात्मक समीक्षा शैली के प्रवर्तन का श्रेय भी इन्ही साहित्यालोचको को है। भारतेन्दु युग की समीक्षा की विशिष्टता समीक्षा की प्रौढता एव गम्भीरता के लिए महत्वपूर्ण न होकर उनमे अन्तर्निहित उन तत्वो के लिए है जो उसके स्वर्णिम भावी विकास की ओर सकेत करता है। भारतेन्दु युगीन समीक्षको की दृष्टि अपनी प्रचलित परम्परा से हट कर लोक साहित्य एव लोक जीवन की ओर आकृष्ट हुई। वस्तुत· इस युग का मुख्य ध्येय जन जीवन से सम्बन्ध स्थापित करके उनके भावो को प्रकट करना तथा उनके आन्तरिक भाव जगत को साकार रूप मे प्रस्तुत करना है।[3] इन समीक्षको ने

---

१ 'हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास', डा० भगवत्स्वरूप मिश्र, पृ० २३१।

२. दे० 'वग विजेता की समीक्षा', 'आनन्द कादम्बिनी', श्रावण सम्वत् १९४२।

३ 'आधुनिक हिन्दी आलोचना · एक अध्ययन', डा० मक्खनलाल शर्मा, पृ० ११२।

अपने समीक्षा साहित्य मे जन जीवन के सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोणो को स्वीकार कर युगानुभव को प्रमाणित किया है, जिसमे भौतिकता के दर्शन होते हैं।[1] इससे स्पष्ट है कि इस युग के समीक्षा साहित्याचारो का दृष्टिकोण उपयोगितावादी है। इसी के फलस्वरूप भारतेन्दु जी ने नाटको मे सामयिक तत्वो को प्रधानता देते हुए नाटच शास्त्र के नियमो मे भी परिवर्तन घोषित किया है 'प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारम्बार दृश्यों के बदलने मे है और इसी हेतु एक-एक अक मे अनेक-अनेक गर्भांको की कल्पना की जाती है।'[2] द्विवेदी युगीन समीक्षा पद्धति के विकास की पृष्ठभूमि भारतेन्दु युग मे ही परिलक्षित होने लगी थी। भारतेन्दु युगीन समीक्षा का विस्तार, प्रसार एव गहराई द्विवेदी काल मे मिली परन्तु द्विवेदी युगीन सृजनात्मक साहित्य की तुलना मे द्विवेदी युगीन समीक्षा की गति मन्द पड गयी थी। द्विवेदी युगीन समीक्षा अपने भूतकाल के वैभव से मुक्त होने पर भी व्यापार नीति तथा आर्थिक विकास की प्रेरणा, समकालीन अवस्था के प्रति सजग थी इसका मुख्य कारण यह था कि उस समय भी वैयक्तिक कटु आलोचनाओ को ही प्रश्रय मिल रहा था। असतोष एव वर्तमान भारतीय अवस्था को सुधारने का उसमे दिशा निर्देश आदि भी अन्तर्निहित है। इस प्रकार द्विवेदी युगीन समीक्षा का मुख्य ध्येय रस, भाव, अलकार, छन्द शास्त्र और नायिका भेद के परिज्ञान तक ही सीमित न रहकर जन जीवन एव जन चेतना से सम्बन्धित हो गया। इस युग मे एक नवीन समीक्षा का रूप भी दृष्टिगोचर होता है, वह है आलोचना की आलोचना अर्थात् प्रत्यालोचना। भारतेन्दु युगीन समीक्षा पुस्तक परिचय तथा दोषोद्भावना तक ही सीमित रह गयी थी। द्विवेदी युग मे भी इसी का प्रभाव रहा परन्तु 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती' और 'समालोचक' के प्रकाशन से द्विवेदी युग मे नव जागरण की लहर दौड गयी।[3] इस युग को आचार्य द्विवेदी जी का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे एक सजग और कठोर निरीक्षण का कार्य किया। अपनी स्पष्टता और निडरता के कारण ही उन्होने न केवल काव्य सम्बन्धी दोषो का ही निर्देश किया प्रत्युत साहित्य मे अपनी सुरुचिता का परिचय देते हुए कवियो के कवित्व के विकास का मार्ग दर्शन भी किया। आचार्य द्विवेदी जी की आलोचना की मूल प्रेरणा सुरुचि और सत्साहित्य का निर्माण है। इसका मूल्याकन उनके सपूर्ण साहित्य के विश्लेषण के आधार पर किया जा सकता है। आचार्य द्विवेदी जी ने सस्कृत और हिन्दी के ग्रन्थो और कलाकारो की आलोचना की है। सस्कृत ग्रन्थो की आलोचना मे 'नैपध चरित चर्चा', 'विक्रमाक

१. 'आधुनिक हिन्दी आलोचना एक अध्ययन', डा० मक्खनलाल शर्मा, पृ० ११५।
२. 'भारतेन्दु ग्रन्थावली . प्रथम भाग', प्रथम सस्करण, पृ० ७१९।
३ 'हिन्दी आलोचना : उद्भव और विकास', डा० भगवत्स्वरूप मिश्र, पृ० २५१।

देव चरित चर्चा', 'कालिदास की निरकुशता' आदि समीक्षा कृतियाँ हैं जिनका मुख्य आधार शास्त्रीयता है। सस्कृत ग्रन्थो की आलोचना मे उन्होने अलकार, रीति, रस और प्रबन्ध के औचित्य को दृष्टि मे रखा है।[१] इसमे द्विवेदी जी आलोच्य वस्तु के दोषों तक ही सीमित नही हैं, उसके गुणो का भी दिग्दर्शन किया है। द्विवेदी जी के आलोचना साहित्य मे कही-कही तुलनात्मक और ऐतिहासिक आलोचना के भी क्षीण तत्व परिलक्षित होते हैं।[२] द्विवेदी जी की प्रमुख साहित्यिक देन खडी बोली को व्यवस्थित और व्याकरण सम्पन्न करने मे है। 'सरस्वती' पत्रिका मे भाषा सम्बन्धी तथा वाद विवाद सम्बन्धी लेखो के साथ 'सरस्वती' पत्रिका की प्रत्येक प्रति मे द्विवेदी जी की 'पुस्तक परिचय' समीक्षा के दर्शन होते थे। सैद्धान्तिक आलोचना मे 'कवि और कविता' तथा 'मुकद्दमा' आदि लेख निर्दिष्ट किये जा सकते है। द्विवेदी युगीन सम सामयिक आलोचको मे बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू राधाकृष्ण दास, ग्रीव्स, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि भी आलोचना के क्षेत्र मे बडी सक्रियता से भाग ले रहे थे। द्विवेदी जी की आलोचनात्मक कृति 'हिन्दी कालिदास' की प्रत्यालोचना की गयी। गुलेरी जी ने स्वय मनसाराम और द्विवेदी जी की आलोचना की। उपरोक्त आलोचको के लेख भी 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओ से निकलते रहते थे। हिन्दी आलोचना के क्रमिक विकास के इस द्विवेदी युगीन लेखको मे मिश्रबन्धुओ का नाम उल्लिखित किया जा सकता है। इनकी आलोचना मे साहित्यिक सौन्दर्य, कवि का जीवन दर्शन आदि गम्भीर विषयो का प्रौढ विवेचन किया गया है। मिश्रबन्धु द्विवेदी जी के ही समसामयिक हैं तथा उन्होने द्विवेदी जी की ही परिचयात्मक एव निर्णयात्मक शैली का अनुसरण किया है। मिश्रबन्धुओ मे प्रमुखत तीन भाइयो के नाम अग्रगण हैं—प० गणेश बिहारी, राय बहादुर प० श्याम बिहारी और राय बहादुर प० शुकदेव बिहारी। यह तीनो भाई ही हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे मिश्रबन्धुओ के नाम से प्रसिद्ध हैं। हिन्दी साहित्य को मिश्रबन्धुओ की देन के रूप मे दो कृतियाँ साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं 'हिन्दी नवरत्न' तथा 'मिश्रबन्धु विनोद'। द्विवेदी जी के समीक्षा साहित्य मे जिस छिद्रोन्वेषणी प्रवृत्ति एव दोषारोपण की प्रवृत्ति के दर्शन होते है मिश्रबन्धुओ की समीक्षा साहित्य मे इसका अभाव है। हिन्दी आलोचना साहित्य अब तक क्रमश प्रौढ, गम्भीर, विश्लेषणात्मक और स्वच्छन्दतावादी होती गयी है। अतएव मिश्रबन्धुओ की आलोचना विकास की दूसरी सीढी के रूप मे मानी जाती है।[३] 'मिश्रबन्धु विनोद' तथा 'हिन्दी नवरत्न' मे आलोचना पद्धति के आधुनिक स्वरूप के दर्शन होते हैं। सन्देश और उसकी सफल अभिव्यक्ति को मिश्र-

---

१ 'हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास', डा० भगवत्स्वरूप मिश्र, पृ० २५७।

२ वही, पृ० २५९।

३. वही, पृ० २८१।

बन्धुओ ने आलोचना का प्रधान आधार माना है ।[1] यही कारण है कि उन्होने 'हिन्दी नवरत्न' मे समाविष्ट कवियो के सन्देश का निर्देश दिया है ।[2] तुलनात्मक आलोचना की एक अस्पष्ट सी झलक यद्यपि द्विवेदी युग मे दिखाई दी थी लेकिन इसका सूत्रपात मिश्रबन्धुओ से ही होता है । तुलना और निर्णय इनकी आलोचना की प्रमुख विशेषता थी और यह साहित्यकारो के व्यक्तित्व, दर्शन, विचार तथा उनकी तत्कालीन परि-स्थितियो तक ही सीमित थी । तुलनात्मक आलोचना के अतिरिक्त मिश्रबन्धुओ के आलोचना साहित्य मे मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक समीक्षा के तत्व भी विद्यमान है ।

हिन्दी साहित्य मे व्यवस्थित और प्रौढ तुलनात्मक पद्धति के प्रवर्तक के रूप मे आचार्य पद्मसिंह शर्मा जी है । उन्होने 'बिहारी सतसई' पुस्तक के भाष्य रूप मे इसकी भूमिका लिखी है । प० शर्मा की 'बिहारी सतसई' की पद्धति पर ही प० कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा जिसमे देव की तुलना बिहारी तथा अन्य कवियो से करते हुए आलोचक ने देव को प्रधानता दी है तथा उन्ही को सर्वश्रेष्ठता प्रदान करने की चेष्टा की है । शुक्ल जी से पूर्व के आलोचना साहित्य की प्रमुख विशिष्टताएँ तन्त्व, प्रभाव तथा निर्णय आदि तत्व है जिसमे तत्ववादी तथा प्रभावाभिव्यजक समीक्षा पद्धतियो का पारस्परिक समन्वय अपनी पराकाष्ठा पर था । यहाँ तक कि आचार्य शुक्ल जी तथा सौष्ठववादी प० नन्ददुलारे वाजपेयी मे भी इस समन्वय के कही-कही दर्शन होते है । 'देव और बिहारी' मे प० कृष्ण बिहारी मिश्र ने फुटकर शब्दो की भी तुलनात्मक आलोचना प्रस्तुत की है । बिहारी और देव के वाद विवाद की अन्तिम आलोचनात्मक पुस्तक लाला भगवानदीन की 'बिहारी और देव', है जो मिश्रबन्धुओ द्वारा दिये बिहारी के दोहो के अर्थ मे स्थान-स्थान पर अशुद्धियो को दृष्टि मे रख कर उनका निर्देश किया गया है । इसके साथ ही उनका मत है कि मिश्रबन्धु देव की कविता के भी शुद्ध और साहित्यिक सस्करण का सपादन नही कर सके हैं ।[3] वस्तुत लाला भगवानदीन जी की प्रस्तुत आलोचना कृति मिश्रबन्धुओ की कटु आलोचना के प्रत्युत्तर देने के रूप मे थी । दीन जी की इस आलोचना कृति मे शास्त्रीयता एव प्रभाववादी तत्व को प्राय· अभाव है । उन्होने केवल दोषों की उद्भावना करके ही सन्तोष कर लिया है । तुलनात्मक समीक्षा के भी अपने कुछ सिद्धान्त हैं जिन्हे इन आलोचको ने विस्मृत कर दिया है । उदाहरणार्थ कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'मतिराम ग्रन्थावली' की भूमिका मे मतिराम की

---

१. दे० 'हिन्दी नवरत्न', मिश्रबन्धु, पृ० २३–२४ ।
२. वही, पृ० २६ ।
३ 'बिहारी और देव', लाला भगवानदीन, पृ० ५३ ।

तुलना सूर, तुलसी, कालिदास, रवीन्द्र, शेक्सपियर, तोष आदि से की है जिनकी वस्तुत कोई समता ही नही है। साम्य और वैषम्य के आधार पर दो कवियो की विशेषताओ का स्पष्टीकरण और आपेक्षित मूल्याकन ही तुलनात्मक पद्धति का उद्देश्य है।[1]

आधुनिक हिन्दी समीक्षा की अगली कडी के रूप मे शुक्ल युग को अभिहित किया जा सकता है। इसके प्रमुख प्रवर्तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी है जिन्होने अपने आलोचना सिद्धान्तो से हिन्दी जगत को प्रकाशमान कर दिया। शुक्ल युग से पूर्व आलोचना का क्षेत्र दोष दर्शन, गुण दर्शन, निर्णय तथा तुलना तक ही सीमित था। आचार्य शुक्ल जी ने समीक्षा के इस प्राकृत रूप से इतर आलोचना की कुछ निश्चित पद्धतियो को जन्म दिया जिनमे विश्लेषण, विवेचन और नियमन हैं। वस्तुत आगे चल कर यही पद्धतियाँ आलोचना के वास्तविक अर्थों मे प्रयुक्त हुईं। इसके साथ इसमे आलोचक की तटस्थता का तत्व भी अन्तर्निहित है। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि शुक्ल युग की उपर्युक्त पद्धतियो के अतिरिक्त आलोचको ने अपनी प्राचीन पद्धतियो का त्याग कर दिया था। नही, प्रत्युत उस समय तक उन प्राचीन परन्तु सर्वदेशीय और सार्वकालिक पद्धतियो को स्थूल रूप मे ही ग्रहण किया जाता था। वे आलोचक उसके अभ्यान्तर तक पहुँचने मे सफल न हुए थे जिसका सफल प्रयास इस युग मे किया गया। आचार्य शुक्ल जी ने आलोचना के क्षेत्र मे प्रयोगात्मक और सैद्धान्तिक आलोचना के समन्वय के आधार पर व्यावहारिक रूप मे निगमन शैली का सूत्रपात किया। बाबू श्यामसुन्दर दास जी इस युग मे भी आ जाते हैं। वह आचार्य शुक्ल जी से प्रभावित थे। लेकिन उनके समीक्षा साहित्य मे इस समन्वयात्मक प्रवृत्ति का अभाव है। शुक्ल जी ने अपने काव्य सम्बन्धी विचारो एव सिद्धान्तो के लिए भारतीय साहित्य को अपना अवलम्बन बनाया है। लेकिन उनके सिद्धान्त मौलिक है। भारतीय परम्परा के अनुगमन के साथ ही उन्होने पाश्चात्य सिद्धान्तो का खडन किया है। इस क्षेत्र मे वह बहुत ही निर्भीक थे। भारतीय काव्य साहित्य की विविध विधाओ एव विभिन्न काव्य तत्वो—रस, अलकार, रीति, वक्रोक्ति आदि तथा अधुनिक काव्य तत्वो मे अनुभूति, कल्पना, राग, अभिव्यजना, आदर्श यथार्थ, आदि सिद्धान्तो का विशेषता से निरूपण किया है। कविता की विविध विधाओ के अतिरिक्त उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के सभी तत्वो का सश्लिष्ट एव प्रामाणिक विवेचन किया है। शुक्ल जी अपने इस आलोचक रूप से भी अधिक 'निबन्धकार' हैं और यही कारण है कि निबन्ध के क्षेत्र मे उसके स्वरूप तथा मानदडो पर अधिक विस्तार से एव अधिकारपूर्वक विवेचन प्रस्तुत किया है। शुक्ल जी के अधिकाश निबन्ध विचारात्मकता की कोटि मे आते है। आलोचना के क्षेत्र मे उन्होने विश्ले-

---

१ 'हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास', डा० भगवत्स्वरूप मिश्र, पृ० ३३२।

षणात्मक आलोचना को प्रमुखता दी है तथा उसे ही उच्च माना है ।

शुक्ल युग की समीक्षा पद्धति मे नीति तत्व भी विद्यमान है । शुक्ल जी की व्यावहारिक आलोचना का क्षेत्र तुलसी के मानस मे सीमित है अतएव वह लाक मर्यादा के उत्कृष्ट आदर्श को ही लेकर चले है । लेकिन शुक्ल सम्प्रदाय के अन्य समीक्षको ने उनके इस रूढ रूप को ग्रहण नही किया है। उनकी दृष्टि मानव दुर्बलताओ से होती हुई नैतिक आदर्शो पर गयी है । लेकिन रस और नीति के सम्बन्ध मे शुक्ल सम्प्रदाय के विचारो मे अत्यधिक अतिशयोक्ति का आश्रय लिया गया है, जिसका खुल कर विरोध उनके परवर्ती समीक्षको ने किया है । शुक्ल युग के प्रधान समीक्षको मे बाबू श्यामसुन्दर का नाम अग्रणीय है । इनकी आलोचनात्मक कृतियो मे 'कबीर ग्रथावली की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' तथा 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' प्रयोगात्मक आलाचना के प्रमुख ग्रन्थ है । बाबू श्यामसुन्दर दास के अतिरिक्त शुक्ल युग के समीक्षको तथा उनके अनुयायियो मे प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० जगन्नाथ शर्मा, प० कृष्ण शकर शुक्ल, प० रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख', रामनरेश त्रिपाठी, प० गिरजादत्त 'गिरीश', मुन्शी प्रेमचन्द, डा० सत्येन्द्र आदि हैं । इनमे भी प० विश्वनाथ प्रसाद को शुक्ल पद्धति के सबसे बडे प्रतिनिधि के रूप मे माना जाता है । इस शैली के प्रसिद्ध ग्रथो मे 'बिहारी की वाग्विभूति', 'भूषण ग्रन्थावली की भूमिका', 'पद्माकर पचामृत', 'प्रसाद जी के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन', 'उद्धवशतक की भूमिका', 'केशव की काव्य कला', 'कविवर रत्नाकर', 'तुलसीदास और उनकी कविता', 'सुकवि समीक्षा', 'गुप्त जी की काव्य धारा', 'प्रसाद की नाट्य कला' आदि प्रमुख है । इन ग्रन्थो मे शैली के विभिन्न रूपो के दर्शन होते हैं तथा इनके कवि-व्यक्तित्व के अध्ययन को प्रमुख स्थान मिला है ।

शुक्ल युग मे एक अन्य प्रवृत्ति भी धीरे-धीरे समीक्षा साहित्य के क्षेत्र मे अवतीर्ण हो रही थी जो इतिवृत्तात्मकता का ही विकसित रूप था । इसे काल क्रम के अनुसार शुक्लोत्तर युग कहा जा सकता है । इस युग की समीक्षा पर गाधीवाद के प्रभाव के साथ ही मार्क्सवाद का भी प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है । इसके साथ ही दो विरोधी तत्वो का समन्वित रूप भी इसी विशेष युग की देन है । द्विवेदी युग मे समीक्षको का दृष्टिकोण यद्यपि सुधारवादी था परन्तु शुक्लोत्तर युग मे आते आते उस सुधारवादी विचारधारा मे क्रान्ति का भी आह्वान होने लगा था, वे लोग प्राचीन रूढियो के स्थान पर नवीन सस्कृति की प्रतिस्थापना करना चाहते थे । अतएव उनमे व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनैतिक स्वतत्रता के लिए विशेष उत्साह तथा वाणी मे विद्रोह की भावना परिलक्षित होती है ।[1] इस प्रकार नूतन जीवन दर्शन तथा समीक्षा की नवीन पद्धति के साथ स्वच्छदता तथा सौष्ठव इसकी मूल प्रेरणा है ।

---

१. 'हिन्दी काव्य मे प्रगतिवाद', विजय शकर मल्ल, पृ० १९ ।

द्विवेदी जी का आलोचना साहित्य और समकालीन प्रवृत्तिया

भारत मे शताब्दियो की घोर निद्रा के उपरान्त नवीन चेतनता के फलस्वरूप बौद्धिक जागृति और पाश्चात्य अनुकरण की प्रवृत्ति का विकास हुआ और इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप आधुनिक हिन्दी साहित्य की आलोचना विधा का जन्म हुआ। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे भारतेन्दु युग से इसका सूत्रपात माना जाता है। परन्तु द्विवेदी युग के प्रवर्नक महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्य मे आगमन से तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रकाशन से आलोचना का समुचित विकास हुआ और इससे समालोचको को नवीन स्फूर्ति एव प्रोत्साहन मिला। इस युग मे आलोचना की निम्न प्रवृत्तियाँ सम्मुख आयी—परिचय प्रधान, गवेषणा प्रधान, सिद्धान्त प्रधान, शास्त्र प्रधान, प्रभाव प्रधान, तुलना प्रधान और चिन्तन प्रधान। परन्तु नवीन सास्कृतिक उत्थान, पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और भाषा मे बढती हुई अभिव्यजना शक्ति के परिणाम स्वरूप आलोचना विधा का चतुर्मुखी विकास हुआ तथा उसमे नवीनता परिलक्षित होने लगी। प्राचीनता की दृष्टि से हिन्दी साहित्य मे ऐतिहासिक आलोचना की प्रवृत्ति ही विशिष्ट मानी जाती है और इसका मुख्य कारण है कि आलोचना के क्षेत्र मे इसी का प्रयोग सबसे अधिक प्रचलित है। आधुनिक युग मे आलोचना साहित्य मे अन्य नवीन प्रवृत्तियो का भी दिग्दर्शन हो रहा है जो उसके विकासात्मक रूप का परिचायक है। आलोचना की प्रवृत्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध व्यक्ति के दृष्टिकोण पर आधारित है और दृष्टिकोण का आधार मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक, वैज्ञानिक, निर्णयात्मक, सामाजिक, वैयक्तिक आदि मे कोई भी हो सकता है। परन्तु स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि साहित्य की जितनी भी विधाएँ होती है उतने ही प्रकार की आलोचना का भी जन्म होता है और उसी के अनुरूप प्रवृत्ति का भी। आलोचको के वर्गों और उनके विभिन्न दृष्टिकोण के कारण आलोचना साहित्य के अनेक वर्ग दृष्टिगोचर होते है। यहाँ हम उन विभिन्न वर्गो की आलोचना की प्रवृत्ति का विभाजन अलग-अलग न प्रस्तुत करके आलोचना साहित्य मे प्राप्त प्रमुख प्रवृत्तियो की ही सम्यक् विवेचना करेगे जो उन वर्गों से भी घनिष्ठता रखती है।

[१] **ऐतिहासिक आलोचना** ऐतिहासिक आलोचना प्रणाली से आशय किसी कृति के व्याख्यात्मक रूप को प्रस्तुत करने के पूर्व उस कृति के रचयिता के पूर्ववर्ती तथा समकालीन इतिहास का आश्रय ग्रहण करने से होता है। इस पद्धति के व्यवहार रूप मे आलोचक का दृष्टिकोण सामाजिक होता है और वह साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब मानता है। ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग करने वाला आलोचक लेखक के काल विशेष मे उन शक्तियो को प्रतिभासित करने की चेष्टा करता है जिसकी प्रेरणा से लेखक साहित्य रचना करता है। इस प्रकार आलोचक का मुख्य ध्येय उस युग की आत्मा को कृति विशेष के माध्यम से परिलक्षित करना है। परिणामस्वरूप यह प्रणाली कुछ अवैज्ञानिक है। आधुनिक युग मे इस प्रणाली के मुख्यत दो रूप परि-

लक्षित होते हैं—साहित्यिक इतिहास के रूप मे और विशिष्ट दृष्टिकोण के रूप मे। साहित्यिक ऐतिहासिक आलोचना के अन्तर्गत साहित्य और उसके विविध अगो का परम्परागत विवरण प्रस्तुत किया जाता है और दूसरे रूप का समावेश आलोचना की अन्य प्रवृत्तियो मे परिलक्षित होता है। ऐतिहासिक आलोचना पद्धति की सर्वप्रमुख विशेषता विशिष्ट युग सम्मत दृष्टिकोण से युग की उपलब्धियो का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना तथा उसके भावी विकासात्मक सकेत सूत्रो का चयन करना, ऐतिहासिकता की सार्थकता एव उसकी परिपूर्णता है। इसकी दूसरी विशेषता अतीत युगो के साहित्य की पारस्परिक सम्बद्धता की सूचक है। आलोचना समीक्षा की अन्य विशेषता अतीत साहित्य की उपलब्धियो का सुरक्षीकरण है। आधुनिक हिन्दी आलोचना साहित्य की ऐतिहासिक प्रवृत्ति मे योगदान देने वाले समीक्षको मे सर्वप्रथम सन् १८३९ ई० मे हिन्दी साहित्य का इतिहास 'रइस्त्वार ला लितेरत्यूर एन्दुई ऐन्दुस्तानी' शीर्षक ग्रन्थ प्रस्तुत करने वाले फ्रासीसी साहित्यकार गार्सा द तासी का नाम उल्लेखनीय है। इसके उपरान्त सन् १८८३ ई० मे ठाकुर शिवसिह सेगर ने हिन्दी काव्य के ऐतिहासिक विवरण को 'शिवसिह सरोज' शीर्षक सकलन मे प्रस्तुत किया। सन् १८८९ ई० मे डा० ग्रियर्सन ने कवि वृत्त सग्रह 'माडर्न वरनाक्यूलर लिटरेचर आफ नादर्न हिन्दुस्तान' नाम से प्रकाशित किया परन्तु उसमे ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति का कोई परिष्कृत एव पुष्ट रूप लक्षित नही होता है। सन् १९०० से १९१९ के मध्य काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रस्तुत खोज रिपोर्टो मे ऐतिहासिक पद्धति का निर्वाह हुआ है। मिश्रबन्धु की 'मिश्रबन्धु विनोद' समीक्षा (१९१३), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' समीक्षा आदि विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति का अनुकरण करने वाले अन्य समीक्षको मे 'हिन्दी भाषा और साहित्य' के लेखक डा० श्यामसुन्दर दास, 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' के लेखक डा० सूर्यकान्त शास्त्री, 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' तथा 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' के लेखक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास' के लेखक प० अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध', 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के लेखक डा० रामशकर शुक्ल 'रसाल' तथा 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के लेखक डा० रामकुमार वर्मा आदि भी अग्रगण्य हैं। श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने भी अपनी आलोचनात्मक रचनाओ मे इस आलोचना प्रवृत्ति का उपयोग किया है। इस आलोचना प्रणाली का रूप द्विवेदी जी लिखित 'ज्योति विहग' जैसी आलोचनात्मक रचनाओ मे अपेक्षाकृत प्रौढ़ता से युक्त दृष्टिगत होता है। इसमे लेखक ने आधुनिक हिन्दी काव्य के प्रमुख कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य साहित्य का मूल्याकन उनकी वैचारिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे प्रस्तुत किया है।

[२] **सुधारपरक समीक्षा** . इस समीक्षा के अन्तर्गत समीक्षक साहित्य के

गुण दोषो के प्रत्यक्षीकरण के साथ कुछ मतो एव सुझावो को भी व्यक्त करता है जिनका आधार सैद्धान्तिक होता है तथा उनकी व्यावहारिक सम्भावनाएँ भी अधिक होती हैं। केवल गुण दोष के प्रत्यक्षीकरण मे आलोचक का दृष्टिकोण बहुत ही सकुचित हो जाता है, वह केवल रूढि का ही अनुगामी होता है। इस प्रकार वह लेखक और कवियो की नवीन विशेषताओ तथा अन्त प्रकृति के सूक्ष्म विश्लेषण को या तो स्वीकार नही करता अथवा उस ओर से अपनी दृष्टि ही हटा लेता है। फलत समीक्षा का क्षेत्र सकुचित-सा हो जाता है। इसके अतिरिक्त आलोचक इस गुणदोषात्मक प्रणाली का अनुसरण करके लेखक या कवि के व्यक्तित्व, उसके युग और युगानुकूल पडे हुए प्रभावो की उपेक्षा कर देता है। आलोचना साहित्य के विकासात्मक स्वरूप को देखते हुए यह स्पष्टत कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग मे समीक्षा का क्षेत्र द्विवेदी युग की अपेक्षा अधिक सकुचित एव सीमित था। इस युग मे नवीन मानदडो को स्वीकार करके रूढिवादिता का विरोध किया गया। द्विवेदी युग के सर्व प्रमुख समीक्षक प० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने सुधारपरक भावना का अपनी गुणदोषात्मक समीक्षा मे समावेश किया। द्विवेदी जी का दृष्टिकोण सुधारवादी एव परिष्कार की भावना से ओतप्रोत था। कृति अथवा कृतिकार के मूल्याकन के साथ इनकी दृष्टि भाषा के विविध रूपो पर और विशेषत भाषा की व्याकरणिक शुद्धता पर विशेष रूप से केन्द्रित रहती थी। द्विवेदी जी ने निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक समीक्षा के साथ तुलनात्मक समीक्षा पद्धति का भी प्रयोग किया है, परन्तु उनका स्थान शास्त्रीय समीक्षको मे है। इनकी आलोच्य कृति की शैली कही-कही पर अतिशय व्यग्यात्मक हो जाती है। प० महावीर प्रसाद द्विवेदी की आलोच्य कृतियो मे 'रसज्ञ रजन' और 'आलोचनाजलि' सैद्धान्तिक समीक्षा, 'हिन्दी नवरत्न' व्यावहारिक समीक्षा से सम्बन्धित रचनाए है। परन्तु 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' और 'कालिदास की निरकुशता' अत्यधिक विवादास्पद है और उनमे परिचयात्मक व्याख्या की गयी है। नयी कविता और नवीन गद्य साहित्य की आलोचना से सम्बन्धित रचनाओ में श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने इस आलोचना प्रणाली का परिचय दिया है। द्विवेदी जी का मन्तव्य है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य मे गद्य और पद्य की विभिन्न विधाओ के क्षेत्र मे अस्पष्टता, आडम्बरपूणता, दुरूहता एव उच्छृखलता के जो तत्व विद्यमान मिलते है वे साहित्य के विकास की भावी दिशा को प्रशस्त न करके उसकी स्वस्थ विकास की सम्भावनाओ को रुद्ध करते हैं।

[३] **तुलनात्मक समीक्षा** : ऐतिहासिक दृष्टिकोण से तुलनात्मक समीक्षा पद्धति का सूत्रपात उन्नीसवी शताब्दी से माना जाता है। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य किसी रूप या शैली पर विशेष साहित्यिक प्रभावो की खोज करना है। इसके अतिरिक्त विषय विशेष मे निहित तत्वो की तुलना उन्ही के समानान्तर विषयो मे निहित तत्वो से करके किसी निर्णय का आरोपण करना भी इस प्रणाली के अन्तर्गत रखा जा

सकता है । हिन्दी साहित्य कोश मे तुलनात्मक समीक्षा को इस तरह प्रस्तुत किया गया है—'तुलनात्मक आलोचना मे साहित्य अभिव्यजना का साधन मात्र ही नही, मनुष्य के भावो और विचारो का प्रतिबिम्ब या प्रतीक है, वह सामाजिक चेतना का दर्पण है ।'[1] इससे स्पष्ट होता है कि तुलनात्मक समीक्षा प्रवृत्ति का अत्यधिक महत्व है और आधुनिक युग मे इसका प्रचार एव प्रसार अत्यधिक प्रचलित है । यह तुलना एक कवि की विभिन्न कृतियो पर विषय के पारस्परिक रूप मे अथवा भाषा की दृष्टि से हो सकती है । वस्तुत तुलना विषय, भाव, भाषा, शैली आदि सभी दृष्टियो से होती है । द्विवेदी युग मे तुलनात्मक समीक्षा प्रवृत्ति से प्रभावित 'आलोचनाजलि' मे अश्वघोष कृत 'सौन्दरनन्द' की तुलना कालिदास से, छन्नूमल द्विवेदी का 'कालिदास और शेक्सपीयर', द्विजेन्द्रलाल का बगला भाषा मे 'कालिदास और भवभूति' के अतिरिक्त हिन्दी मे देव और बिहारी की तुलनात्मक विवेचना आदि है । आधुनिक समीक्षा साहित्य की तुलनात्मक प्रणाली मे विशिष्ट स्थान रखने वाले लेखको एव उनकी कृतियो मे जो नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है उनमे मिश्रबन्धुओ की 'हिन्दी नवरत्न', प० पद्मसिंह शर्मा जी की 'पद्मपराग' निबन्ध सग्रह तथा 'बिहारी सतसई' की विस्तृत भूमिका, प० कृष्णबिहारी मिश्र की 'देव और बिहारी' तथा 'मतिराम ग्रन्थावली' की भूमिका, लाला भगवानदीन की 'बिहारी और देव' के अतिरिक्त 'अलकार मजूषा', 'व्यग्यार्थ मजूषा', 'बिहारी बोधिनी', 'कवितावली', 'दीपावली', 'केशव कौमुदी', 'सूरपचरत्न' आदि अनेक कृतियाँ तथा शचीरानी गुर्टू की 'साहित्य दर्शन' आदि अनेक हैं । श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने छायावादी कवियो तथा अनेक उपन्यासकारो से सम्बन्धित रचनाओ मे इसका प्रयोग किया है । छायावाद के कवियो मे प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी तथा गद्यकारो मे प्रेमचन्द, रवीन्द्रनाथ, शरद् तथा टाल्स्टाय आदि का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए लेखक ने इस आलोचना प्रणाली का प्रयोग किया है ।

[४] **शास्त्रीय समीक्षा** . भारत मे ही क्या विश्व के साहित्य मे समीक्षा के विविध रूपो मे सर्वाधिक प्राचीन रूप शास्त्रीय समीक्षा का ही माना जाता है । सस्कृत साहित्य मे श्रव्य काव्य, दृश्य काव्य, महाकाव्य, खड काव्य, रस निरूपण, गद्य, पद्य, चम्पू, नायक, नायिका, नाट्य आदि के सम्बन्धो मे जो नियम निर्धारित किये गये, उन्ही के अनुसार साहित्य की समीक्षा की जाती है । वस्तुत जब साहित्यिक रूप मे लोक रुचि का स्थायीत्व हो जाता है तभी रचनाओ का विश्लेषण करके सिद्धान्त और नियम स्थापित किये जाते हैं ।[2] शास्त्रीय समीक्षा के अन्तर्गत प्राचीन शास्त्रीय और परम्परागत सिद्धान्तो के आधार पर समीक्षा प्रस्तुत की जाती है । आधुनिक हिन्दी

---

१. 'हिन्दी साहित्य कोश', प्रधान सपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ११४ ।
२ वही, पृ० १२१ ।

रीति शास्त्र मे सस्कृत साहित्य शास्त्र के सिद्धान्तो एव मान्यताओ का अनुकरण एव अनुमोदन किया गया और उसी के आधार पर ही समीक्षा की शास्त्रीय प्रवृत्ति क्रियान्वित हुई। आधुनिक हिन्दी साहित्य मे शास्त्रीय समीक्षा का प्रारम्भ रीति काल के साहित्य शास्त्र के अनुगमन से हुआ था अतएव हिन्दी की प्रारम्भिक रचनाए उन्ही सैद्धान्तिक निरूपण की परम्परा से अभिहित है। आधुनिक हिन्दी समीक्षा साहित्य मे शास्त्रीय प्रवृत्ति के अनुकरणकर्ताओ और उनकी कृतियो मे निम्नलिखित मुख्य है कविराजा मुरारिदान लिखित 'जसवन्त भूषण' (स० १९५०), महाराजा प्रतापनारायण सिंह का 'रस कुसुमाकर', श्री कन्हैयालाल पोद्दार के 'काव्य कल्पद्रुम' के दो भाग—'रस मजरी' और 'अलकार मजरी', श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' के शास्त्रीय ग्रन्थ 'हिन्दी काव्यालकार', 'अलकार प्रश्नोत्तरी', 'रस रत्नाकर', 'नायिका भेद शब्दावली', 'छन्द प्रभाकर', और 'काव्य प्रभाकर' आदि, लाला भगवानदीन का 'अलकार मजूषा', डा० राम शकर शुक्ल 'रसाल' का 'अलकार पीयूष', श्री सीताराम शास्त्री का 'साहित्य सिद्धान्त' (स० १९८०), श्री अर्जुनदास केडिया का 'भारती भूषण', प० अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'रस कलस', श्री बिहारीलाल भट्ट का 'साहित्य सागर', मिश्रबन्धुओ का 'मिश्रबन्धु विनोद' और 'हिन्दी नवरत्न', डा० श्यामसुन्दर दास की कृतियाँ 'राधाकृष्ण ग्रन्थावली', 'हिन्दी निबन्धमाला', 'चन्द्रावती' अथवा 'नासिकेतोपाख्यान', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'हिन्दी कोविद ग्रन्थमाला', 'रूपक रहस्य', 'साहित्यालोचन', तथा 'हिन्दी भाषा और साहित्य', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समीक्षात्मक ग्रन्थो मे 'चिन्तामणि' (दो भाग), 'रस मीमासा', 'जायसी ग्रन्थावली', 'भ्रमरगीत सार' तथा 'गोस्वामी तुलसीदास', डा० गुलाब राय की शास्त्रीय आलोचनात्मक कृतियाँ 'नवरस', 'सिद्धान्त और अध्ययन', 'काव्य के रूप', 'हिन्दी काव्य विमर्श', तथा 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास', प० सीताराम चतुर्वेदी कृत 'समीक्षा शास्त्र', श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधाशु' लिखित 'काव्य मे अभिव्यजनावाद' (सवत् १९९३) और 'जीवन के तत्व तथा काव्य के सिद्धान्त' (सन् १९४२), डा० हाजारी प्रसाद द्विवेदी की समीक्षात्मक कृतियो मे 'सूर साहित्य' (१९३४), 'सूर और उनका काव्य' (१९४४), 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (१९४०), 'कबीर' (१९४१), 'नखदर्पण मे हिन्दी कविता' (१९४१), 'विचार और तर्क' (१९४५), 'अशोक के फूल' (१९४८), 'हमारी साहित्यिक समस्याए', 'कल्पलता' (१९५०), 'साहित्य का मर्म' (१९५०), 'साहित्य का साथी' (१९४), 'हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास' (१९५२), 'आधुनिक साहित्य पर विचार' (१९५५), 'मध्यकालीन धर्म साधना' (१९५२) आदि, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की 'भूषण ग्रन्थावली', 'कवितावली', 'सुदामा चरित' और 'हमीर हठ' की भूमिका लिखकर उसका प्रकाशन तथा स्वतत्र समीक्षात्मक कृतियो मे 'बिहारी की वाग्विभूति', 'वाड्मय विमर्श' (सवत् १९९९), 'बिहारी' (स० २००७), 'सम-

सामयिक साहित्य' (स० २००८) तथा 'भूषण' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जहाँ तक श्री शातिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य मे शास्त्रीय दृष्टिकोण के समावेश का सम्बन्ध है उन्होने अधिकाशत भक्ति काव्य के मूल्याकन के सन्दर्भ मे ही इसका परिचय दिया है। 'ज्योति विहग' मे भी नवीन दृष्टिकोण के समावेश के साथ शास्त्रीय आधारभूमि पर श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने पन्त काव्य का मूल्याकन किया है।

[५] **छायावादी समीक्षा** आधुनिक हिन्दी समीक्षा के अन्तर्गत छायावादी समीक्षा की प्रवृत्ति प्रमुखत हिन्दी कविता मे छायावादी आन्दोलन की देन है जो बीसवी शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश मे काव्य के क्षेत्र मे अपनी नवीन शैलियो से आप्लावित और नवीन उपलब्धियो से युक्त है। इस आन्दोलन का प्रादुर्भाव द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियो के विरुद्ध एक प्रतिक्रियात्मक रूप मे हुआ था। छायावादी काव्य साहित्य मे पाश्चात्य काव्य शैलियो का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता हे। छायावादी आन्दोलनकर्त्ता तथा इसका अनुगमन करने वाले विभिन्न विचारको एव कवियो ने भी अपनी कुछ समीक्षात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की हे जो वस्तुत इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत मानी जाती है। छायावादी समीक्षको की रचनाओ मे अभिहित विशिष्टताओ को उनकी कृतियो के उल्लेख के साथ ही स्पष्ट किया जा रहा हे। आधुनिक छायावादी आन्दोलन के प्रवर्तक जयशकर 'प्रसाद' जी की समीक्षात्मक कृति 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' है। इसमे प्रसाद जी ने काव्य कला, रस, अलकार, रहस्यवाद, छायावाद और यथार्थवाद आदि विषयो पर विचारात्मक निबन्धो को सगृहीत किया है। इसमे काव्य के आभ्यान्तरिक तत्व रस का सूक्ष्मता से विवेचन हुआ है तथा विविध मन्तव्यो को भी स्पष्ट किया गया है। श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी छायावादी प्रवृत्ति के चार प्रमुख स्तम्भो मे से एक है। वे कवि के साथ ही एक जागरूक समीक्षक की दृष्टि से भी विशिष्टता रखते है। 'प्रबन्ध प्रतिभा' और 'चाबुक' कृतियो मे उनके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचनात्मक विचारो का स्पष्टीकरण है। श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी ने अपनी अधिकाश कृतियो मे भूमिका के रूप मे अपनी वैचारिक मान्यताओ को स्पष्ट किया है। उन्होने काव्य की भाषा के स्वरूप, छायावाद के स्वरूप और उसके असामयिक अन्त आदि विषयो पर अपने विविध विचारो को स्पष्ट किया है। श्रीमती महादेवी वर्मा की वैचारिक उपलब्धियो के कारण छायावाद के चार प्रमुख स्तम्भो में उनका भी विशिष्ट स्थान है। उन्होने 'आधुनिक कवि' भाग (१), 'क्षणदा', 'पथ के साथी', 'अतीत के चल चित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'दीपशिखा' तथा 'यामा' आदि कृतियो में युग जीवन तथा साहित्य से सम्बन्धित अपने दृष्टिकोण को उल्लिखित किया है। अन्य छायावदी विचारको के सदृश्य ही श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी मे भावनात्मकता की ही प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगोचर होती है। उनकी कृतियो मे 'ज्योति विहग', 'सामयिकी', 'कवि और काव्य', 'युग और साहित्य' आदि

अनेक समीक्षात्मक रचनाए है जिनमे लेखक ने समकालीन काव्य प्रवृत्तियो के समीक्षात्मक चिन्तन के अतिरिक्त काव्य तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास और साहित्य की विविध विधाओ पर अपने विचारो का स्पष्टीकरण किया है। इनकी कृतियो मे समीक्षात्मक चिन्तन के साथ कवि सुलभ भावुकता भी दृष्टिगोचर होती है। श्री गगाप्रसाद पान्डेय जी ने छायावादी काव्य प्रवृत्ति के विषय मे अपनी समीक्षात्मक चिन्तन प्रणाली का परिचय दिया है। छायावादी विशेषताओ को स्वीकार करने के साथ ही उनकी समीक्षा कही-कही पर तुलनात्मक प्रवृत्ति को भी स्पर्श करने लगती है। व्यावहारिक समीक्षा मे उनके दृष्टिकोण की व्यापकता परिलक्षित होती है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद के विचारको की समीक्षात्मक उपलब्धियो मे एक विशिष्ट शैली के रूप मे अभिव्यक्तिगत स्पष्टीकरण है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य मे छायावादी दृष्टिकोण का समावेश मुख्यत 'ज्योति विहग' नामक रचना मे हुआ है जो इस दृष्टि से उनकी सर्वप्रतिनिधि कृति कहा जा सकती है। पन्त काव्य की आलोचना के सन्दर्भ में लेखक ने छायावादी विचार दृष्टि का भी विस्तृत विश्लेषण किया है।

[६] **प्रगतिवादी समीक्षा** छायावाद के परवर्ती काल से, लगभग १९३० से, साहित्य मे प्रगतिवाद का प्रादुर्भाव माना जाता है। हिन्दी साहित्य मे इसके स्वरूप की अनेक समीक्षात्मक उपलब्धिया प्राप्त हैं। हिन्दी मे प्रगतिवादी आन्दोलन का प्रारम्भ विदेशी साहित्य के प्रभाव और यथार्थवादी प्रवृत्ति के समन्वय से हुआ तथा इसकी विचारधारा का निर्धारण मार्क्सवादी जीवन दर्शन से ओतप्रोत है। यद्यपि यह राजनीतिकवाद है परन्तु द्वितीय महायुद्ध के पूर्व ही यह साहित्यिक क्षेत्र मे प्रवेश कर चुका था एव इसका विकास अत्यन्त तीव्रता से हुआ। प्रगतिवादी विचारधारा ने साहित्य की दोनो विधाओ पद्य और गद्य को आप्लावित किया तथा विभिन्न गद्यकारो से इसे समर्थन प्राप्त हुआ। प्रगतिवादी प्रवृत्ति के अन्तर्गत अपना प्रमुख स्थान रखने वाले समीक्षकों मे मुख्यत निम्न है। इसके साथ ही यहाँ पर इनके दृष्टिकोण का भी सक्षेप मे विवेचन प्रस्तुत है। प्रगतिवादी समीक्षको मे अपना प्रमुख स्थान रखने वालो मे राहुल सास्कृत्यायन का एक विशिष्ट स्थान है। इनकी 'हिन्दी काव्य धारा', 'दक्खिनी काव्य धारा' तथा 'साहित्य निबन्धावली' आदि समीक्षात्मक कृतियो के अतिरिक्त बहुत सी कृतियो की भूमिका मे समीक्षात्मक रूप दृष्टिगोचर होता है। इनकी विचारधारा राजनीति से प्रभावित है तथा साहित्य मे समाज और राजनीति की विभिन्न समस्याओ का पर्यावेक्षण प्रस्तुत किया गया है। प्रगतिवादी आन्दोलन के समर्थको मे श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त के विचारो का स्पष्टीकरण उनके स्फुट निबन्धो मे मिलता है। 'आधुनिक हिन्दी साहित्य एक दृष्टि' तथा 'नया हिन्दी साहित्य एक दृष्टि' समीक्षात्मक कृतियो के अन्तर्गत सघर्ष को मानव की अनिवार्यता मानते हुए इनमे कला और साहित्य की धारणाओ को स्पष्ट

किया है। डा० रामविलास शर्मा ने अपने निबन्धो मे मार्क्सवाद और प्राचीन साहित्य के मूल्याकन के साथ ही एक व्यापक जीवन दर्शन को प्रस्तुत किया है। श्री शिवदान सिह चौहान ने कला और साहित्य से सम्बन्धित अनेक समस्याओ पर गम्भीरतापूर्वक विचारो का विश्लेषण एव उनके निराकरण हेतु सम्भावनाओ को प्रस्तुत किया है। आपने प्रगतिवाद पर अपने विचारो का स्पष्टीकरण किया है। श्री मन्मथनाथ गुप्त जी के विचारात्मक निबन्धो का सग्रह 'प्रगतिवाद की रूपरेखा' है, जिसमे उन्होने प्रगतिशीलता के विरुद्ध उठाए गए तर्कों का खडन कर उसका यथार्थ मूल्याकन किया है। डा० रागेय राघव के प्रगतिशीलता से ओत-प्रोत विचारो का सग्रह इनकी पुस्तक 'प्रगतिशील साहित्य के मानदड' के निबन्धो मे परिलक्षित होता है। श्री रामेश्वर शर्मा ने 'राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य' निबन्ध सग्रह मे प्रगतिवाद के स्वरूप का विश्लेषण एव उससे सम्बन्धित विचारो का निरूपण प्रस्तुत किया है। परन्तु इन प्रगतिवादी विचारको एव समीक्षको के दृष्टिकोणो का अगर सूक्ष्मता से विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट होगा कि उनमे परस्पर वैचारिक विभिन्नता है और प्रत्येक का अपना अलग स्वतत्र दृष्टिकोण है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य मे प्रगतिवादी तत्वो का समावेश 'ज्योति विहग', 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' तथा 'कवि और काव्य' मे स्पष्टत विद्यमान है जिसका आधार गाधीवाद और मानव वादी विचारधारा है।

[७] **व्यक्तिवादी समीक्षा** . आधुनिक हिन्दी साहित्य मे काव्य के क्षेत्र मे व्यक्तिवाद का पर्याय ही प्रयोगवाद है तथा इसका समावेश साहित्य की दोनो विधाओ गद्य और पद्य मे हुआ। हिन्दी साहित्य की अन्य प्रवृत्तियो के सदृश्य ही व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के स्वरूप को अनेक विचारको एव समीक्षको ने विश्लेषित किया तथा काव्य क्षेत्र मे प्रयोगशील भावना की स्वाभाविकता की ओर सकेत किया। स्पष्टत व्यक्तिवादी प्रवृत्ति प्रगतिवाद की विरोधी प्रवृत्ति है तथा व्यक्तिवादी आन्दोलन प्रगतिवाद के ही विरोध मे हुआ। हिन्दी मे व्यक्तिवादी समीक्षात्मक प्रवृत्ति का सकेत तो बहुत पहले से मिलता है लेकिन अपने सगठित और सुनियोजित रूप मे सन् १९२० ई० मे यह समाविष्ट हुई। इस प्रवृत्ति ने काव्य एव चिन्तन के क्षेत्र मे पदार्पण कर अन्य गद्य साहित्यागो को भी आकर्षित किया। प्रयोगवादी अथवा व्यक्तिवादी प्रवृत्ति साहित्य के रचनात्मक क्षेत्र मे वैयक्तिक अनुभूतियो की अनुमोदिनी है। फलत प्रगतिवादी विचारधारा के विपरीत है। व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख ग्रन्थो मे श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का 'त्रिशकु' निबन्ध सग्रह है। इसके अतिरिक्त अनेक कृतियो की भूमिकाएँ एव स्फुट रचनाएँ भी हैं। हिन्दी समीक्षको मे इस प्रवृत्ति को प्रश्रय देने वाले समीक्षको मे आपका नाम अग्रगण्य है। 'अज्ञेय' जी ने काव्य के स्वरूप एव लक्ष्य के स्पष्टीकरण मे अनुभूति की व्यापकता पर ही बल दिया है। परन्तु अज्ञेय जी ने इस प्रवृत्ति को

वादो के घेरे मे आबद्ध नही किया है। वह इसके विरोध मे है। समीक्षात्मक विचार-धारा मे आपने नीति तत्व को महत्ता प्रदान की है। आपके विचारानुसार प्रयोग अपने आप मे कोई इष्ट नही, एक साधन मात्र है। प्रयोगो का महत्व उनके द्वारा प्राप्त उपलब्धियो मे है।[1] अज्ञेय जी ने सामाजिक चेतना को मान्यता दी है एव साहित्य का परम्परा, परिस्थिति और युग की सापेक्षता के अन्तर्गत मूल्याकन प्रस्तुत किया है। वह सामूहिक मन के परिवर्तित और विकसित होने मे विश्वास करते है।[2] इसके अतिरिक्त समाजवादी दर्शन एव प्रगतिशील समीक्षा की शब्दावली का भी वह यथासम्भव प्रयोग नही करते है। श्री गिरिजाकुमार माथुर ने भी साहित्य और काव्य के विषय मे अपने दृष्टिकोण एव मान्यताओ का स्पष्टीकरण स्फुट निबन्धो तथा भूमिकाओ के अन्तर्गत किया है। आपने नयी कविता की उपलब्धियो की सम्भावना पर भी अपने विचार प्रकट किये है। आधुनिक युग मे साहित्यकार के दायित्वो और साहित्य की नयी मर्यादा पर विचार विवेचन करने वाले सचेतन साहित्यकार डा० धर्मवीर भारती का नाम भी व्यक्तिवादी समीक्षको के अन्तर्गत ही उल्लिखित होता है। उनकी आलोचनात्मक मान्यताएँ वस्तुत मार्क्सवाद और फ्रायडवाद का समन्वय रूप कहा जा सकता है। वह फ्रास और इग्लैड की प्रयोगवादी मान्यताओ से विशेष प्रभावित थे एव वही के कला समीक्षको को अपना आदर्श रूप मानते थे। श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा जी ने अपनी समीक्षात्मक पुस्तक 'नयी कविता के प्रतिमान' मे आधुनिक हिन्दी काव्य की उपलब्धियो और सम्भावनाओ पर विचार करने के साथ ही प्रयोगशील नई कविता को एक सैद्धान्तिक आधार भूमि भी प्रदान की है। वह सार्त्र, इलियट, अज्ञेय तथा अन्य देशी विदेशी अस्तित्ववादी समीक्षको के विचारो का समर्थन करते थे। डा० जगदीश गुप्त जी प्रगतिवादी मान्यताओ को स्वीकार करते हैं परन्तु उन्होने अर्थ की लय तथा रसानुभूति और सह अनुभूति आदि निबन्धो मे प्रगतिवादी मान्यताओ से विपरीत मान्यताओ की स्थापना की है। उन्होने नयी कविता के क्षेत्र मे अपने दृष्टिकोण एव मान्यताओ को स्पष्ट किया है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य मे व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का परिचय मुख्यत 'ज्योति विहग' मे मिलता है जिसमे अन्तिम लेख 'लोकायतन' शीर्षक के अन्तर्गत उन्होने वैयक्तिक विचार दर्शन प्रधान चेतना का निरूपण करते हुए अपने मन्तव्यो की पुष्टि की है।

[८] **मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा :** आधुनिक युग मे यूरोपीय मनोविश्लेषणवादी आन्दोलन का प्रभाव हिन्दी समीक्षा साहित्य पर अधिक विशद रूप मे दृष्टिगोचर होता है। यह प्रशस्त प्रभाव हिन्दी साहित्य के किसी एक अग विशेष पर

---

१ 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास', डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० ८४९-८५०।

२. 'त्रिशकु', श्री स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय', पृ० ३४।

न पड कर गद्य और पद्य के सभी रूपो मे परिव्याप्त है। हिन्दी साहित्य के अनेक कवियो एव समीक्षको—प० रामचद्र शुक्ल, श्री जैनेन्द्र, डा० नगेन्द्र, श्री अज्ञेय, डा० देवराज, श्री इलाचन्द जोशी आदि—ने इसके विकास मे अपना योगदान दिया। मनो-विश्लेषणवादी समीक्षा को दूसरे शब्दो मे फ्रायडवादी भी कहा जा सकता है। डा० फ्रायड ने चेतन और अचेतन मन की व्याख्या करते हुए उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। मानव के विविध कार्य उसके चेतन अथवा अचेतन मन से सदैव ही प्रभावित होते है। इसके अतिरिक्त डा० एल्फ्रेड एडलर तथा युग की मान्यताएँ भी इस समीक्षा पद्धति मे दृष्टिगोचर होती है। एडलर के मतानुसार व्यक्ति मे अपने प्रारम्भिक युग से ही शक्ति प्रदर्शन की भावना अन्तर्निहित है जिसे 'लिबिडो' की आख्या दी है। मनुष्य की दूसरी मूलभूत भावना 'उच्चता की ग्रन्थि' है। परन्तु युग ने फ्रायड की काम भावना और एडलर की शक्ति प्रदर्शन की भावना के अपूर्व सयोग के आधार पर समन्वयवादी दृष्टिकोण को स्वीकार किया है। उपरोक्त लिखित मनोविश्लेषणात्मक समीक्षको मे प्रमुखत जैनेन्द्र कुमार और इलाचन्द जोशी जी ने इस क्षेत्र मे अपना विशेष योगदान दिया है। अन्य समीक्षको की साहित्यिक मान्यताओ मे यत्र तत्र मनोविश्लेपणवाद के दर्शन होते है। मनोविश्लेषणात्मक चिन्तको मे श्री जैनेन्द्र का नास प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। इनकी क्रियात्मक तथा समीक्षात्मक कृतियो मे उनकी विचारधारा एव मान्यताएँ उपलब्ध होती है। जैनेन्द्र गाधीवादी विचारधारा से प्रभावित थे तथा उन्होने सर्वोदय की व्याख्या की है जो आध्यात्मिक प्रधानता लिए हुए है। उन्होने जीवन की विशुद्ध मानवीय प्रवृत्तियो को स्वीकार किया है। हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक समीक्षक श्री इलाचन्द्र जोशी का क्रियात्मक साहित्य के अतिरिक्त मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण स्थान है। उनके वैचारिक सग्रहो मे 'साहित्य सर्जना', 'विश्लेषण', 'विवेचना', 'साहित्य चिन्तन' तथा 'देखा परखा' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। श्री जोशी जी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य मे मनोविज्ञान के विविध तत्वो एव उनके समावेश के विविध रूपो का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त आपने काव्य के क्षेत्र मे छायावादी आन्दोलन एव छायावाद की प्रवृत्ति पर अपने विचारो को प्रस्तुत किया है। जोशी जी ने नीति और उपयोगितावाद से अलग होते हुए भी युग यथार्थ को स्वीकार किया है। जोशी जी के मनोवैज्ञानिक यथार्थ मे व्यक्तिगत अहवाद, अश्लीलता, कुत्सित वासना तथा समाज विरोधी अस्वस्थ मनोविकार को स्थान नही मिला है। वे कला की उच्चता के पक्ष मे है। मार्क्सवाद और मनोविज्ञान को वे एक दूसरे का पूरक मानते हैं। इन दोनो के समन्वय से ही व्यक्ति और समाज का विकास सम्भव है।[1] आधुनिक युग मे हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे मनोविश्लेषणात्मक

१. 'आधुनिक हिन्दी आलोचना . एक अध्ययन', डा० मक्खनलाल शर्मा, पृ० ३७५।

सिद्धान्तो का समावेश अधिकाधिक बढता ही जा रहा है। द्विवेदी जी के आलोचना साहित्य मे मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का भी समावेश मिलता है। आगे द्विवेदी जी की आलोचना कृतियो मे निहित इस दृष्टिकोण का सम्यक् विवेचन पृथक् से प्रस्तुत किया जायेगा।

[९] **व्याख्यात्मक समीक्षा** व्याख्यात्मक आलोचना की प्रवृत्ति का आविर्भाव जर्मनी के विचारको के कारण हुआ जिन्होने कला की विशेष और सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत की। इस प्रवृत्ति मे साहित्यिक दृष्टिकोण मे वैयक्तिकता या सामाजिकता का कट्टर आग्रह नही होता तथा प्राचीन सिद्धान्तो की मान्यता आवश्यक है। परन्तु धीरे-धीरे इसमे नवीन सिद्धान्तो एव विचार प्रणालियो को मान्यता प्राप्त हुई तथा शास्त्रीय नियमो की प्रधानता को आघात पहुँचा। स्वाभाविकता की ओर लोगो का ध्यान इतना आकृष्ट होता गया कि शास्त्रीय नियमो के प्रति विचारको एव समीक्षको की श्रद्धा न रह गयी। वस्तुत व्याख्यात्मक आलोचना नियमो के बन्धनो से मुक्ति और साहित्यिक कृतियो की बन्धन रहित व्याख्या का प्रयास है।[१] व्याख्यात्मक आलोचना का मूल सिद्धान्त उसका निरपेक्ष मानदड स्थापित करना है। आधुनिक हिन्दी समीक्षा मे व्याख्यात्मक प्रवृत्ति का विकास भारतेन्दु युग से माना जाता है जो उस समय के टीका ग्रन्थो से सापेक्ष्य रखता है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत लिखी पुस्तको मे विविध प्राचीन ग्रन्थो की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। परन्तु आधुनिक युग मे इस प्रवृत्ति के स्वरूप मे परिवर्तन हुआ और दृष्टिकोण मे व्यापकता लक्षित होने लगी। इसमे नवीन सिद्धान्तो एव विचार प्रणालियो का समावेश हुआ। व्याख्यात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति के अन्तर्गत प्रो० ललिता प्रसाद सुकुल की कृतियाँ 'काव्य चर्चा' और 'साहित्य जिज्ञासा', श्री परशुराम चतुर्वेदी की समीक्षात्मक कृतिया 'मीराबाई की पदावली', 'सूफी काव्य सग्रह', 'हिन्दी काव्य धारा मे प्रेम भावना का विकास', 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा', 'सन्त काव्य', 'मध्य कालीन प्रेम साधना', 'मानस की राम कथा' तथा 'नव निबन्ध', श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की कृतियाँ 'विश्व साहित्य', 'हिन्दी साहित्य', 'विमर्श प्रदीप', 'हिन्दी कथा साहित्य' आदि, डा० सत्येन्द्र की समीक्षात्मक कृतियाँ 'साहित्य की झाकी', 'गुप्त जी की काव्य कला', 'हिन्दी एकाकी', 'प्रेमचन्द और उनकी कला', 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन', 'कला, कल्पना और साहित्य' तथा 'हिन्दी साहित्य मे आधुनिक प्रवृत्तियाँ' आदि, श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' की रचनाएँ 'प्रसाद की नाट्यकला', 'आलोचना समुच्चय', 'शिलीमुखी', 'कला और सौन्दर्य' तथा 'निबन्ध प्रबन्ध' आदि के साथ ही श्री प्रभाकर माचवे का भी नाम उल्लेखनीय है जिन्होने प० रामचन्द्र शुक्ल के मूल्याकन का परीक्षण एव विश्लेषण प्रस्तुत किया है तथा

१ 'हिन्दी साहित्य कोश', प्रधान सपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ११९।

शुक्ल जी के महत्व का दिग्दर्शन किया है। हिन्दी मे व्याख्यात्मक आलोचना के प्रणेता प० रामचन्द्र शुक्ल जी ने तुलसी, सूर और जायसी पर इतिहास, समाज, धर्म, सामान्य जीवन आदि को दृष्टिगत कर आलोचनाएँ लिखी। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के साहित्य मे व्याख्यात्मक आलोचना का स्वरूप 'कवि और काव्य', 'हमारे साहित्य निर्माता' तथा 'ज्योति विहग' नामक कृतियो मे दृष्टिगत होता है।

[१०] **समन्वयात्मक समीक्षा** हिन्दी साहित्य मे समीक्षा की समन्वयात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत पाश्चात्य तथा भारतीय समीक्षा शास्त्र के मुख्य सिद्धान्तो के समन्वय के आधार पर समीक्षा का प्रस्तुतीकरण हुआ है। वस्तुत समीक्षा की इस प्रवृत्ति मे प्राचीन तथा नवीन दृष्टियो से सर्वागीण अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है। पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप आधुनिक हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग से सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक समीक्षा का आगमन दृष्टिगोचर होने लगा था। डा० श्याम सुन्दर दास और प० रामचन्द्र शुक्ल आदि समीक्षको की रचनाओ मे प्राचीन भारतीय सस्कृत साहित्य शास्त्र की विकसित विचार धाराओ के सैद्धान्तिक विश्लेषण के साथ पाश्चात्य समीक्षा मे हुए वैचारिक आन्दोलनो की भी अवगति हुई। प्राय उसी समय से हिन्दी मे समन्वयात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। समन्वयात्मक समीक्षा प्रवृत्ति के गण्यमान समीक्षको मे डा० विनय मोहन शर्मा की कृतियाँ 'कवि प्रसाद आसू तथा अन्य कृतियाँ', 'दृष्टिकोण', 'साहित्यावलोकन' तथा 'साहित्य शोध समीक्षा', श्री नन्द दुलारे वाजपेयी की 'आधुनिक साहित्य', 'हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी', 'नया साहित्य नये प्रश्न' तथा 'जयशकर प्रसाद' आदि कृतियाँ, डा० नगेन्द्र की समीक्षा कृतियाँ 'सुमित्रानन्दन पन्त', 'साकेत एक अध्ययन', 'आधुनिक हिन्दी नाटक', 'विचार और अनुभूति', विचार और विवेचना', 'रीति काव्य की भूमिका', 'देव और उनकी कविता', 'आधुनिक कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ' तथा 'विचार और विश्लेषण' आदि, डा० देवराज की समीक्षा कृतियाँ 'छायावाद का पतन', 'साहित्य चिन्ता', 'आधुनिक समीक्षा : कुछ समस्याएँ', 'साहित्य और सस्कृति' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार से आधुनिक हिन्दी आलोचना की ऐतिहासिक, सुधारपरक, तुलनात्मक, शास्त्रीय, छायावादी, प्रगतिवादी, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक तथा समन्वयात्मक प्रणालियो का प्रयोग श्री शातिप्रिय दिवेदी के आलोचना साहित्य मे मिलता है। यह तथ्य एक ओर इस विधा के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की दृष्टिकोणगत जागरूकता का द्योतक है और दूसरी ओर इसकी गम्भीरता और गहनता के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा का भी परिचायक है।

द्विवेदी जी की आलोचना पद्धति का परिचय एव वर्गीकरण

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य मे मुख्य रूप से ऐतिहासिक, शास्त्रीय, तुलनात्मक, छायावादी तथा प्रगतिवादी आलोचना प्रवृत्तियो का समावेश

मिलता है। ऐतिहासिक आलोचना के अन्तर्गत लेखक ने मुख्य रूप से आधुनिक हिन्दी काव्य का उसकी विकासात्मक पृष्ठभूमि मे मूल्याकन किया है। शास्त्रीय समीक्षा के अन्तर्गत लेखक ने काव्य मे परम्परागत रूप से मान्य उपकरणो का अनुमोदन किया है जिनमे रस अलकार आदि प्रमुख है। तुलनात्मक आलोचना मे लेखक ने विशेष रूप से प्रसाद, पन्त, निराला तथा महादेवी आदि कवियो का तुलनात्मक मूल्याकन किया है। प्रेमचन्द और शरद, शरद और महात्मा गाधी तथा रवीन्द्र आदि के विचारो की भी व्याख्यात्मक आलोचना लेखक ने तुलनात्मक दृष्टिकोण से की है। छायावादी समीक्षा पद्धति का जो स्वरूप द्विवेदी जी के साहित्य मे मिलता है वह प्राय भावनापरक है और समकालीन काव्य चेतना पर भी गौरव देता है। इसी प्रकार से प्रगतिवादी आलोचना पद्धति के अन्तर्गत लेखक ने यथार्थपरक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए समकालीन साहित्य पर समीक्षात्मक विचार व्यक्त किये हैं। यहाँ पर सक्षेप मे शातिप्रिय द्विवेदी के साहित्य मे उपलब्ध उपर्युक्त सभी समीक्षा पद्धतियो का सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

द्विवेदी जी और ऐतिहासिक आलोचना पद्धति श्री शातिप्रिय द्विवेदी की आलोचनात्मक कृतियो मे जो विभिन्न पद्धतियाँ दृष्टिगत होती है उनमे ऐतिहासिक आलोचना प्रणाली भी एक है। यह आलोचना पद्धति सामान्य रूप से आलोच्य विषय का विवेचन उसकी परम्परा और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे करती है। यह इस तथ्य का भी परिचय देती है कि विभिन्न युगो मे जो साहित्यिक विधाएँ विकासशील रहती हैं वे अपनी समकालीन विचारधारा से भी प्रभावित होती हैं। द्विवेदी जी के साहित्य मे अनेक स्थलो पर यह पद्धति स्पष्टत लक्षित की जा सकती है। उदाहरण के लिए 'ज्योति विहग' नामक ग्रन्थ मे 'हिन्दी कविता का क्रम विकास' शीर्षक के अन्तर्गत उन्होने हिन्दी काव्य के स्वरूपात्मक विकास का जो विवेचन किया है वह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे ही है। इसमे लेखक ने सर्वप्रथम हिन्दी कविता की खडी बोली पूर्व परम्परा मे ब्रजभाषा काव्य की उस धारा का सक्षिप्त परिचय दिया है जो उन्नीसवी शताब्दी तक अखड रूप से प्रवाहमान रही। द्विवेदी जी का यह मत है कि आधुनिक युग मे औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप जो भाषा क्षेत्रीय रस विक्षेप हुआ है उसी की प्रतिक्रिया के रूप मे खडी बोली का आविर्भाव और विकास हुआ है। बीसवी शताब्दी मे खडी बोली के आविर्भाव का एक कारण ब्रजभाषा मे शृगारिक भावो का अतिरेक भी है। द्विवेदी युग मे स्वय पडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती मे अनेक व्यग्यचित्र प्रस्तुत किये जिनमे ब्रजभाषा की शृगारपरक रचनाओ की आलोचना की गयी है। लगभग इसी काल मे खडी बोली के कतिपय प्रतिनिधि कवियो का एक सग्रह 'कविता कलाप' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था जिसमे राय देवीप्रसाद पूर्ण, प० नाथूराम शर्मा शकर, प० कामता प्रसाद गुरु, बाबू मैथिलीशरण गुप्त तथा प० महावीर प्रसाद द्विवेदी की रचनाएँ सगृहीत है। इसकी भूमिका मे द्विवेदी जी ने जो

मन्तव्य प्रस्तुत किया है वह खडी बोली काव्य के क्षेत्र मे एक ऐसी भविष्यवाणी थी जो कालान्तर मे सत्य हुई। उन्होने यह भी लिखा है कि 'इस पुस्तक मे जितनी भी कविताएँ बोलचाल की भाषा मे हैं उनमे शब्दो का अग भग बहुत कम हुआ है। इस नए ढग की कविताएँ सरस्वती मे प्रकाशित होते देख बहुत लोग अब इनकी नकल अधिकता से करने लगे हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि इस तरह की भाषा और इस तरह के छन्दो मे लिखी गयी कविता दिन पर दिन लोगो को अधिकाधिक पसन्द आने लगी है, अतएव बहुत सम्भव है कि किसी समय हिन्दी के गद्य और पद्य की भाषा एक ही हो जाए।''[1]

श्री शातिप्रिय द्विवेदी की ऐतिहासिक आलोचना का परिचय उन स्थलो पर विशेष रूप से मिलता है, जहाँ उन्होने वर्तमान कविता के स्वरूप विकास की पृष्ठ-भूमि मे उसके परम्परागत रूपो का विवेचन किया है। इसी सन्दर्भ मे उन्होने समकालीन साहित्यिक आन्दोलनो की ओर भी सकेत किया है जो इस रूप निर्धारण मे सहायक हुए। छायावाद युगीन काव्य पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे विचार करते हुए श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने यह मत व्यक्त किया है कि जहाँ एक ओर द्विवेदी युग खडी बोली का स्थापत्य युग था वहाँ दूसरी ओर छायावाद काल को खडी बोली का ललित युग कहा जा सकता है क्योकि इसमे उसका कलात्मक विकास विशेष रूप से हुआ। ऐतिहासिक आलोचना पद्धति के दर्शन उनकी 'सचारिणी' आलोचनात्मक कृति मे भी होते हैं। सचारिणी के आलोचनात्मक लेख 'भक्तिकाल की अन्तश्चेतना' मे लेखक ने भक्ति काल के काव्य की अन्तश्चेतना को प्रशान्त अथवा प्रसादान्त से ओतप्रोत माना है जो पौराणिक भारतीय सस्कृति के सत्यम् शिवम् सुन्दरम् से प्रभावित है। जिस प्रकार सपूर्ण जीवन को चार आश्रमो के मध्य बद्ध कर दिया गया है और उसकी अन्तिम झाकी परम शाति का मार्ग दर्शाती है उसी प्रकार काव्य मे भी विविध रसो की योजना है जो मानव जीवन से पूर्णत सम्बन्धित है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने मध्यकालीन हिन्दी कविता को भावात्मक दृष्टिकोण के स्तर पर आकने का प्रयास किया है। मानव का विश्वसनीय स्वभाव ही काव्य रूप मे अवतरित हो गया है। यही कारण है कि भक्ति काल का काव्य जिसे वैष्णव काव्य भी कहा जाता है, रहस्यवाद से पूर्ण है। रहस्यवाद की दो कोटियाॅ है पार्थिव और अपार्थिव। सगुणोपासक कवि पार्थिव रहस्यवादी है, दूसरे शब्दो मे वे छायावादी है। उन्हे सृष्टि के कण-कण, तृण-तृण, से अनुराग है। इसका कारण उन्हे सृष्टि मे अन्तश्चेतना की अनुरागिनी छाया मिलना है। अतएव सगुण रहस्यवाद मे प्रेम और भक्ति है। अपार्थिव रहस्यवाद मे सन्तो की वाणी है जिन्होने केवल अलौकिकता को अपनाया है। उसे ही वह सत्य मानते है तथा उन्होने केवल भगवद्भक्ति की है। अतएव वे

---

१. 'सरस्वती', प० महावीर प्रसाद द्विवेदी, २ फरवरी, सन् १९०९।

निर्गुण रहस्यवाद के अन्तर्गत आते है। उपरोक्त तथ्यो के फलस्वरूप सगुणोपासको का काव्य कर्म से प्रभावित है तथा निर्गुणोपासको का काव्य ज्ञान से। सगुणोपासक काव्य के अन्तर्गत कृष्ण काव्य मानव जीवन का भावयोग है परन्तु राम काव्य कर्म, ज्ञान और भाव योग का सम्मिश्रण है। ज्ञानयोग, कर्म योग तथा भावयोग ही क्रमशः सत्यम् सुन्दरम् के प्रतिरूप हैं।

'छायावाद का उत्कर्ष' समीक्षात्मक लेख मे भी श्री द्विवेदी जी के विचार ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे अवलोकित होते हैं। श्री द्विवेदी जी ने प्रस्तुत लेख मे छायावाद के पूर्व के साहित्यिक वातावरण को चित्रित करते हुए छायावाद की अवधारणा पर दृष्टिपात किया है। द्विवेदी युग के अनन्तर जो नवयुवक कवि हुए उन्होने वाह्य चेतना से अधिक अन्तश्चेतना को प्रमुखता दी। 'वह अन्तश्चेतना जो कबीर, सूर, तुलसी, मीरा और रसखान की सासो से हमारे साहित्य मे जीवित चली आ रही थी, नवयुवको द्वारा नये काव्य साहित्य मे भी प्राण प्रतिष्ठा पा गयी। अपनी-अपनी अनुभूति से, अपने-अपने यौवन से, उन्होने अन्तश्चेतना को मध्य युग की अपेक्षा एक भिन्न रूप और एक भिन्न ज्योति कवित्व मडित किया।' इस प्रकार बीसवी शताब्दी के बदलते हुए समय के साथ वाह्य चेतना मे भी परिवर्तन होने लगा। समाज के भिन्न परिवर्तनो के प्रभाव स्वरूप साहित्य मे छायावादी कवियो की काव्य कला मे रोमान्टिक आधुनिकता है लेकिन गुप्त जी की कविताओ मे क्लासिकल आधुनिकता है। छायावाद की कविता मे शृगार और भक्ति के मध्य के व्यक्तित्व अनुराग के दर्शन होते हैं। इस छायावाद के प्रमुख दीप स्तम्भ हैं सर्वश्री प्रसाद, निराला, माखनलाल, पन्त, महादेवी आदि। प्रसाद छायावाद के प्रमुख प्रवर्तक हुए तथा पन्त ने उसे स्वच्छ शरीर से आभूषित किया लेकिन महादेवी की कविताओ से छायावाद को एक और विशिष्टता मिली, वह थी आपेक्षित आत्मविदग्धता। छायावाद के अधिकाश कवि इन कवियो से प्रभावित हुए हैं तथा उनके पथ चिन्हो पर चले है। वे उनकी काव्य कला से प्रभावित हैं। गुप्त और निराला जहाँ कला के चमत्कार मे फसे वही उनके काव्य कुछ विरस हो उठे हैं। छायावाद के साहित्य मे गीतिकाव्य का प्राधान्य है जिसमे महादेवी जी गीति काव्य की त्रिपथगा (पन्त, महादेवी, निराला) मे गोमुखी है। आज कविता का जो रूप परिलक्षित होता है, उससे विदित होता है कि वह आज पुन अपनी पूर्व प्राचीन पार्थिवता की ओर जा रहा है।

'हिन्दी गीति काव्य' समीक्षात्मक लेख मे श्री द्विवेदी जी ने हिन्दी मे गीति काव्य की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए उसके क्रमिक इतिहास की ओर दृष्टिपात किया है। 'हिन्दी गीति काव्य का इतिहास उस सरिता का इतिहास है, जो भरपूर लहरा कर बीच मे ही सूख गयी। शृगार काल मे जो सामाजिक मृग मरुस्थल मिला, उसी मे समा कर बीच-बीच मे वह अपने पूर्व अस्तित्व का आर्द्र परिचय कवित्त और

सवैयो मे देती रही। आधुनिक युग मे वह फिर एक स्वतत्र झिरझिरी के रूप मे फूट पडी, मानो अनुकूल भूमि मिल गई हो।'[१] ऐतिहामिक परिप्रेक्ष्य मे वैष्णव गीति काव्य मे भक्तो की साधना का परिवर्तित रूप श्रृगारिक कविताओ मे और विशेषत गृहस्थो की प्रणय आराधना मे व्यक्त हुआ। अतएव श्रृगारिक कवियो ने गीति काव्य को विशिष्टता प्रदान नही की। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि उस समय उन लोगो का ध्यान गीति काव्य की ओर था ही नही, प्रत्युत वे गीति काव्य की पवित्रता को दूषित नही करना चाहते थे। फलतः गीति काव्य धर्मपरायणो का ही सकीर्तन बन कर रह गया। उस समय काव्य कला के दो रूप मिलते थे—प्रबन्ध काव्य तथा गीति काव्य। श्रृगारिक कवियो ने प्रबन्ध काव्य और गीति काव्य के मध्य पथ कवित्त और सवैये का ही अनुगमन किया। आधुनिक युग मे गीति काव्य ने नाटको मे अपना प्रमुख स्थान बनाया। सामूहिक चेतना के कारण ही आधुनिक युग मे गद्य को गौरव प्रदान किया गया। उसकी विभिन्न विधाओ का स्वागत किया गया। प्रसाद के नाटको मे गीति काव्य की प्रमुखता के साथ ही उसमे मनोविश्लेषण को भी स्थान मिला जिसका स्वच्छ विशुद्ध उदाहरण 'करुणालय' है। इस प्रकार प्रसाद जी नवीन हिन्दी गीति काव्य के रचयिता के रूप मे परिलक्षित होते है परन्तु पन्त, निराला और महादेवी जी उसके सगीत सृष्टा है। प्रसाद, महादेवी की गीति शैली सूर, तुलसी, मीरा की गीत शैली से भिन्न नही है लेकिन पन्त और निराला के साहित्य मे भिन्न सगीत कला के दर्शन होते हैं।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के समीक्षा साहित्य मे ऐतिहासिक समीक्षा प्रणाली का समावेश 'ज्योति विहग' और 'सचारिणी' के अतिरिक्त उनकी समीक्षात्मक कृति 'कवि और काव्य' के 'प्राचीन हिन्दी कविता' और 'आधुनिक हिन्दी कविता' नामक आलोचनात्मक लेख मे भी हुआ है। श्री द्विवेदी जी ने प्राचीन हिन्दी कविता मे सोलहवी सत्रहवी शताब्दी के भक्तिकाल के इतिहास को अपनी नवीन विचारधारा से मौलिकता प्रदान की। मक्ति काल के भक्तो की भाव दृष्टि को प्रतिबिम्बित करते हुए कविता के मूल भावात्मक अर्थ को स्पष्ट किया है। 'सन्तो की दृष्टि मे कविता वह अन्तर्ज्योति है, जिसके आलोक मे सृष्टि का आध्यात्मिक रहस्य उद्भासित होता है।'[२] सूर, तुलसी के काव्य क्षेत्र मे भक्ति के साथ ही सौन्दर्य सृष्टि का भी आभास होता है। रीतिकालीन कवियो के सदृश्य उन्होने भी सौन्दर्य को अलकारिकता से सजाया था लेकिन वह भावात्मकता से ओतप्रोत है। प्राचीन हिन्दी कविता के दो चरणो मे भक्तिकाल और रीति काल के भावो एव उसकी भिन्नता का लेखक ने इस प्रकार दिग्दर्शन किया है 'सन्तो की वाणी जहाँ विश्व वियोगिनी के

---

१. 'सचारिणी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २२३।
२. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३६।

रूप मे दीख पडती है, वहाँ रीतिकालीन कवियो की कविता अलकारमयी अनुरागिनी बन कर अपने अनुपम रूप लावण्य से माधुर्य प्रेमियो का 'मन मानिक' चुराती है। यदि भक्तो का काव्य अध्यात्मिक लोक को सुख शातिमय बनाने के लिए वाणीमय हुआ था तो शृगारिक कवियो की भावना इहलोक को स्वर्गोपम बनाने के लिए सौन्दर्यानुकूल हुई थी।'[1] स्पष्टत प्राचीन हिन्दी कविता मे जहाँ एक ओर ईश्वर और उसकी विभूति के रूप मे शोभा है वही दूसरी ओर पुरुष प्रकृति (नारी) के रूप मे प्रकृति विलसित मानव सुषमा परिलक्षित होती है। प्राचीन हिन्दी कविता मे जिस काव्य शैली का परिपोषण हुआ आगे चलकर उसका अनुकरण किया गया। इस प्राचीन काव्य शैली पर सस्कृत और फारसी काव्यो का भी प्रभाव है जिसमे कोमल रसो का अधिकाधिक उद्रेक हुआ है। १६वी और १७वी शताब्दी मे अपनी पूर्णता पाकर प्राचीन हिन्दी कविता मे १८वी शताब्दी मे एक ठहराव आ गया और उसमे उन्ही पूर्व भावो की ही आवृत्ति होने लगी। परन्तु १९वी शताब्दी के उत्तर काल से सम्बन्धो मे विस्तार के साथ साहित्य मे भी विस्तार आता गया और आधुनिक युग, विशेषत भारतेन्दु युग, मे खडी बोली ने नवोन्मेष से तथा राष्ट्रीयता के उदय के कारण साहित्य मे भी उन्ही भावो का अकन होने लगा। द्विवेदी युग मे खडी बोली को एकछत्र साहित्यिक प्रमुखता प्राप्त हो गयी। आधुनिक हिन्दी कविता के द्विवेदी युग मे ब्रज भाषा और खडी बोली दोनो मे ही भावो का प्रवाहपूर्ण गम्भीर विस्तार परिलक्षित होता है। इस युग मे खडी बोली को गद्य और पद्य दोनों मे ही एक सा स्थान प्राप्त हुआ अतएव कविता की भाषा मे कुछ गद्यात्मकता का भास होने लगा। द्विवेदी युग के उपरान्त आने वाले प्रमुख कवियो ने काव्यो मे अपनी प्रतिभा के नूतन रूप रग से पूर्ण छवि के अकन के साथ विभिन्न स्वरूपो को निर्मित करने का भी सफल प्रयास किया। द्विवेदी युग के प्रबुद्ध कवियो ने अनेक नवयुवक कवियो को ब्रजभाषा से हटा कर खडी बोली के प्रयोग की ओर प्रेरित किया तथा विभिन्न साहित्यानुरागियो को साहित्य सृजन की प्रेरणा भी दी। द्विवेदी युग से भिन्न काव्य प्रगति के गणमान्य प्रमुख प्रेरक कवियो मे प्रसाद, माखन लाल, निराला, पन्त, महादेवी आदि है जिनकी काव्य शैलियो ने दूसरो को अपनी नवीनता एव सौन्दर्य से आकर्षित किया। वर्तमान युग मे हिन्दी कविता मे मुक्तको को विशेष उत्कर्ष मिला। विशेषत, पन्त के काव्यो मे भावो का सुदीर्घ उत्थान पतन तथा प्रकृति सौन्दर्य का विपुल निरीक्षण प्रस्तुत है। अब प्रकृति उद्दीपन न रह कर आलम्बन रूप हो गयी थी। मुक्तक कविताओ के साथ ही प्रबन्ध काव्यो मे भी छायावाद की शैली को स्थान मिला। छायावाद युग के बाद प्रगतिवाद का आगमन हुआ जिसमे कवित्व कम वक्तृत्व ही अधिक है। इसके बाद का युग प्रयोगवाद का है।

---

१. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४४।

द्विवेदी जी और शास्त्रीय आलोचना पद्धति श्री शातिप्रिय द्विवेदी की विविध आलोचनात्मक कृतियो मे शास्त्रीय समीक्षा के उदाहरण भी उपलब्ध होते है। शास्त्रीय समीक्षा के अन्तर्गत प्राचीन साहित्य का शास्त्रीय और परम्परागत सिद्धान्तो के आधार पर मूल्याकन किया जाता है। हिन्दी मे शास्त्रीय समीक्षा का आधार मुख्य रूप से सस्कृत के विभिन्न सम्प्रदाय है जिनमे रस, अलकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य के आधार पर साहित्य की समीक्षा की जाती है। ये सैद्धान्तिक सम्प्रदाय हिन्दी के रीतिकालीन साहित्याचार्यो द्वारा भी मान्य किये गये। आधुनिक युग मे कन्हैयालाल पोद्दार, जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', रामचन्द्र शुक्ल 'रसाल', सीताराम शास्त्री, अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध', बिहारीलाल भट्ट, श्यामसुन्दर दास, गुलाब राय, सीताराम चतुर्वेदी, लक्ष्मीनारायण 'सुधाशु' तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि ने रस तथा अलकार आदि तत्वो के आधार पर एक समीक्षा पद्धति का प्रसार किया। शातिप्रिय द्विवेदी की कृतियो मे शास्त्रीय समीक्षात्मक दृष्टिकोण विशेष रूप से 'कवि और काव्य' तथा 'ज्योति विहग' आदि मे उपलब्ध होता है। 'कवि और काव्य' के लेख 'काव्य चिन्तन' मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी का शास्त्रीय समीक्षात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। उनकी दृष्टि मे कविता ने साहित्यिक सहृदयता का द्वार उन्मुक्त किया तथा इसी के माध्यम से अनुभूतियो का तादात्म्य होता है। काव्य का प्रमुख रस शृगार मानते हुए उन्होने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है 'काव्य का आदि रस है शृगार, जिसकी परिपूर्णता भक्ति मे है। प्राणियो के बीच एक दिन हृदय का आकर्षण ही अनेकता मे एकता का बोध कराने का प्रथम साधक हुआ था, वही शृगार के माधुर्य मे घनीभूत हो गया। शृगार मे विरह की भाति ही जीवन मे वेदना का स्थान अधिक गम्भीर है।'[1] द्विवेदी जी का विचार है कि अभावो के मध्य ही भावो का उद्रेक होता है। उसी प्रकार प्राणो के विदीर्ण होने पर जीवन मे बारम्बार कुठाराघात होने पर हृदय के विरहोद्गार किसी न किसी रूप मे बाहर निकल आते हैं। इसीलिए कवि के उच्छ्वसित हृदय मे प्रथम कवि को ही वियोगी मान लिया जिसके अन्तर की आह मे कविता का जन्म होकर वह नयनो से तरलता के रूप मे बह निकली है। शृगार और भक्ति के साथ ही मानव हृदय के अन्य कोमल रसो मे शात, करुण और वात्सल्य हैं। कुछ रस मानव की कठोरता एव पशुता की भी सूचक हैं। कोमल सहज रसो से जहाँ मानव का सुन्दर रूप प्रतिभासित होता है वही रौद्र, भयानक, विभत्स रस मनुष्य मे विद्यमान पाशविक अश के सूचक हैं लेकिन इसकी सार्थकता मनुष्य को कोमल रसो के लिए लालायित करने मे है।

काव्य कला मे कला के वाह्य उपकरण शब्द और शैली आदि हैं तथा कल्पना

---

१. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २–३।

कला का अन्त. पक्ष है। भाव स्वभाव से सम्बन्धित है। कविता भावो को मनोरम रूप मे उपस्थित करने मे कला का आश्रय लेती है। भावो की उपयुक्तता के लिए एव सही अर्थों के व्यक्तीकरण मे शब्दो का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार बिना ताल के सगीत नीरस है, उसकी कोई भी उपादेयता नही है, उसी प्रकार बिना छन्द के काव्य भी निरर्थक है। द्विवेदी जी का मत है कि 'शब्द यदि भावो मे सास भरते हैं तो छन्द भावो को गति देते हैं। किस रस के लिए किस गति की और किस गति के लिए किस छन्द की उपयुक्तता है इसके लिए रस विदग्धता चाहिए, तभी छन्दो का रसोनुकूल निर्वाह हो सकता है। काव्य मे रस का वही स्थान है जो पुष्प मे गन्ध का। जिस प्रकार विभिन्न सौरभ विभिन्न पुष्पो मे अपने अनुरूप आवास पाते हैं उसी प्रकार विभिन्न छन्द विभिन्न रसो के लिए पुष्प का प्रतिनिधित्व करते हैं। शब्द से लेकर रस तक काव्य मे प्रवाह की एक लडी-सी बधी रहती है। शब्द छन्द को अग्रसर करते है, छन्द भाव को और भाव रस को।'[१] इस प्रकार काव्य की प्रवाहमयता मे शब्द, छन्द, भाव और रस चारो का महत्वपूर्ण योग है लेकिन काव्य मे लोक दृश्य का भी अपना स्थान है। वही काव्य को चित्रकला के समीप ले आता है और काव्य के छन्द उसे सगीतमयता प्रदान करते हैं। इस प्रकार काव्य सगीत कला के भी अति निकट है। चित्रकला और सगीत के योग से भी काव्य की पूर्णता पर विश्वास नही किया जा सकता है। काव्य मे निरन्तर अपूर्णता का वास रहता है क्योकि 'काव्य अपने मुक्त भावना क्षेत्र मे, क्षण-क्षण जिन अदृश्य और अज्ञेय अनुभूतियो मे अठखेलियाँ करता है उन्हे बाध पाना न तो चित्र की सीमा के लिए सहज है, न सगीत की स्वरलिपियो के लिए।'[२] काव्य के भाव गाम्भीर्य मे अलकार योजना का विधान भी आवश्यक है जो कवि की सहज सूझ-बूझ का परिचायक है। अलकार का महत्व अर्थ और शब्द दोनो के चमत्कार लालित्य के लिए श्रेष्ठतम है। लेकिन श्री द्विवेदी के मत मे अलकार का महत्व अर्थ चमत्कार मे नही वरन् भाव गाम्भीर्य मे है। 'भावो का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओ के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने मे कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलकार है।'[३]

श्री शातिप्रिय द्विवेदी की शास्त्रीय समीक्षा पद्धति उनकी आलोचनात्मक कृतियो मे एक समीक्षात्मक कृति 'सचारिणी' मे भी अवलोकित होती है। इसमे आपने 'लिरिक कविता' अथवा गीति काव्य की रसात्मकता की ओर सकेत करते हुए काव्य और सगीत की तुलना मे काव्य को ही उच्च माना है। उनके विचार से

---

१. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५।

२. वही, पृ० ६।

३. वही, पृ० ६।

'सगीत जब गायन मात्र रहता है तब वह असहृय और काव्य से निर्बल होता है। परन्तु जब गायन को काव्य का सहयोग मिल जाता है तब वह गायन मात्र न रह कर सगीत (गीति सयुक्त या गीति काव्य) हो जाता है और उसमे काव्य से भी अधिक रसस्पर्शिता आ जाती है। निस्सदेह काव्य को सगीत से उच्च माना गया है क्योकि काव्य मे लोक पक्ष अधिक आ जाता है। किन्तु यह लोकपक्ष जिसके द्वारा रसान्वित होता है वह हृदय पक्ष (कवि का आत्म पक्ष) सगीत मे ही एकान्तत स्फुरित दीख पडता है।'[१] इस प्रकार श्री द्विवेदी जी ने न केवल काव्य को ही श्रेष्ठ कहा है जिसमे लोक पक्ष की अधिकता होती है प्रत्युत् उन्होने सगीत को भी महत्ता दी है जिसमे कवि की आत्मा की व्यजकता का रूप परिलक्षित होता है और उसे आसानी से पहचाना जा सकता है। सगीतमय पद अथवा गीति काव्य कवि की हार्दिक रसार्द्रता पर निर्भर है। गीति काव्य के विषय मे आपका विचार है कि 'गीतपरक कविता काव्य साधना से अधिक आत्मसाधना की अपेक्षा रखती है।'[२] इसमे मनुष्य अपनी मन की आर्द्रता मे लीन हो जाता है। यद्यपि गीति काव्य मे आत्म साधना अथवा आत्म निमग्नता की आवश्यकता होती है लेकिन यह नही कहा जा सकता कि जितने गीति कवि है, उनमे आत्म साधना का भाव अन्तर्निहित ही हैं। 'जिस प्रकार काव्य क्षेत्र मे परम्परा द्वारा परिचालित होकर अभ्यासत मनुष्य कवि बन सकता है, उसी प्रकार गीति क्षेत्र मे भी गीतिकार हो सकता है, परन्तु गीतो की रस विदग्धता का परिमाण ही प्रकट कर देता है कि उनमे कितना अभ्यासत (श्रमेण) है और कितना स्वभावत (स्वयमेव) है।'[३] इस प्रकार काव्य और सगीत के सामजस्य से ही गीति काव्य का उद्भव होता है। अतएव गीति और काव्य के भावात्मक सहयोग के माध्यम से ही गीति काव्य मे स्वर और भाव का सहयोग सगठित होता है। इसमे दोनो की एकातिकता को पूर्णता प्राप्त होती है। 'गीति-काव्य मे सगीत, काव्य का अनुवर्त्ती होकर भी अधिक शक्तिशाली हो जाता है, मानो अमात्य होकर सम्राट् से अधिक क्षमताशाली। अतएव गीति काव्य सगीत की सार्थकता की चरम सीमा है।'[४]

श्री शातिप्रिय द्विवेदी की शास्त्रीय समीक्षा की प्रवृत्ति उनकी 'हमारे साहित्य निर्माता' नामक आलोचना कृति मे भी यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। श्री द्विवेदी जी ने सस्कृत के तत्सम शब्दो की मान्यता के साथ सस्कृत शब्दो को भी महत्व दिया है। 'सस्कृत छन्दों और शब्दो मे एक ऐसी गरिमा है जो प्राकृतिक शोभा सम्बन्धी

१. सचारिणी, श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३१।
२. वही, पृ० ३१।
३. वही, पृ० ३२।
४. वही, पृ० २३६।

एव भाव पूर्ण कविताओ को गुरुता प्रदान कर देती है।'[1] इसके अतिरिक्त अयोध्या सिंह उपाध्याय का उक्ति चमत्कार भारतीय काव्य साहित्य की प्राचीन परम्परा के रूप मे दृष्टिगोचर होता है। भारतीय काव्य साहित्य का एक बहुत बडा अश उक्ति प्रधान है। श्री द्विवेदी जी ने काव्य मे भाव और उक्ति से सम्बन्धित अपने मतो का शास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से इस प्रकार प्रतिपादन किया है 'हमारे यहाँ काव्य को एक प्रकार का वाग्विलास कहा गया है और इस वाग्विलास मे हृदय के स्पन्दन की अपेक्षा वाणी का नैपुण्य अधिक रहता है। वाणी का यह नैपुण्य ही आलकारिक विधानो के वशीभूत होकर उक्ति बन जाता है। परन्तु जब आलकारिक विधानो के वशीभूत न होकर कवि स्वाभाविक हृदय से अपनी वाणी को उद्‌गीर्ण करता है तब वह भावो की ही सृष्टि कर देता हे न कि उक्ति की। उक्ति मे मन की सूझ का परिचय मिलता है, भाव मे हृदय के स्पन्दन का। एक मे पाडित्य है तो दूसरे मे प्रतिभा।'[2] इस रूप मे द्विवेदी जी ने प्राचीन सस्कृत साहित्य शास्त्र तथा हिन्दी रीति शास्त्र मे मान्य काव्य तत्वो को ही अपनी शास्त्रीय समीक्षा का आधार बनाया है।

द्विवेदी जी और तुलनात्मक आलोचना पद्धति श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी की आलोचनात्मक कृतियो मे तुलनात्मक समीक्षा पद्धति का समावेश भी मिलता है। हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे ऐतिहासिक दृष्टिकोण से तुलनात्मक समीक्षा का प्रारम्भ द्विवेदी युग मे हुआ। इस युग मे पडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने समकालीन समीक्षात्मक दृष्टिकोण मे परिष्कार की भावना से प्रेरित होकर तुलनात्मक समीक्षा का प्रारम्भ किया। सिद्धातत तुलनात्मक समीक्षा उस पद्धति को कहते हैं जिसमे अपेक्षाकृत व्यापक दृष्टिकोण से किसी आलोच्य कृति के महत्व का निदर्शन करते हुए उसी के समान किसी दूसरी कृति के उपलब्ध्यात्मक सूत्रो का विवेचन किया जाये। द्विवेदी युग मे पडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त मिश्रबन्धु, पद्‌मसिंह शर्मा, कृष्ण बिहारी मिश्र, तथा लाला भगवानदीन आदि आलोचको ने देव और बिहारी की पारम्परिक श्रेष्ठता के विवाद से सम्बन्धित इस समीक्षा का प्रबल रूप प्रस्तुत किया है। शातिप्रिय द्विवेदी की आलोच्य कृतियो मे इसके उदाहरण 'ज्योति विहग' तथा 'सचारिणी' नामक पुस्तको मे उपलब्ध होते है। श्री द्विवेदी जी की तुलनात्मक समीक्षा का उदाहरण 'ज्योति विहग' मे हिन्दी कविता के क्रमिक विकास के सन्दर्भ मे छायावादी कवियो के मूल्याकन मे दृष्टिगत होता है। जयशकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा आदि को छायावाद के प्रमुख कवियो के रूप मे मान्य करते हुए द्विवेदी जी ने उनके काव्य के विभिन्न तत्वो का सम्यक् निरूपण तुलनात्मक सकेतो के आधार पर किया है। इस सन्दर्भ

---

१. 'हमारे साहित्य निर्माता', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १५।
२. वही, पृ० १५–१६।

मे जयशकर 'प्रसाद' और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का तुलनात्मक महत्व निदर्शित करते हुए उन्होने भाषा, भाव, प्रबन्ध सौष्ठव, रस वैविध्य तथा छन्द योजना आदि को आधार बनाया है। उनके विचार से प्रसाद और निराला की भाषा मे द्विवेदी युग के गद्य सस्कार के फलस्वरूप भाषा मे पारुष्य है परिष्कार नही। इस पर भी निराला की भाषा अधिक सुगठित है। भाषा की विभिन्न रूपता उसकी अपनी एक विशेषता है जो विशेषता. 'हरिऔध' के काव्य मे परिलक्षित होती है। इसी प्रकार छन्दो के नवीन प्रयोग मे भी वह सिद्धहस्त हैं। प्रसाद और निराला जी की कविताओ मे भाव और रसो की विविधता है परन्तु प्रसाद मुख्यत शृगार रस के कवि है और निराला सभी रसो के। विविधता का यह रूप न केवल भाषा, भाव और रसो के अन्तर्गत मिलता है प्रत्युत उनके काव्यालम्बनो मे भी यह लक्षित होता है। प्रसाद और निराला द्विवेदी युग के ही नये कवि होने के कारण उनकी भाषा का ढाचा उसी युग का है परन्तु भावो और छन्दो मे नवीनता है। प्रसाद जी ने अतुकान्त छन्दो को अपने काव्य मे आश्रय दिया जब कि निराला मुक्त छन्द के कवि है।[१]

द्विवेदी जी ने प्रसाद जी और निराला जी का तुलनात्मक दृष्टि से अवलोकन करते हुए उन्होने पन्त और निराला के भी तुलनात्मक महत्व को स्वीकार किया है। उनके विचार से यद्यपि वह दोनो काव्य क्षेत्र मे एक ही समय मे उदित हुए लेकिन दोनो के काव्यगत व्यक्तित्व मे अत्यधिक भिन्नता है। 'निराला जी की कविता ओजस्विनी है, पन्त की कविता श्री मयी। भूषण और सूर के ओज तथा श्री मे जो अन्तर है, वही निराला और पन्त जी की कविता मे भी है। पन्त और निराला ने खडी बोली की आधुनिक कविता मे कला बोध का अधिकाधिक विस्तार किया। शब्दो और छन्दो की नूतनता तथा भावो की विविधता का श्रेय इन्हे ही प्राप्त है।'[२] छायावाद मे रचनात्मक नवीनता की दृष्टि से पन्त जी के शब्द शिल्प का और निराला की छन्द योजना का प्रमुख स्थान है। पन्त जी की भाषा उनके कवि व्यक्तित्व से प्रभावित है तथा उनका प्रत्येक शब्द काव्य सौष्ठव की अद्वितीयता का परिचायक है। शब्दो को गढने एव उनकी सक्षिप्तता की ओर पन्त जी का विशेष आग्रह रहा है। भाव व्यजना की दृष्टि से लोक प्रचलित शब्दो का प्रयोग भी पन्त काव्य मे अवलोकित होता है। कवि के भाव ही शब्द रूप होकर अवतरित होते है। शब्दो के प्रतीक प्रयोग मे भी उनकी रचनात्मक नवीनता परिलक्षित होती है। शब्दो के इस प्रतीक प्रयोग के साथ ही पन्त जी ने उनका ध्वन्यात्मक प्रयोग किया है। चित्र तथा सगीत उनकी कविता के रूप और प्राण है।[३] शब्द स्वरूप मे उनकी

---

१. 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २९।
२. 'कवि और काव्य', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८३।
३. 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३०।

जिस अन्तरात्मा का आभास होता है उसका आभास छन्दो के स्वर प्रवाह मे भी अवलोकित होता है। उनमे एक आन्तरिक साधना है। पन्त जी मधुरता और रमणीयता के कवि है परन्तु उनकी कविताओ मे ओज गुण भी विद्यमान है।'[1] श्री द्विवेदी जी ने पन्त और द्विवेदी युगीन कवि श्रीधर पाठक जी के तुलनात्मक पर्यावेक्षण मे अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये है—'पन्त जी प्रकृति के कवि है। पन्त और प्रकृति एकात्म है। द्विवेदी युग मे श्रीधर पाठक ने जिस प्रकृति की सुषमा की एकान्त झलक दी थी, उस प्रकृति को पन्त की कविता से ही विशदता, भव्यता और तन्मयता मिली। पाठक जी प्रकृति के पर्यवेक्षक है, पन्त प्रकृत के पारिवारिक, हिमाचल के अचलवासी।'[2] इमी प्रकार श्री द्विवेदी जी ने पन्त जी और रवीन्द्रनाथ की काव्यात्मा का तुलनात्मक विवेचन निर्दशित किया है।दोनो की काव्यात्मा मे समानता है। दोनो ने ही अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति नारी मे ढूढी है। पन्त ने नारी को 'सृष्टि के उर की सास' कह कर सम्बोधित किया है और पृथ्वी को सजीवनी रूप मे। हृदय की उर्वरता देने के लिए कवि की भावना ही नारी रूप हो गयी है। वही जीवन की सुरम्यता की कलाधर है।[3] इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ जी ने भी अपने भावो की उपयुक्त अभिव्यक्ति नारी कठ मे ही पाई है। दोनो ने ही नारी मे अपना स्वराभास पा लिया है। पन्त और रवीन्द्र ने प्रकृति एव वातावरण मे गूजते एव लहराते शब्दो से ही सगीत की प्रेरणा प्राप्त की है और यही कारण है कि पन्त जी ने वातावरण के अनुसार यत्र-तत्र शब्दो को नारीत्व सा दे दिया है।'[4]

श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने 'सचारिणी' मे छायावाद के उत्कर्ष मे वृहत्रयी (पन्त, प्रसाद, निराला) के साथ अन्यान्य छायावादी कवियो का सहयोग एव तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। मैथिलीशरण गुप्त जी देश काल की जागृति मे अपनी राष्ट्रीय कविताओ के लिए अधिक लोकप्रिय हुए। इसके अतिरिक्त वह माधुर्य भाव की भी पूर्वपीठिका बने और प्रसाद ने उसी माधुर्यभाव को छायावाद की व्यजना मे अवतरित किया, लेकिन भारतीय समाज उस समय केवल सौन्दर्यानुराग तथा लोकानुराग की ओर ही अधिक आकर्षित हुआ था। इसीलिए नवयुवक अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' की सस्कृत गर्भित खडी बोली के होते हुए भी उसकी नवीनता की ओर आकृष्ट हुए। प्रसाद और माखनलाल चतुर्वेदी के बाद छायावाद के वरिष्ठ कवियो मे निराला और पन्त का आगमन हुआ। 'निराला का काव्य अपनी प्रतिभा की जटिलता मे एक 'गहन गिरि कानन' है, पन्त का काव्य अपनी स्वच्छ सुषमा मे एक पल्लवित

१ 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३२-३३।
२ वही, पृ० ३२।
३ वही, पृ० ३९।
४ वही, पृ० ४०।

गुजित उद्यान।'[१] छायावाद का पूर्ण परिष्कार पन्त जी ने किया। पन्त जी ने अपनी तूलिका से खडी बोली को कविता की भाषा के रूप मे पूर्णत अधिष्ठित कर दिया। महादेवी और पन्त की तुलनात्मक समीक्षा के रूप मे उनका मत है कि 'महादेवी की कविता उत्सर्ग को, निर्वाण को, त्याग को ही लेकर चली, पन्त की काव्य दिशा के अन्तिम छोर पर मुग्धता और उपभोग्यता की सीमा का अतिक्रमण हे। इसीलिए जब कि महादेवी के कवि को पीछे लौटने की जरूरत नही पडी, पन्त को आगे बढकर मुग्धता से उपभोग्यता मे आना पडा। 'पन्त प्रवृत्ति प्रधान है, महादेवी निवृत्ति प्रधान।'[२] छायावाद के कलेवर मे अन्यान्य कवियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्यपि प्रसाद इसके प्रवर्तक रहे है लेकिन पन्त ने उसे स्वच्छ शरीर प्रदान किया और महादेवी से उसे अपेक्षित आत्मविदग्धता प्राप्त हुई। प्रसाद द्वारा नाटको मे प्रयुक्त गीति काव्य को नवीन चेतना महादेवी से मिली। इस प्रकार प्रसाद का काव्य ऐहिक है जब कि महादेवी का काव्य दार्शनिक अनुभूतियो से अधिक अनुप्राणित है। उनमे वस्तुत भक्ति काल की मीरा की आत्मा का वास सा हो गया है जब कि प्रसाद मे रीतिकालीन शृगार की रसिकता का आभास होता है।[३]

उपर्युक्त साहित्यकारो की तुलनात्मक समीक्षा के अतिरिक्त द्विवेदी जी ने देवकीनन्दन खत्री तथा प्रेमचन्द, जयशकर प्रसाद तथा द्विजेन्द्र एव सुश्री महादेवी वर्मा तथा सुभद्रा कुमारी चौहान आदि की भी तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत करते हुए अपने विचारो को प्रतिपादित किया है। 'देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकान्ता' औपन्यासिक कृति की सीधी-सादी उर्दूनुमा भाषा का परिमार्जित एव साहित्यिक रूप प्रेमचन्द की औपन्यासिक कृतियो मे देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के उपन्यासो के कथानक स्वर्गीय खत्री के उपन्यासो के कथानको से भिन्न हैं। कथानक मे कहानी के अतिरिक्त भी कुछ ऐसा है जो प्रेमचन्द को खत्री जी से आगे ला देता है।'[४] यही कारण है कि शातिप्रिय द्विवेदी प्रेमचन्द को हिन्दी के प्रथम साहित्यिक कथाकार के रूप मे स्वीकार करते है। प्रसाद और द्विजेन्द्र राय के नाटको की भिन्नता को दर्शित कराते हुए द्विवेदी जी का मत है कि 'प्रसाद के नाटको का क्षेत्र द्विजेन्द्र के मुगल काल की अपेक्षा अधिक गम्भीर और रहस्यमय है और इसी कारण उनके नाटक भी द्विजेन्द्र के नाटको की अपेक्षा अधिक गूढ और गम्भीर हो गये है।'[५] प्रसाद के नाटको मे राजनीतिक चहल-पहल के साथ ही प्रणय का घात प्रतिघात है और उससे भी गुरुतर

---

१. 'सचारिणी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १८९।
२. वही, पृ० २०१।
३. वही, पृ० २०७-२०८।
४. 'हमारे साहित्य निर्माता', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६१।
५. वही, पृ० ११७।

है आत्मिक अन्तर्द्वन्द्व । इस प्रकार प्रसाद के नाटको के प्रमुख नाटकीय पात्र ससार को रणक्षेत्र रूप मे ग्रहण करते हुए भी मन को तपोभूमि के रूप मे स्वीकारते हैं ।[१] परन्तु द्विजेन्द्र के नाटक घटना प्रधान होने के कारण उनमे उक्त विशेषताओ का अभाव-सा है और जहाँ अन्तर्द्वन्द्व है भी वह घटनाओ के प्रस्फुटन मे ही सहायक होते है । प्रसाद और द्विजेन्द्र के ऐतिहासिक उपादानो मे अन्तर के साथ ही उनके कथानक, शैली, भाषा, उद्देश्य आदि मे भी भिन्नता है । रगमच की दृष्टि से द्विजेन्द्र के नाटक नेत्रो के लिए दृश्याकर्षण है तो प्रसाद के नाटक जीवन के लिए मानसिक भोजन है ।[२] सुश्री महादेवी वर्मा और सुश्री सुभद्रा कुमारी चौहान के तुलना पक्ष को समक्ष रखते हुए श्री द्विवेदी का विचार है कि सुभद्रा जी प्रकृति की ओर आकृष्ट नही हो पाई हैं क्योकि उनकी कविताएँ इसी पार्थिव जगत से सम्बन्धित हैं । इसके विपरीत प्रकृति की मनोहरता की झलक महादेवी की कविताओ मे मिलती है । द्विवेदी जी के विचार से 'सुश्री वर्मा की कविताएँ यदि अन्तर्जगत की भाँति सूक्ष्म हैं तो सुश्री चौहान की कविताएँ वाह्य विश्व की भाति प्रत्यक्ष । एक मे यदि आत्मा है तो दूसरे मे कलेवर । एक के लिए यदि यह शरीर लोक एक सीमापूर्ण बन्धन है तो दूसरे के लिए यह ससार भावना का मुक्त प्रागण ।'[३] इस प्रकार से द्विवेदी जी ने विभिन्न साहित्यकारो की तुलनात्मक आलोचना करते समय उनके दृष्टिकोण, जीवन दर्शन, भावजगत, साहित्य तथा रचनाकालीन परिस्थितियो पर भी विचार किया है ।

द्विवेदी जी और छायावाद समीक्षा पद्धति . आधुनिक युग मे प्रचलित समीक्षा पद्धतियो मे छायावादी दृष्टि का समावेश भी द्विवेदी जी के साहित्य मे हुआ है । छायावाद का आविर्भाव आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र मे बीसवी शताब्दी के तीसरे दशक मे हुआ । यह काव्यान्दोलन द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियो के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप मे जन्मा था । आरम्भ मे इसका स्वरूप सुनिश्चित नही था परन्तु कालान्तर मे इसे स्थिरीकरण और वैशिष्ट्य प्राप्त हुआ । अनेक पाश्चात्य काव्य शैलियो और विचारधाराओ का भी इस पर प्रभाव पडा । छायावाद के प्रमुख कवियो तथा अनुगामियो की समीक्षात्मक रचनाओ मे इस प्रवृत्ति के सकेत उपलब्ध होते हैं । जयशकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, गगाप्रसाद पान्डेय तथा शातिप्रिय द्विवेदी की आलोचनात्मक कृतियो मे यह पद्धति विकासशील मिलती है । श्री शातिप्रिय द्विवेदी की इस समीक्षा शैली मे छायावाद के अन्य कवियो और विचारको की भाति भावनात्मकता का बाहुल्य मिलता है । उनका समीक्षात्मक चिन्तन प्राय समकालीन काव्य प्रवृत्तियो के सन्दर्भ मे महत्व

---

१ 'हमारे साहित्य निर्माता', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११८ ।

२. वही, पृ० ११९ ।

३. वही, पृ० २०१ ।

रखता है। स्वय द्विवेदी जी छायावाद युग के एक विशिष्ट कवि के रूप मे मान्य है। इसीलिए उनकी समीक्षात्मक दृष्टि मे, कवि के रूप मे, सुलभ भावनाओ का प्रमुख स्थान है, तथा भाषा मे भी छायावादी तत्वो का समावेश हुआ है। छायावाद के विषय मे श्री द्विवेदी जी ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—छायावाद मे वस्तुओ की इतिवृत्तात्मकता को स्वीकार न करके उसकी जीवन स्पर्शिता को ग्रहण किया गया है। मैटर आफ फैक्ट का सम्बन्ध स्थूलता से है जब कि जीवन स्पर्शिता का छाया अथवा भाव से। श्री द्विवेदी ने छायावाद और उसके आगे के रहस्यवाद को भी स्पष्ट किया है। वस्तुत दोनो मे भिन्नता है। उनके विचार से 'जिस प्रकार मैटर आफ फैक्ट के आगे की चीज छायावाद है, उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज रहस्यवाद है। छायावाद मे यदि एक जीवन के साथ दूसरे जीवन की अभिव्यक्ति है अथवा आत्मा का आत्मा के साथ सन्निवेश है तो रहस्यवाद मे आत्मा का परमात्मा से। एक मे लौकिक अभिव्यक्ति है तो दूसरे मे अलौकिक। एक पुष्प को देख कर जब हम उसे अपने ही जीवन-सा सप्राण पाते है तो यह हमारे छायावाद की अभिव्यक्ति है, परन्तु जब उसी पुष्प मे हम एक किसी परम चेतन का विकास पाते है तो यह हमारी रहस्यानुभूति हो जाती है।'[१] श्री द्विवेदी जी ने युग विश्लेषण मे रीति कालीन प्रवाह से असन्तुष्ट भारतेन्दु युग के चित्रण मे अपनी छायावादी समीक्षात्मक प्रवृत्ति का स्पष्ट परिचय दिया है। श्री द्विवेदी जी ने युग को पुरुष का ही रूप मान कर मानवीकरण किया है 'रीति काल की पतझड मे साहित्य और समाज के जो नवीन किसलय फूटे, उनकी शिराओ मे नवचेतन का रक्त बहने लगा। यह मानो बीसवी शताब्दी की नूतन ऋतु का आगमन था। जिस प्रकार एक वृद्ध अपने गत यौवन का मोह न छोडते हुए भी नवीन शैशव को प्यार करता है, उसी प्रकार भारतेन्दु युग ने भी रीतिकाल की पतझड को अपने अक से लगाया, साथ ही नवीन चेतना को भी अपने कठ से लगा कर राष्ट्रीय और सामाजिक कविताओ को स्वर दिया।'[२]

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के विचार से द्विवेदी युग ने भारतेन्दु युग की नवीन चेतना को वाणी और स्फूर्ति प्रदान की। द्विवेदी युग ने नवीन चेतना के शिशु ललाट पर मध्य युग की श्रद्धा का चन्दन लगाया और भक्ति काल की मलय सुबास को अपनी आत्मा मे लीन कर लेना चाहा। बाबू मैथिलीशरण गुप्त के काव्य मे देश भक्ति और प्रभु भक्ति के स्वरूप का एकीकरण हुआ। इस प्रकार खडी बोली की कविता मे वाह्य और आन्तरिक चेतना अग्रसित हुई एव उनका प्रादुर्भाव हुआ।[१] द्विवेदी युग के नवयुवक कवियो ने वाह्य चेतना को गौण रूप मे ग्रहण करके सूर, कबीर,

---

१. 'सचारिणी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १७७।

२. वही, पृ० १७८।

तुलसी, मीरा, रसखान की मूल अन्तश्चेतना को प्रधानता दी तथा अपनी अनुभूति के आधार पर उन्होने उस अन्तश्चेतना को एक भिन्न रूप और भिन्न ज्योति से कवित्व मडित किया। अतएव छायावादी कवियो ने क्लासिकल आधुनिकता एव रोमान्टिक आधुनिकता दोनो को ही स्वीकार किया। इस प्रकार छायावादी कविता मे शृगार और भक्ति के मध्य मार्ग अनुराग का अनुकरण किया गया है। परन्तु उसका सम्बन्ध लौकिक जीवन से न होकर सौन्दर्यमयी सूक्ष्म चेतना से है। यही कारण है कि छायावाद युग कवियो के अभिनव प्रयत्नो का युग है जिसमे स्वच्छद प्रवृत्ति स्पष्ट है। इन अभिनव प्रयत्नो के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रो—भाषा, भाव बोध, छन्द, अभिव्यजना तथा जीवन दर्शन आदि—मे छायावादी कवियो की नवीनता के प्रति रुचि एव उसके प्रति विशेष आग्रह है। न केवल छायावादी कवियो की काव्य कृतियो मे ही यह नवीनता लक्षित होती है प्रत्युत उस समय के गद्य साहित्य मे भी एक काव्यात्मकता का आविर्भाव हो गया था। श्री शातिप्रिय द्विवेदी वस्तुत छायावाद युग मे ही आविर्भूत हुए थे अतएव उनके आलोचना साहित्य मे छायावादी प्रवृत्ति के यत्र-तत्र दर्शन होते है। पडित इलाचन्द्र जोशी के व्यक्तित्व निर्णायक द्विवेदी जी ने अपने मत को व्यक्त करते हुए जोशी जी को निराला और पन्त जी के मध्य का एक व्यक्तित्व माना है। जोशी जी की कविताओ मे ओज और लालित्य जैसे काव्य गुणो का सम्मिश्रण हुआ है। 'छायावाद के विशिष्ट कवियो मे निराला मे प्रखर पौरुष है, पन्त मे प्रसन्न शैशव तथा इनके मध्य जोशी जी मे दुग्ध यौवन है।'[1] श्री द्विवेदी जी के मतानुसार जोशी जी भी प्रकृति की निसर्ग शोभा के प्रति आकृष्ट हुए परन्तु गद्यात्मक प्रवृत्ति के कारण उनके काव्य मे पन्त और निराला की सी प्राजलता एव लालित्य न होने पर भी उनमे छायावाद की सादगी एव मनोहरता है। 'गृहस्थो की तरह ही जोशी जी ने जीवन मे कुछ पौराणिक विश्वास बसा लिए है—मृत्यु, पुनर्जन्म, सघर्ष का वरण और करुण चेतना की अनन्त यात्रा मे एक मरणोत्तर आशावाद। गृहस्थो की तरह ही वे सुख-दुख से हर्षित विमर्षित होते हैं, जीवन वन मे आने वाले वसन्त और पतझड के कोमल कठिन स्पर्श से सृष्टि की तरह। वैज्ञानिको की भाँति वे उसके प्रति सचिन्त्य और प्रयत्नशील नही, कारण वे गृहस्थो की तरह ही जीवन का सचालक किसी मानवेतर शक्ति को पाते है। वे उन्हे हुलसाती है तो वे हुलस पडते है, झुलसाती है तो झुलस पडते है। जहाँ वे आनन्दित होते है वहा वैष्णव हैं, जहाँ तप्त वहाँ शैव है। यही द्वित्व व्यक्तित्व उनके कवित्व मे है।'[2] इस प्रकार श्री द्विवेदी ने जहाँ विशिष्ट कवियो की आलोचना की है वहाँ उनकी भाषा एव भाव दोनो मे ही छायावाद की समीक्षात्मक प्रवृत्ति उपलब्ध होती है।

---

१ 'सचारिणी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २११।

२. वही, पृ० २११-२१२।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी की छायावादी समीक्षात्मक प्रवृत्ति के दर्शन न केवल हिन्दी साहित्य के काल विभाजन एव उनके सिद्धान्तो के मौलिक विश्लेषण मे होते है प्रत्युत उनकी शास्त्रीय आलोचना के अन्तर्गत भी यह प्रवृत्ति उपलब्ध होती है। श्री द्विवेदी जी ने कविता की कला की साज सज्जा की दृष्टि से विश्लेषण के साथ ही उनको रस सयुक्त भाव की दृष्टि से भी विश्लेषित किया है। उनके विचार से मानव के अन्तर्जगत् का स्वर, भाव चिर पुरातन होते हुए भी सर्वथा नवीन तथा नित्य नूतन है। कविता भावनाओ का ही सुधरतम रूप है जो 'ससार के कोलाहल से दूर, हृदय के एकान्त मे, जब हम अपने आप मे निमग्न होने लगते है, उस समय हम सरस हो उठते हैं और तब कुछ ऐसे भावमय उद्‌गार हमारे अतल से स्वयमेव निकल पडते है जिनकी स्वर लहरी मे ससार का सपूर्ण वैषम्य बह जाता है एव हमारे तन, मन, प्राण एक असम भार से मुक्ति पाकर हलके हो जाते है, हम मे नयी स्फूर्ति, नयी ज्योति आ जाती है। ..जिस प्रकार भीतर की दबी हुई सास बाहर निकल पडना चाहती है, उसी प्रकार हृदय की असीम भावनाएँ अपने आवेग से उन्मुक्त गगन मे गूँज उठना चाहती है, इसी मे हमारे जीवन का स्वास्थ्य है।'[1] द्विवेदी जी ने कविता को हृदय की सास माना है जिसमे आन्तरिक जीवन निरन्तर बहता रहता है। इस प्रकार हृदय के यह गीत मन के सदृश्य ही गूढ एव दुर्बोध होते है तथा दूसरो के लिए भी उनमे एक अस्पष्टता-सी बनी रहती है। लेकिन कविता की इस अस्पष्टता मे कवि का दोष न होकर उस आलोचक के दृष्टिकोण का दोष होता है। आलोचक के लिए कविताओ के वास्तविक मर्म को समझने के लिए हृदय की सपूर्ण भावुकता एव कविता लिखने की तात्कालिक परिस्थितियो के आकलन की आवश्यकता होती है। अर्थात् कविताओ के मर्म को समझने के लिए भी सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता होती है। द्विवेदी जी ने मन मे उठती भावनाओ के सुन्दर कलेवर मे परोक्षत अपने जीवन की ही एक झाकी दिखला दी है 'सरिता के प्रशस्त हृदय मे न जाने सौन्दर्य की कितनी सुकुमार वीचिया उठती और विलीन होती है। उन्ही मे से एक के साथ अपने दुख-सुख को खोकर कवि अपने को भूल जाता है। केवल शब्दो मे कवि की ओर उस मृदु वीचि के हृदय की अभिन्न स्मृति रह जाती है। उस एक लघु वीचि के उठने और विलीन होने की सजीवता एक दिन एक क्षण के लिए कवि के सम्मुख थी जब कि वह उसके लिए प्रस्तुत था, परन्तु अब ?... इसी भांति, एक बार नैश गगन के नील पटल पर एक भुवन मोहिनी तारिका हसती हुई दिखलायी पडी थी, वह अपना जादू बिखेरती हुई धीरे-धीरे न जाने कहां अदृश्य हो गयी। वह एक तारिका, कवि की आखो मे न जाने कैसी उज्ज्वल छवि भर कर,

---

१. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २१।

कानो मे न जाने किस अज्ञात लोक की कहानी चुपचाप कहकर विलीन हो गई ।"[१] द्विवेदी जी की छायावादी आलोचना दृष्टि उनके कवि हृदय की द्योतक तथा छायावादी जीवन दृष्टि की वैयक्तिकता पर आधारित है ।

द्विवेदी जी और प्रगतिवादी आलोचना पद्धति आधुनिक युग की विशिष्ट आलोचना पद्धतियो मे प्रगतिवाद का नाम उत्तर छायावाद काल मे विशेष महत्व रखता है । योरप के वैचारिक आन्दोलनो मे प्रगतिवाद की अन्तर्देशीय स्तर पर मान्यता होने के पश्चात उसका प्रभाव भारतीय साहित्य पर भी पडा । यह आन्दोलन यथार्थवादी प्रवृत्ति के साथ ही साहित्य मे विकसित हुआ । इसका सैद्धान्तिक आधार मार्क्सवादी जीवन दर्शन है जिसकी पृष्ठभूमि मे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा वर्ग सघर्ष की आर्थिक विवेचना है । दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि यह वाद राजनैतिक सिद्धान्तो के क्षेत्र मे आविर्भूत हुआ और कालान्तर मे साहित्य के क्षेत्र मे इसका प्रवेश छायावाद की वैयक्तिकता के विरोध मे हुआ । हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे राहुल साकृत्यायन, प्रकाशचन्द्र गुप्त, राम विलास शर्मा, शिवदान सिह चौहान, मन्मथनाथ गुप्त, रागेय राघव तथा रामेश्वर शर्मा आदि ने इसके विकास मे विशेष योग दिया है । श्री शातिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य मे प्रगतिवादी दृष्टि का समावेश मुख्यत 'ज्योति विहग' शीर्षक कृति मे सुमित्रानन्दन पन्त के उस काव्य के विश्लेषण के सन्दर्भ मे मिलता है जिसमे भाव, स्वप्न और कल्पना शून्य की तरह निराधार न होकर जीवन मे जीवन्त हो और प्रत्यक्ष जगत मे साकार हो ।[२] द्विवेदी जी के विचार से पन्त के रचना काल के इस समय विशेष मे उन्होने काव्य के मनोलोक को भावना लोक मे अवतरित करके अमूर्त को मूर्त रूप देना चाहा है और वह भावुकता से वास्तविकता के क्षेत्र मे चला गया है । उनके विचार से इस युग मे रचे पन्त के काव्य की भौतिक आकाक्षा के अनुरूप ही उसके धर्म और कला सम्बन्धी विचारो मे वास्तविकता आ गयी है । इसीलिए पन्त की 'युगवाणी' मे सगृहीत कविताएँ मध्य युगीन काव्यादर्शो के विपरीत मानव मुख के विलुप्त सौन्दर्य के नव निर्माण की कला से युक्त है ।[३] यही कारण है कि 'युगवाणी' मे मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का सैद्धान्तिक पक्ष अन्तर्निहित है और 'ग्राम्या' मे ऐतिहासिक पक्ष ।

द्विवेदी जी ने प्रगतिवाद को ही मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद माना है । ऐतिहासिक भौतिकवाद की दृष्टि से मनुष्य का विकास समाज की ओर और समाज अपने इतिहास की दिशा की ओर अग्रसित होता है । मानव की वाह्य परिस्थितिया उसके आन्तरिक वातावरण को भी प्रभावित करती हैं । वाह्य वातावरण मे

---

१ 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १५० ।

२. 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २६१ ।

३. वही, पृ० २६३ ।

अवस्थित क्षोभ, क्रान्ति, उत्पीडन और उद्वेलन आदि मानव को प्रारम्भ मे विक्षुब्ध करते हैं परन्तु अन्ततोगत्वा वह उसके अन्तर्जगत मे परिवर्तन का कारण बन जाता है। अतएव श्री द्विवेदी जी भी पन्त के नव निर्माण के विचार से सहमत होते हुए मानव के वाह्य जगत अथवा समाज के उत्थान एव निर्माण के विचार को ही प्रमुखता देते हैं और यही उनका प्रगतिवादी दृष्टिकोण है। मानव जीवन मे निर्माण के लिए श्री द्विवेदी जी ने यन्त्रोद्योगो से अधिक प्रमुखता ग्रामोद्योगो को दी है क्योकि यन्त्रोद्योगो मे रसार्द्रता नही है प्रखरता है, और जीवन एव काव्य के पनपने मे सजलता और सरलता सहायक होती है। 'चाहे पूजीवाद हो चाहे प्रगतिवाद, कोई भी यात्रिक युग आगे चल नही सकता। काव्य और जीवन के पनपने के लिए आर्द्रता (तरलता, सजलता) चाहिए। यन्त्रोद्योग मे रसार्द्रता नही प्रखरता है, जल नही विद्युत है। नि सन्देह जीवन मे कुछ उष्णता की भी आवश्यकता है। वह ग्रामोद्योग मे शरीर के स्वाभाविक ओज (पुरुषार्थ) की तरह स्वत व्याप्त है। उसे यन्त्रो के कृत्रिम आश्रय की जरूरत नही।'[१] इस प्रकार ग्रामोद्योग को प्रमुखता देते हुए द्विवेदी जी ने ग्रामोद्योगो के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की है। वस्तुत ग्रामोद्योग छायावाद के भावयोग का पार्थिव आधार है। आधुनिक युग मे दूसरे महायुद्ध के पश्चात् अधिकाश देशो के औद्योगिक विशेषज्ञ ग्रामोद्योग के महत्व को स्वीकार करते है और जो इसे स्वीकार नही करते उन्हे भी अन्तत इसे स्वीकार ही करना पडेगा। लेखक का विश्वास है कि इस प्रकार पुन छायावाद का आविर्भाव होगा।[२] श्री द्विवेदी जी का मन्तव्य है कि मानव जीवन का नव निर्माण व्यक्तिगत स्तर पर न होकर सामूहिकता पर ही अवलम्बित है। यही गाधीवाद का भी सन्देश है कि साम्य योजना के माध्यम से ही मनुष्य पशुता से उठ कर, मनुष्यत्व को अपनाकर जनकल्याण कर सकता है। यही सामूहिकता गाधी जी के सर्वोदय मे अवस्थित है। आधुनिक युग मे समाज मे होने वाली उथल-पुथल उस समाज के साहित्य मे भी तात्कालिक समयानुसार प्रतिबिम्बित होती है। भारतीय समाज मे राजनीति के वाद-विवाद के परिणामस्वरूप साहित्य मे भी सैद्धान्तिक वाद-विवाद बढता ही जाता है। धीरे-धीरे प्रगतिवादियो की गति विधि मे अतिवादिता, निरकुशता तथा सकीर्णता का समावेश होता गया। इस साहित्यिक वाद-विवाद का उत्साह प्रगतिवादियो मे सबसे अधिक है। इस अति मुखर प्रगतिवादिता के कारण उनमे परस्पर ही मतभेद हो गया है और जो प्रबुद्धजन जीवन और साहित्य के नव निर्माण मे सलग्न थे उनकी गणना भी अब प्रगतिवादियो मे नही की जाती। अब प्रगतिवाद केवल सकुचित अर्थों मे ही प्रयुक्त होता है जिसका

---

१. 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २६८।

२ वही, पृ० २६८।

अभिप्राय केवल दल विशेष का राजनीतिक प्रचार मात्र रह गया है।[1] इससे यह स्पष्ट सकेत मिलता है कि द्विवेदी जी की प्रगतिवादी जीवन दृष्टि युग के अनुरूप तथा नवीन चेतना से आप्लावित है। ऐतिहासिक, शास्त्रीय, छायावादी तथा प्रगतिवादी आलोचना पद्धतियाँ एक आलोचक के रूप मे द्विवेदी जी को उल्लेखनीय स्थान प्रदान करती है। उनके प्रमुख आलोचनात्मक सिद्धान्तो का परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

द्विवेदी जी के आलोचनात्मक सिद्धान्त

[१] **काव्य मे रस तत्व** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की आलोचना दृष्टि उनकी रस ग्राहिणी शक्ति की भी परिचायक है। प्राचीन सस्कृत साहित्य शास्त्र मे निरूपित काव्य के इस मूलभूत तत्व को द्विवेदी जी ने विशिष्ट महत्व प्रदान किया है। सैद्धान्तिक रूप से रस का स्वरूप निर्देश करते हुए उन्होने लिखा है कि प्रकृति और पुरुष इस विश्व काव्य के दो तत्व है जिसके द्वारा उस परिभू स्वयम्भू ने लोक जीवन को नाना रूपो मे विभक्त कर दिया है। मानव सुख-दुख, मिलन-विरह को स्पर्श करता हुआ अपने पूर्व निश्चित पथ पर अग्रसर होता है। उसका मुख्य ध्येय उस अलौकिक शक्ति मे विलीन हो जाना ही है। लोक जीवन के इस धरातल मे मानव हृदय मे दो प्रकार के रसो का सचार होता है, प्रथम कोमल रस और द्वितीय वह जो पाशविकता के द्योतक होते है। श्री द्विवेदी जी के मत मे काव्य का आदि रस शृगार है जिसमे हृदय का आकर्षण माधुर्य रूप मे परिणित होकर अनेकता मे एकता का बोध कराता है। मानव अभावमय जीवन मे ही भावो से उद्वेलित होकर एक विरह का अनुभव करता है। उसके यही विरहोद्गार भाव ही काव्य रूप मे परिलक्षित होते है। भक्ति रस के माध्यम से शृगार की पूर्णता है। इन कोमल रसो के अतिरिक्त शान्त, करुण और वात्सल्य रस भी इसी कोटि के अन्तर्गत आते है। मानव मे देवत्व गुणो के साथ ही कुछ पाशव गुण भी अन्तर्निहित रहते है रौद्र, विभत्स और भयानक आदि मानव के इसी पाशव अश के सूचक है। लेकिन द्विवेदी जी के मत मे इनका महत्व भी मानव मे कोमल रसो के उद्रेक मे सहायक होने पर ही है। लेखक का यह मन्तव्य है कि रीतिकालीन काव्य मे शृगार रस की प्रधानता होने का एक कारण यह भी है कि इस काल के कवि इसी को रसराज मानते थे। निराला के काव्य मे लेखक ने करुण रस की मर्मस्पर्शी व्यजना का सम्यक् विश्लेषण किया है। निराला की लिखी हुई दीन, भिक्षुक, विधवा, वह तोडती पत्थर तथा रास्ते के मुरझाये फूल आदि कविताओ मे आधुनिक युग मे वैज्ञानिक वृत्ति के विकास के समानान्तर स्वार्थपरता की वृद्धि और मानवीयता के ह्रास की अभिव्यजना

---

१. 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३५७-३५८।

करुणामय कही जा सकती है। इसी प्रकार से स्वप्नस्मृति शीर्षक कविता मे भी निराला जी ने करुण रस की सम्यक् व्यजना करते हुए कवि के स्मृति लोक मे मौन रुदन किया है जो अनादि युग से मूक क्रन्दन के रूप मे अनन्त शून्य मे विलीन होता रहा है।

[२] **शब्द और छन्द योजना** काव्य और साहित्य मे शब्द और शब्द योजना का भी महत्व इगित किया है। इनके विचार से भावो को व्यक्त करने मे समुचित एव सुनियोजित शब्दो की आवश्यकता होती है। भावो की गति मे छन्द सहायक होते हैं। शब्दो के रसानुकूल निर्वाह के लिए रस विदग्धता की आवश्यकता होती है। काव्य मे शब्द, छन्द और रस का वही स्थान है जो पुष्पो मे विभिन्न सुगन्धो का। विभिन्न पुष्पो के विभिन्न सुगन्धो के सदृश्य काव्य मे विभिन्न छन्द भी विभिन्न रसो का प्रतिनिधित्व करते है और इस प्रकार 'शब्द से लेकर रस तक काव्य मे प्रवाह की एक लडी-सी बधी रहती है। शब्द छन्द को अग्रसर करते है, छन्द भाव को और भाव रस को।'[1] काव्य मे राग को प्रवाह देने मे छन्द का महत्वपूर्ण हाथ है। लेखक की धारणा है कि सस्कृत का भाषा सगीत शब्द प्रधान है और हिन्दी का राग प्रधान। वर्ण वृत्तो मे शृखला की एक अटूट कडी है जिसका एक अशमात्र मुख से निकलने पर सपूर्ण वाक्य ही मुख से स्वयमेव निकल पडने को लालायित हो उठता है। श्री द्विवेदी जी ने मात्रिक छन्दो एव वर्णवृत्तो के विषय मे अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है कि हिन्दी के मात्रिक छन्दो मे शब्दो के अपने व्यक्तित्व तथा पदावली के सामजस्य के साथ एक स्वतत्र गति है। वर्णवृत्त मे राजतत्र और यात्रिक छन्द जनतत्र। वर्णवृत्त मे बन्धनमय जीवन का अनुशासन है तथा मात्रिक छन्द मे मुक्त हृदय का स्पदन और भावनाओ की मुक्तावस्था। सस्कृत और हिन्दी कविता मे अन्तर है और वह यह कि 'सस्कृत अरण्य युग की भारती है जब कि हिन्दी परवर्ती युग की नागरी'[2] दोनो के सौन्दर्य बोध मे भिन्नता है। समास की दृष्टि से द्विवेदी जी का मत है कि 'सस्कृत के वर्णवृत्तो मे समास सघन तरुरज की भाँति शब्दो को सगठित करते है। हिन्दी के छन्दो मे वे डाल के पुष्पो की तरह शब्दो की वन्यता का परिष्कार करते है, वहाँ वे 'कैंची' का ही काम करते है।'[3] द्विवेदी जी ने हिन्दी के कवित्त एव मात्रिक की भिन्नता को स्पष्ट करते हुए अपना मत प्रतिपादित किया है कि कवित्त मे स्वर काव्य मुखर होता है जब कि मात्रिक मे भाव मुखर, कवित्व मे सार्वजनिक ओज विद्यमान है और मात्रिक मे पारिवारिक माधुर्य। आगे द्विवेदी जी का मत है कि कवित्त की तरह ही सस्कृत के

---

१. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५।
२. 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १२२।
३ वही, पृ० १२२।

वर्णवृत्त और बगला के अक्षर मात्रिक छन्द व्यजन प्रधान होने के साथ वे बन्धनमय हैं। वे स्वतन्त्रता नही देते।

[३] **अतुकान्त और मुक्त छन्द** छन्द तत्व के शास्त्रीय महत्व के स्वीकरण के साथ-साथ द्विवेदी जी ने आधुनिक काव्य विवेचन के सन्दर्भ मे मुक्त छन्द के स्वरूप पर भी विचार किया है। इनकी धारणा है कि अतुकान्त से काव्य गद्य हो जाता है परन्तु उनमे उद्‌गार बधे रहते है। मुक्त छन्द मे उद्‌गार को स्वतन्त्रता मिली रहती है। तुक और छन्द का निर्बन्धन ही मुक्त काव्य है और पन्त जी ने मुक्त काव्य की सफलता हिन्दी मे ह्रस्य और दीर्घ मात्रिक सगीत के लय पर ही मानी है। परन्तु निराला जी इस मत के विरोधी है। उन्होने छन्दो को मुक्त न करके उसके प्रवाह को मुक्त किया है। प्रवाह से मुक्त और सामजस्य से सुसगत राग को ही उन्होने मुक्त छन्द माना है। अतुकान्त की उपयोगिता नाट्य शास्त्र मे रगमचीय दृष्टिकोण से है। इसका महत्व प्रबन्ध काव्य मे भी परिलक्षित होता है। इससे पात्रो के कथोपकथन मे वार्तालाप की सी सरलता एव स्वाभाविकता आ जाती है। मुक्त छन्द भावनाओ एव उद्रेको के उत्थान-पतन के विस्तार मे सहायक होते है। मुक्त छन्द की प्रमुख विशेषता है कि उसमे भाषा का सगीत रहता है और साथ ही वार्तालाप की सी स्वाभाविकता भी रहती है तथा काव्य मे नाट्य का समावेश हो जाता है। श्री द्विवेदी जी ने छायावाद मे मुक्त छन्द की वास्तविक स्थिति का दिग्दर्शन करते हुए छन्द के महत्त्व का प्रतिपादन निम्न शब्दो मे किया है 'छन्द के राग मे मनुष्य का मनोराग भी मिला रहता है। उसके प्रवाह मे मन की जो गति हृत्कम्पन की तरह अन्तर्द्धान रहती है उसी को प्रत्यक्ष करने के लिए उद्‌गारो को नाट्य भगिमा देनी पडती है। छन्द मे सलापोचित स्वाभाविकता आ जाने से रागात्मिका वृत्ति का उद्रेक हो जाता है। मनुष्य के मनोरागो को व्यक्त करने के लिए ही मुक्त छन्द है। वह काव्य को मनोविज्ञान का सहयोग देता है। भाषा भाव और छन्द मे जीवन की अन्तर्व्यंजना ही छायावाद की विशेषता है। इस दृष्टि से मुक्त छन्द छायावाद का अन्तरग छन्द है।'[१]

[४] **अलकार योजना** श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने बताया है कि काव्य मे भावो को स्पष्ट रूप से नियोजित करने मे अलकार एक साधन है और इसका महत्व भाव गाम्भीर्य मे अन्तर्निहित है। श्री द्विवेदी जी की दृष्टि मे 'भावो का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओ के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने मे कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलकार है।'[२] इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी की धारणा है कि अलकारो का वास्तविक सम्बन्ध सौन्दर्यबोध से होता है। रीतिकाल तथा द्विवेदी युग मे सौन्दर्यबोध का आभास था परन्तु रीति काल वैभव विलास की रसिकता के

---

१. 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १६६।

२. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६।

कारण अलकार प्रधान था। छायावादी कवियो ने भावो के सदृश्य ही सौन्दर्यबोध से अलकारो को भी स्वाभाविकता प्रदान की। छायावादी कवियो की दृष्टि मे अलकार केवल वाणी की ही शोभा नही, भावो की अभिव्यक्ति मे भी वह सहायक होते है।

[५] **काव्य मे त्रिगुण, त्रिमूर्ति और त्रिवाणी** द्विवेदी जी के विचार मे काव्य की सम्यक् रचना मे त्रिगुण और त्रिमूर्ति के साथ त्रिवाणी भी सहायक होता है। काव्य की त्रिगुणात्मक वस्तुओ मे विभूति, श्री, उर्ज आते है। विभूति के अन्तर्गत विविध भावो का विस्तार, श्री कोमल कान्त पद, माधुरी तथा उर्ज मे पौरुष का ओज निहित है। इसी प्रकार अनुभूति के भी त्रिविध स्वरूप हैं जिन्हे दूसरे शब्दो मे त्रिमूर्ति की आख्या दी जाती है। ये निम्न है भावना, चिन्तना और प्रभूति। 'भावना मे विष्णु की मनोहरता है, चिन्तना मे शिव की ज्वलन्तता, प्रभूति मे ब्रह्मा का अखिल सृष्टि सन्दोह है।'[1] यह प्रभूति अनुभूति का ही पुजीभूत रूप है, भावना से विश्व की मनोज्ञता की अनुभूति होती है। चिन्तना द्वारा सृष्टि की दुर्द्धरता का ज्ञान होता है। प्रभूति मे अनुभूति के विशद रूप मे सरस और विषम विश्व के एक सर्वरूप की अनुभूति होती है। अनुभूति क इस त्रिविध स्वरूप के अनुरूप ही त्रिवाणी सत्य, शिव और सुन्दरम् भी काव्य की सपन्नता मे सहायक होती है। सत्य दर्शन का, शिव धर्म का और सुन्दर कला का विषय है। परिणामस्वरूप सुन्दरम् का सम्बन्ध भावना से, सत्यम् का चिन्तना से तथा शिवम् का प्रभूति से है। शिवम् की प्रमुखता के लिए सत्यम् और सुन्दरम् का सम्मिश्रण हो जाता है।

[६] **भाषा और भाव** द्विवेदी जी का विचार है कि मानव जीवन मे भावो का आविर्भाव पहले हुआ और उसके उपरान्त उनकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा का। इस प्रकार भाषा भावो की अभिव्यक्ति का साधन है परन्तु भावो के सदृश्य ही भाषा की उतनी समृद्धि नही हो सकती। उसका मुख्य कारण यही है कि भाषा मानव निर्मित है जब कि भाव प्रकृति की सृष्टि है। कवि भी अपने भावो की अभिव्यक्ति के लिए भाषा को अनेक साधनो से सामर्थ्यवान बनाता है। वह कला का आश्रय लेता है। इस प्रकार द्विवेदी जी के मत मे 'भावो और विचारो की अभिव्यक्ति की सुन्दरता, कुशलता का ही नाम कला है। भाषा और कला के मेल से भावो और विचारो को जो मनोरम स्वरूप मिलता है उसी को साहित्य कहते हैं।'[2] मानव जीवन मे दो चेतनाएँ काम करती है अन्तर्चेतना और वाह्य चेतना। जिस प्रकार वाह्य चेतन स्वप्नो की सृष्टि करा देती है परन्तु अन्तर्चेतना उसकी निरर्थकता का बोध कराती है उसी प्रकार कवि के अस्पष्ट काव्य मे उन अज्ञात भावो मे अतरतम की वह अज्ञात चेतना परिव्याप्त होकर मानव के मर्मस्थल का स्पर्श कराती रहती

१. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७।
२ वही, पृ० १४०।

है। यद्यपि अर्थ उसका अस्पष्ट ही रहता है परन्तु वे भाव हृदय को मुग्ध कर लेते हैं, उनमे प्राण बोलते से दृष्टिगोचर होते है।

[७] **चित्र भाषा और चित्र राग** द्विवेदी जी ने कविता की परिपूर्णता के लिए भाषा भाव और रस की अनिवार्यता के साथ ही चित्र भाषा और चित्र राग को भी महत्वपूर्ण माना है। चित्र भाषा मे शब्द अपने भावो को अपनी ही ध्वनि मे नेत्रो के सम्मुख चित्रित कर देते है और जब चित्र भाषा मे भाव के साकार रूप के साथ शब्दो मे स्वर बोलने लगते हैं तो वही चित्र राग बन जाता है। इस प्रकार चित्र-राग की रचना मे चित्रमयता और भाव की रसमयता की आवश्यकता होती है। 'चित्र भाषा भाव के लिए है। जब भाषा भाव को आकार देकर उसके अन्तस मे राग का उद्रेक कर देती है, तब वह चित्र भाषा न रह कर चित्र राग हो जाती है।... कविता की परिपूर्णता भाव और रस मे है। जहाँ भाव है वही रस भी है, जहाँ चित्र भाषा है वही चित्र राग भी है। चित्र और सगीत का पार्थक्य काव्य मे दूर हो जाता है, दोनो अनिवार्यत एक हो जाते है। शब्दो मे जैसे भाव अन्तर्गभित रहते है, वैसे ही भावो मे रस भी, अतएव चित्र भाषा और चित्र राग दोनो मे रूप और रस की तरह साहचर्य है।'[१]

[८] **कल्पना और अनुभूति** · द्विवेदी जी ने काव्य मे कल्पना और अनुभूति की निहित पर भी विचार किया है। उनके मतानुसार कवि अपने मार्ग का स्वय निर्देश करता है। अतएव वह पूर्व स्थापित स्वार्थो से ही सम्बद्ध नही होते प्रत्युत् वे नवीन रचनात्मक दृष्टि से आगे बढते है। कवि युग धर होता है। प्रगतिशील युग का कवि भी छायावाद के कवि के सदृश्य अपनी कल्पना को ही चेतनता का रूप दे रहा है। फ्रायडियन आलोचक के मत मे कल्पनाशीलता अतृप्त वासनाओ की तृप्ति मात्र है। कल्पना एव कला का द्विवेदी जी ने विश्लेषण करते हुए लिखा है कि 'जहाँ कल्पना है वहाँ कला भी है। कल्पना जिस अदृश्य का ध्यान करती है, कला उसे आकार देती है, भाव आकार को आत्मा देता है। निर्गुण को सगुण एव अमूर्त को मूत करने के लिए कल्पना को कला की सहायता लेनी पडती है।'[२] इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी का मत है कि काव्य मे कल्पना सार्थकतापूर्ण होती है। केवल वाह्य जगत की वास्तविक अनुभूति ही सत्य नही है, अपितु उन अनुभूतियो से निर्मित जीवन सत्य है। कवि भी अपनी अनुभूतियो के निष्कर्ष रूप मे काव्य के अन्तर्गत रसोद्रेक करता है। कवि के पास उसका मनोयोग ही ऐसा यन्त्र होता है जिसकी साधना के आधार पर ही वह अनुभूति का साक्षात् दर्शन करता है। कवि वास्तविक जगत के माध्यम से इस ब्रह्माड मे व्याप्त अदृश्य झाकियो, अदृश्य चेतन भावो को, जो कि अगोचर, अज्ञेय और ध्येय

---

१. 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११६-१७।
२. वही, पृ० २८५।

हैं, काव्य मे रूप रग और स्वर देकर लौकिक जीवन मे चेतना का सचार करता है ।

[९] **वेदनानुभूति** श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने वेदनानुभूति का स्वरूप निदर्शित करते हुए बताया है कि मूलत मानव अनुभूतिमय प्राणी है । सृष्टि के कण-कण मे उसे एक अलौकिक अनुभूति होती है । परन्तु इस अनुभूति से यह तात्पर्य नही कि वह उस अनुभूति से प्रेरित होकर उससे तादात्म्य स्थापित कर ले । वेदनानुभूति से प्रभावित होकर मानव अपने क्षुद्र अह की भावना को विस्मृति कर, राग द्वेषो से अलग एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करता है जो कि किसी जोर जबर्दस्ती से नही प्रत्युत् स्वयमेव हो जाता है । मानव सुख से आत्मविस्मृत होकर उसे एकान्तत भोगना चाहता है, परन्तु वेदना को वह सर्वत्र बाटना चाहता है । सुख मे मानव के मध्य ईर्ष्या उत्पन्न होती है, एक हृदय दूसरे से बहुत दूर हो जाता है लेकिन वेदना मानव की इस खाई को पार कर मानव मानव को निकट से निकटतर लाकर उनमे ममता, सवेदना का प्रादुर्भाव करता है । अनादि विश्व वीणा का प्रथम स्वर ही वेदना का स्वर था और मानव अपने जीवन के प्रथम क्षणो मे क्रन्दन करता हुआ मा का आधार लेता है । वेदना ही मानव जीवन की मूल रागिनी है। मानव सुख का प्रफुल्लता से स्वागत करता है परन्तु वेदना मे वह करुण, सहृदय, व्यथा से पीडित एव अधीर हो उठता है । यही वेदना मानव को उस अलौकिक करुणामय से मिला देता है । यही कारण है कि कवि भी वेदना मे ही निमग्न हो उस करुणामय को अनुभूति मे प्राप्त करता है ।

[१०] **सौन्दर्य बोध** द्विवेदी जी की धारणा है कि कवि यथार्थ जगत मे कटु अनुभवो के सत्य को काव्य मे अपने मन एव हृदय के सौन्दर्य से स्निग्ध करके व्यक्त करता है । अन्तर्जगत की इस साधना को ही साहित्य मे भाव योग कहा जाता है तथा काव्य मे उसे ब्रह्मानन्द का सहोदर माना गया है । वस्तुत कवि का यह सौन्दर्य आत्मा और जड के मध्य एक सेतु के सदृश्य है 'सौन्दर्य भावना का चेतन है जो जड को भी अचेतन करता है । वाह्य जगत हमारे मन के अन्दर प्रवेश करके एक दूसरा जगत् बन जाता है । उसमे केवल वाह्य जगत के रग, आकृति तथा ध्वनि इत्यादि ही नही होते अपितु उनके साथ हमारा अच्छा बुरा लगना, हमारा भय विस्मय, हमारा सुख-दुख भी मिला रहता है । वह (अतर्जगत) हमारी हृदय वृत्ति के विचित्र रस मे नाना प्रकार से आभासित होता है । जिस प्रकार जगत् अनेक रूपात्मक है उसी प्रकार हमारा हृदय भी अनेक भावात्मक है ।'[१] द्विवेदी जी का विचार है कि प्राचीन युग मे कवि मानवीय सौन्दर्य से प्रभावित होकर ईश्वर की ओर उन्मुख हुआ था परन्तु वर्तमान कवि प्रकृति के सुन्दर भाव विलास से आनन्दमय होकर उस परम शोभामय अलौकिक छवि की ओर आकृष्ट हुआ । यही कारण है कि प्राचीन कवि

---

१. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १०-११ ।

ईश्वर की परम छवि से प्रभावित है जो रूपाकार है परन्तु वर्तमान कवि प्रकृति प्रागण मे एक सुन्दरतम छवि का अवलोकन अपने भावना लोक मे करता है। राधा और कृष्ण के सदृश्य ही नर और नारी भी उस परम चेतन के ही मनोरम आवरण है। प्राचीन अथवा वर्तमान कवियो मे जिन्होने युगल अथवा किसी एक का चिन्तन किया है उन सबका लक्ष्य केवल एक है उस अनन्त सौन्दर्य की स्तुति और प्रेम की लोकानुभूति।

[११] **सांस्कृतिक चेतना** आधुनिक हिन्दी साहित्य मे छायावाद काव्यान्दोलन के प्रतिनिधि कवि सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य के मूल्याकन के सन्दर्भ मे द्विवेदी जी ने सास्कृतिक चेतना के स्वरूप का भी निदर्शन किया है। उनकी धारणा है कि पन्त कृत 'गुजन' मे जो कविताएँ संगृहीत है उनमे नव चेतना का जागरण दृष्टिगत होता है। सुख-दुख के मधुर मिलन मे ही मानव सवेदनशील होकर प्रकृति के कण-कण से तादात्म्य स्थापित करता है। 'गुजन' काव्य मे 'रे' शब्द की पुनरावृत्ति पन्त जी की इसी सवेदनशीलता की परिचायक है, और मानव हृदय को स्पर्श करता है। इसमे पन्त की सामाजिक सवेदना एव आत्मीयता के साथ ही उनकी सौहार्द्रता एव वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का आभास मिलता है। यही पन्त जी की आत्म प्रेरणा है। पन्त जी के 'गुजन' काव्य मे सौन्दर्य दर्शन, अन्त स्पन्दन के साथ जीवन का नवीन चिन्तन भी परिलक्षित होता है। द्विवेदी जी ने पन्त साहित्य मे भाव और कला की दृष्टि से उनके काव्य के क्रमिक विकास के अन्तर्गत भावो का भी क्रमिक विश्लेषण किया है। 'पल्लव' काव्य मे आध्यात्मिक एव चिन्तन से जटिल ज्ञानपूर्ण कविताएँ है लेकिन 'गुजन' मे पन्त जी पुन भाव जगत मे पदार्पण कर गए है। 'गुजन' मे जीवन चिन्तन के रूप मे पन्त जी की अनुभूति एव अभिव्यक्ति मे नवीनता है। भावो की अभिव्यक्ति मे कलाभिव्यजना के दर्शन होते है। अभिव्यक्ति के लिए कलात्मक भाषा को गढा गया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव 'गुजन' के अतिरिक्त पन्त के काव्य 'ज्योत्स्ना' मे भी परिलक्षित होता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मे भारतीय सस्कृति की विशद सौहार्द्रपूर्ण भावना अन्तर्निहित है। पन्त जी ने 'युगवाणी' मे मानव विकास के लिए राग तत्व को प्रधानता दी है। इसी राग तत्व को उन्होने सस्कृत की 'मूलधातु' माना है। श्री द्विवेदी जी ने राग तत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है 'राग का अभिप्राय है .मनुष्य की वह रमणशील प्रवृत्ति जो प्रिय वस्तुओ मे उसका मन रमाती है। इसे हम आकर्षण वृत्ति अथवा अनुरक्त प्रवृत्ति भी कह सकते है। मनुष्य का यही राग आनन्द के लिए अनुराग बन जाता है। काव्य मे स्वर की सगति पाकर राग सगीत बन जाता है, जीवन मे सुरुचि की सगति पाकर भाव। भाव मे मनुष्य् का रस बोध और सौन्दर्य बोध है।'[१] द्विवेदी जी ने पन्त के 'ग्राम्या' काव्य की आलोचना

१. 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २८०।

करते हुए पन्त की सहानुभूति को बौद्धिक माना है जो मानवीय सवेदनशीलता से पूर्ण है। विवेक से इतर सहानुभूति मात्र दया अथवा करुणा रह जाती है। बौद्धिक सहानुभूति के लिए पन्त का कथन है कि 'बौद्धिकता हार्दिकता ही का दूसरा रूप है, वह हृदय की कृपणता से नही आती।'[१] ग्रामीणो के साथ पन्त जी की हार्दिक सहानुभूति है परन्तु उनकी सामाजिक व्याधियो से वह घृणा करते है। मानव को अपनी स्थिति का पूर्ण ज्ञान कराने तथा उनकी यत्रो के द्वारा एव समाज की रूढियो के द्वारा हुई दयनीय स्थिति से त्राण दिलाने के लिए पन्त जी ने सामूहिकता पर जोर दिया है। अपने युग की प्रणाली मे परिवर्तन को यथेष्ट माना है। सामूहिक चेतना मार्क्सवाद से प्रभावित है। पन्त के काव्य 'युगान्तर' के गीतो मे दिव्य चेतना का आह्वान तथा लोक चेतना का उद्बोधन है। दिव्य चेतना अथवा परमात्म चेतना केवल अन्तरतम मे ही वास न करके स्वय को लोक चेतना मे भी मूर्त करती है। इस प्रकार रहस्यवाद ही लोक चेतना से अभिभूत होकर मानववाद रूप मे परिणति हो जाता है।

[१२] **आदर्श और यथार्थ** . श्री द्विवेदी जी ने आदर्श को अत्यन्त व्यापक अर्थो मे प्रयुक्त किया है। आदर्शवाद मानव के प्रेम, सहानुभूति, करुणा, ममता आदि मानवीय गुणो का प्रतीक है। यह मनुष्यता की तरह विस्तृत एव आत्मा की तरह व्यापक है। द्विवेदी जी की दृष्टि मे 'यथार्थ के बिना आदर्श गति रहित है, आदर्श के बिना यथार्थ जीवन रहित। आदर्श यदि राजपुरुष है तो यथार्थ उसका राजमत्री। यह राजमत्री ही राजपुरुष को मानवता के सरक्षण के लिए मत्रणा देता है। यथार्थ चाहे तो अपने राजा के साथ विश्वासघात कर सकता है। जब वह विश्वासघात करता है तभी जन रव क्षुब्ध हो उठता है। यो वह अपने स्थान पर सार्थक है।'[२] साहित्य मे यथार्थ के नाम पर आज अश्लीलता को महत्व दिया जा रहा है अत· श्री द्विवेदी जी के मत मे वास्तविकता इस नग्नता के प्रदर्शन से हेय है क्योकि उसमे आदर्श विलुप्त हो गया है। कला वास्तविकता का आधार स्तम्भ है परन्तु कला का अस्तित्व आदर्श एव मगल का सूचक है। इस प्रकार सुन्दरता का शरीर यथार्थ है परन्तु आदर्श उसकी मगलमयी आत्मा है। इसी मगलमयी आत्मा के कारण ही वह प्रशस्त है। उसी प्रकार कला की प्रशस्ति भी उसके यथार्थ शरीर की अपेक्षा मगलमयी आदर्श आत्मा को महत्व देती है। वस्तुत यथार्थ आदर्श का माध्यम है और उसे उचित रूप से हृदयगम करके समाज के सम्मुख उचित रूप से रखना कलाकार की विशेषता है। आज के यथार्थ युग मे मानव स्वय यत्र-सा होता जा रहा है। वह अपने नैसर्गिक जीवन से विलग होकर प्रकृति से क्रमश दूर होता जा रहा है। फलस्वरूप मानव मे स्वार्थो की प्रधानता होती जा रही है और यही प्रगतिवाद है जहाँ मनुष्य भी यत्रो के बनने

१ 'ग्राम्या', श्री सुमित्रानन्दन पन्त (निवेदन)।
२ 'सचारिणी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९९।

लगे है। लेकिन मानव जब-जब प्रकृति की शरण मे गया और उससे आत्मीयता का सम्बन्ध जोडने लगा तभी वह यत्रवाद के विपरीत मानवी चेतना का उद्रेक करके मानव मे नव चेतना का सचार अपने काव्य के माध्यम से करता है।

[१३] **रहस्यवाद और छायावाद** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की दृष्टि मे रहस्यवाद की दो कोटियाँ है—पार्थिव और अपार्थिव। पार्थिव रहस्वाद मे सगुणोपासक कवियो की गणना की जा सकती है जो सृष्टि के कण-कण मे, तृण-तृण मे अन्तश्चेतना की अनुरागिनी छाया का आभास पाते हैं। दूसरे शब्दो मे इसे ही छायावाद कहा जाता है। अपार्थिव रहस्यवाद ज्ञानियो की चीज है और सन्तो की वाणी है। अतएव निर्गुणोपासक कवि इस कोटि के अन्तर्गत आते हैं। छायावाद मे प्रेम और भक्ति है इसी के आधार पर इसमे लौकिकता और अलौकिकता दोनो का समन्वय है परन्तु रहस्यवाद मे केवल अलौकिकता और भगवद्भक्ति है। भारतीय साहित्य की रहस्वादी प्रवृत्ति यद्यपि पुरातन है परन्तु समयानुसार वह भी आधुनिक हो रही है। भारतीय साहित्य एव भारतीय जीवन मे समाजवाद मानव सौजन्य का प्रतीक है। कारण वह विदेशी है। समाजवाद उस सौजन्य का वाह्य अथवा राजनीतिक स्वरूप है जब कि रहस्वाद उसी मानव सौजन्य का आन्तरिक अथवा धार्मिक स्वरूप है। धार्मिकता को विस्तृत अर्थो मे ही ग्रहण करना चाहिए क्योकि वह हृदय की सद्वृत्ति है। यही सामाजिक सवेदना के लिए मानव को सहृदय बनाती है। रहस्यवाद का वास्तविक महत्व हृदय एव सहानुभूतिपूर्ण क्षणो को स्थायित्व देने मे है। 'रहस्यवाद आन्तरिकता को विश्व रूप मे, विश्व सवेदना मे, विश्व व्याप्त चेतना मे जगाता है। यदि समाजवाद के अन्तराल मे रहस्यवाद (आध्यात्मिक चेतना) भी अन्तर्निहित हो तो रहस्यवाद का उससे वैपरीत्य नही।'[१] रहस्यवाद की पुरातन भूमि आनन्दमयी मनुष्यता का सच्चिदानन्द स्वरूप है। परन्तु समय परिवर्तन एव सामाजिक अशाति के युग मे वही करुणाकर की करुणा की भूमि बन गयी तथा इसी के माध्यम से उस सच्चिदानन्द भूमि मे प्रविष्ट होकर इष्ट लाभ प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुत. आनन्द की प्राप्ति ही भारतीय सस्कृति का मुख्य एव ध्रुव ध्येय है। परन्तु उस आनन्द की प्राप्ति मे वीरता एव वीर रस को सहायक न मान कर सवेदना एव करुण रस को मान्यता दी गयी है। भारतीय कविता मे स्वय सेवक जैसी रक्षा एव सेवा का भाव अन्तर्निहित है जो मानवी चेतना को जाग्रत कर जीवित मृतको को जीवनदान देती है। छायावाद की कविता मे रीतिकालीन शृगारिकता एवं भक्ति काल की भक्ति मूलक प्रवृत्ति के मध्य मार्ग अनुराग को अपनाया गया है। उसमे मानव की 'अनुभूतियो एव अभिव्यक्तियो का सार सचय' हुआ है। इस प्रकार छायावाद ने मध्यकालीन शृगार काव्य से रसात्मकता तथा भक्तिकाल से आत्मा की तन्मयता लेकर आज की

---

१. 'सचारिणी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १४३।

हिन्दी कविता को सरसता प्रदान की है। छायावाद केवल काव्य कला ही नही है प्रत्युत् दार्शनिक अनुभूतियो से सम्बधित होने के कारण वह एक प्राण एव एक सत्य है। अतएव छायावाद श्रेष्ठतर आभिव्यक्ति है।

[१४] **प्रगतिवाद** · साहित्य मे जिसे प्रगतिवाद के नाम से विभूषित किया जाता है वह वस्तुत मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद है जिसका दूसरा नाम उपयोगितावाद भी है। ऐतिहासिक भौतिकवाद का तात्पर्य मनुष्य का विकास समाज की दिशा मे तथा समाज का इतिहास की दिशा मे होना है। यद्यपि पन्त जी ने ऐतिहासिक भौतिकवाद को मान्यता दी है परन्तु उनके काव्य मे एक समन्वयात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उनके साहित्य मे सौन्दर्यबोध की प्रवृत्ति तथा आध्यात्मिकता के भी दर्शन होते है। 'लौकिक सौन्दर्य और अलौकिक आनन्द की अभिन्नता के लिए कवि भौतिक और आध्यात्मिक दर्शन को सयोजित करता है। पृथ्वी और आकाश को समन्वय के क्षितिज मे मिलाता है।'[1] इस प्रकार पन्त जी ने ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा अध्यात्म दर्शन के कल्याणकारी पक्ष को ग्रहण कर दोनो का समन्वय किया है। द्विवेदी जी के विचार से प्रगतिवादी कवियो ने समाज का ऐतिहासिक समीक्षण एव निरीक्षण कर अपने काव्य मे उसी रूप को प्रतिबिम्बित किया। सामन्त युग के सदृश्य आज का युग भी पूजीवाद अथवा अर्थ प्रधान है। प्रगतिवाद अर्थोन्मुख है अतएव वह आर्थिक साम्यता के आधार पर ही मानव को मुक्ति प्रदान करने मे सचेष्ट है। प्रगतिवादियो की प्रमुख विशेषता यही है कि वह अपने यथार्थ से विमुख अथवा ऊपर नही उठ पाते हैं।

[१५] **कविता और कला** श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी की धारणा है कि कविता मे वस्तु जगत तथा स्वप्न जगत दोनो की ही बाते होती हैं। काव्य मे अपनी बातो के कहने के ढग को ही शैली कहते है। उसके तीन रूप मिलते है—अभिधा, लक्षणा और व्यजना, और इस कहने के ढग पर रचना की दो कोटियाँ हो जाती है—भावमय तथा सूक्तिमय। कविता न केवल मानव जगत मे व्याप्त है तथा उसमे चेतनता का सचार करती रहती है प्रत्युत् यह मानवेतर जगत तथा चराचर व्याप्त प्रकृति की मास है। कवि ने प्रकृति से उपमाओ का सकलन करके तथा मनुष्येतर प्रकृति से स्वय को सम्बद्ध करके अपने विश्वलोक को परिपूर्णता प्रदान की, जिसमे उसने प्रकृति के नाना रूपो से मानव जीवन की एकरूपता का प्रत्यक्षीकरण किया। कविता रस सयुक्त भावो से ही अनुप्राणित होकर वास्तविक कविता कहलाती है और इसका सम्बन्ध हृदय पक्ष से अभिन्न होता है। परन्तु जब भावो को मस्तिष्क से जोडने का प्रयत्न किया जाता है तो वह भाव न रह कर सूक्ति का रूप धारण कर लेते है। इस अवस्था मे कविता कला की वस्तु हो जाती है जिसमे चमत्कार की प्रधानता रहती है

१. 'ज्योति विहग', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २७२।

परन्तु हृदय प्रधान कविताएँ कोयल के सदृश्य मानव के अन्तर्जगत मे निरन्तर गान करती रहती है। हृदय प्रधान कविताएँ अपने सौन्दर्य का रहस्योद्घाटन करती रहती है तथा जड एव चेतन जगत् को सजीवता से सुस्पन्दित करके उन्हे प्राणवान् बना कर नवीन रूप शोभा प्रदान करती है। यह कविताएँ चिरस्थायी होती है जो हार्दिक भावो के माध्यम से आत्मा मे मधुरता घोलती रहती है। कवि अपने भावो को सुन्दरतम् रूप से व्यक्त करने के लिए कला का आश्रय लेता है। कविता मे कला के वाह्य उपकरण शब्द, छन्द और शैली आदि है। दूसरे शब्दो मे इन्हे भावो की वाह्येन्द्रिया भी कहा जाता है, परन्तु भाव स्वभाव से सम्बन्धित है। भाव का सूक्ष्म रूप कल्पना है जो कला का अन्त करण है। कल्पना मे केवल भावना की उडान ही नही उसमे विदग्धता का भी समावेश आवश्यक होता है। जिस प्रकार शरीर के वाह्य परिवर्तन पर भी आत्मा अमर रहती है उसी प्रकार काव्यकला के वाह्य उपकरणो मे परिवर्तन होने पर भी आत्मानुभूति चिरस्थायी होती है। इसके साथ ही वह पुरातन होते हुए भी नित्य नवीन है। श्री द्विवेदी जी की दृष्टि मे कला स्वय लक्ष्य न होकर लक्षण है, साध्य न होकर साधन है, वह अभिप्रेत नही प्रत्युत अभिव्यक्ति है। द्विवेदी जी के मत मे साहित्य मे कला का अर्थ मनोहर है अत जीवन के सत्य, शिव को कला ही सुन्दरता का आवरण देकर साहित्य के माध्यम से ससार के सम्मुख उपस्थित करती है। अतएव 'कला साहित्य का वाह्य रूप है जीवन उसका अन्त रूप। कला अभिव्यक्ति है, जीवन अभिव्यक्त। सुन्दर शरीर जिस प्रकार अन्तश्चेतना का नयनाभिराम प्रकाशन करता है उसी प्रकार कला साहित्य की जीवनमयी अन्तरात्मा की मनोरम अभिव्यक्ति करती है।'[१]

[१६] **गीति काव्य** द्विवेदी जी ने विभिन्न प्रसगो मे साहित्य के विविध रूपो का भी स्वरूप निर्दशित किया है। उनका विचार है कि गीति काव्य अथवा लिरिक कविता किसी युग का प्रतिनिधित्व नही करती है प्रत्युत यह 'कवि की हार्दिक रसार्द्रता पर निर्भर है।'[२] गीति काव्य मे काव्य साधना की अपेक्षा आत्म साधना की अधिक आवश्यकता होती है। गीति काव्य मे वस्तुत मानव स्वय को विस्मृत कर आत्मलीन हो जाता है, वह रस मात्र मे अपने अस्तित्व को विलीन कर देता है। उसका 'कवि हृदय गुजार रूप' हो जाता है। काव्य मे सगीत के सयोजन से ही गीति काव्य की सृष्टि होती है। सगीत के समावेश से काव्य अधिक रस स्पर्शी हो जाता है। काव्य मे लोक पक्ष होता है परन्तु ,सगीत अथवा गीति मे कवि का हृदय पक्ष स्फुरित होता है इसी से काव्य रसान्वित होता है।

[१७] **प्रगीत काव्य** द्विवेदी जी के विचार से गीति काव्य का ही एक

१. 'सचारिणी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८९-९०।
२. वही, पृ० ३१।

नवीन रूप प्रगीत काव्य है। पन्त जी ने इस प्रगीत काव्य की सृष्टि गीति और दृश्य की सयोजना से की है। पन्त जी की नवीन शैली का रूप उनकी 'वन वन उपवन' 'विहग पिच्छा', और 'जीवन का उल्लास' आदि कविताओ मे मिलता है। गीति के आदि चरणो के अन्त मे पुनरावृत्ति करके एक चित्र को रूपान्वित कर देना तथा उनमे हृदय के राग को आलोडित कर देना प्रगीत की प्रमुख विशेषता है। श्री द्विवेदी जी के मत मे गीति काव्य मे पुनरावृत्ति का स्थान जीवन मे स्मृति के सदृश्य है।

[१८] **मुक्तक काव्य** द्विवेदी जी का विचार है कि मुक्तक कविताओ मे साग रूपक निबन्ध का ही एक आलकारिक रूप है। उसके द्वारा एक सक्षिप्त भाव निबन्ध प्रस्तुत हो जाता है।'[१] निराला जी की कविताओ मे यह विशेषता स्पष्ट रूप से इगित हुई है—विशेष रूप से उन कविताओ मे जो मुक्तक हैं। उनकी तुलना मे पन्त की कविताओ से पृथक एक मुक्तक मे एक भाव की पूर्णता है जब कि पन्त के काव्य मे एक मुक्तक मे अनेक भावो की अभिव्यजना विद्यमान है। इस दृष्टि से निबन्धनात्मकता का गुण निराला के काव्य मे विधान है जब कि पन्त के काव्य मे उसका अभाव है। 'उनके मुक्तक के आकाश मे उनके भाव नक्षत्रो की भाति विकीर्ण हैं, उनकी विविधता मे ही उनका सौन्दर्य है, उनमे काव्योचित का प्रकाशन है, निबन्धोचित प्रतिपादन नही।'[२]

हिन्दी आलोचना के विकास मे द्विवेदी जी का योगदान

प्रस्तुत अध्याय मे शातिप्रिय द्विवेदी के आलोचनात्मक कृतियो के आधार पर इस क्षेत्र मे उनकी देन का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। द्विवेदी जी का आलोचना साहित्य विभिन्न पुस्तकाकार कृतियो के अतिरिक्त अनेक स्फुट निबन्धो के रूप मे भी उपलब्ध है। यहाँ पर इन सभी रचनाओ को दृष्टिगत रखते हुए मूलत 'हमारे साहित्य निर्माता, 'ज्योति विहग', 'सचारिणी', 'कवि और काव्य' तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' को आधार बनाया गया है। इन कृतियो मे द्विवेदी जी के सैद्धान्तिक चिन्तन का समग्र स्वरूप प्रस्तुत करने वाली रचनाएँ भी हैं तथा उनके व्यावहारिक समीक्षा से सम्बन्धित सिद्धान्तो का परिचय देने वाली राचनाएँ भी। यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख करना असगत न होगा कि शुक्लोत्तर युग मे आत्म व्यजना प्रधान अथवा आत्मपरक और वैयक्तिकता प्रधान आलोचना के क्षेत्र मे द्विवेदी जी का योगदान विशिष्ट रूप मे मान्य किया जा सकता है। जैसा कि प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ मे ही सकेत किया गया है द्विवेदी जी की आलोचना क्षेत्रीय महत्ता का स्वीकरण आधुनिक युग के डा० नगेन्द्र जैसे मूर्धन्य आलोचको ने भी किया है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने

---

१. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८९।
२. वही, पृ० ८९।

अपने आलोचना साहित्य मे हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारो का समग्र रूपात्मक मूल्याकन करते हुए उनकी पृष्ठभूमि भी विवेचित की है। महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, राय कृष्ण दास, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा महादेवी वर्मा आदि प्रतिनिधि लेखको और कवियो की आलोचना उन्होने अपनी 'हमारे साहित्य निर्माता' शीर्षक कृति मे करते हुए इस तथ्य की ओर सकेत किया है कि हिन्दी भाषा और साहित्य के सर्वक्षेत्रीय योगदान मे इन महानुभावो का अविस्मरणीय योग है।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने अपने द्वितीय आलोचनात्मक ग्रन्थ 'ज्योति विहग' मे आधुनिक हिन्दी काव्य के सर्वप्रमुख विचारान्दोलन छायावाद के एक प्रतिनिधि और जीवन्त कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य व्यक्तित्व का विस्तृत विश्लेषण किया है। इसमे हिन्दी कविता के विकास के अन्तर्गत आधुनिक युगीन कविता के विविध रूपो का परिचय है। शब्दो का व्यक्तित्व, चित्रभाषा, चित्रराग, शास्त्रीय छन्द, मुक्त छन्द, गीति काव्य तथा अलकार आदि काव्य तत्वो के आधार पर उन्होने पन्त काव्य का सम्यक् विश्लेषण किया है। इस प्रसग मे उन्होने अनेक महत्वपूर्ण स्थापनाएँ की हैं जो आलोचना के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी कही जा सकती है। साथ ही सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् के परपरागत दृष्टिकोण से भी उन्होने पन्त काव्य का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया है। सामान्यत श्री सुमित्रानन्दन पन्त हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे एक कवि के रूप मे ही मान्यता प्राप्त हैं। परन्तु द्विवेदी जी ने अपनी इस रचना मे एक कथाकार के रूप मे भी पन्त के व्यक्तित्व का निरूपण किया है। पुस्तक के अन्तिम खड मे लेखक ने आदर्श और यथार्थ की निहिति के विचार से पन्त के काव्य का सम्यक् विश्लेषण करते हुए उनकी उपलब्धियो की ओर सकेत किया है। 'सचारिणी' मे शातिप्रिय द्विवेदी का आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपेक्षाकृत प्रौढता लिए हुए मिलता है। इसमे उन्होने 'भक्तिकाल की अन्तश्चेतना', 'ब्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि', 'शरद् साहित्य का औपन्यासिक स्तर', 'कला मे जीवन की अभिव्यक्ति', 'कला और वस्तु जगत', 'भारतेन्दु युग के बाद की हिन्दी कविता', 'नवीन मानव साहित्य', 'छायावाद का उत्कर्ष', 'हिन्दी गीति काव्य', 'कवि का आत्म जगत' और 'प्रकृति का काव्यमय व्यक्तित्व' आदि निबन्धो मे हिन्दी के गद्य और पद्य साहित्य का विस्तृत सर्वेक्षण करने के साथ-साथ अन्य भाषाओ के साहित्य पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस सन्दर्भ मे भी उन्होने अपनी अनेक मौलिक स्थापनाएँ की है जिनका परिचय ऊपर दिया जा चुका है। लेखक ने साहित्य को उन मानव मूल्यो का वास्तविक प्रसारक माना है जो जीवन के सास्कृतिक विकास का उत्कर्ष करते हैं। 'कवि और काव्य' मे द्विवेदी जी ने हिन्दी की प्राचीन और नवीन कविता पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इसमे 'काव्य चिन्तन', 'नूतन और पुरातन काव्य', 'मीरा

का तन्मय सगीत', 'प्राचीन हिन्दी कविता', 'आधुनिक हिन्दी कविता', 'छायावाद', 'रहस्यवाद और दर्शन', 'कविता मे अस्पष्टता', 'नवीन काव्य क्षेत्र मे महिलाएँ', 'ठेठ जीवन और जातीय काव्य कला', 'कवि की करुण दृष्टि', 'कवि का मनुष्य लोक', 'वेदना का गौरव', 'काव्य की लाछिता कैकेयी' और 'काव्य की उपेक्षिता उर्मिला' आदि शीर्षको के अन्तर्गत लेखक ने साहित्य के विविध विकास युगो की प्रमुख रचनाओ और समस्याओ की पृष्ठभूमि मे परम्परानुगामिता और आधुनिकता का विवेचन किया है। इनसे लेखक के व्यापक अध्ययन और जागरूक दृष्टिकोण का भी परिचय मिलता है जो एक सफल आलोचक के आवश्यक गुण है। 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' मे 'एक साहित्यिक वार्तालाप', 'समय और हम', 'नई सर्जना', 'अज्ञेय जी की पूर्वा', 'प्रेम और वात्सल्य के कवि माखनलाल', 'राष्ट्र कवि गुप्त जी का काव्य योग', 'प्रसाद का साहित्य', 'कामायनी के वाद', 'छायावाद', 'माधवन जी का रचनात्मक चिन्तन' तथा 'सामयिक कथा साहित्य' आदि शीर्षको के अन्तर्गत साहित्य के मूल्याकन के शास्त्रीय मानदडो से पृथक् उनकी आधुनिक कसौटी का स्वरूप निदर्शन किया है। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है इन कृतियो मे मुख्य रूप से ऐतिहासिक, शास्त्रीय, तुलनात्मक, छायावादी, तथा प्रगतिवादी आलोचना पद्धतियो का समावेश है जो द्विवेदी जी के रचना काल की प्रमुख आलोचनात्मक प्रवृत्तिया है। इन प्रवृत्तियों के अन्य आलोचको से द्विवेदी जी मे प्रमुख अन्तर यह है कि उनका दृष्टिकोण आत्मपरक है। इसका एक कारण यह है कि भावुक, सहृदय, रसाल और प्रबुद्ध आलोचक होने के कारण द्विवेदी जी के आलोचनात्मक दृष्टिकोण मे वह सकुचितता नही है जो प्राय. आलोचना को सीमित और दोषपूर्ण बना देती है। उन्होने साहित्य के अन्तरग और वहिरग के सम्यक् परीक्षण के साथ जहाँ एक ओर आलोच्य साहित्य मे रस, छन्द, अलकार, कल्पना, भाव और भाषा के परम्परागत उपकरणो का विश्लेषण किया है तो दूसरी ओर अनुभूत्यात्मकता, सवेदनशीलता, बौद्धिकता, दार्शनिकता एव सास्कृतिक चेतना के निदेशक सूत्रो का भी परीक्षण किया है। काव्य मे रस तत्व के विषय मे उन्होने शृगार को आदि रस मानते हुए उसके माधुर्य गुण की ओर सकेत किया है। सजग शब्द योजना और भावो की गति के नियोजन के लिए सम्यक् छन्द योजना को उन्होने सफल काव्य के लिए आवश्यक बताया है। काव्य मे छन्द तत्व के शास्त्रीय महत्व के स्वीकरण के साथ-साथ द्विवेदी जी ने मुक्तक छन्दो को भी अनुमोदित किया है। उनके विचार से अलकार काव्य मे अभिव्यजित भावो के सुस्पष्ट नियोजन का एक प्रमुख साधन है जिसका वास्तविक सम्बन्ध सौन्दर्य बोध से है, जो केवल वाणी की ही शोभा नही वरन् भावाभिव्यक्ति मे भी सहायक होते है। भाषा को उन्होने भावाभिव्यक्ति का साधन मान कर उसके विविध रूपो का विवेचन किया है। काव्य मे कल्पना और अनुभूति के सन्तुलन के सन्दर्भ मे उन्होने इनकी चेतन

स्थिति का निर्देश किया है। उनका मत है कि मूलत. मनुष्य अनुभूतिमय प्राणी है। इसलिए काव्य मे अन्तर्वेदना के दर्शन और करुण अनुभूति का ही व्यक्तीकरण होता है। इसके साथ ही द्विवेदी जी ने छायावादी काव्यान्दोलन के सन्दर्भ मे सास्कृतिक चेतना का भी निरूपण किया है। आधुनिक युग की प्रमुख विचारधाराओ के विवेचन के सन्दर्भ मे द्विवेदी जी ने आदर्श और यथार्थ का भी विवेचन किया है। इस प्रसग मे उन्होने इन शब्दो का प्रयोग व्यापक अर्थों मे करते हुए आदर्शवाद को मानव के प्रेम, सहानुभूति, करुणा, ममता आदि मानवीय गुणो का प्रतीक माना है जो मनुष्यता की तरह विस्तृत और आत्मा की तरह व्यापक है। रहस्यवाद पर विचार करते हुए द्विवेदी जी ने उसकी पार्थिव और अपार्थिव कोटियो का उल्लेख किया है। उनका मत है कि छायावाद मे आत्मा का आत्मा के साथ सन्निवेश और एक जीवन की दूसरे जीवन मे अभिव्यक्ति है। प्रगतिवाद के विषय मे विचार करते हुए उन्होने उसे मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद और उपयोगितावाद का ही दूसरा रूप बताया है। कविता और कला के सन्दर्भ मे उन्होने काव्य का क्षेत्र वस्तु जगत और स्वप्न जगत को माना है। कला उनके विचार से साहित्य की जीवनमयी अन्तरात्मा की मनोरम अभिव्यक्ति है। विभिन्न साहित्य रूपो मे गीति काव्य और प्रगीत काव्य को उन्होने एक रूपात्मक निर्दिष्ट किया है। इस प्रकार से द्विवेदी जी का आलोचनात्मक दृष्टिकोण हिन्दी आलोचना के समकालीन रूढ और शास्त्रीय स्वरूप से पृथक है तथा अशास्त्रीय अथवा आधुनिकता वादी आलोचनात्मक दृष्टि की उच्छृ खलता से भी रहित है। वस्तुत वह आत्म व्यजना प्रधान अथवा आत्मपरक आधार पर आलोचना की एक ऐसी दृष्टि प्रस्तुत करता है जिसमे शास्त्रीय और आधुनिक दृष्टियो का समन्वय है। इस रूप मे हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की उपलब्धियाँ विरल है।

शांतिप्रिय द्विवेदी का निबन्ध साहित्य

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे यह सकेत किया जा चुका है कि शातिप्रिय द्विवेदी के साहित्य मे उनकी निबन्ध कृतियो का भी विशिष्ट स्थान है। उनकी निबध कृतिया विषयगत विस्तार, रचनात्मक उत्कृष्टता तथा वैचारिक परिपक्वता की दृष्टि से समान महत्व रखती है। 'जीवन यात्रा', 'साहित्यकी', 'युग और साहित्य', 'सामयकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनायिका', आधान', 'वृन्त और विकास', 'समवेत' एव 'परिक्रमा' आदि निबन्ध सग्रह लेखक की रचनात्मक क्रियाशीलता का द्योतन करने के साथ-साथ बहुक्षेत्रीय चिन्तन के भी परिचायक हैं। उनमे मुख्य रूप से विचारात्मक, आलोचनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक, सस्मरणात्मक तथा सामयिक विषयो पर लिखे गये निबन्ध सगृहीत है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से शातिप्रिय द्विवेदी का रचना काल हिन्दी निबन्ध के इतिहास मे शुक्लोत्तर युग से सम्बन्धित है। परिणामत. उनकी निबन्धात्मक रचनाओ पर जहाँ एक ओर समकालीन वैचारिक जागरूकता लक्षित होती है, वहाँ दूसरी ओर उन पर पूर्ववर्ती प्रवृत्तियो का भी प्रभाव स्पष्ट है। इस अध्याय मे शातिप्रिय द्विवेदी की प्रमुख निबन्ध कृतियो के आधार पर हिन्दी निबन्ध की विकासात्मक पृष्ठभूमि मे उनकी निबन्ध क्षेत्रीय उपलब्धियो का विश्लेषणपरक मूल्याकन प्रस्तुत किया जा रहा है।

शातिप्रिय द्विवेदी की निबन्ध कृतियो का परिचय और वर्गीकरण

[१] **जीवन यात्रा** आधुनिक औद्योगिक युग मे मानव स्वय मशीन सदृश निर्जीव बनता जा रहा है। ऐसे युग मे शातिप्रिय द्विवेदी का निबन्ध सग्रह 'जीवन यात्रा' मानव का उसके सघर्षमय जीवन मे पथ प्रदर्शन करता है। इसमे मानव जीवन के विविध पक्षो को दृष्टि मे रख कर जीवन की सरचनात्मक एव दार्शनिक विवेचना हुई है। इस रूप मे यह दार्शनिक और वैचारिक निबन्धो का सकलन है। 'जीवन क्या है ?' शीर्षक निबन्ध मे एक डैनिश कहानी को शब्द चित्र के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। जीव जिस वातावरण मे रहता है और जैसा भी अनुभव करता है, उसी को वास्तविक जीवन मान बैठता है। इस प्रकार जीव जगत मे अवस्थित विभिन्न कोटियो के प्राणी जीवन को विभिन्न दृष्टियो से देखते एव उसी रूप मे उनका अंकन करते हैं। 'यात्रा' दार्शनिकता से पूर्ण निबन्ध है। इसमे समस्त मानव को एक अज्ञात लोक का वासी मानकर एक पथिक के रूप मे उसकी परिकल्पना की गयी है। 'जीवन का लक्ष्य' निबन्ध मे मनुष्य को अपने जीवन के कर्मक्षेत्र मे प्रवेश करते समय लक्ष्य के निर्धारण

की आवश्यकता की ओर सकेत है। बिना लक्ष्य निर्धारण के मनुष्य अधे के सदृश इस ससार मे भटकता ही रह जाता है। लक्ष्य निर्धारण के उपरान्त उसकी सिद्धि के लिए लगन एव मानसिक एकाग्रता की अत्यधिक आवश्यकता होती है। 'मृग तृष्णा' शीर्षक दार्शनिकता से पूर्ण वैचारिक लेख मे लेखक ने मानव की महत्वाकाक्षा की ओर निर्देश किया है, जो स्वय अपने जीवन को उसकी ज्वाला मे प्रज्ज्वलित करता है। मानव के अन्दर की ये महत्वाकाक्षाएँ एव उनसे उत्पन्न अतृप्ति उसे कभी भी शात नही रख सकती। वह उसमे एक असन्तुष्टि की भावना भर देती हैं। मानव मे तृष्णाओ एव महत्वाकाक्षाओ का अन्त कभी नही होता। इसीलिए प्रसाद की दृष्टि मे महत्वाकाक्षा का मोती निष्ठुरता के सीप मे रहता है। महत्वाकाक्षा की पूर्ति न होने पर मानव मे निष्ठुरता, नृशसता, जघन्यता और निर्ममता आदि अवगुणो का वास हो जाता है। 'आत्म चिन्तन' शीर्षक दार्शनिक लेख मे लेखक ने मानव को आत्म केन्द्रित होने की प्रेरणा दी है। आज मनुष्य अपने अशान्त एव असतोषपूर्ण जीवन से त्राण पाने के लिए ससार के वाह्य उपकरणो के आश्रय मे जाता है, लेकिन वस्तुत वह शाति क्षणिक ही होती है, उसे चिर शाति नही प्राप्त होती। उसके लिए मानव अपने आन्तरिक स्थल से ही सुख शाति प्राप्त कर सकता है। 'प्रोत्साहन' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने मानव को स्वय अपनी क्षमता पर विश्वास करते हुए आगे बढने के लिए प्रेरित किया है। 'हसता जीवन' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने जीवन की सफलता के लिए हसी को महत्वपूर्ण माना है। जीवन के कठिनतम क्षणो मे भी हसी का महत्व है। 'वशीकरण वाणी' मे लेखक ने मधुर वाणी को महत्ता प्रदान की है। प्राचीन दृष्टान्तो मे महा-पुरुषो के उदाहरण देकर उन्होने कुवाक्य एव कुवाणी के प्रभाव को स्पष्ट किया है। 'नवयुवक और स्वावलम्बन' वैचारिक निबन्ध मे स्वावलम्बन को पुरुषत्व का मुख्य लक्षण माना है। अपनी जीविकोपार्जन तथा आत्म निर्भरता के लिए मानव विभिन्न माध्यमो को अपनाता है। जिसमे स्वावलम्बन की यह प्रवृत्ति नही होती वह दूसरो पर आश्रित रह कर परावलम्बी बन जाते है। उनकी मौलिक क्षमता का ह्रास हो जाता है। वस्तुत. स्वावलम्बन एक दैवी गुण है जिसे ग्रहण करके ही मानव जीवन के युद्ध क्षेत्र मे विजयी बन सकता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही मानव को स्वाव-लम्बन की शिक्षा के साथ उसे व्यावहारिक कार्य जगत मे अवतरित करना है।

[२] **'साहित्यिकी'** प्रस्तुत साहित्यिक निबन्ध सग्रह मे लेखक ने यद्यपि वैचारिक, सस्मरणात्मक, भावात्मक तथा आलोचनात्मक निबन्धो का चयन किया है, परन्तु इसकी अधिकाश रचनाओ मे एक भावुक कवि हृदय ही अधिक मुखरित हुआ है। 'प्रेमपूर्ण मानवता की पुकार' मे लेखक ने सहार तथा पाशविक बर्बरता से ग्रस्त मानव के प्रेममय साम्राज्य की कल्पना तथा कामना को प्रस्तुत किया है। 'शरद की औपन्यासिक सहृदयता' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने शरद के उपन्यासो मे उनकी सहृदयता को विवेचित किया है। 'मानव समाज की एक समस्या—'अन्ना'

शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक के टाल्स्टाय के विश्व विख्यात उपन्यास की प्रधान पात्री 'अन्ना' के विश्लेषण के माध्यम से नारी जीवन की धार्मिक, सामाजिक आदि समस्याओ को स्पष्ट किया है। 'ब्रजभाषा के माधुर्य विलास' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे ब्रजभाषा साहित्य मे सगुणोपासक भक्त कवियो के माधुर्य भाव विलास का चित्राकन है जिसके माध्यम से कवि प्रणयानन्द की प्राप्ति के साथ उस अनिर्वचनीय ब्रह्मानन्द की उपलब्धि भी चाहते है। 'अब पलको मे सौन्दर्य और प्रेम' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने सौन्दर्य भावना का विस्तृत विवेचन किया है। 'औपन्यासिकता पर एक दृष्टि' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने टाल्स्टाय को एक आदर्शवादी विचारक की भाति देखते हुए भी उनके उपन्यास 'पुनर्जीवन' के आधार पर उनकी वैचारिक दृष्टि को प्रत्यक्ष किया है। 'कविता और कहानी' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने साहित्य की इन दोनो विधाओ को सखा अथवा शैशवावस्था से मित्ररूप मे माना है जो आज की साहित्यिक प्रकृति तथा मानव हृदय की स्वतन्त्र प्रवृत्ति के कारण अलग हो गयी हैं। 'काशी के साहित्यिक हास्य रसिक' शीषक आलोचनात्मक लेख मे लेखक ने आध्यात्मिक पृष्ठभूमि मे शिव के जीवन वृत्त तथा उनके कृत्यो को प्रस्तुत करते हुए काशी मे भग मे डूबी हास्य रस की तरगो का अवलोकन किया है। यही कारण है कि काशीवासी साहित्य प्रारम्भ से अब तक उसी एक ही तरग मे लहरा रहे हैं। लेखक ने गोस्वामी तुलसीदास, कबीर आदि के नामो का उल्लेख करते हुए भारतेन्दु जी के युग एव उसके उपरान्त के हास्य लेखको का उल्लेख करते हुए उनके दृष्टातो को प्रस्तुत किया है। 'भारतेन्दु के जीवन पर एक दृष्टि' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने उनके बचपन की प्रतिभा, शिक्षा, शाहखर्ची की आदत, दानशीलता, अनूठी व्यापारिकता, आकृति और प्रकृति, सामाजिक और राष्ट्रीय विचार, जनता और सरकार मे सम्मान, भारतेन्दु की उपाधि, चन्द्र मे कलक, तथा 'प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रहि जायेगी' आदि शीर्षको के अन्तर्गत उनके जीवन मे घटित दृष्टातो का उल्लेख करते हुए उनका परिचय दिया है। 'भारतेन्दु के साहित्यिक हास्य' शीर्षक लेख मे द्विवेदी जी ने भारतेन्दु की उपाधि मे हास्य रूप का दृष्टात देते हुए उनकी 'परिहासिनी' पुस्तक से अनेक चुटकुलो को उद्धृत किया है जो सामाजिक प्रथाओ, ब्राह्मणो की धार्मिक व्यवस्था तथा पाश्चात्य सजधज आदि से विशेष रूप से सम्बद्ध है। 'समालोचना की प्रगति' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने आधुनिक गद्य के विकास मे उसकी एक विधा समालोचना के क्रमिक विकास की ओर दृष्टिपात किया है। 'प्रवास' शीर्षक भावात्मक निबन्ध मे लेखक ने दिल्ली मे हुए साहित्य सम्मेलन मे स्वय के जाने का चित्रण करते हुए रेल यात्रा का सजीव सस्मरण प्रस्तुत किया है। 'हमारे साहित्य का भविष्य' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने मध्य युग के अभिशाप को वर्तमान मे देखा तथा उसे चित्रित किया है। 'महापथ के पथिक प्रसाद' शीर्षक सस्मरणात्मक निबन्ध मे लेखक ने जयशकर प्रसाद जी से स्वय के परिचय को

स्पष्ट करते हुए प्रसाद के जीवन की भावात्मक झाकी प्रस्तुत की है। 'गोदान और प्रेमचन्द' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे प्रेमचन्द के अन्तिम उपन्यास 'गोदान' की औपन्यासिक कला की दृष्टि से आलोचना प्रस्तुत की गयी है। 'सास्कृतिक कवि मैथिलीशरण' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने गुप्त जी के भारतीय सस्कृति के प्रति प्रेम को प्रत्यक्ष किया है। 'साकेत मे उर्मिला' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने गुप्त जी के प्रबन्ध काव्य 'साकेत' की नायिका उर्मिला के चरित्र के दो रूपो—विरहिणी रमणी तथा कल्याणकारी नारी—को चित्रित किया है। 'गार्हस्थिक रचनाकार सियारामशरण' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे श्री मैथिलीशरण गुप्त के अनुज श्री सियारामशरण गुप्त का द्विवेदी युग के साहित्य मे योगदान एव उनकी प्रतिमा को स्पष्ट किया गया है। 'एकान्त के कवि मुकुटधर' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे प्रसाद जी के समीपवर्ती, द्विवेदी युग तथा छायावाद युग के मध्यवर्ती कवि श्री मुकुटधर के काव्य विश्लेषण तथा उनके प्रकृति एव सौन्दर्य के प्रति अनुराग को स्पष्ट किया है। 'गद्यकार निराला' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के गद्य रूपो को विश्लेषित किया है। 'प्रगतिशील कवि पन्त' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे एक कोमल, सुमधुर गीति विहग कवि पन्त के भावात्मक दृष्टिकोण को प्रत्यक्ष करते हुए युग प्रभाव के कारण प्रगतिशील भावो को स्पष्ट किया है। 'नीहार मे करुण अध्यात्म की कवि महादेवी' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने विराट् विश्व वीणा मे अपनी हृतत्री को मिलाने वाली कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य सग्रह 'नीहार' मे उनकी करुण अध्यात्म भावना को स्पष्ट किया है। 'एक अतीत स्वप्न' शीर्षक भावात्मक निबन्ध मे आधुनिक युग की विडम्बनाओ के बीच मानवता के लिए गाधीवाद और साम्यवाद की उपयोगिता को स्पष्ट किया गया है। 'कवीन्द्र—एक बाल्य झलक' शीर्षक भावात्मक निबन्ध मे लेखक ने रवीन्द्रनाथ की बाल्यावस्था की कुछ रोचक घटनाओ का परिचय दिया है।

[३] **युग और साहित्य** . श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने 'युग और साहित्य' मे युग की विभिन्न परिस्थितियो का दिग्दर्शन करते हुए साहित्य के मूल्याकन के दृष्टिकोण की व्याख्या की है। लेखक ने इसमे 'युग द्वन्द्वो और तद्जनित भावी सम्भावनाओ को अपने साहित्य के माध्यम से उपस्थित करने का प्रयत्न किया।'[१] इसमे लेखक ने साहित्यिक, सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियो का निरूपण किया है। यह पुस्तक द्वितीय विश्व युद्ध के समय मे लिखी गयी थी अतएव इसमे उस समय के वास्तविक इतिहास की पृष्ठभूमि भी स्पष्ट हुई है। इस सग्रह के 'मखबिन्दु' शीर्षक विचारात्मक निबन्ध मे लेखक ने उन्नीसवी शताब्दी से पूर्व के परिवर्तनो के क्रम को आकने के साथ उसके मूल्याकन के मापदड को प्रस्तुत करते हुए आधुनिक युग की

३ 'युग और साहित्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३।

तीव्रगामी रूप से परिवर्तनशील स्थितियो का विवेचन किया है। 'साहित्य के विभिन्न युग' शीर्षक निबन्ध मे वर्तमान साहित्य के दो युगो—भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग—की विवेचना सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक वातावरण की पृष्ठभूमि मे की गयी है। 'युगो का आदान' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने अतीत के विभिन्न युगो की आगे आने वाले युग को देन पर विचार किया है। प्रत्येक युग अपने विगत युग से कुछ ग्रहण करता है तो अपने भावी युग के लिए वह कुछ देकर भी जाता है। इसी आदान प्रतिदान से नव युग भविष्य की ओर बढते जाते है। लेखक ने इन युगो का आदान प्रतिदान साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया है। 'प्रगति की ओर' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने साहित्य की पौराणिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे काव्य के अन्तर्गत खड काव्यो तथा महाकाव्यो का उल्लेख करते हुए आधुनिक युग मे मुक्तक काव्यो तथा गीति काव्य की प्रमुखता पर बल दिया है। 'हिन्दी कविता मे उलट फेर' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे हिन्दी काव्य की विभिन्न परिवर्तनशील प्रवृत्तियो का अकन करते हुए उसमे व्यजित मानव जीवन के वास्तविक चित्र को विवेचित किया गया है। 'इतिहास के आलोक मे' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने सन् ४० मे हुए सत्याग्रह से पूर्व की साहित्यिक, राजनीतिक तथा सामाजिक गति विधियो का निरूपण किया है। 'वर्तमान कविता का क्रम विकास' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग के कवियो और विशेषत· श्रीधर पाठक, जयशकर प्रसाद तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि की रचनाओ के दृष्टात देते हुए उसकी मुख्य प्रवृत्तियो का उल्लेख किया है। 'छायावाद और उसके बाद' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि सन् १९४० तक छायावाद काव्य की प्रधानता रही। उसके उपरात छायावाद के भीतर से ही समाजवाद का आविर्भाव होने लगा। फलत इस काल के हिन्दी काव्य मे प्रगतिवाद की बोली गूजने लगी। 'कथा साहित्य का जीवन पृष्ठ' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने आधुनिक युग के गद्य साहित्य के विकास की पूर्व पीठिका मे सामाजिक, राजनीनिक तथा धार्मिक वातावरण के योग को चित्रित किया है। 'प्रसाद और कामायनी' शीर्षक निबन्ध मे जयशकर प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' की विवेचना करने के साथ ही प्रसाद की साहित्यिक उपलब्धियो पर भी विचार किया गया है। इसी सन्दर्भ मे लेखक ने प्रसाद साहित्य पर पडे प्रभावो एव उनकी प्रवृत्तियो का भी मूल्याकन किया है। 'प्रेमचन्द और गोदान' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने प्रसाद और प्रेमचन्द की कला तथा उनके साहित्य मे अभिव्यजित युगो का मूल्याकन करते हुए उनकी तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है। 'निराला' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने 'निराला' के सपूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व का मूल्याकन किया है। 'पन्त और महादेवी' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने पन्त और महादेवी को खडी बोली के सार अश रूप मे मान्य किया है।

[४] **सामयिकी :** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की निबन्ध पुस्तक 'सामयिकी' में

सस्कृति और प्रगति का समन्वित रूप मिलता है। इसमे युग की सार्वजनिक विचार-धाराओ और साहित्यिक प्रवृत्तियो का विवेचन हुआ है। 'सामयिकी' के सर्वप्रथम निबन्ध 'युग दर्शन' मे लेखक की सामयिक निबन्धो की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। 'रवीन्द्रनाथ' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे 'ऐश्वर्य और कवि तत्व का सम्मिलन', 'जीवन निर्माण के लिए माडल', 'महात्माजी से मतभेद', 'जीवन और कला का समन्वय' आदि शीर्षको के अन्तर्गत लेखक ने कवीन्द्र रवीन्द्र के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके तथा गाधी जी के माडल सेवा गाव तथा शातिनिकेतन का स्वरूप निर्दशित किया है। 'कवि, कलाकार और सन्त' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने वर्तमान भारतीय साहित्य के त्रिदेव रवीन्द्र, शरद और गाधी के विचारो एव सिद्धान्तो का तुलनात्मक विवेचन किया है। 'शरच्चन्द्र शेष प्रश्न' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने शरत्चन्द्र के उपन्यास 'शेष प्रश्न' की आलोचना प्रस्तुत की है। लेखक ने इसे सरस रोचक कथा न कह कर 'जीवन का अकगणित' कहा है। उनकी दृष्टि मे यह उपन्यास उच्च कोटि के बौद्धिक कलाकारो के लिए है। 'जवाहर-लाल एक मध्य बिन्दु' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लेखक ने पडित जवाहरलाल नेहरू के विचारो एव सिद्धान्तो का विवेचन उनकी आत्मकथा 'मेरी कहानी' के आधार पर किया है। 'हिन्दी कविता की पट भूमि' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने खडी बोली की कविता मे हुए अनेक परिवर्तनो तथा सामयिक वातावरण से प्रभावित उसके विविध रूपो को स्पष्ट किया है। 'शुक्लजी का कृतित्व' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जीवन परिचय प्रस्तुत करते हुए साहित्य के क्षेत्र मे उनकी बहुमुखी प्रतिभा से युक्त व्यक्तित्व का विवेचन किया है। 'प्रगतिवादी दृष्टिकोण' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने अपने प्रगतिवादी दृष्टिकोण के प्रति-पादन के साथ अन्य साहित्यिको के भी विचार प्रस्तुत किए हैं। 'छायावादी दृष्टिकोण' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने अपने छायावादी विचारो के प्रकटीकरण के साथ छायावाद के यथार्थ व्यक्तित्व को भी अकित किया है। 'हिन्दी साहित्य' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने द्वितीय विश्व युद्ध तथा उसके उपरान्त के अणु युग मे हिन्दी साहित्य के क्रमिक विकास को स्पष्ट करते हुए उसके विभाजन, साहित्यिको की प्रतिभा, एव उनकी साहित्य मे वास्तविक देन तथा साहित्य मे उनके महत्व को स्पष्ट किया है। 'भविष्य पर्व' शीर्षक भावात्मक निबन्ध मे चेतन प्रकाश की अमिट रेखा बापू के विचारो को प्रकट किया है, जो इस भयाक्रान्त युग मे शाति के द्योतक है।

[५] **धरातल** . श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने अपने 'धरातल' शीर्षक निबन्ध संग्रह मे यह सकेत किया है कि सर्वोदय का प्रागण धरातल मे निवास करने वाला लोक जीवन है। गाधी के रामराज्य की स्थापना का आधार यही धरातल है। इस सग्रह के 'जीवन दर्शन' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने मानव जीवन के दर्शन

को निरूपित किया है। 'रोटी और सेक्स' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लेखक ने आधुनिक युग की प्रमुख समस्या—रोटी और मानव की नैसर्गिक प्रवृत्ति सेक्स—को स्पष्ट करते हुए उनके ऐतिहासिक स्वरूप और कारणो पर प्रकाश डाला है। 'साइकिल, रिक्शा और एक्का' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने रिक्शा के आगमन का चित्र तथा एक्के की राह मे अवरोधक रूप को स्पष्ट करते हुए समसामयिक युग मे पूजीवाद तथा उससे व्याप्त समाज एव मानवीय क्षेत्रो मे जडता को स्पष्ट किया है। 'किसान और मजदूर' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने इन दोनो का अन्तर स्पष्ट करते हुए बताया है कि 'प्रकृति के सपर्क मे, पृथ्वी की स्वाभाविक मिट्टी मे ग्राम मनुज जब अपने श्रम का बीज बोता है तब वह कहलाता है किसान। वही जब हल बैल, अन्न वस्त्र और लगान की कमी से नगरो मे आकर अपनी श्रम शक्ति का क्रय विक्रय करता है तब हो जाता है मजदूर।"[1] 'नैतिक हिंसा' शीर्षक वैचारिक लेख मे लेखक ने विश्व मे हुई नशेबन्दी की असफलता के कुछ कारणो पर प्रकाश डाला है। नैतिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से वस्तुत यह उपयोगी ही था, लेकिन कानूनी नियत्रण के होते हुए भी शराब बन्दी का यह प्रयत्न निष्फल हुआ है। 'दूसरे महायुद्ध के बाद' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लेखक ने दूसरे महायुद्ध के बाद शीघ्रातिशीघ्र परिवर्तित होती हुई सामाजिक प्रवृत्तियो तथा अकाल बाढ पीडितो के साथ महायुद्ध से व्याप्त वीभत्स समस्याओ का उल्लेख किया है। 'प्रत्यावर्तन—श्रम धर्म की ओर' शीर्षक लेख मे लेखक ने आधुनिक भारत की समसामयिक समस्या श्रम और अर्थ को स्पष्ट करते हुए आधुनिक अर्थशास्त्र प्रणाली के परिवर्तन को महत्व दिया है। 'टाल्स्टाय की श्रम साधना' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने टाल्स्टाय के श्रम से सम्बन्धित विचारो को प्रस्तुत किया है। 'साहित्यिक सस्थाओ का गन्तव्य' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भारत मे हुई दो चीजो की भरमार की ओर सकेत किया है जो सस्थाएं तथा पत्र पत्रिकाएँ है। लेखक की दृष्टि मे इनका प्रादुर्भाव किसी स्वस्थ जागृति के लिए नही प्रत्युत् धन के अतिरेक से निराधार बुद्धिजीवियो के आर्थिक विस्तार के कारण हुआ है। 'जन सस्कारिता' शीर्षक सामाजिक निबन्ध मे लेखक ने भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्र के सास्कृतिक विकास की योजनाओ पर विचार किया है। 'भाषा' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने भाषा के उद्गम एव विकास का विश्लेषण किया है। 'साम्प्रदायिकता' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने आधुनिक युग को ब्रिटिश सरकार की देन तथा समाज पर उसके प्रभाव के साथ मानव के बौद्धिक विकास, उसकी स्वार्थलोलुपता आदि की भी विवेचना की है। 'तुलसीदास का सामाजिक आदर्श' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने तुलसीदास के मानस जगत को स्पष्ट करते हुए उनके सामाजिक आदर्श को प्रस्तुत

---

१ 'धरातल', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २५।

किया है। 'सूरदास की काव्य साधना' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे 'प्रकृति पुरुष', 'केन्द्र बिन्दु : ग्रामीण जीवन', 'भ्रमरगीत', 'भाव पूजा', तथा 'रस और कला' आदि शीर्षको के अन्तर्गत लेखक ने सूरदास के काव्य का मूल्याकन किया है। 'गावो की सास्कृतिक रचना' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने नगरो के विकासहीन और अवरुद्ध जीवन का विश्लेषण करते हुए गावो की स्वाभाविकता तथा सास्कृतिक रचना के लिए गाधी जी के सिद्धान्तो, विशेषत सर्वोदय आदि, को विशेष महत्व दिया है। 'सन् ४२ के बाद की भूल' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लेखक ने स्वतत्रता के पूर्व सन् ४२ के आन्दोलन का चित्र प्रस्तुत किया है। 'गाधी जी का बलिदान' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लेखक ने विभिन्न पार्टियो की दलबन्दी का परिचय दिया है। लेखक की धारणा है कि गाधी जी की मृत्यु के पीछे राजनीतिक कारण के साथ परोक्षत आर्थिक कारण भी था। इस सग्रह के अन्तिम निबन्ध 'वन्देमातरम्' मे लेखक ने बकिम के राष्ट्र गीत को उद्धृत कर रवीन्द्र के 'जन मन गण अधिनायक जय हो' आदि के माध्यम से राष्ट्र घोष किया है। लेखक के विचार से राजनीति की स्थितियो की तरह समयानुकूल भारतीय राष्ट्र गीतो मे भी परिवर्तन होता गया है। बकिम का राष्ट्र गीत वन्देमातरम् अब अतीत कालीन हो गया है। उसमे सौन्दर्य और शौर्य का मिश्रण था। उसके उपरान्त रवीन्द्र का राष्ट्र गीत भी अपनी सामयिकता का ही उद्घोष करता है।

[६] **'साकल्य'** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत निबन्ध कृति मे उद्योग, सस्कृति, साहित्य और सौन्दर्य का सयोजन बडे ही सुनिश्चित एव सुव्यवस्थित रूप से किया गया है। प्रस्तुत निबन्ध सग्रह मे लेखक की सामयिक, वैचारिक, आलोचनात्मक तथा भावात्मक निबन्धो की प्रवृत्तिया परिलक्षित होती है। 'युग का भविष्य' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लेखक ने जीवन की प्रारम्भिक ग्रामीण वातावरण से प्राप्त प्रेरणाओ के परिणामस्वरूप स्वय को गाधीजी के रचनात्मक कार्यो एव विनोबा जी के भूदान आन्दोलन के प्रति निष्ठावान माना है। 'सस्कृति का आधार' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने आज की सास्कृतिक समस्याओ का चित्रण करते हुए उसके निराकरण हेतु अपने सुझाव दिए है। लेखक के मत मे सस्कृति अतीत की धरोहर है, इसका अभिप्राय मनुष्य की नैसर्गिक चेतना का विकास करना है।[१] 'समन्वय अथवा एकान्वय' शीर्षक विचार प्रधान निबन्ध मे लेखक ने भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय को इस युग का एक नारा कहा है तथा इसे 'बौद्धिक स्केप' की सज्ञा दी है। समन्वय का यह प्रयास आदर्शवादियो द्वारा परिचालित है। लेखक के मत मे समन्वयवादी अपनी असमर्थता को इसी समन्वय की ओट मे छुपा लेता है, व्यावहारिक जीवन मे उसका आदर्श मौखिक और बौद्धिक मात्र ही रह

---

१ 'साकल्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १९।

जाता है। 'साहित्य का व्यवसाय' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लेखक ने यह सकेत किया है कि आधुनिक मुद्रागत व्यापारो के इस युग ससार मे सर्वत्र व्यापारिक मनोवृत्ति लक्षित हो रही है। यहा तक कि साहित्य भी उससे बच नही सका। जनता की उन्नति, जनता की रक्षा एव उसकी शुभचिन्तना करने वाला कोई भी नही है प्रत्युत कभी आदर्श के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी स्वार्थों मे केन्द्रित हो साहित्य को व्यवसाय का रूप दे चुके हैं। यही कारण है कि धीरे-धीरे शैक्षिक सस्थाओ मे साहित्य का स्तर दिनोदिन गिरता जा रहा है। 'जनक्रान्ति का आह्वान' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे सामयिक मानव की निर्जीवता का चित्र अकित करते हुए लेखक ने युग परिवर्तन के दो उपायो—विध्वसात्मक तथा रचनात्मक अथवा जन क्राति—का निर्देश किया है। 'ग्राम्य जीवन के काव्य चित्र' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने ग्राम्य जीवन एव पृथ्वी के सास्कृतिक महत्व का प्रतिपादन करते हुए काव्य साहित्य के विभिन्न युगो मे काव्य मे निहित ग्राम्य जीवन के सरस एव कटु चित्रो का निरूपण किया है। 'प्रसाद और प्रेमचन्द की कृतिया' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे प्रसाद और प्रेमचन्द के साहित्यिक मानदडो का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए दोनो की कृतियो के माध्यम से लेखक ने इन साहित्यिक महारथियो के विचारो एव भावधारा को निरूपित किया है। सग्रह की आगामी रचना 'वर्मा जी के उपन्यास' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे श्री वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासो के आधार पर उनके जीवन दर्शन, ऐतिहासिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि तथा उनके साहित्य मे लोक जीवन का चित्रण आदि की दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। 'गुप्त बन्धु और छायावाद' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे काव्य की दृष्टि से द्विवेदी युगीन साहित्यकारो मे गुप्त बन्धु मैथिलीशरण गुप्त तथा सियारामशरण गुप्त के साहित्य मे उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति के पक्षो का विवेचन किया गया है। 'पन्त का काव्य जगत' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी के प्राकृतिक और सास्कृतिक दृष्टिकोण का अनुशीलन करते हुए प्रकृति के प्रति उनके अनुराग को विवेचित किया है। 'महादेवी की मधुर वेदना' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे छायावाद की प्रमुख कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्य साहित्य मे परिव्याप्त उनके मानसिक जगत का विवेचन किया है। 'छायावाद के बाद' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने छायावाद मे कविता के सर्वोच्च विकास को इगित करते हुए आधुनिक युग मे प्रगतिवाद की साहित्यिक देन को स्पष्ट किया है जो इस परमाणु युग मे उसी यान्त्रिक जडता से पूर्ण है। 'नयी हिन्दी कविता' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने छायावाद की पृष्ठभूमि एव उसकी प्रमुख प्रवृत्तियो का परोक्ष रूप मे विवरण देते हुए नयी हिन्दी कविता के प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विश्लेषण किया है। 'दिव्या' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे प्रगतिशील उपन्यासकार यशपाल के 'दिव्या' उपन्यास का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। 'साहित्य मे अश्लीलता' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे समाज मे व्याप्त

दुष्प्रवृत्तियो एव साहित्य मे निहित अश्लीलता की ओर लेखक ने सकेत किया है। 'हिन्दी का आलोचना साहित्य' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे हिन्दी आलोचना के उद्भव और विकास की ओर सकेत किया गया है। 'दिगम्बर' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने अपने औपन्यासिक रेखाकन 'दिगम्बर' की भावात्मक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हुए उसके प्रति अपने विचारो को प्रकट किया है। 'सौन्दर्य बोध' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने चेतना के अनेक स्तरो को चित्रित किया है जिसमे चेतना का निम्न स्तर वासनामूलक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है।

[७] 'पद्मनाभिका' . श्री शातिप्रिय द्विवेदी की 'पद्मनाभिका' नामक निबन्ध पुस्तक मे लेखक के आलोचनात्मक, सामयिक, वैचारिक तथा कथात्मक अथवा विवरणात्मक निबन्ध सगृहीत हैं। इसमे लेखक ने आधुनिक तथा प्राचीन सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक तथा साहित्यिक स्थिति को स्पर्श किया है। इस सग्रह मे 'गोस्वामी तुलसीदास की भगवद्भक्ति' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने तुलसीदास के जन्म के वातावरण को स्पष्ट करते हुए राम से अधिक 'रामनाम' की महिमा तथा उसके प्रचार की ओर सकेत किया है। 'नूतन पुरातन' सामयिक लेख मे लेखक ने प्राचीन और नवीन मानव समाज को स्पष्ट किया है। लेखक ने अतीत, भविष्य तथा वर्तमान को मानव परिधि के माध्यम से व्यक्त किया है। 'सवेदना की शिराएँ' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे लेखक ने वर्तमान की विभिन्न परिस्थितियो का चित्र साहित्यिक क्षेत्र मे प्रस्तुत किया है। इसमे स्वतत्रता से पूर्व साहित्य और राजनीति का परस्पर मतभेद, भारत की स्वतत्रता के पश्चात् अवसरवादियो की राजनीति के क्षेत्र मे सफलता तथा तामसिक प्रवृत्ति वाले साहित्यकारो की विद्वेष भावना आदि का अकन किया गया है। 'ग्राम गीत' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने ग्रामगीतो के माध्यम से साहित्य के सैद्धान्तिक जगत से जीवन के निर्माण जगत की ओर प्रस्थान के तथ्य को स्पष्ट किया है। 'पन्त जी की अतिमा' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी के काव्य 'अतिमा' का काव्य विश्लेषण प्रस्तुत किया है। पन्त जी की 'अतिमा' अरविन्द दर्शन से प्रभावित है। 'अतिमा' का अभिप्राय 'अतिमानसी' अथवा 'विशिष्ट चेतना' है। 'यशपाल की कला और भावना' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने क्रान्तिकारी यशपाल की कहानियो एव उपन्यासो मे उनकी सास्कृतिक एव कलात्मक दृष्टि को उपस्थित किया है। अपने सारस्वत सस्कार के कारण यशपाल अपनी पौराणिक सस्कृति का त्याग नही कर सके हैं। 'नया कथा साहित्य' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने कथा साहित्य के युग परिवर्तन को स्पष्ट किया है। अतीत और वर्तमान कथा साहित्य की तुलना करते हुए लेखक ने दोनो युगो की विभिन्न समस्याओ पर अपने मन्तव्य को प्रकट किया है। इस सग्रह के अतिम निबन्ध 'बोधिसत्व' मे लेखक ने कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ की कथा दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधारित करके उनके तथागत होने एव सम्बोधि प्राप्ति का सपूर्ण

दृष्टात कथात्मक रूप मे उद्धृत किया है। लेखक ने सपूर्ण कथा को दो खडो मे विभक्त किया है। उनमे भी 'नगर भ्रमण', 'मनोमन्थन', 'महाभिनिष्क्रमण' आदि शीर्षक प्रथम खड के है तथा द्वितीय खड मे 'तत्वान्वेषण', 'नैवेद्य' तथा 'सम्बोधि' आदि शीर्षक है।

[८] **'आधान'** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की 'आधान' शीर्षक निबन्ध पुस्तक मे गाधीवाद का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। लेखक इसमे उसके सैद्धान्तिक पक्ष की ओर जा कर गाधीवाद के समुचित व्यावहारिक आधार को महत्व देता है। 'आधान' शब्द का तात्पर्य स्थापन है अर्थात् जीवन मे साहित्य, कला, सस्कृति की स्थापना इसका मुख्य ध्येय है। द्विवेदी जी का रचनात्मक दृष्टिकोण इस पुस्तक मे भी परिलक्षित होता है। छायावाद युग का प्राकृतिक दर्शन काव्य मे भावाधार रूप मे अवतरित हुआ, गाधीवाद मे वही जीवन के प्राणाधार रूप मे है। लेखक की दृष्टि मे गाधीवाद का यही प्राकृतिक दर्शन रचनात्मक दृष्टिकोण से ग्रामीण अर्थशास्त्र है। इस प्रकार छायावाद का प्राकृतिक दर्शन ही ग्रामीण दर्शन मे परिणत हो गया है। लेखक का यही ग्रामीण दर्शन प्रस्तुत पुस्तक मे अवलोकित होता है। इस सग्रह की सर्वप्रथम रचना 'काव्य मे भक्ति भावना' शीर्षक वैचारिक निबन्ध है, जिसमे लेखक ने मध्य युगीन काव्य मे भक्ति के रूप का निदर्शन किया है। 'रवीन्द्र का रूपक रहस्य' शीर्षक व्यावहारिक निबन्ध मे लेखक ने रवीन्द्रनाथ की काव्य प्रतिभा का उल्लेख करते हुए गद्य मे और विशेषत. नाटको मे रूपको के रहस्य का उद्घाटन किया है। 'प्रसाद की भाव दृष्टि' शीर्षक व्यावहारिक निबन्ध मे जयशकर प्रसाद की काव्य साधना की ओर सकेत करके उनमे निहित भावो का दिग्दर्शन किया गया है। ओकार परिषद्, काशी के वार्षिक अधिवेशन मे अध्यक्ष पद से पठित 'मौलिकता का प्रतिमान' शीर्षक वैचारिक निबन्ध मे द्विवेदी जी ने मौलिकता के वास्तविक अर्थ का प्रतिपादन करते हुए उसकी व्यापकता की ओर दृष्टिपात किया है। स्वत प्रेरित तथा अन्त-प्रस्फुटित उद्भावना मे जो अपनी सजीवता तथा स्वाभाविकता होती है उसे ही मौलिकता कहा जाता है। 'निराला जी की काव्य दृष्टि' शीर्षक व्यावहारिक निबन्ध मे द्विवेदी जी ने पडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के साहित्यिक व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो को विवेचित किया है। निराला के साहित्यिक व्यक्तित्व मे कवि रूप के साथ आलोचक तथा निबन्धकार का रूप अधिक मुखर हुआ है। 'निबन्ध का स्वरूप' शीर्षक रचना मे लेखक ने निबन्ध के क्रमिक विकास की ओर सकेत करते हुए निबन्ध के स्वरूप का विवेचन किया है। निबन्ध का सूत्र है अविच्छिन्नता, सयोजकता, सम्बद्धता। इस दृष्टि से निबन्ध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। लेख, काव्य अथवा कहानी किसी मे भी उसका रूप मिल सकता है। इसके अतिरिक्त अपने विस्तृत अर्थो मे निबन्ध का रूप सस्मरण, जीवनी, आलोचना, पत्र और रिपोर्ताज, भ्रमण वृत्तात आदि किसी भी रचना के विषय मे व्यक्त हो सकता है। 'प्रभाववादी समीक्षा' शीर्षक निबन्ध मे

लेखक ने समालोचना साहित्य के शास्त्रीय रूप को विवेचित करते हुए समालोचना के प्रचलित अथवा व्यावहारिक रूप के परिवर्तन को एक चिन्तनीय समस्या के रूप मे उल्लिखित किया है। आगामी निबन्ध 'विश्वविद्यालयो मे साहित्य का ह्रास' शीर्षक रचना मे लेखक ने समकालीन समाज पर अग्रेजो के प्रभुत्व तथा अग्रेजी भाषा से प्रेम को दर्शाते हुए विद्यार्थियो की हिन्दी के प्रति हेय दृष्टि का परिचय दिया है। 'धुरी हीनता—एक नैतिक समस्या' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने युग की साहित्यिक वस्तु स्थिति का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार युग निरीक्षण मे प्रगतिवाद का दृष्टिकोण राजनैतिक है, उसी प्रकार धुरीहीनता का दृष्टिकोण नैतिक है। 'उद्योग और आत्मयोग' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लेखक ने प्रयाग मे उत्तर प्रदेशीय शिक्षा अधिकारी सघ के आठवे अधिवेशन मे कहे मुख्य मत्री डा० सपूर्णानन्द जी के विचारो को उद्धृत किया है जिनमे बालक के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा एव पारिवारिक शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया गया है। इसी क्रम मे 'लोक कला का आधुनिकीकरण' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने बताया है कि नेहरू जी की दृष्टि मे लोक कला के आधुनिकीकरण से उसकी स्वाभाविकता तथा सरलता नष्ट हो जाती है। द्विवेदीजी के अनुसार कला मानव के जीवन से, उसकी स्वत प्रेरणा से, प्रस्फुटित होनी चाहिए। 'सास्कृतिक चेतना' शीर्षक निबन्ध मे विनोबा जी के पद यात्रा करते हुए काशी आगमन तथा स्वच्छता आन्दोलन के फलस्वरूप नागरिक जीवन मे व्याप्त सास्कृतिक चेतना का उल्लेख है। 'रचनात्मक योजना' मे नागरिकता के रूप मे सामाजिक चेतना तथा सस्कारिता के आन्तरिक उद्देश्य को स्पष्ट किया है। इसमे मनुष्य पारस्परिक स्वार्थों के सामूहिक सगठन के द्वारा लोक कल्याण की ओर अग्रसर होता है। सग्रह की अन्तिम रचना 'दिग्दर्शन' निबन्ध मे अखिल भारतीय युवक काग्रेस के दूसरे अधिवेशन के उद्घाटन मे नेहरू जी के आगमन का चित्र लेखक ने बडे ही भावपरक रूप मे चित्रित किया है जिसमे जनता की पाशविक प्रवृत्तियो का अकन है।

[९] वृन्त और विकास श्री शातिप्रिय द्विवेदी के इस निबन्ध सग्रह मे साहित्य, सस्कृति और कला का सयोजन उपलब्ध होता है। लेखक की प्राय सभी रचनाओ मे उनके रचनात्मक दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुस्तक 'वृन्त और विकास' भी उससे पृथक नही है। इसमे सूत्रवत् एक विचारधारा के अन्तर्निहित होने के कारण निबन्धो मे प्रकीर्णता का आभास नही, प्रत्युत परस्पर सम्बद्धता अथवा क्रमबद्धता परिलक्षित होती है। यही कारण है कि अन्य पुस्तको के सदृश ही इस पुस्तक का नाम भी प्रतीकात्मक है। 'वृन्त और विकास' वस्तुत 'साधन और साध्य' का प्रतीक है। कवि के कथनानुसार 'वस्तु विभव पर ही जन गण का भाव विभाव अवलम्बित' है। वृन्त मे वस्तु (साधन) कृषि और ग्रामोद्योग है, साहित्य सस्कृति कला उसी का भाव विकास है। लेखक ने प्रकृति और सस्कृति मे अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना है, क्योकि 'प्रकृति का ही सात्विक विकास सस्कृति मे होता है'। लेखक

के मत मे पृथ्वी जड नही सगुण सदेह सचेतन है। धरती की ओर मानव का ध्यान आकृष्ट करने के लिए लेखक ने अपनी पुस्तको मे प्राकृतिक प्रतीको के माध्यम से भाव विचार आदर्श को पार्थिव रूप मे उपस्थित किया है। 'नेहरू जी विचार और व्यक्तित्व' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लेखक ने नेहरू जी को एक राजनीतिक नेता से अधिक उन्हे युग विधाता के रूप मे महत्ता प्रदान की है। लेखक ने उनकी आत्मकथा तथा उनके वक्तृताओ के आधार पर उनके विचारो मे दुरगी मान्यताओ, व्यवहार और विचार मे भिन्नता आदि का निरूपण किया है। 'नेहरू जी की काव्यानुभूतिया' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने नेहरू जी की आत्म कथा के मध्य प्रसगवश लिखे आग्ल काव्य उदाहरणो के माध्यम से उनके स्वगत क्षणो की प्रतिध्वनियो के श्रवण के साथ उनकी काव्यानुभूति का भी विश्लेषण किया है। उन काव्य पक्तियो मे स्पन्दनशील मानव की हार्दिक सवेदनाएँ हैं। लेखक के मत में 'केवल आग्ल कवियो की ही पक्तियाँ शायद इसीलिए उद्धृत की गयी है कि ब्रिटिश शासक यदि भारत की आवाज नही सुन सकते तो अपने सजातीय कवियो की कविता से ही मानवता की आवाज सुन सके, गुन सके।'[१] 'छायावाद' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने 'इतिहास के सतप्त वातावरण मे मलयानिल की एक शीतल सुगन्धित सास' के रूप मे छायावाद के क्रमिक ऐतिहासिक विकास को प्रस्तुत किया है। 'पन्त की काव्य प्रगति और परिणति' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने छायावादी कुसुमकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में भावो का क्रमिक विकास तथा उनकी काव्य कला का निरूपण किया है। 'नयी पीढी नया साहित्य' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने सपूर्ण विश्व साहित्य के नवीन रूपो पर अपने विचारो को प्रत्यक्ष किया है। इसमे नई और पुरानी पीढी के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लेखक ने आधुनिक युग के जीवन मे राजनीति, आर्थिक आदि क्षेत्रो की भिन्नता को भी विवेचित किया है। 'नाटक और रगमच' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने जीवन मे नाटक के महत्व का प्रतिपादन करते हुए नाटक और रगमच के उद्‌भव एव विकास की ओर दृष्टिपात किया है। लेखक की धारणा है कि 'नाटक जीवन का कलात्मक सकलन है और रगमच ससार का संक्षिप्त क्रीडा क्षेत्र।'[२] मनुष्य को अपन भाराक्रान्त जीवन में नाटक और रगमच के माध्यम से ही आत्मनिरीक्षण तथा तटस्थ भाव से विश्लेषण का अवसर मिलता है। 'यन्त्र युग की कविता' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने छायावाद की कविता की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हुए उन्नीसवी सदी तथा बीसवी सदी में गाधीवाद, छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आदि के माध्यम से राजनैतिक, सामाजिक वातावरण का चित्र प्रस्तुत किया है। 'वीरेन्द्र की काव्य सृष्टि' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में श्री वीरेन्द्र कुमार जैन की कहानियो एव

---

१. 'वृन्त और विकास', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २९।

२ वही, पृ० १०४।

कविताओ के द्वारा लेखक ने उनकी मानसी सृष्टि एव कला दृष्टि का परिचय दिया है। 'विश्वविद्यालयीन समीक्षा' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लेखक ने दैनिक 'आज' के साप्ताहिक विशेषाक (११ जनवरी, १९५९) मे प्रकाशित हिन्दू विश्वविद्यालय के अग्रेजी प्राध्यापक डा० रामअवध द्विवेदी के लेख 'आधुनिक हिन्दी आलोचना के प्रतिमान' के आधार पर निष्कर्ष और निदान के रूप मे उनके मतो का प्रतिपादन करते हुए स्वय अपने विचारो को व्यक्त किया है।[1]

[१०] **समवेत** श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने अपनी अन्य निबन्धात्मक कृतियो के समान ही 'समवेत' शीर्षक निबन्ध सग्रह मे भी साहित्य, सस्कृति, कला तथा उद्योग के सामजस्य को सुनियोजित किया है। इस सग्रह की प्रथम रचना 'सौन्दर्य और कला' शीर्षक चिन्तनपरक निबन्ध मे लेखक ने साहित्य, सगीत और कला का विश्लेषण करने के साथ मानव जीवन मे इन तीनो के सामजस्य का दिग्दर्शन भी किया है। साहित्य, सगीत और कला मे शब्दान्तर होते हुए भी एक दूसरे के भाष्य है, अर्थ बोधक है। मनुष्य की रचनात्मक कृति ही कला है जो उसके जीवन के प्रत्येक क्षण मे, विभक्त कृत्यो मे आभासित होती रहती है। उनमे एक सामजस्य दिखाई पडता है 'छायावाद का सगुण' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने मध्य युग के सगुण तथा आधुनिक युग के सगुण के अन्तर को स्पष्ट करते हुए छायावाद के सगुण को स्पष्ट किया है। और बताया है कि वाह्यान्तर होते हुए भी उन दोनो मे आन्तरिक एकता तथा सामजस्य है। 'रागात्मकता की समस्या' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने पन्त जी के साहित्य और काव्य की आत्मा का स्पर्श किया है। उनके काव्य 'पल्लव' मे जिस रागात्मकता की भावना का उद्रेक हुआ है, 'पल्लव' के बाद की रचनाओ मे प्राय: उसका अभाव होता गया है। 'हार पन्त का रचनासूत्र' शीर्षक निबन्ध मे द्विवेदी जी ने पन्त की सर्वप्रथम रचना 'हार' उपन्यास का परिचय दिया है। पन्त जी यद्यपि इसे खिलौना कहते है लेकिन द्विवेदी जी के मत मे 'यह सरस्वती की ग्रीवा मे बालहस का मुक्तामाल है।'[2] वस्तुत यह उपन्यास जीवन के अतल मे मानव मन की गहराइयो को स्पर्श करता है। द्विवेदी जी ने उपन्यास कला की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास का सम्यक् परिचय दिया है। इसमे पन्त जी के भाव, विचार तथा सौन्दर्य दर्शन आदि की उपलब्धि है जिनका विकसित रूप उनकी परवर्ती रचनाओ मे मिलता है। उपन्यास के चरित्रो मे प्रत्यक्ष मानव जगत के आभास के साथ उसमें प्रतीक व्यजना के कारण असाधारण गूढता-सी आ गई है। 'शिवपूजन जी की साहित्य साधना' शीर्षक निबन्ध में शिवपूजन सहाय की साहित्य सेवा का परिचय दिया गया है। 'हुतात्मा 'नवीन' शीर्षक सस्मरणात्मक निबन्ध मे बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के जीवन

---

१ 'वृन्त और विकास', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १५५।

२. 'समवेत', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २५।

चरित पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही लेखक ने उसके साथ व्यतीत हुए क्षणो को भी स्मरण किया है। 'प्रगति और सस्कृति' शीर्षक निबन्ध मे द्विवेदी जी ने प्रगतिवाद का महत्व स्पष्ट किया है। 'नये उपन्यास : नये उपन्यासकार' शीर्षक निबन्ध मे द्विवेदी जी ने प्रसाद और प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासकारो के विचारो का अवलोकन उनकी औपन्यासिक कृतियो के माध्यम से किया है। 'विज्ञान और ग्रामोद्योग' शीर्षक सामयिक निबन्ध मे द्विवेदी जी ने अपने राजनैतिक विचारो का प्रतिपादन किया है। उन्होने विनोबा जी के 'भूदान यज्ञ' मे छपे मन्तव्य को स्पष्ट किया है। लेखक ने समाजवाद या सर्वोदय मे आर्थिक दृष्टिकोण के साथ सास्कृतिक दृष्टिकोण को भी महत्व दिया है।

[११] **'परिक्रमा'** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत पुस्तक मे इसकी 'विज्ञप्ति' के अनुसार आर्यभारती की परिक्रमा की गई है। काव्य कला की दृष्टि से लेखक ने इसमे कालिदास, रवीन्द्रनाथ, कवि पन्त, महादेवी के साहित्य की परिक्रमा की है। भारतीय सस्कृति का सर्वोत्तम रूप इन कवियो मे प्रस्फुटित हुआ है। 'कालिदास की कला सृष्टि' शीर्षक निबन्ध मे द्विवेदी जी ने कालिदास के महत्व एव उनकी साहित्य मे पैठ का चित्रण करते हुए कालिदास के काव्य तथा नाटको की विवेचना प्रस्तुत की है। कालिदास के नाटको मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की आलोचना प्रस्तुत की है। 'समष्टि के स्वर साधक रवीन्द्रनाथ' शीर्षक निबन्ध मे द्विवेदी जी ने रवीन्द्र के जीवन का परिचय देते हुए उनके सिद्धान्तो, मान्यताओ एव सदेशो को उद्धृत किया है जो वह समय-समय पर देशवासियो को एव विदेशो मे देते थे अथवा विदेशो से भारत वासियो और शातिनिकेतन के छात्रो के लिए भेजते थे। वे आरण्यक थे तथा तपोवन के वास्तविक महत्व को समझते थे। शातिनिकेतन की स्थापना के पीछे उनका यही ध्येय था कि वह प्रकृति के सान्निध्य से जीवन को साधना चाहते थे। लेखक ने रवीन्द्रनाथ तथा गाधी जी की तुलना भी प्रस्तुत की है। 'व्यक्तित्व और कला' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने रवीन्द्र के दिव्य व्यक्तित्व को अकित करते हुए उनकी काव्य कला को स्पष्ट किया है। 'कुसुमकुमार कवि पन्त' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पन्त के जीवन तथा उसके विपर्य्यय मे साहित्य एव काव्य मे उनकी वास्तविक मन स्थिति का विवेचन किया है। शैशवावस्था मे मातृ स्नेह से वचित कवि का प्रमुख स्वर 'वीणा' मे एक बालिका के रूप मे अवतरित हुआ। 'पल्लव' मे भी उसी का व्यक्तित्व एक स्मृतिमात्र रूप मे है। पन्त की काव्य सृष्टि मे प्रकृति अपने बाह्य भौतिक रूप को त्याग कर मनोरम नैसर्गिक रूप मे एक अलौकिक रूप धारण कर लेती है। कवि प्रकृति के मानवी रूप को काव्य के माध्यम से प्रत्यक्ष करता है। 'शून्य मन्दिर की प्रतिमा' शीर्षक सस्मरणात्मक निबन्ध मे लेखक ने छायावाद की रहस्यमयी कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा से स्वय के परिचय का उल्लेख करते हुए उनकी आन्तरिक विक-

लता का प्रतिपादन किया है जिसमे वह अपनी स्वर्गीय बहिन कल्पवती का रूप अनुभव करते थे। महादेवी जी से परिचय उनके छात्राकाल मे ही हो गया था। लेकिन उस समय का उनका परिचय केवल नीरव मात्र रह गया, उनकी श्रवण शक्ति की असमर्थता के कारण। लेखक ने पन्त, निराला और महादेवी का स्वय पर प्रभाव स्वीकार किया है। 'वह अदृश्य चेतना' शीर्षक भावात्मक निबन्ध मे लेखक ने अपने जीवन मे बहिन कल्पवती के अभाव को प्रत्यक्ष किया है। उस स्नेह वत्सल बहिन ने लेखक के जीवन मे राग का सचार किया था। वही अब इस ससार से अलग एक अदृश्य चेतना के रूप मे लेखक के हृदयाकाश को आलोकित करती तथा वही उनके जीवन की प्रेरणा थी। लेखक ने उसकी तुलना मीरा से करके उनमे सदृश्यता स्थापित की है। प्रस्तुत निबन्ध मे उसके सपूर्ण जीवन की झाकी अकित है। इस प्रकार से, श्री शातिप्रिय द्विवेदी के विविध निबन्ध सग्रह जहा एक ओर उनकी विचारधारा और जीवन दर्शन की सुस्पष्टता के द्योतक हैं, वहा दूसरी ओर उनसे उनके चिन्तन क्षेत्र की व्यापकता और विषयगत वैविध्य का भी परिचय मिलता है।

निबन्धकार द्विवेदी जी और हिन्दी निबन्ध की पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आधुनिक युग की प्रायः सभी गद्यात्मक विधाओं का आविर्भाव भारतेन्दु युग से माना जाता है। उपलब्ध विवरण के आधार पर इस तथ्य की अवगति भी होती है कि भारतेन्दु के पूर्व भी कुछ ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत की गयी जिन्हे निबन्ध साहित्य के अन्तर्गत उल्लिखित किया जाता है। आधुनिक युग मे मुद्रण यत्रो के आविर्भाव से पत्र पत्रिकाओ के प्रकाशन मे यथेष्ठ योगदान मिला और निबन्ध के विकास मे भी पत्र पत्रिकाओ की सुलभता ने सहयोग दिया। इन पत्र पत्रिकाओ मे 'कविवचन सुधा' (सन् १८६८), 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (सन् १८७३), 'मित्र विलास' (१८७७), 'हिन्दी प्रदीप' (सन् १८७७), 'मोहन चन्द्रिका' (सन् १८८०) तथा 'ब्राह्मण' (सन् १८८३) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय रही है। इसके अतिरिक्त अन्य पत्रिकाओ मे विहारबन्धु, सदादर्श, काशी पत्रिका, भारत-बन्धु, भारत-मित्र, आदि-दर्पण, सार-सुधा-निधि, उचित वक्ता, सज्जन, कीर्ति सुधाकर, क्षत्रिय पत्रिका, देश हितैषी, धर्म दिवाकर, दिनकर प्रकाश, शुभचिन्तक, सदाचार मार्तन्ड, प्रयाग समाचार, कविकुल कज दिवाकर, पीयूष प्रवाह, भारतेन्दु, धर्म प्रचारक, हिन्दुस्तान, भारतोदय, आर्य सिद्धान्त, अग्रवालोपकारक तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि का नाम भी निबन्ध विकास के क्षेत्र मे उल्लिखित किये जा सकते है।

[१] **पूर्व भारतेन्दु युग** : आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य मे भारतेन्दु युग से पूर्व सन् १८५० ई० से ही निबन्ध का अविकसित रूप प्रस्तुत होने लगा था। इस समय राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द', राजा लक्ष्मण सिंह, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा प० श्रद्धाराम फुल्लौरी आदि ने भाषा को ढालने के प्रयोग मे अपना महत्वपूर्ण योग-

दान दिया। राजा शिव प्रसाद ने हिन्दी के उद्भव काल मे ही भाषा की तीन शैलियो का परिचय दिया जिसमे बोलचाल की भाषा, सस्कृत तत्सम शब्दो से ओत-प्रोत भाषा तथा फारसी अरबी से प्रभावित भाषा शैली। इन्होने 'राजा भोज का सपना' तथा 'इतिहास तिमिर नाशक' रचनाओ मे कथात्मक तथा वर्णनात्मक निबन्ध शैली का परिचय दिया। राजा लक्ष्मण सिंह ठेठ हिन्दी के प्रतिपादक थे अतएव इन्होने अपनी भाषा मे अरबी फारसी और सस्कृत को स्थान न देकर स्वाभाविक प्राकृत तथा अपभ्रश से उद्भूत देशी भाषा को स्थान दिया। शकुन्तला और मेघदूत का इन्होने अनुवाद किया। शकुन्तला मे भाषा का शुद्ध रूप आभासित होता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी निजी भाषा रूप मे व्याख्यान शैली के आधार पर सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनो को अपना विषय बना कर रचना क्षेत्र मे उपस्थित हुए। महर्षि दयानन्द की 'सत्यार्थ प्रकाश' रचना मे तात्कालिक हिन्दी का परिष्कृत रूप उपलब्ध होता है। इन्होने आर्य समाज की स्थापना की। यह आर्य समाज 'आर्य भाषा' (हिन्दी) का भी पोषक रहा तथा इससे हिन्दी भाषा को विशेष शक्ति प्राप्त हुई। 'हिन्दी गद्य प्रचार और शैली निर्माण की दृष्टि से स्वामी जी चिरस्मरणीय रहेगे।'[१] श्रद्धाराम फुल्लौरी ने धार्मिक तथा साम्प्रदायिक दृष्टि से रचनाएँ की। इनकी रचनाएँ प्राय खडन-मडन से ओतप्रोत होती थी। पूर्व भारतेन्दु युग के इन निबन्धकारो के अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानो की रचनाओ मे निबन्ध का आभास मिलने लगा था। इनमे रामेश्वरी दत्त, कमला प्रसाद, बिहारी चौबे, गोकुल चन्द, शभु प्रसाद, छोटूलाल मिश्र, नन्दलाल, विष्णु लाल पाड्या आदि हैं। इन्होने अनेक प्रकार के निबन्धो की रचना की है।

हिन्दी निबन्ध के इतिहास के पूर्व भारतेन्दु युग को छोड कर इसे चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है (१) हिन्दी निबन्ध का अभ्युत्थान या भारतेन्दु युग, (२) हिन्दी निबन्ध का परिमार्जन या द्विवेदी युग, (३) हिन्दी निबन्ध का उत्कर्ष या शुक्ल युग और (४) हिन्दी निबन्ध का प्रसारण या शुक्लोत्तर अथवा अद्यतन युग।

[२] **भारतेन्दु युग** हिन्दी निबन्ध के विकास के इस प्रथम उत्थान काल मे हिन्दी निबन्ध के जन्मदाता के मत मे अनेक मतमतान्तर है तथा यह एक विवादास्पद विषय है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने सपादक मडल द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' मे बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी निबन्ध का जनक माना है।[२] इसी प्रकार डा० लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय,[३] डा० श्रीकृष्ण लाल[४] ने भी बालकृष्ण भट्ट को ही हिन्दी निबन्ध

---

१ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', डा० लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय, पृ० १७२।
२ 'हिन्दी साहित्य कोष', डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ४१०।
३ 'हिन्दी निबन्ध का विकास', डा० ओंकार नाथ शर्मा, पृ०६५।
४ 'आधुनिक हिन्दी साहित्य', डा० लक्ष्मी नारायण वार्ष्णेय, पृ० १३३।

का सर्वप्रथम लेखक स्वीकार किया है। हिन्दी निबन्ध के जनकदाता मे श्री सदासुख-लाल का नाम आगे करने मे श्री शिवनाथ[1] का हाथ है। लाला भगवानदीन तथा श्री रामदास गौड के प्रमाण पर ही उन्होने सदासुख लाल को निबन्ध का प्रारम्भकर्ता माना है। लेकिन डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा,[2] श्री विजय शकर मल्ल[3], डा० रामरतन भटनागर[4], डा० ब्रह्मदत्त शर्मा[5], डा० उदय नारायण तिवारी[6], डा० पद्मसिह शर्मा 'कमलेश'[7] तथा डा० ओकार नाथ शर्मा[8], आदि ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को ही हिन्दी निबन्ध का जनक एव युग प्रवतक माना है। वस्तुत हिन्दी साहित्य मे निबन्ध विधा की विशेषताओ का सर्वप्रथम प्रत्यक्षीकरण भारतेन्दु की निबन्ध रचनाओ मे ही होता है तथा समीक्षको का बहुमत भी उन्ही के पक्ष मे है। भारतेन्दु युग का अभ्युत्थान काल १८७३ से १९०० तक सीमित है। इसके प्रमुख प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र है। इनके अतिरिक्त इस युग के अन्य निबन्धकारो मे प० बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी, बालमुकुन्द गुप्त, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' तथा प० अम्बिका दत्त व्यास आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनमे भी प० बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा बाबू बालमुकुन्द गुप्त को वृहद्त्रयी के रूप मे इस काल के निबन्ध लेखको का प्रतिनिधि माना गया है। ये तीनो ही अपने समय के प्रतिभाशाली साहित्यकार थे। भारतेन्दु युग मे निबन्ध की सफलता का प्रमुख श्रेय इन्ही वृहद्त्रयी को है। इस युग के प्रतिनिधि लेखको ने ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक आदि विषयो पर विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक कोटि के निबन्धो की रचना की। इसके लिए उन्होने प्राय सभी शैलियो—हास्य व्यग्यात्मक, विवेचनात्मक, कथात्मक, विनोदात्मक, व्याख्यानात्मक, प्रतीकात्मक तथा आत्म चरितात्मक आदि को अपनाया। भारतेन्दु युगीन लेखको ने निबन्ध मे वैयक्तिकता को प्रधानता दी और कही-कही तो वैयक्तिकता का आधिक्य ही हो गया है। वस्तुतः वैयक्तिकता को निबन्ध की आत्मा रूप मे स्वीकार किया गया है।

[३] **द्विवेदी युग** हिन्दी निबन्ध का द्वितीय उत्थान काल सन् १९०० ई० मे

---

१ 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास', डा० कृष्णलाल, पृ० ३४८।
२ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पृ० ३७।
३ 'हिन्दी गद्य की प्रवृत्तिया', विजय शकर मल्ल, पृ० ७८।
४ 'सचयन' (भूमिका), डा० रामरतन भटनागर, पृ० २।
५ 'हिन्दी साहित्य मे निबन्ध', डा० ब्रह्मदत्त शर्मा, पृ० ३५।
६ 'हिन्दी भाषा तथा साहित्य', डा० उदयनारायण तिवारी, पृ० ११४।
७ 'हिन्दी गद्य काव्य', डा० पद्मसिंह शर्मा, पृ० ४३।
८ 'हिन्दी निबन्ध का विकास', डा० ओकार नाथ शर्मा, पृ० ६५।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका तथा सरस्वती के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है। वस्तुत यह हिन्दी निबन्ध के परिमार्जन का युग था, बढती हुई राष्ट्रीय जागृति, विश्व प्रेम, सामाजिक एकता, अतीत गौरव, सास्कृतिक पुनरुत्थान के साथ भाषा के परिष्कार का युग था। इस युग परिवर्तन मे प० महावीर प्रसाद द्विवेदी अग्रगणी हैं। भारतेन्दु युग मे प्रचारात्मकता, विषय-सपत्ति की वृद्धि और सग्रह की प्रेरणा तथा भाषा को एक व्यवस्थित रूप देने के लिए भाषा का रूप निश्चित करना आदि था। इसके विपरीत द्विवेदी युग मे यद्यपि प्रचार की भावना कार्य कर रही थी परन्तु उसमे भाषा को समृद्ध और सशक्त बनाने की कामना की। सरस्वती के सम्पादन से जहाँ एक ओर भाषा समृद्ध, सशक्त एव परिमार्जित हुई थी वही निबन्ध की लेखन कला मे विविधता का रूप भी दृष्टिगोचर होने लगा। 'द्विवेदी युग की प्रधान चेष्टा सस्कार और रुचि का परिमार्जन करना तथा हिन्दी के भडार को भरपूर बनाना था, यह 'सरस्वती' के द्वारा सपन्न हुआ।'[१] 'सरस्वती' का कार्यभार सभालते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक लेखको की भाषा को सस्कारित एव परिमार्जित करने का सफल प्रयास किया। इसके लिए उन्होने तत्कालीन लेखको की व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियो की आलोचना प्रस्तुत की। इस युग मे अग्रेजी के 'वेकन' के निबन्धो का अनुवाद 'बेकन विचार रत्नावली' के नाम से प्रस्तुत हुआ जिससे अनेक लेखको को निबन्ध लिखने की प्रेरणा मिली। इस युग के निबन्ध प्रमुखत साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक समाचार पत्रो के लेखो, प्रचार प्रपत्रो आदि मे प्रस्तुत हो रहे थे। इस युग के निबन्धो मे विषयो की विविधता, विचारो की गम्भीरता, भाषा की सशक्त स्वच्छता, जीवन को गहराई से देखने पर हास्य की भावना मे कमी आदि स्पष्ट लक्षित होते है।[२] वस्तुत यह युग सघर्षों का युग था—व्यक्ति और समाज का सघर्ष, प्राच्य और पाश्चात्य का सघर्ष, नवीन और प्राचीन का सघर्ष, हिन्दी-अग्रेजी का सघर्ष, आस्तिक-नास्तिक का सघर्ष। इसके साथ ही राजनीतिक सघर्ष भी जागरूक हो रहे थे। अतएव लेखको पर राजनीति का भी प्रभाव पड़ने लगा। इस युग मे आलोचनात्मक, सस्मरणात्मक, चरितात्मक एव पुरातत्व सम्बन्धी निबन्ध लिखे गये। द्विवेदी युग के प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। इनके अतिरिक्त माधव प्रसाद मिश्र, गोविन्द नारायण मिश्र, चन्द्रधर शर्मा, 'गुलेरी', गोपालराम गहमरी, अध्यापक पूर्णसिह, गणेश शकर विद्यार्थी, सियारामशरण गुप्त, गगाप्रसाद अग्निहोत्री, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, यशोदानन्दन अखौरी, केशव प्रसाद सिह, पार्वती नन्दन, आदि अनेक निबन्धकारो ने इस युग को अपना योगदान प्रदान किया।

[४] **शुक्ल युग** . शुक्ल युग हिन्दी निबन्ध के उत्कर्ष का युग है। इस युग के प्रारम्भिक चरणो मे ही साहित्य, कला, दर्शन, जीवन, और राजनीति आदि सभी के

---

१ 'हिन्दी निबन्ध का विकास', डा० ओकार नाथ शर्मा, पृ० १३७।

२. 'हिन्दी साहित्य कोश', डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सपादित, पृ० ४१०।

दृष्टिकोण मे क्रातिकारी परिवर्तन हुआ। उसी समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य जगत मे अवतीर्ण हुए। यद्यपि उन्होने द्विवेदी युग मे ही लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया था परन्तु ऊर्जितावस्था द्विवेदी युग के बाद ही प्रकट हुई। इस युग के निबन्धो की विचारधारा द्विवेदी युग के निबन्धो से भिन्न थी। विचारधारा के साथ ही निबन्धो की प्रवृत्तियो मे भी कुछ परिवर्तन हुआ और इन सबका श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी को है। इस युग की प्रमुख देन है विचारो की प्रौढता, सूक्ष्म निरीक्षण एव गूढ अध्ययन। शुक्ल युग के इस परिवर्तन मे द्विवेदी युग की आस्तिकता का लोप नही हुआ प्रत्युत् वह अपने उसी रूप मे बनी रही और साथ ही कुछ प्रौढता लिए हुई आई। वस्तुत यह बौद्धिकता का युग था। अत प्रत्येक मान्यता को बौद्धिक धरातल पर ही ग्रहण किया जाता था। इस युग मे विभिन्न साहित्य रूपो का समुचित विकास एव प्रसार हुआ। इस विकास का प्रभाव निबन्ध साहित्य के विकास पर भी पडा। निबन्ध मे अनेक साहित्य रूपो का समन्वित रूप से प्रभाव पडा। अत इस काल के निबन्धो मे जीवन की वास्तविकता, कहानी की सवेदना और जिज्ञासा, नाटक की नाटकीयता, उपन्यास की चारु-कल्पना, गद्यकाव्य की भावातिशयता, महाकाव्य की गरिमा, विचारो की उत्कृष्टता आदि का मिश्रित रूप परिलक्षित होता है। इस काल के निबन्ध प्राय समाचार पत्रो के लेख, गद्यगीत, पत्र, भाषण, सस्मरण, प्रचार प्रपत्रो, पुस्तको की भूमिकाओ तथा पुस्तको आदि के रूप मे उपलब्ध होते हैं।

[५] **शुक्लोत्तर युग** शुक्लोत्तर युग हिन्दी निबन्ध के प्रसरण एव समृद्धि का युग है। इस युग मे भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग तथा शुक्ल युग मे प्रचलित हिन्दी निबन्ध की विविध प्रवृत्तियो का सम्यक् विकास तथा प्रचार हुआ। निबन्ध के क्षेत्र मे विषय तथा शैली की दृष्टि से विशेष उत्कर्ष हुआ। शुक्ल युग की यथार्थवादी जीवन दृष्टि तथा भौतिकवादी मनोवृत्ति के विकास से उस युग की मान्यताएँ कही पर शिथिल तथा कही ध्वस्त हो रही थी। आधुनिक शिक्षा तथा इस पाश्चात्य प्रभाव के कारण निबन्ध मे गम्भीरता को स्थान न मिला, फलत. ललित साहित्य के रूप मे स्वीकृत हुआ तथा मनोरजन का विषय माना जाने लगा। अतएव इसमे सलापात्मक वैयक्तिक निबन्धो का प्रणयन होने लगा। डा० ओकार नाथ शर्मा ने वैयक्तिक निबन्धो के विषय मे लिखा है 'अद्यतन युग निबन्ध समृद्धि का युग है। इस समय निबन्धकारो ने, विषय तथा शैली की दृष्टि से, इनको उत्कर्ष प्रदान किया है। वैयक्तिक निबन्धो मे विषय तथा व्यक्तित्व का अपूर्व समाहार इस युग की विशिष्टता है। विचारो तथा भावो को कलात्मक ढग से व्यक्त किया जा रहा है, निबन्ध की धारा का निर्बन्ध और समुल्लसित प्रवाह विस्तार पा रहा है। इन निबन्धो पर विदेशी निबन्ध का प्रभाव भी पडा। वस्तुत. ये स्वच्छद रचना व्यापार है।'[1]

---

१ 'हिन्दी निबन्ध का विकास', डा० ओकार नाथ शर्मा, पृ० २४०।

वैयक्तिक निबन्धो के अतिरिक्त प्राचीन परम्परा से चली आ रही निबन्ध की विभिन्न प्रवृत्तियो मे वैचारिक, भावात्मक, विवरणात्मक, सस्मरणात्मक तथा आलोचनात्मक आदि प्रवृत्तियो का भी विकास हुआ तथा साहित्य सृजन हुआ। इस युग मे आलोचनात्मक निबन्धो की बहुलता है। शुक्ल युग मे लिखे गवेषणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति का भी इस युग मे विकास हुआ। मुख्य परिवर्तन देश की परिवर्तनशील सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियो के कारण निबन्ध के क्षेत्र मे हुआ। इस युग के निबन्धकारो ने राजनैतिक, सामाजिक तथा बौद्धिक समस्याओ पर निबन्धो की रचना की। इसके साथ ही अनेक प्रचलित देशी विदेशी विचारधाराओ एव विचार आन्दोलनो को भी निबन्ध साहित्य मे स्थान मिला। हिन्दी निबन्ध साहित्य के इस युग मे विषय वैविध्य के साथ भाषा की प्रौढता पर भी विशेष ध्यान दिया गया। धर्म, दर्शन, अध्यात्मिक आदि विषयो पर निबन्ध लिखे गये। निबन्ध साहित्य पर पाश्चात्य मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण अद्यतन निबन्ध सामाजिक यथार्थवाद से सम्बन्धित हो गये एव निबन्ध साहित्य मे भी प्रगतिवाद का बोलबाला हो गया। वस्तुत अद्यतन युग क्रान्ति का युग है और युग अनुशीलन के लिए उसी युग के साहित्य का आश्रय लिया जाता है। डा० ओकार नाथ शर्मा ने इस युग की तीन भावधाराओ को स्पष्ट किया है (१) समाजवादी दृष्टिकोण, (२) नए समाज दर्शन को भारतीय समन्वयात्मक दृष्टि से ग्रहण करना तथा (३) ऐसे निबन्ध लेखक जो श्रेष्ठ और सुन्दर के सकलन से रचना को नवीन अर्थ दीप्ति, नई भाव-भगिमा तथा नव्य रूप सौष्ठव प्रदान करते है।[१] लेकिन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी निबन्ध और निबन्धकार' की भूमिका मे स्पष्ट किया है 'जनतत्र का जमाना है, छापे की मशीनो की भरमार है। कह सकने की योग्यता रखने वाले हर भले मानस को किसी न किसी विषय पर कुछ न कुछ कहना है, हर छापे की मशीन को अपना पेट भरने के लिए कुछ न कुछ छापना है। सो, राज्य भर के विषयो पर निबन्ध लिखे जा रहे है। कहा तक कोई सबका लेखा-जोखा मिलाए। सभी विचार किसी न किसी निबन्ध शैली मे लिखे जाते है।'[२] निबन्ध मे विविध विषयो, अनेक नवीन शैलियो तथा नवीन विचारधाराओ के कारण 'नवीनतम निबन्ध साहित्य मे कुछ दूषित प्रवृत्तियो का भी विकास हो रहा है, एक ओर तो अपने ज्ञान की धाक जमाने के लिए कुछ निबन्धकार पाश्चात्य लेखको से उधार लिए विचारो को बिना समझे ही उगलते जा रहे है, जिससे उनकी भाषा मे न तो प्रवाह मिलता है और न ही कला का सौन्दर्य'।[३] आजकल साहित्यिक निबन्धो को सगृहीत कराने की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती

१ 'हिन्दी निबन्ध का विकास', डा० ओकार नाथ शर्मा, पृ० २४३।
२ 'हिन्दी निबन्ध और निबन्धकार' (भूमिका), ठाकुर प्रसाद सिंह, पृ० ३।
३. 'साहित्यिक निबन्ध', डा० गणपति चन्द्र गुप्त, पृ० २२३।

है। समग्र रूप से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि इस युग मे यथार्थवादी, प्रगतिवादी, साम्यवादी तथा समाजवादी दृष्टिकोण से विभिन्न निबन्ध लेखको ने निबन्ध रचना की। विचारात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत सस्कृति और दार्शनिक पृष्ठभूमि, आलोचनात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत भाषा साहित्य और साहित्य सिद्धान्तो को, भावात्मक के अन्तर्गत गद्य काव्यात्मक रचना को, वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत यात्रा साहित्य, जीवनी तथा साहित्यकारो के इन्टरव्यू आदि को निबन्ध का आधार बनाया गया।[१] इस प्रकार से, हिन्दी निबन्ध के विकास के शुक्ल युग मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव हुआ। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित द्विवेदी जी के निबन्ध इसी काल मे उपलब्ध होते है। परन्तु विभिन्न स्वतत्र पुस्तको के रूप मे इन निबन्धो का प्रकाशन शुक्लोत्तर युग मे हुआ था। रचना काल के इसी युग-वैभिन्न्य के कारण इनके निबन्ध साहित्य मे जहा एक ओर विशद अध्ययन और स्वतत्र चिन्तन दृष्टिगत होता है, वहा दूसरी ओर आलोचनात्मक, भावात्मक, सस्मरणात्मक, विवरणात्मक, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक विषयो पर लिखे गये निबन्धो मे सामाजिक प्रवृत्तियो का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है।

द्विवेदी जी के निबन्ध और समकालीन प्रवृत्तिया

विगत शताब्दी से एक नवीन साहित्याग के रूप मे हिन्दी निबन्ध के आविर्भाव और विकास की ओर ऊपर सकेत किया जा चुका है। लगभग एक शताब्दी के विकास काल मे जहा एक ओर हिन्दी निबन्ध का बहुरूपी विकास हुआ है वहा दूसरी ओर उसके कलात्मक महत्व की भी अभिवृद्धि हुई है। इसकी पृष्ठभूमि मे एक विशिष्ट कारण यह है कि विकास की इस अल्पकालीन अवधि मे ही निबन्ध के क्षेत्र मे अनेक नवीन प्रवृत्तियो का प्रारम्भ और सम्यक् विकास हुआ। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है शातिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव शुक्ल युग मे हुआ था और कलात्मक परिपक्वता और वैचारिक प्रौढता की दृष्टि से उनके शुक्लोत्तर युग मे लिखे गये निबन्ध विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। हिन्दी का आधुनिक निबन्ध साहित्य विषय के अनुसार विभिन्न रूपो को अपने मे समाहित किये हुए है। यह युग निबन्ध के प्रसरण का युग है जो अपनी पूर्ण परिपक्वता मे अनेक निबन्ध कोटियो के साथ नवीन रचनात्मक दृष्टि से नयी शैलियो का प्रयोग कर रहा है। समकालीन निबन्ध की प्रवृत्तियो मे मुख्य रूप से निम्नलिखित उल्लेखनीय है—

[१] **विचारात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति** जिस युग मे शातिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव हुआ उसमे हिन्दी निबन्ध की प्राय सभी प्रतिनिधि प्रवृत्तिया विकासशील मिलती है। इनमे सर्वप्रथम विचारात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति उल्लेखनीय है। इस

१ 'विचार और निष्कर्ष', वासुदेव, पृ० १४०।

कोटि के निबन्धो को चिन्तन प्रधान निबन्ध भी कहते है। इस प्रकार चिन्तन प्रधान निबन्धो मे बौद्धिकता की प्रधानता के साथ तर्क को भी स्थान मिला है। लेकिन कही-कही बौद्धिकता के साथ भावना का समन्वय भी हो जाता है, वहा तर्क नही रहता। विचारात्मक निबन्ध वस्तुत गम्भीर तथा प्रयोजनीय विषयो पर होते है। ऐसे निबन्धो मे विषयो की अनेकरूपता—दर्शन, सस्कृति, परम्परा, आधुनिकता, ज्ञान-विज्ञान, आदर्श-उपदेश, समाज, राजनीति, शास्त्र या साहित्य, जीवन या प्रकृति आदि—प्रतिबिम्बित होती है। इसके अतिरिक्त इसमे लेखक विषयो का स्वतत्र तथा वैयक्तिक चयन भी कर सकता है। विचारात्मक निबन्धो की सरसता एव सुगमता के लिए समास तथा व्यास शैली का प्रयोग होता है। भारतेन्दु युगीन निबन्ध साहित्य मे विचारात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति बहुत कम लक्षित होती है। लेकिन द्विवेदी युग मे 'बेकन निबन्ध' के हिन्दी अनुवाद से अनेक लेखको को निबन्ध लेखन की प्रेरणा मिली। शुक्ल युग मे इन निबन्धो का उत्कर्ष हुआ तथा शुक्लोत्तर युग मे प्रसरण के साथ निबन्ध की इस कोटि को समृद्धता प्राप्त हुई। इस कोटि के निबन्ध बहुधा बुद्धि को उत्तेजित करने वाले तत्वो से परिपूर्ण हैं। अद्यतन युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकारो मे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री जैनेन्द्र और श्री शातिप्रिय द्विवेदी आदि का प्रमुख तथा अन्यतम स्थान है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनेक विचारात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हुए है। 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'गतिशील चिन्तन', 'विचार प्रवाह' आदि मे उनके गम्भीर चिन्तन का प्रवाह परिलक्षित होता है। श्री जैनेन्द्र के विचारात्मक निबन्ध सग्रहो मे 'जैनेन्द्र के विचार', 'जड की बात', 'पूर्वोदय', 'मन्थन', 'सोच-विचार', 'साहित्य का श्रेय और प्रेय', 'राही', 'समाज' आदि उल्लेखनीय है। 'मन्थन' इनके दार्शनिक निबन्धो का सग्रह है। इसी प्रकार श्री शातिप्रिय द्विवेदी के 'जीवन यात्रा' निबन्ध सग्रह मे दार्शनिक निबन्धो का आकलन हुआ है।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के विभिन्न निबन्ध सग्रहो मे 'जीवन यात्रा', 'साहित्यिकी', युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास', 'समवेत' तथा 'परिक्रमा' मे सगृहीत कुछ निबन्धो मे चिन्तन प्रधान निबन्धो की प्रवृत्ति लक्षित होती है। 'जीवन यात्रा' उनके प्रारम्भिक निबन्ध सग्रहो मे है। इसमे लेखक ने दार्शनिक तथा व्यावहारिक निबन्धो को सगृहीत किया है। सग्रह की सर्वप्रथम रचना 'जीवन क्या है' शीर्षक निबन्ध है जिसे लेखक ने एक डेनिश कहानी के आधार पर लिखा है।[1] इस निबन्ध मे लेखक ने मानव जीवन से सम्बन्धित विभिन्न धारणाएँ व्यक्त की है जो जीवन की बहुरूपता की द्योतक है। 'यात्री' शीर्षक निबन्ध भी विचार प्रधान है जिसमे लेखक ने विभिन्न कोटियो के मनुष्यो को लोक यात्री बताया है और उसकी सार्थकता इगित की है। 'जीवन का उद्देश्य'

१ 'जीवन यात्रा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २।

शीर्षक निबन्ध मे यह बताया है कि सामान्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के विभिन्न लक्ष्य होते हुए भी मानव जीवन मात्र का उद्देश्य एक ही है। इस दृष्टि से चिरन्तन सुख शाति के नियामक आनन्द की प्राप्ति 'निखिल ससृति का अन्तिम निष्कर्ष' है।[1] 'मृग तृष्णा' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने यह बताया है कि आज ससार मे जीवन की कृत्रिम महत्वाकाक्षाओ ने मनुष्य को त्रस्त कर रखा है। वह भ्रमवश उन उपकरणो को अनिवार्य समझ बैठा है जो मात्र कृत्रिम है और जिनका कोई अन्त नही।[2] 'आत्म चिन्तन' शीर्षक निबन्ध मे यह सकेत है कि पार्थिव ससार के क्षुब्ध एव अशात वातावरण की प्रतिक्रिया स्वरूप मानव हृदय मे शाति की नैसर्गिक आकाक्षा उत्पन्न होती है। इनसे मुक्ति का एकमात्र उपाय आत्मबोध है। लेखक के मत से 'इस आत्म विश्व मे एक ऐसी शुभ्र शीतल ज्योति जगमगाती रहती है जो प्रत्येक क्षण हमारे मोहाच्छन्न अज्ञानान्धकार को हटा कर हमारी सुख शाति मे कर्तव्य का बोध कराने मे तत्पर है।'[3] 'आत्म विश्वास' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने इस महान् सत्य का निरूपण किया है कि आत्म विश्वास आत्मा का प्रकाश है। 'वशीकरण वाणी' इस सग्रह का इस वर्ग के अन्तर्गत अन्तिम उल्लेखनीय निबन्ध है जिसमे लेखक ने बताया है कि यद्यपि ईश्वर ने वाणी की शक्ति सभी को दी है परन्तु इसे मुखरित न बना कर मौन साधना से सयम और तपस्या द्वारा अमृत वाणी के रूप मे परिणत करना ही इसका सफल स्वरूप है।

विचारात्मक निबन्धो का स्वरूप द्विवेदी जी की दूसरी निबन्ध रचना 'साहित्यिकी' मे भी उपलब्ध होता है। 'साहित्यिकी' के सर्वप्रथम विचारात्मक निबन्ध 'प्रेमपूर्ण मानवता की पुकार' मे लेखक ने विश्व कल्याण एव मानव कल्याण के लिए विश्व मे व्याप्त 'अति' रूपी स्वार्थ की भावना को त्यागने का सन्देश दिया है। 'शरद की औपन्यासिक सहृदयता' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने शरद के उपन्यासो तथा कहानियो मे निहित मानवता की पुकार के रूप मे पीडित तथा उपेक्षित मानव के प्रति अपने सुहृद विचारो को आरोपित किया है। 'मानव समाज की एक समस्या—अन्ना' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने टालसटाय के 'अन्ना' उपन्यास के माध्यम से विश्व के नारी जीवन की एक समस्या बेमेल विवाह और उससे उत्पन्न नारी जीवन की विभिन्न समसामयिक समस्याओ को उद्घाटित किया है। 'कविता और कहानी' वैचारिक निबन्ध मे, जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, लेखक ने कविता और कहानी के मूल उद्गमो को उद्धृत करते हुए आधुनिक युग मे दोनो की भिन्नता के कारण को स्पष्ट किया है तथा चित्रकार से कहानीकार और कवि की रचनाओ का आत्मिक स्पर्श एव भिन्नता प्रस्तुत

१. 'जीवन यात्रा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १६।
२ वही, पृ० ३९।
३. वही, पृ० ५१।

की है। 'युग और साहित्य' नामक निबन्ध कृति के 'नख बिन्दु' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने प्राचीन तथा नवीन परिवर्तन क्रम मे अपने विचारो को प्रकट किया है। उन्नीसवी शताब्दी की साहित्य रचना मे उज्ज्वल तथा सजीव अशो को प्रकट करने के साथ उनके दूषित अश को भी स्पर्श किया है। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से सामाजिक जीवन तथा साहित्य मे हुए परिवर्तनो की ओर लेखक ने दृष्टिपात किया है। युग-युग से विषम शासन भार मे दबी जनता मे नव जागृति हुई जिसने जीवन के विभिन्न क्षेत्रो को स्पर्श किया। वर्तमान युग के इस जागरण से लेखक ने स्त्री पुरुषो दोनो को नव जागरण मे सचेत तथा सतर्क रहने के साथ ही नारियो से विशेष रूप से लेखक ने प्रेरणात्मक अनुरोध किया है। वे अपनी प्रेरणा से, अपने व्यक्तित्व से, शीतलता से उत्तप्त मस्तिष्को को प्रकृतिस्थ हृदय से सोचने को अग्रसित कर सकती है।

'सामयिकी' नामक निबन्ध सग्रह के 'रवीन्द्रनाथ' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने रवीन्द्र के व्यक्तित्व का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए उनकी मृत्यु पर लिखे गये एक समाजवादी समीक्षक के मत 'एक महान् बौद्धिक परम्परा का अन्त' [1] को उद्धृत किया है। परन्तु लेखक के अपने विचारानुसार उस परम्परा का अन्त नही हुआ प्रत्युत् वह गाधी जी मे अन्य रूप मे अवस्थित है। इसके अतिरिक्त समाजवाद के वास्तविक दृष्टिकोण के रूप मे लेखक ने समाजवाद की दृष्टि 'समाज की सर्जरी मे विश्वास'[2] को प्रत्यक्ष कर अपने विचारो को प्रतिपादित किया है। 'समाजवाद के सामने है गाधी वाद। रवीन्द्रनाथ बीच मे छूट जाते है, उनके नाम पर कोई 'वाद' नही है, यदि है तो छायावाद। साहित्य की अनुभूतिशीलता उनमे केन्द्रित थी, समाज की क्रियाशीलता महात्मा गाधी मे। जहा क्रियाशीलता होती है वही शक्ति उत्पन्न होती है। रवीन्द्रनाथ मे शक्ति नही, अनुरक्ति थी, उनकी अनुरक्ति मे 'गाधी महाराज' के लिए श्रद्धा थी।'[3] 'कवि, कलाकार और सन्त' शीर्षक निबन्ध मे आधुनिक युग की तीन महान् विभूतियो रवीन्द्र, शरद् और गाधी के सपूर्ण व्यक्तित्व का परिचय देते हुए लेखक ने उन्हे आधुनिक भारतीय चेतना का उद्भावक बताया है। 'हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि' शीर्षक निबन्ध मे द्विवेदी युग, छायावाद युग तथा प्रगतिशील युग मे लिखे गए काव्य की समयक् पृष्ठभूमि का निरूपण किया गया है। 'प्रगतिवादी दृष्टिकोण' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने साहित्य के समाजवादी दृष्टिकोण की व्याख्या की है। इसी प्रकार से 'छायावादी दृष्टिकोण' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने इस विचारधारा की व्याख्या करते हुए परितृप्ति को निवृति मे परिवर्तित करना ही उसका लक्ष्य बताया है।[4]

---

१. 'सामयिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २१।
२ वही, पृ० २४।
३ वही, पृ० २४।
४. वही, पृ० १६५।

'हिन्दी साहित्य' शीर्षक निबन्ध मे आधुनिक युगीन साहित्य की सास्कृतिक पृष्ठभूमि मे साहित्य विकास के विविध युगो, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग, प्रगतिशील युग आदि, के साथ-साथ गद्य और पद्य साहित्य की विभिन्न विधाओ के उद्‌भव और विकास का निरूपण किया गया है। लेखक ने यह स्पष्ट सकेत इस निबन्ध मे किया है कि युग धर्म और युग चेतना का प्रसारक साहित्य ही मानवता के उद्धार की भूमिका का निर्वाह कर सकता है।[१]

'धरातल' नामक निबन्ध सग्रह मे 'जीवन दर्शन' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने सवेदनशीलता, स्वाभाविकता और कृत्रिमता, प्रकृति और सस्कृति, मनोविज्ञान, शरीर-माद्यम् खलु धर्म साधनम्, दिनचर्य्या, मुक्ताहार विहार, चरित्र का अध्ययन, आकृति विज्ञान, समस्या, वर्तमान कथा साहित्य आदि शीर्षको मे पुरातन सास्कृतिक मानव का चित्र उपस्थित किया है। मानव जीवन का रसात्मक इतिहास कविता और कहानी मे अवस्थित है। युग परिवर्तन से मानव मे नवीनता के रूप मे कृत्रिमता का वास हो गया है। मानव जीवन की दिनचर्या में लेखक ने प्रकृति और सस्कृति का समावेश किया है। सस्कृति मनुष्य के जीवन को सयत और सुसगत बनाती है। वह प्रकृति के साहचर्य मे प्राण और काया को अन्विति देती है।[२] लेखक ने इसमे दार्शनिक पृष्ठभूमि मे मन की शक्ति की असीमता को प्रतिबिम्बित करते हुए भी शरीर को महत्वपूर्ण माना है क्योकि मन के अनुरूप ही जीवन भी सयत, सुदृढ तथा स्वथ्य बनता है। लेखक की दृष्टि मे वर्तमान समस्याएँ आहार-विहार मे व्यतिक्रम से उत्पन्न हुई है।[३] 'नैतिक हिंसा' शीर्षक निबन्ध मे राजनीति मे नशेबन्दी के आधार पर काग्रेसी सरकार ने नैतिकता का परिचय दिया है, लेकिन जीवन मे चेतना के अभाव के कारण तथा स्वाभाविक स्फूर्ति के अभाव मे मानव उसी से उत्तेजना ग्रहण करता है। मानवीय सम्बन्धो का कोई मूल्य नही, प्रत्येक मानव दुर्गुणो से युक्त है। इस व्यापारिक प्रवृत्ति के कारण ही अनेक सघो का निर्माण हो रहा है।[४] लेखक अपने प्राचीन सास्कृतिक वातावरण को श्रेष्ठ मानता है और उनके विचार से जीवन निर्माण की दिशा मे गाधी जी की ग्रामीण व्यवस्था सर्वोदय आदि अत्यधिक महत्वपूर्ण है। 'टालसटाय की श्रम साधना' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने सन्त, विचारक, कलाकार टाल्सटाय के विचारो को आलयोग, कृत्रिमता, श्रेणिसघर्ष, श्रम विभाग, आश्रम आदि के अन्तर्गत अभिव्यक्त किया है। 'भाषा' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने भाषा के जन्म और विकास के इतिहास को प्रकट किया है। भाषा मानव जीवन यात्रा, प्रवृत्तियो, अनुभू-

---

१ 'सामयिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० २५७।
२ 'धरातल', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४।
३ वही, पृ० ११।
४ वही, पृ० ११।

तियो आदि का दिग्दर्शन कराती है तथा मनुष्य की अन्तरात्मा के रूप मे रूपायित हुई है।[1] भाषा का राजनीति के क्षेत्र से परिष्कार तथा आर्थिक विषमता को दूर करके ही उसकी सस्कृति का सरक्षण किया जा सकता है। 'गाँवो की सास्कृतिक रचना' शीर्षक निबन्ध भी विचारात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसमे लेखक ने नैसर्गिक विशेषता, स्वाभाविक साधन, सगीत मधुर श्रम, शिक्षा, सस्कृति और कला आदि के माध्यम से गावो की सास्कृतिक सरचना का प्रयत्न किया है। इसी से मानव जीवन का स्वाभाविक विकास तथा उत्थान सम्भव है।

'साकल्य' नामक सग्रह मे 'सस्कृति का आधार' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने प्रकृति की नैसर्गिक एकता तथा मनुष्य की आध्यात्मिक एकता को सस्कृतिक का आधार माना है। लेकिन आधुनिक जगत मे इस एकता का सपूर्ण अभाव-सा है। इसका मुख्य कारण विज्ञान की प्रगति के साथ मानव की स्वार्थलिप्सा की भावना का उद्रेक है। विज्ञान से मनुष्य की कार्यक्षमता और दक्षता बढ गयी है लेकिन वह कर्मशील नही कार्यवाह बन गया है। उनकी क्रियाशीलता मे आन्तरिकता, सवेदनशीलता, आस्था तथा तन्मयता का अभाव है।[2] 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप मे विश्व मैत्री का एक मात्र आधार सस्कृति है। 'समन्वय अथवा एकान्वय' शीर्षक निबन्ध मे भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय को लेखक ने एक स्लोगन माना है।'[3] जिसमे मानव व्यावहारिक जीवन के आदर्शों का निर्वाह न कर सकने की असमर्थता को उस समन्वय की ओट मे कर स्वय बौद्धिक बन जाता है। अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का स्वर पाश्चात्य देशो से ही मुखरित हुआ है। लेखक की दृष्टि मे यान्त्रिक साधनो एव औद्योगिक माध्यमो से मानव मे सजीवता एव चेतना का उद्रेक नही किया जा सकता है। समन्वय की बात अवसरवादियो के द्वारा उठाई हुई है। मानव को समन्वय नही एकान्वय की आवश्यकता है। 'सौन्दर्य बोध' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने चेतना के रूप या स्तर माने हैं। अपने निम्नतम स्तर पर चेतना वासनात्मक हो जाती है। उच्चतर स्तर पर वही चेतना सौन्दर्यमयी, कलात्मक एव सास्कृतिक हो जाती है। सौन्दर्य हार्दिक सुषमा और गरिमा से आप्लावित हो जाती है।[4] 'पद्मनाभिका' निबन्ध सग्रह मे 'सवेदना की शिराएँ' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने आधुनिक युग मे स्वार्थों की सजगता एव दूसरो के प्रति सशकता पर आधारित व्यवहार कुशलता तथा सवेदनात्मक भावना के अभाव की ओर सकेत किया है। 'ग्रामगीत' निबन्ध मे ग्रामगीतो मे मानव के निर्माण का जगत अभिहित होता है। ग्रामगीतो मे जीवन के प्रत्येक कण

---

१ 'धरातल', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७२।
२. 'साकल्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १०।
३ वही, पृ० २१।
४. वही, पृ० २५२।

को सजीव करके ग्रामीण समाज ने उसे अविनश्वर रूप दे दिया है। प्रस्तुत विचारात्मक निबन्ध मे लेखक ने त्रिपाठी जी के 'ग्राम साहित्य' से कुछ गीत एव उनके अर्थो को सकलित करके[1] ग्रामगीतो के प्रति अपने विचारो को प्रत्यक्ष किया है। 'छायावाद और प्रकृति' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने छायावाद मे प्रकृति के सूक्ष्म रूप के चित्रण के साथ आचार्य शुक्ल जी की प्रवृत्ति के प्रति स्थूल अथवा वस्तु रूप को प्रकट करते हुए भी उनके रगात्मक वृत्ति से सम्बन्धित विचारो को उद्धृत किया है।

'आधान' शीर्षक निबन्ध सग्रह के प्रथम विचारात्मक निबन्ध 'काव्य मे भक्ति भावना' मे मानव की आन्तरिक श्रद्धा एव भक्ति की भावना की अभिव्यक्ति नृत्य एव सगीत के अतिरिक्त काव्य मे भी समाहित हो गयी है। लेखक ने भारतीय हिन्दी काव्य साहित्य के भक्तिकाल का विश्लेषण करते हुए उस युग मे व्याप्त भक्ति के विभिन्न दार्शनिक रूपो का निरूपण किया है। 'मौलिकता के प्रतिमान' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने मौलिकता के वास्तविक अर्थ को प्रकट करते हुए उसके प्रतिमानो के प्रति अपने विचार प्रकट किए है। लेखक ने मौलिकता को 'एक अमाप सजीवता'[2] माना है जो चेतना के सदृश ही अन्तर्व्याप्त सूक्ष्म सत्ता के रूप मे मानव मे अन्तर्हित होती है। मौलिकता के प्रतिमानो को स्पष्ट करने के लिए लेखक ने मानव की सृजनात्मक प्रतिभा के विभिन्न रूपो को स्पष्ट किया है। 'दिग्दर्शन' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने नेहरू जी की विभिन्न विदेश यात्राओ मे दिये उनके वक्तव्य को स्पष्ट करते एव उनके सन्देशो को उद्धृत करते हुए भारत के लिए उनके सन्देशो की उपयुक्तता-अनुपयुक्तता का विश्लेषण किया है। 'वृन्त और विकास' नामक निबन्ध सग्रह मे 'नयी पीढी नया साहित्य' शीर्षक विचारात्मक निबन्ध लेखक के स्वाध्याय, मननशीलता आदि का द्योतक है। लेखक ने इसमे नयी पीढी और नये साहित्य के रूप मे केवल भारत की ही नही सपूर्ण विश्व की नयी पीढी की ओर सकेत किया है। इस प्रकार नयी पीढी के नये साहित्य के प्रति विचारो के प्रतिपादन मे लेखक की व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। लेखक ने विदेशो मे साहित्य की प्रचलित धाराओ को स्पष्ट किया है—सघर्षात्मक साहित्य की धारा, निर्माणात्मक साहित्य की धारा जो समाजवाद की ओर उन्मुख है, तथा वैभवशाली किन्तु ह्रासोन्मुख साहित्य की धारा। यह धारा समाजवादी साहित्य से प्रतिस्पर्द्धा के रूप मे लक्षित होती है।[3] लेखक के मत मे नई और पुरानी पीढी मे आदर्श और यथार्थ, सस्कृति और विकृति का अन्तर है। नये साहित्य मे फ्रायड का यौन विज्ञान, मार्क्स का समाजविज्ञान और मानवतावादी लेखको का रूढि और मतविशेष से मुक्त और स्वतत्र मनोविज्ञान निहित है।[4]

१. 'पद्मनाभिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २६।
२. वही, पृ० ५०।
३ 'वृन्त और विकास', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९३।
४. वही, पृ० ९४।

'समवेत' शीर्षक निबन्ध सग्रह के 'सौन्दर्य और कला' नामक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने साहित्य, सगीत और कला के रूपो को स्पष्ट करते हुए कला के क्षेत्र को विस्तृत माना है। 'कला केवल मनुष्यो की ही चित्तवृत्ति नही है, वह तो चेतन मात्र की सद्वृत्ति है।'[१] लेखक ने सौन्दर्य की रचनात्मक वृत्ति को आचरण की दृष्टि से सस्कृति का रूप माना है और इसी सस्कृति से कला की उत्पत्ति मानी है।[२] 'छायावाद का सगुण' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने मध्य युग तथा आधुनिक युग के सगुण के अन्तर को स्पष्ट करते हुए छायावादी कवियो के काव्यो के माध्यम से उसकी आत्मा को पहचानने का प्रयास किया है। छायावाद मे प्रकृति के कोमल और कठोर रूपो का चित्रण हुआ है। सभी प्रवृत्तियो में रूप के सदृश ही कोमल और कठोर रूप मे भी एक सौन्दर्य अन्तर्निहित रहता है। छायावाद मे सौन्दर्य अन्त करण का सजीव सगठन है।[३] 'रागात्मकता की समस्या' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने पन्त जी के राग वृत्ति के प्रति दृष्टिकोण को प्रत्यक्ष करते हुए अपने विचारो का प्रतिपादन किया है। पन्त जी की दृष्टि मे आज राग अपनी पूर्व भावना का आधार छोड कर बौद्धिक प्रणाली से सतरण कर रही है और इस नयी रागात्मकता मे नई कला का उद्रेक होगा।[४] लेखक ने राग की उत्पत्ति सवेदना से मानी है। बिना सवेदना के मानव स्वार्थी हो जायेगा और मानवीय अस्तित्व का बोध ही नष्ट हो जायेगा क्योकि 'मानव का सहअस्तित्व अन्य प्राणियो के सहयोग पर निर्भर है, निखिल प्रकृति से समरस होकर ही मनुष्य जी सकता है। प्रकृति के सान्निध्य से ही मनुष्य की दृष्टि मे विशदता और व्यापकता आ जाती है।'[५] 'प्रगति और सस्कृति' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने प्रगतिवाद के प्रति अन्य प्रबुद्ध जनो के विचारो को उनकी कविताओ के माध्यम से व्यक्त करते हुए अपने विचारो का निरूपण किया है। प्रगतिवाद मार्क्सवाद से प्रभावित है। लेखक की दृष्टि मे वह देहवाद है जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। सभी इसकी अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। लेकिन पन्त जी ने प्रगतिवाद की ओर आकृष्ट होते हुए भी सकीर्ण भौतिकवादियो के प्रति व्यग्यात्मक विचारो को प्रकट किया है। आज जीवन मे राग का अभाव है। स्वार्थ मे मनुष्य ममता और सवेदना शून्य हो गया है। उसमे गति, रस, राग नही रहा। वह यत्र बनता जा रहा है। प्रगति से ही सस्कृति प्रादुर्भूत होती है। बिना सवेदना के मानव गतिहीन है। गति प्राप्त होने पर ही मानव प्रगति कर जीवन्तता को प्राप्त कर सकता है।

---

१ 'समवेत', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४।
२ वही, पृ० ५।
३. वही, पृ० ११-१२।
४. वही, पृ० १५।
५ वही, पृ० २२।

'परिक्रमा' शीर्षक निबन्ध सग्रह के 'समष्टि के साधक रवीन्द्रनाथ' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत युग-पुरुष मे लेखक ने रवीन्द्रनाथ जी के जीवन परिचय मे उन्हे युग पुरुष के रूप मे अवलोकित करते हुए उनके विचारो को प्रकट किया है। रवीन्द्र जी की रचनात्मक प्रवृत्तियो एव मान्यताओ तथा गाधी जी की रचनात्मक प्रवृत्तियो एव मान्यताओ मे सादृश्यता है। 'कुटीर शिल्प और उसी जैसी देशी भाषा, अछूतोद्धार, हिन्दू मुस्लिम एकता, विश्व मानवता, अहिंसा, सभी बाते रवीन्द्र के मुख से ऐसी जान पडती हैं मानो कर्मवीर गाधी ही कवि हो गये हो।'[1] इन दोनो की अन्तश्चेतना एक होते हुए भी सार्वजनिक मतभेद है। रवीन्द्र चर्खे, खादी, सत्याग्रह तथा असहयोग को नही चाहते लेकिन उनमे लोकसेवा की भावना अन्तर्निहित थी तभी उन्होने आध्यात्मिक आनद के लिए शातिनिकेतन को महत्व दिया है। यह आनद ही विश्वात्मा है और शानिनिकेतन विश्वभारती। कवि का विश्व प्रेम और विश्व बधुत्व ही उसका युग प्रयास है।[2] वह जीवन मे प्रकृति को महत्व देते थे। 'कुसुमकुमार कवि पत' शीर्षक निबध मे अन्तर्निर्माण के अन्तर्गत लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पत जी के काव्य विकास में उनके भावो मे परिवर्तन एव अन्तर्निर्माण की दृष्टि से अपने विचारो का प्रकटीकरण किया है। पत जी की 'युगान्त' से पूर्व की रचनाओ मे कवि का प्रकृति प्रेम अपने विविध रूप को लेकर भी एकात्म रूप मे प्रकट हुआ है। 'युगान्त' मे कवि का भावात्मक रूप न रहकर पृथ्वी के पार्थिव धरातल का आह्वान है। 'युगवाणी' मे सास्कृतिक क्रान्ति एव नवनिर्माण है। 'ग्राम्या' मे ग्रामीण वातावरण का यथार्थ चित्रण है, लेकिन 'स्वर्णकिरण' मे पुन कवि की अन्तश्चेतना विद्यमान है। 'स्वर्णकिरण' के उपरान्त की रचनाओ मे भी कवि की सवेदना एव अन्तश्चेतना ही निःशरीर है, अदृश्य भविष्य की स्वप्न सृष्टि है।[3] इस प्रकार से हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र मे द्विवेदी जी के रचना काल मे वैचारिक निबन्धो की जो प्रवृत्ति लक्षित होती है, वह अपने सपूर्ण वैविध्य के साथ श्री शातिप्रिय द्विवेदी के 'जीवन यात्रा', 'साहित्यिकी', 'सामयिकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास', 'समवेत' तथा 'परिक्रमा' आदि ग्रन्थो मे सगृहीत अनेक निबन्धो मे उपलब्ध होती है।

[२] **विवरणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति** विवरणात्मक निबन्धो के अन्तर्गत कथात्मक तथा आख्यानात्मक निबन्धो को परिगणित किया जाता है। इस प्रवृत्ति मे विशेष विषय का विस्तृत वर्णन तथा निरूपण होता है एव वर्णनात्मक निबन्धो के सदृश ही इसमे भी कल्पना तत्व की प्रधानता रहती है। इसके साथ ही इसमे वैयक्तिकता की छाप भी विद्यमान रहती है। इस कोटि के निबन्ध वर्णनात्मक निबन्धो की

---

१ 'परिक्रमा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११७।

२ वही, पृ० ११९।

३. वही, पृ० १६२।

अपेक्षा अधिक चैतन्यमान होते है। वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति मे एक मुख्य भिन्नता यह है कि 'वर्णनात्मक निबन्धो मे वस्तु को स्थिर रूप मे देखकर वर्णन किया जाता है, इसका सम्बन्ध अधिकतर देश से है। विवरणात्मक का सम्बन्ध अधिकाश मे काल से है, इसमे वस्तु को उसके गतिशील रूप मे देखा जाता है।'[1] वस्तुत. विवरणात्मक निबन्ध दर्शक के सम्मुख चारु चल-चित्र से गतिशील रहते है।[2] इनके अन्तर्गत जीवनी, कथाएँ, घटनाएँ, पुरातत्व अन्वेषण, आखेट आदि विषयो का निरूपण किया जा सकता है। इस प्रवृत्ति मे अधिकाशत व्यास शैली का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक युग मे विवरणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति का धीरे-धीरे ह्रास हो गया है। भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग मे इस प्रवृत्ति का विकास अपनी चरम सीमा पर था लेकिन शुक्ल युग मे यह प्रवृत्ति गौण हो गयी और अद्यतन युग मे यत्र-यत्र ही इसका रूप परिलक्षित होता है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत देवेन्द्र सत्यार्थी के कुछ यात्रा सम्बन्धी निबन्ध परिगणित किये जा सकते है। इसके अतिरिक्त श्री ब्रजलाल वियाणी का 'कल्पना कानन', डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का 'कुछ कलाकारो की जीवनियाँ' श्री इलाचन्द्र जोशी की 'महापुरुषो की प्रेम कथाएँ' तथा श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन के कुछ निबन्ध आदि भी इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत उल्लिखित किये जा सकते हैं।

आधुनिक युग मे विवरणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति कम परिलक्षित होती है। स्फुट निबन्धो मे ही इसका रूप दृष्टिगोचर होता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे इस प्रवृत्ति का रूप बहुत कम लक्षित होता है। केवल 'पद्मनाभिका' निबन्ध सग्रह का 'बोधिसत्व' शीर्षक निबन्ध ही इस कोटि मे परिगणित किया जा सकता है। इसमे लेखक ने गौतम बुद्ध के जीवन की लौकिक तथा अलौकिक कथात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए उनके दार्शनिक मतो का प्रतिपादन किया है। प्रस्तुत कथात्मक निबन्ध का ही विस्तृत रूप लेखक की औपन्यासिक कृति 'चारिका' मे उपलब्ध होता है। जैसा कि अभी उल्लेख किया गया है इसकी कथा का सम्बन्ध गौतम युद्ध के जीवन से है। निबन्ध का प्रारम्भ लेखक ने गौतम बुद्ध के परिचयात्मक रूप से किया है। उन्होने लिखा है 'वह कपिलवस्तु का राजकुमार था। उन अनेक योनियो अथवा जन्म जन्मान्तरो की परम्परा से तथागत होकर, जिनका जीवन वृत्त जातक कथाओ मे इगित है, वह राजकुल मे नवबुद्ध होकर उत्पन्न हुआ था। इस नये जन्म मे भी उसने अपनी दैनिक और मानसिक स्थिति के अनुसार अनेक जन्म लिये—राजस, तामस, बोधिसत्व।'[3] इस प्रकार लेखक ने कथा के प्रारम्भ मे गौतम बुद्ध के जीवन को

---

१ 'काव्य के रूप', डा० गुलाबराय, पृ० २२२।

२. 'हिन्दी निबन्ध का विकास', डा० ओकार नाथ शर्मा, पृ० ७६।

३. 'पद्मनाभिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९९।

तीन भागो मे विभक्त कर उनके प्रत्येक भाग का वास्तविक निरूपण प्रस्तुत किया है। गौतम बुद्ध का प्रारम्भ का नाम सिद्धार्थ था। उनका जन्म राजा शुद्धोधन के राज-प्रसाद मे हुआ था। बचपन मे ही भविष्यवक्ताओ ने यह घोषणा कर दी थी कि यह बालक या तो दिग्विजयी सम्राट बनेगा अथवा ऋषियो का मार्ग अपना कर चक्रवर्ती सम्राटो को भी नि स्व बना देगा। अतएव अपने बालक के वीतरागियो के से लक्षणो को प्रारम्भ मे ही देखकर राजा शुद्धोधन उसे अपने साथ रख कर राज्य भ्रमण कराने लगे। प्रकृति के मनोहर सुरम्य वातावरण मे भी सिद्धार्थ का ध्यान जीवो के प्रति दयालुता से पूर्ण होता। वह उनकी हिंसा एव दयनीयता को देखकर त्रस्त हो उठते। वह एकान्त मे किसी भी वृक्ष की छाया मे बैठ घन्टो आत्मचिन्तन मे लीन हो ससार से अग-जग हो जाते। सिद्धार्थ की तरुणावस्था मे राजा ने उनके लिए ऋतुओ के अनुसार सर्वसुख सम्पन्न विभिन्न महलो का निर्माण करवाया। उनके लिए विभिन्न मनोरजन के साधनो को एकत्र करने तथा उनका मनोरजन करने के उपायो मे सलग्न हो गये। इसके अतिरिक्त उन्होने राजकुमारी यशोधरा से उनका विवाह करा दिया तथा उसके लिए प्रणय महल का निर्माण करवाया। लेकिन राजकुमार का मन वहा भी अधिक दिनो तक न रम पाया। वह व्यथा, उच्छ्वास आदि का अवलोकन करने हेतु नगर भ्रमण को निकल कर राज्य का निरीक्षण करने लगे। राजा के सतर्क रहने तथा कठोर अनुशासन पर भी उस श्री सुषमा समृद्धता मे कुमार वृद्धावस्था, निर्धनता, काल, मृत्यु, रुग्णावस्था आदि महाव्याधियो को देखकर अत्यन्त ही क्षुब्ध हो उठे। उन्हे अपनी सुख सपन्नता शून्य-सी आभासित हुई। उनका मन उन महाव्याधियो से प्राणियो की मुक्ति के लिए लालायित हो उठा। राजकुमार ने अपनी परिणीता पत्नी यशोधरा को अपने मन्तव्य से परिचित करा दिया। लेकिन यशोधरा ने कुमार के मार्ग में अवरोधक न बनते हुए भी नवजात शिशु को आशीर्वाद हेतु कुमार को रोक लिया। नवजात शिशु में उन्हे अपना रूप मिला। वह चित्र और सगीत के सदृश अपनी प्रतिछवि और प्रतिध्वनि शिशु राहुल के वात्सल्य मे कुछ दिनो के लिए फस गये लेकिन अधिक समय तक नही। वह पुन उन्ही व्याधियो से त्राण के लिए मानव-मात्र को मातृत्व भाव वात्सल्य प्रदान करने, उनके कल्याण के लिए तथा शाश्वत सत्य का अनुसधान एव अनुशीलन करने के लिए चिन्तित रहने लगे। बालक राहुल का सजीव वात्सल्य बन्धन भी राजकुमार को अपने पास न बाध सका और वह एक रात्रि को वहा से चल दिये। कुमार की दिव्यता से प्रभावित कुछ परिव्राजको ने उन्हे अपने आश्रम मे स्थान दिया। कुमार ने भी घर से बाहर परिव्राजक का परिधान ग्रहण कर लिया था। उस आश्रम मे रह कर उन्होने वहा की दिनचर्या तथा परलोक के सुख की प्राप्ति हेतु लगे अन्य सन्यासियो को देखा। यहा कुमार का जीवन उन्ही लोगो की तपश्चर्या-सा होने पर भी उनका मन आत्मलीन न हो सासारिक आवागमन से मुक्ति के मार्ग-दर्शन का प्रयास एव अन्वेषण करता रहा। उस आश्रम

मे भी उन्होने स्वार्थ और सकीर्ण बन्धनो को देखा । अतएव एक दिन वह सबके रोकने पर भी वहा से चल दिए । राह मे उन्हे अनेक व्याधिग्रस्त लोगो एव उनके पुण्य के लिए अधर्म पूर्ण कार्यो को देख कर ग्लानि उत्पन्न हुई । सद्भावना एव कल्याण की भावना से ओतप्रोत उस परिव्राजक ने यथायोग उनके अन्तसचक्षुओ को खोल दिया । उन्हे जीवन के सत्य मार्ग से अवगत कराया। भ्रमण करते हुए वह परिव्राजक अस्वस्थ वृक्ष (पीपल, बोधिवृक्ष) के नीचे सम्बोधि प्राप्त करने के हेतु बैठ गये । चिन्तन एव विश्लेषण के द्वारा सबोधि की प्राप्ति उन्होने की । मनोयोग एव मन सगठन के स्वरूप को निश्चित करके परिव्राजक ने निष्कर्ष निकाला । यही निष्कर्ष सबोधि रूप मे प्राप्त कर वह बोधिसत्व होकर गौतम बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए । अपने निष्कर्षो को ससार मे कार्यान्वित करने एव बोधि को स्वय अपने आचरण मे ढाल कर दूसरो के समक्ष दृष्टान्त रूप मे प्रत्यक्ष करने तथा उन्हे इस ओर अग्रसर करने के लिए चारिका हेतु वह निकल पडे ससार के मोक्ष के लिए । प्रस्तुत निबन्ध मे द्विवेदी जी की काव्यात्मक भाषा का रूप भी दृष्टिगोचर होता है, जो उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है । इसमे लेखक ने अश्वघोष रचित 'बुद्धचरित' के श्लोको को उद्धृत कर उन्हे स्पष्ट किया है तथा आचार्य शुक्ल द्वारा अनुवादित 'बुद्धचरित' से भी इसमे सहायता ली गयी है । फलत प्रस्तुत निबन्ध कथात्मक होते हुए भी दार्शनिक विचारो एव भावो से परिपूर्ण है । इसके अतिरिक्त 'सामयिकी' निबन्ध सग्रह के 'भविष्य पर्व' शीर्षक निबन्ध मे लेखक की गद्य काव्यात्मक प्रवृत्ति परिलक्षित होती है ।

[३] **सामयिक निबन्धो की प्रवृत्ति** . श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे सामाजिक विषयो पर लिखी गयी रचनाएँ एक बडी सख्या मे उपलब्ध होती हैं । ये रचनाएँ मुख्यत समसामयिक समस्याओ पर लिखी गयी है । जैसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है, द्विवेदी जी के आविर्भाव का काल राजनैतिक चेतना के जागरण और विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और वैचारिक आन्दोलनो का युग था । उन्होने इन्ही क्षेत्रो से सम्बन्धित अनेक ज्वलन्त समस्याओ पर निबन्ध रचना की । सामयिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी के 'जीवन यात्रा', 'सामयिकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास' तथा 'समवेत' आदि सग्रहो मे कुछ निबन्ध उपलब्ध होते है । लेखक ने समसामयिक वातावरण का, उस समय मे प्रचलित मनोवृत्तियो का तथा जीवन मे व्याप्त कुछ महत्वपूर्ण बातो आदि का उल्लेख इन निबन्धो मे किया है । 'जीवन यात्रा' निबन्ध सग्रह मे सगृहीत 'जीवन का लक्ष्य', 'लौकिक योग्यता', 'हसता जीवन', 'कृषक और शिक्षित युवको का जीवन', 'प्रोत्साहन', 'जीवन अपनी सरलता की ओर', 'नवयुवक और स्वावलम्बन', 'स्वदेश प्रेम' तथा 'युद्ध की विभीषिका' आदि शीर्षक निबन्धो से सामयिक निबन्धो की प्रवृत्ति स्पष्ट ही लक्षित होती है । 'जीवन का लक्ष्य' शीर्षक निबन्ध मे जीवन मे लक्ष्य निर्धारण के महत्व का प्रतिपादन करते हुए लक्ष्य निर्धारण के उपरान्त चित्त

एव मन की एकाग्रता के आधार पर उसे क्रियान्वित करने का सन्देश दिया है। 'लौकिक योग्यता' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत लौकिक जीवन को महत्वपूर्ण और लौकिक पटुता की योग्यता को आवश्यक माना गया है। तभी मानव अपने कार्य को कुशलता पूर्वक कार्यान्वित कर सकता है। 'हसता जीवन' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने मानव शरीर मे हसने के प्रभाव के महत्व को बताते हुए वाह्य समाज मे हसने की महत्ता को प्रकट किया है। मानव कटु और कठोरतम क्षणो मे मुस्करा कर हसते हुए ही अपनी कठिनाइयो को पार कर सकता है। 'कृषक और शिक्षित युवको का जीवन' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने अपने समाज मे प्रचलित सममामयिक ग्रामो और शहरो के वातावरण मे पले हुए युवको के जीवन एव उनकी दिनचर्या को स्पष्ट किया है। 'प्रोत्साहन' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने मानव को जीवन पथ की विपत्तियो मे धैर्य, साहस, उत्साह तथा दृढता आदि की ओर प्रोत्साहित किया है। मानव अपनी कार्यक्षमता मे विश्वास करके ही प्रोत्साहन प्राप्त कर सकता है। 'जीवन अपनी सरलता की ओर' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने वर्तमान दूरदर्शी आत्मा को धारण करने वाले महापुरुष महात्मा गाधी के सिद्धान्तो एव उनके प्रयत्नो की ओर सकेत किया है। वस्तुत यह सरल जीवन ही 'मानव जीवन मे सहयोग, सद्भावना, समवेदना और आत्मीयता की उत्पत्ति के लिए, इस विश्व सग्राम के बीच, लौकिक और आत्मिक शाति का सहायक है एव आक्रान्त जीवन को उसके चिर मौलिक स्थान पर पहुँचाने वाला है।'[१] 'नवयुवक और स्वावलम्बन' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने स्वावलम्बन को पुरुषत्व का एक लक्षण मानते हुए उसके महत्व का प्रतिपादन किया है। 'स्वदेश प्रेम' शीर्षक निबन्ध मे मानव जिस प्रकार स्वय को, अपने घर, अपने गाव या शहर को प्रेम करता है उसी प्रकार विदेश जाकर वह अपने देश के प्रति भी प्रेम से आप्लावित हो उठता है। जिसके हृदय मे अपनी जननी के प्रति प्रेम, मातृसेवा का अनुराग नही है, अपनी जन्मभूमि के साथ जो विश्वासघात करता है, वह पतित है, कुत्सित है और अधम है।[२] 'युद्ध की विभीषिका' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने योरोपिय महायुद्ध के समय मे भारत की सामाजिक एव आर्थिक परिस्थितियो की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए मानव मे व्याप्त विभिन्न मनोवृत्तियो का उल्लेख किया है।

'सामयिकी' निबन्ध सग्रह के 'युग दर्शन' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत दार्शनिक एव आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर नर नारी के विशेष रूप से, लोक सग्रह तथा सौहार्द आदि के सयोजन से, ही अर्द्धनारीश्वर शिव की कल्पना की गयी है जो लोककल्याण मे समन्वित है। लेखक ने ऐतिहासिक युग की नारी समस्या को लेते हुए युग पुरुष गाधी के द्वारा किये नारी उद्धार की ओर सकेत किया है। 'जवाहरलाल . एक मध्य-

---

१. 'जीवन यात्रा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९७।
२. वही, पृ० १०७।

बिन्दु' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने नेहरू जी की आत्मकथा 'मेरी कहानी' के आधार पर उनके विचारो को प्रस्तुत किया है। लेखक ने समाज मे व्याप्त गाधीवाद, समाजवाद, प्रगतिवाद आदि के मध्य नेहरू जी के आत्मनिरीक्षण एव उनके विचारो की भिन्नता की ओर भी सकेत किया है। नेहरू जी 'बौद्धिक उदारता के कारण वे बुद्ध के व्यक्तित्व के प्रति मुग्ध हो जाते हैं और गाधी के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धालु।'[1] 'प्रकृति पुरुष के उत्तराधिकार' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने बापू जी के प्राणविसर्जन का कारण एक व्यक्ति विशेष को न मान कर समग्र कलुषित युग एव दूषित समाज को माना है।

'धरातल' नामक सग्रह के 'रोटी और सेक्स' शीर्षक निबन्ध मे आधुनिक युग मे मानव की नैसर्गिक आवश्यकताओ का उल्लेख करते हुए उसके अभाव की ओर सकेत किया है। आज सर्वत्न मानव-समाज मे रोटी और सेक्स रूप मे अर्थ और काम की समस्या मुखर होती जा रही है। मानवीय स्वार्थ की भावना बढने के कारण श्रम, सहयोग, एव सद्भावना का लोप हो रहा है वस्तुत समाज से धर्म नाम के वास्तविक अर्थ का लोप हो गया है। 'मनुष्य और यत्न' शीर्षक निबन्ध मे श्रम के अर्थ और महत्व को स्पष्ट करते हुए लेखक ने मनुष्य की निष्क्रियता एव यात्निक युग को स्पष्ट किया है। 'साइकिल रिक्शा और एक्का' मे वैज्ञानिक युग की देन को स्पष्ट करते हुए उसकी असवेदनात्मक प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है। आज की पूजीवादी तथा यात्निक सभ्यता ने विश्व मे जडता का आरोपण कर दिया है, मनुष्यो का स्थान पशुओ को और पशुओ का स्थान आज यत्नो को मिल गया है, कारण आज टकसाली सिक्को की सभ्यता का प्रादुर्भाव हो चुका है। 'किसान और मजदूर' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने ग्रामीण और नागरिक जीवन मे श्रम की मौलिकता को स्पष्ट कर नगरो और ग्रामो मे श्रम की भिन्नता को प्रकट किया है और इस ओर सकेत किया है कि 'प्रकृति के सपर्क मे, पृथ्वी की स्वाभाविक मिट्टी मे ग्राम मनुज जब अपने श्रम का बीज बोता है तब वह कहलाता है किसान। वही जब हल बैल, अन्न वस्त्न और लगान की कमी से नगरो मे आकर अपनी श्रम शक्ति का क्रय-विक्रय करता है तब हो जाता है मजदूर।'[2] 'तीसरे महायुद्ध के बाद' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने आधुनिक युग मे बर्बरता की एव विभिन्न मानवीय प्रवृत्तियो की ओर सकेत करते हुए अद्यतन युग के वास्तविक चित्न को प्रस्तुत किया है। 'प्रत्यावर्तन . श्रम धर्म की ओर' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने आधुनिक सिक्को के महत्व का प्रतिपादन करते हुए श्रम को ही जड धातुओ का सिक्का माना है। यही आधुनिक युग की देन है। 'साहित्यिक सस्थाओ का गन्तव्य' शीर्षक निबन्ध मे आधुनिक युग मे पत्न-पत्निकाओ तथा सस्थाओ की बहुलता के

---

१. 'सामयिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७६।

२. 'धरातल', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २५।

कारण को स्पष्ट करते हुए साहित्यकार के वास्तविक कार्यो का मूल्याकन प्रस्तुत किया है।

'साकल्य' नामक सग्रह के 'युग का भविष्य' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने पृथ्वी-पुत्र विनोबा के भूदान यज्ञ एव गाधी के रचनात्मक कार्यो के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए राजनीति की प्रवचना का उल्लेख किया है। मानव अपने स्वार्थ मे लिप्त होकर भविष्य की भीषणता का आभास नही पाता है। मुद्रागत अर्थ शास्त्र से देश को स्वतत्रता नही मिल सकती। उसकी उपलब्धि के लिए रचनात्मक एव सहकार्यों जैमे सजीव माध्यम की आवश्यकता है। विनोबा जी अपने भूदान यज्ञ की सजीव चेतना से पुन मानव को कृत्रिम-यन्त्र युग से प्रकृति की ओर अग्रसित करना चाहते है। 'साहित्य का व्यवसाय' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने इस व्यापारिक युग मे साहित्य, समाज और राजनीति की स्वार्थ सजग शक्तियो की ओर सकेत किया है जो अपनी परिपुष्टता के लिए सतत् प्रतिस्पर्द्धा मे लीन है। साहित्य मे स्वार्थपरता के कारण भ्रष्टाचार फैल रहा है। 'हिन्दी का आन्दोलन' शीर्षक निबन्ध मे हिन्दी आन्दोलन को साम्प्रदायिकता से ऊपर माना गया है। यद्यपि 'राष्ट्रभाषा' की आवश्यकता एकता और सुबोधता के लिए है। सुबोधता की दृष्टि से हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि भारत के लिए ही नही, विश्व के लिए भी स्पृहणीय है। उसके पीछे जनता का तन मन और जीवन है। उसी के द्वारा भाषा और लिपि का स्वरूप बना है।'[१] परन्तु भाषा सम्बन्धी द्वन्द्व राजनीतिक नेताओ के द्वारा उठाया हुआ है जिसमे वे निरीह जनता का नेतृत्व करते हुए अपनी मनोकामना के लिए उनका शोषण करते है। 'जनक्रान्ति का आह्वान' शीर्षक निबन्ध मे मानव जीवन के इतिहास के क्रमिक विकास को प्रस्तुत करते हुए युग का भावात्मक रूप चित्रित किया है। 'छायावाद के बाद' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने हिन्दी कविता के पतन की ओर सकेत किया है। छाया-वाद के उपरान्त प्रगतिवाद ने साहित्य को काव्य से गद्य की ओर उन्मुख कर लिया। प्रयोगवाद मे प्रगतिवाद की वास्तविकता तथा छायावाद की सरलता किन्ही अशो तक विद्यमान रही लेकिन लेखक की दृष्टि मे मुक्त छन्दों के रूप मे हुई दुर्दशा असह्य और अक्षम्य है।[२] 'साहित्य मे अश्लीलता' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने समाज मे फैली अश्लीलता का प्रतिरोपण साहित्य मे किया है। समाज मे व्याप्त अश्लीलता ही आज साहित्य मे आकर उसे दूषित किए हुए है। 'पद्मनाभिका' नामक सग्रह मे 'नूतन पुरातन' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने अतीत और भविष्य की आँख मिचौनी का उल्लेख करते हुए अतीत की अदृश्यता का आभास भविष्य में प्रतिबिम्बित किया है। वस्तुत वाह्यावरण बदलने पर भी दोनो का अन्त करण एक ही है। आज

१ 'साकल्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४७।
२. वही, पृ० १६२।

विज्ञान ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है लेकिन उसकी सवेदनशीलता तथा स्पन्दन वह नष्ट नही कर सका है, नही ले सका है।

'आधान' शीर्षक निबन्ध सग्रह की 'विश्वविद्यालयो मे साहित्य का ह्रास', 'धुरीहीनता एक नैतिक समस्या', 'उद्योग और आत्मयोग', 'लोककला का आधुनिकीकरण', 'सास्कृतिक चेतना' तथा 'रचनात्मक योजना' आदि रचनाओ मे भी लेखक ने सामयिक समस्याओ का चिन्तन किया है। 'विश्वविद्यालयो मे साहित्य का ह्रास' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने, हिन्दी साहित्य के पठन-पाठन का प्रारम्भ विश्वविद्यालयो की उच्चतर कक्षाओ मे होने पर भी, विश्वविद्यालयो की शिक्षा प्रणाली एव वहा पर व्याप्त व्यापारिक मनोवृत्ति का चित्रण किया है। वस्तुत आज विश्वविद्यालय शिक्षण के केन्द्र तो नाम मात्र ही रह गये है, वह तो व्यापारिक एव राजनीतिक अखाडे बन गये हैं जहाँ छात्रो के मानसिक विकास की ओर ध्यान न देकर अपने स्वार्थों मे लिप्त अध्यापको एव छात्रो मे निरन्तर सघर्ष होते रहते हैं। 'धुरीहीनता एक नैतिक समस्या' मे लेखक ने धुरीहीन समाज के चित्र को प्रस्तुत कर आधुनिक युग मे नैतिक समस्या का उल्लेख किया है : 'एक ऐसे युग मे जबकि प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ प्रधान हो गया है, सबकी ऐतिहासिक परिणति एक सी है, धुरीहीन होती जा रही है तब नैतिक दृष्टिकोण के द्वारा धुरीहीनता के दुष्परिणाम को भी सजग किया जा रहा है।'[१] 'उद्योग और आत्य योग' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने आर्थिक जडता, मानसिक जडता, नैतिक अराजकता, अनुशासनहीनता, शिक्षा प्रणाली मे असस्कारिता आदि के माध्यम से वर्तमान युग की औद्योगिक देन को स्पष्ट करते हुए मानव को मुक्ति एव शाति के लिए पुन प्रकृति की ओर आकृष्ट किया है, तथा गाधी जी के रचनात्मक कार्यो के माध्यम से आत्मयोग को प्रधान माना है। 'लोक कला का आधुनिकीकरण' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने लोक कला के आधुनिकीकरण के प्रति नेहरू जी के विचारो को प्रकट किया है। उनका मत है कि इससे लोक कला की स्वाभाविकता और सरसता नष्ट हो जायगी। नेहरू जी के मत मे कला को जनता के जीवन से, उसकी स्वत प्रेरणा से प्रस्फुटित होना चाहिए किसी प्रचार या प्रभाव से नही।[२] 'सास्कृतिक चेतना' शीर्षक निबन्ध मे विनोबा जी द्वारा काशी मे हुए स्वच्छता आन्दोलन से नागरिको मे सोई हुई सास्कृतिक चेतना पुन जाग्रत हो गई, लेकिन कुछ क्षण मात्र के लिए ही। मानव मे शारीरिक रुग्णता के सदृश्य ही देश मे सास्कृतिक रुग्णता भी परिव्याप्त है। 'रचनात्मक योजना' मे लेखक ने आधुनिक मानव की अन्तश्चेतना एवं सस्कारिकता के अभाव की ओर दृष्टिपात करते हुए मनुष्य के नैसर्गिक विकास के रूप मे शुचिता, शिष्टता, सहृदयता, सेवा, सुव्यवस्था आदि के रचनात्मक कार्यो की

---

१. 'आधान', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १०५।

२. वही, पृ० १२५।

ओर सकेत किया है। लेखक ने इस निबन्ध मे जन सस्कृति को सजीव बनाने मे अपने सुझावो को प्रस्तुत किया है।

'वृन्त और विकास' सग्रह के 'नेहरू जी विचार और व्यक्तित्व' शीर्षक निबन्ध मे नेहरू जी के व्यक्तित्व को प्रकट करते हुए उनके विचारो का आरोपण किया गया है। नेहरू जी के साधन और साध्य मे भिन्नता थी। वह गाधीवाद को स्वीकार करते हुए भी अस्वीकार करते हैं, उसी प्रकार सस्कृति को शिरोधार्य करके भी वे उसे अगीकार नही कर सके।[1] 'नेहरू जी की काव्यानुभूति' शीर्षक निबन्ध मे भी लेखक ने नेहरू जी की आत्मकथा 'मेरी कहानी' के आधार पर नेहरू जी की काव्य प्रशसा एव प्रकृति के प्रति अनुराग आदि को प्रकट किया है। लेखक ने केवल भाव पक्षो के माध्यम से ही उनके सामयिक विचारो का प्रतिपादन किया है। 'यन्त्र युग की कविता' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने वातावरण और सचरण के अन्तर्गत काव्य साहित्य मे विभिन्न प्रभावो को स्पष्ट करते हुए उनके जीवन मूल्यो मे आर्थिक और कृत्रिम आदर्शों का निरूपण किया है। लेखक ने इसमे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितियो के साथ ससार मे व्याप्त साम्यवाद और पूजीवाद की यात्रिकता का उल्लेख किया है। आज साहित्य मे राजनीति और शिक्षा दोनो का ही प्रभुत्व हो गया है। 'विश्वविद्यालयीन समीक्षा' सामयिक निबन्ध मे लेखक ने 'आज' साप्ताहिक विशेषाक मे प्रकाशित हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के अग्रेजी प्राध्यापक डा० रामअवध द्विवेदी के एक लेख 'आधुनिक हिन्दी आलोचना के प्रतिमान' के आधार पर लेखक ने आलोचना साहित्य के सर्वेक्षण को प्रस्तुत करते हुए रामअवध जी के विचारो को उद्धृत किया है लेकिन निष्कर्ष और निदान रूप मे लेखक ने स्वय के विचारो का निरूपण करते हुए विश्वविद्यालयीन वातावरण एव वहा की समीक्षा प्रवृत्ति का उद्घाटन किया है। लेखक ने विश्वविद्यालयीन समीक्षा को अकादमिक समीक्षक के सदृश्य ही अनुत्सिक्त माना है जिसमे मौलिकता का अभाव है। 'युगाभास' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने समसामयिक परिस्थितियो की विभिन्न समस्याओ मे से बेकारी और अनुशासनहीनता की समस्याओ के कारणो को उद्धृत करते हुए उसके निदान रूप मे सुधार के लिए अपने सुझावो को व्यक्त किया है। लेखक गाधी जी के विचारो एव उनके रचनात्मक कार्यों के अधिक सन्निकट है। वह उसी के माध्यम से इन समस्याओ का निराकरण करना चाहता है। 'समवेत' सग्रह के 'विज्ञान और ग्रामोद्योग', 'प्रकृति और सहअस्तित्व' तथा 'साधन और माध्यम' शीर्षक निबन्धो के अन्तर्गत लेखक ने विज्ञान की प्रगति एव उसके प्रभावो को प्रत्यक्ष करते हुए गाधी जी के ग्रामोद्योग, सर्वोदय, सहअस्तित्व, प्रकृति के प्रति अनुराग, तथा अपने प्राचीन उद्योग धन्धो की प्रगति आदि को निरूपित किया है और इस प्रकार से समकालीन समस्याओ के प्रति अपने वैचारिक चिन्तन की जागरुकता का परिचय दिया है।

---

१. 'वृन्त और विकास', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११८।

[४] **आलोचनात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति** हिन्दी साहित्य मे आलोचनात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति का रूप भारतेन्दु युग से ही परिलक्षित होने लगा था। निबन्धो की इस प्रवृत्ति मे आलोचना के साथ विचारात्मकता का भी समावेश होता है लेकिन आलोचना का सम्बन्ध वस्तु के निरीक्षण तथा मूल्याकन से रहता है जबकि विचारात्मकता का सम्बन्ध साधारण और व्यापक वृत्ति से है। कुछ विचारको ने तो निबन्ध के इतिहास मे इसी प्रवृत्ति को निबन्ध की सर्वप्रथम प्रवृत्ति मानी है। 'आलोचना का जो चलन हिन्दी साहित्य मे चला, उसमे आलोचनात्मक निबन्ध का ही रूप सर्व प्रथम प्रतिष्ठित हुआ। साहित्यिक आलोचना का सूत्रपात प्रेमघन जी ने हिन्दी साहित्य मे सर्वप्रथम किया।'[१] डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने भी प्रेमघन को आलोचनात्मक निबन्ध का सर्वप्रथम प्रणेता माना है। उन्होने प० बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन के विषय मे लिखा है 'कभी-कभी अवसर पडने पर उन्होने आलोचनात्मक लेख भी लिखे है। इन्ही लेखो से हम आलोचनात्मक साहित्य का एक प्रकार से आरम्भ कर सकते हैं।'[२] आलोचनात्मक निबन्धो के विकास की दृष्टि से द्विवेदी युग मे भी इस क्षेत्र मे प्रचुर सामग्री उपलब्ध हुई। इस युग के आलोचनात्मक निबन्ध प्राय साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एव राजनीतिक होते थे। इसके अतिरिक्त काव्यशास्त्र से सम्बन्धित विभिन्न विषयो पर भी इस युग मे आलोचनात्मक लेख लिखे गये। द्विवेदी युग के उपरान्त शुक्लयुग मे भी काव्य शास्त्र के आलोचनात्मक निबन्धो के अतिरिक्त पुस्तको की भूमिका तथा प्रस्तावना के रूप मे भी आलोचनात्मक निबन्ध लिखे गये। शुक्ल युग मे इस प्रवृत्ति के निबन्धो का वास्तविक प्रसार हुआ तथा उच्च कोटि के आलोचनात्मक निबन्ध लिखे गये। शुक्लोत्तर युग मे इस पद्धति का सम्यक् विकास हुआ और निबन्धो मे इसी प्रवृत्ति को प्राथमिकता प्रदान की गई। डा० ओकारनाथ शर्मा ने तो इस युग को आलोचनात्मक निबन्ध युग ही मान लिया है।[३] वह लिखते है कि 'अद्यतन युग तो वास्तव मे आलोचनात्मक निबन्धकारो का ही युग है। यदि इसे आलोचनात्मक निबन्ध युग कहे तो भी कोई अनौचित्य नही।'[४] आलोचना प्रवृत्ति की प्रमुखता का उद्घोष करते हुए डा० रामरतन भटनागर का भी यही कथन है कि 'विचारात्मक निबन्ध के क्षेत्र का प्रसार अधिक है और उसमे साहित्यिक तथा समीक्षात्मक निबन्धो को शीर्षता मिली है।'[५] अद्यतन युग के आलोचनात्मक निबन्धो मे प्रमुखता साहित्यिक, व्यावहारिक, पुस्तक परिचयात्मक,

---

१ 'प्रेमघन सर्वस्व', (द्वितीय भाग) पृ० १८ (भूमिक)।

२ 'हिन्दी की गद्य शैली का विकास', डा० जगन्नाथ शर्मा, पृ० ५४।

३ 'हिन्दी निबन्ध का विकास', डा० ओकार नाथ शर्मा, पृ० २४६।

४. वही, पृ० ७१।

५ 'अध्ययन और आलोचना', डा० रामरतन भटनागर, पृ० ३४२।

कव्यशास्त्र से सम्बन्धित विषयो, भाषा विषयक् समस्या तथा शोधपरक समस्याओ पर विविध आलोचनात्मक लेख प्रस्तुत किए गये। डा० गुलाबराय के मत मे तो 'आज का हिन्दी निबन्ध साहित्य अधिकाश मे आलोचना की ओर दौड रहा है।'[१] निबन्ध की आलोचनात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री चन्द्रबली पाडेय, डा० नगेन्द्र, डा० सत्येन्द्र, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० भगीरथ मिश्र, डा० विनयमोहन शर्मा, डा० रामविलास शर्मा, डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', डा० रागेय राघव, डा० देवराज, श्री शिवदान सिंह चौहान, श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, श्री अमृतराय, श्री यशपाल आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी के प्राय समस्त निबन्ध सग्रहो मे आलोचनात्मक निबन्ध उपलब्ध होते हैं। इन आलोचनात्मक निबन्धो मे साहित्यिक विषयो के अतिरिक्त काव्य शास्त्र से सम्बन्धित विषय, विभिन्न लेखको एव कवियो की भाव एव कला दृष्टि के आधार पर आलोचना के अतिरिक्त व्यावहारिक, सैद्धान्तिक तथा पुस्तक परिचयात्मक आलोचना प्रवृत्ति से ओतप्रोत निबन्धो का रूप परिलक्षित होता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी' 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास', 'समवेत', तथा 'परिक्रमा' निबन्धात्मक रचनाओ मे लेखक की आलोचनात्मक मनोवृत्ति का परिचय उपलब्ध होता है। 'साहित्यिकी' निबन्ध सग्रह के 'ब्रजभाषा का माधुर्य विलास' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने युगो पूर्व ब्रजभाषा साहित्य मे शृंगार का माधुर्य विलास स्पष्ट किया है जिसमे उस साख्य पुरुष रास बिहारी की प्रणय क्रीडा का हृत्कम्पन है, नारी रूप निखिल प्रकृति का विरह क्रन्दन[२] है। लेखक ने ब्रजभाषा के अनेक कवियो का दृष्टान्त देते हुए यह सिद्ध किया है कि 'भक्तो की कविता मे अन्तर्चेतना की निगूढ सास है, शृगारिको की कविता मे बहिर्चेतना का प्रणयाकुल श्वासोच्छ्वास।'[३] 'नव पलको मे सौन्दर्य और प्रेम' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने सौन्दर्य और प्रेम का विश्लेषण किया है। सासारिक मनुष्यो की दृष्टि मे सौन्दर्य वासनात्मक प्रेम के उद्रेक का द्योतक है। परन्तु इसके विपरीत सौन्दर्य एक मनोहर नीरव प्रश्न है, वह दृश्य वस्तु नही, कल्याणमयी चेतना है। 'औपन्यासिकता पर एक दृष्टि' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने टाल्सटाय के उपन्यास 'पुनर्जीवन' के आधार पर उपन्यास कला को स्पष्ट करते हुए टाल्सटाय की कला की ओर दृष्टिपात किया है। लेखक ने कलाकार और विचारक, यथार्थवाद और आदर्शवाद के आधार पर पाश्चात्य लेखक टाल्सटाय तथा तुर्गनेव की तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत की है। 'काशी के साहित्यिक हास्य रसिक' शीर्षक निबन्ध

---

१ 'मेरे निबन्ध', डा० गुलाब राय।

२. 'साहित्यिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २९।

३. वही, पृ० ३२।

मे लेखक ने दर्शनशास्त्र का स्पर्श करते हुए काशी के साहित्यिक हास्य रसिको मे गोस्वामी तुलसीदास, कबीरदास आदि का उल्लेख करते हुए आधुनिक युग के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बदरीनारायण चौधरी आदि तथा भारतेन्दु के उत्तरकालीन कवियो मे प० चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', जगन्नाथ प्रसाद 'रत्नाकर', लाला भगवानदीन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्री प्रेमचन्द, प्रसाद, बाबू अन्नपूर्णानन्द, पान्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', बाबू कृष्णदेव प्रसाद गौड 'बेढब' आदि के साहित्य मे व्याप्त हास्य रस को स्पष्ट किया है। 'भारतेन्दु के जीवन पर एक दृष्टि' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व एव कृतित्व के माध्यम से उनकी साहित्यिक प्रतिभा को प्रतिबिम्बित किया है। 'भारतेन्दु जी का साहित्यिक हास्य' शीर्षक निबन्ध मे भारतेन्दु के साहित्यिक उद्देश्य 'भारतीयता के उत्थान' को प्रकट करते हुए भारतेन्दु जी के साहित्य मे हास्य, व्यग्यात्मकता का उदाहरण देते हुए उनकी चिन्तन एव कीर्तन प्रधान कविताओ एव प्रहसनो मे व्याप्त हास्य को इगित किया है। इसके साथ ही उनके हसमुख स्वभाव के उदाहरण प्रस्तुत किये है। लेखक ने उनके कुछ चुटकुलो को प्रस्तुत किया है। 'समालोचना की प्रगति' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने समालोचना साहित्य के क्रमिक विकासात्मक इतिहास को प्रत्यक्ष करते हुए प्रत्येक युग मे समीक्षा की आत्मा को स्पर्श किया है। नयी समालोचनाओ के सम्बन्ध मे लेखक का मत है कि 'नयी समालोचनाओ मे न तो पद्मसिंह जी की चुलबुलाहट है, न मिश्रबन्धुओ का आफिशियल रिमार्क, न द्विवेदी जी का ऐहिक कवि परिचय, न शुक्ल जी का गुरु-गहन शास्त्रीय विश्लेषण, है केवल हृदय सन्तरण या रस सचरण। सरलता ही इनका गुण है, तरल अभिव्यक्ति इनकी शैली है। ये ठस नही, आर्द्र हैं।'[१] 'हमारे साहित्य का भविष्य' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने मध्य युग को दृष्टि मे रखते हुए वर्तमान काल के उत्पीडित जगत के साहित्य की अन्तिम परिणति का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त श्री शातिप्रिय द्विवेदी के इस निबन्ध सग्रह मे अन्य आलोचनात्मक निबन्धो मे 'गोदान और प्रेमचन्द', 'सास्कृतिक कवि मैथिलीशरण', 'साकेत मे उर्मिला', 'सहज सुषमा के कवि गोपालशरण', 'गार्हस्थिक रचनाकार सियारामशरण', 'एकान्त के कवि मुकुटधर', 'गद्यकार निराला', 'प्रगतिशील कवि पन्त', 'नीहार मे करुण अध्यात्म की कवि महादेवी' तथा 'जैनेन्द्र के विचार' शीर्षक निबन्ध सगृहीत हैं। 'जैनेन्द्र के विचार' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने जैनेन्द्र की कृति 'जैनेन्द्र के विचार' के आधार पर उनकी वैचारिकता, सहानुभूति, मनोवैज्ञानिकता आदि के आधार पर उनके साहित्य मे व्याप्त उन्ही विचारो को प्रकट किया है जो जैनेन्द्र ने केवल एक कृति मे ही सगृहीत कर दिये हैं। जैनेन्द्र का साहित्यिक व्यक्तित्व लेखक, मनोवैज्ञानिक तथा कवि के रूप मे प्रस्फुटित हुआ। उसी रचना के आधार पर लेखक ने

---

१ 'साहित्यकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११८।

विचारो के साथ उनकी भाषा-शैली तथा कहानी-कला की विशेषताओ की ओर भी इगित किया है। इसके अनन्तर उन्होने जैनेन्द्र और प्रेमचन्द की भिन्नता को उनकी कहानी कला एव साहित्यिक भिन्नता की दृष्टि से स्पष्ट किया है।

'युग और साहित्य' नामक निबन्ध सग्रह के 'साहित्य के विभिन्न युग' शीर्षक निबन्ध को लेखक ने पाच भागो मे विभाजित करते हुए हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग, प्रगति युग, तथा प्रयोग युग आदि का विश्लेषण करते हुए समसामयिक वातावरण की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियो की ओर सकेत किया है। इससे पूर्व लेखक ने भारतीय हिन्दी साहित्य के पूर्व इतिहास को विवेचित किया है। 'युगो का आदान' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने इस परिवर्तनशील काल मे प्राचीन युगो का नवीन युग के आदान रूप मे अपने विचार प्रस्तुत किये है। प्रत्येक युग अपने पूर्व युग अथवा युगो से प्रभावित अवश्य होता है। विभिन्न युगो ने जीवन को विभिन्न चीजे जैसे 'भक्ति काल मे साहित्य और जीवन को दार्शनिक जागरुकता, शृगार काल ने रसात्मकता तथा छायावाद ने भाव विस्तीर्णता'[१] प्रदान की। 'प्रगति की ओर' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने भारतीय हिन्दी साहित्य की विभिन्न क्षेत्रीय प्रगति की ओर सकेत किया है। 'हिन्दी कविता मे उलट फेर' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने मध्यकाल की कविता लता के आधुनिक युग मे परिवर्तित रूप को स्पष्ट किया है। 'इतिहास के आलोक मे' शीर्षक निबन्ध वस्तुत प्रस्तुत कृति के समस्त निबन्धो का केन्द्र बिन्दु है। इसमे लेखक ने सन् ४० के सत्याग्रह से पूर्व तक की साहित्यिक, राजनीतिक तथा सामाजिक गतिविधियो का निरूपण प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत विस्तृत निबन्ध को लेखक ने सत्ताइस खडो मे विभक्त किया है जिसमे समयानुसार मानव की परिवर्तित मनोवृत्तियो का भी चित्रण है। इसके लिए लेखक ने पाश्चात्य साहित्य का भी यत्र-तत्र विश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'वर्तमान कविता का क्रम विकास' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने छायावाद की पृष्ठभूमि के रूप मे, भारतेन्दु और द्विवेदी युग के उन्नायक कवियो के रचना क्रम के अवलोकन की दृष्टि से, श्रीधर पाठक, जयशकर 'प्रसाद' तथा मैथिलीशरण गुप्त को अपने निबन्ध का आधार बनाया है। 'छायावाद और उसके बाद' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने सन् १४ से सन् १७ के महायुद्ध के परिणाम स्वरूप क्रान्ति एव शाति का चित्रण काव्य जगत के विशिष्ट युगो के माध्यम से चित्रित किया है जिसमे उस युग के वादो का उल्लेख भी है तथा भावनाओ का चित्रण भी। छायावाद और उसके बाद के समाजवाद, प्रगतिवाद आदि का चित्र अकित करने मे लेखक ने अपनी लेखनी का आश्रय लिया है। लेखक ने प्रगतिशील साहित्य की कल्पना 'शुक्लो वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे' रूप मे की है, लेकिन कविता की युग-युग मे विकास एव प्रसार रूप मे कल्पना की है।

---

१ 'युग और साहित्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २१।

'कथा साहित्य का जीवन पृष्ठ' शीर्षक निबन्ध मे मनुष्य के आध्यात्मिक मनोविकास, जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय आदि का विश्लेषण किया गया है। आधुनिक युग मे राजनीतिक अभिव्यक्ति की भाषा मे लेखक ने इन्हे जागरण, सुधार और क्रान्ति रूप मे चित्रित किया है। साहित्य मे यही राजनीतिक अभिव्यतियाँ अपने विभिन्न रूपो मे समाविष्ट हुई हैं। प्रारम्भिक आधुनिक काल जागरण काल है, द्विवेदी युग से गाधी युग तक जागृति और सुधार का काल रहा है और प्रगतिशील युग उन सुधारो की सीमा पार करके क्रान्ति के लिए लालायित है। प्रगतिशील युग मे पूर्व की ही सामाजिक और साहित्यिक प्रवृत्तिया है, उसका कोई प्रगतिशील ससार नही है। इन निबन्धो के अतिरिक्त लेखक ने प्रस्तुत कृति मे विभिन्न साहित्यकारो की कृतियो मे भाव एव कला की दृष्टि से अनुभूति एव अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया है तथा उसमे युग स्पर्श को भी रूपायित किया है। इन निबन्धो के शीर्षक क्रमश 'प्रसाद और कामायनी', 'प्रेमचन्द और गोदान', 'निराला' तथा 'पन्त और महादेवी' आदि हैं।

'सामयिकी' मे सगृहीत 'शरच्चन्द शेष प्रश्न' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने शरत्चन्द के 'शेष प्रश्न' उपन्यास की अरोचकता की ओर सकेत करते हुए इसे उपन्यास न मान कर जीवन का अकगणित माना है।[1] 'शेष प्रश्न' मे शरत्चन्द घोर यथार्थवादी, जटिल और रुक्ष है। इसमे यथार्थवाद प्रत्यक्ष न होकर उलझे हुए रूप मे अप्रत्यक्ष है। कलात्मक गूढता के अन्तर्गत लेखक ने 'शेष प्रश्न' को विश्लेषणात्मक उपन्यास मानते हुए औपन्यासिक कला की दृष्टि से उसकी आलोचना प्रस्तुत की है। 'आधुनिक हिन्दी कविता' के 'मार्ग चिह्न' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने राष्ट्रीयता, सस्कृति और कला की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता मे पाच कालो का प्रतिनिधित्व करने वाली पाच कविता पुस्तको—'भारत भारती', 'कामायनी', 'प्रिय प्रवास', 'पल्लव' तथा 'मिट्टी के फूल'—का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उपादान के अन्तर्गत लेखक ने साहित्य निर्माण के मुख्य उपादानो—राजनीति, सस्कृति, शक्ति और कला—की ओर सकेत किया है। 'शुक्ल जी का कृतित्व' शीर्षक आलोचनात्मक लेख को चार खडो मे विभक्त करते हुए लेखक ने उसमे भी अन्य उप शीर्षको के द्वारा शुक्ल जी के साहित्यिक व्यक्तित्व को प्रतिपादित करते हुए साहित्य के क्षेत्र मे उनके विचारो को स्पष्ट किया है। लेखक की दृष्टि मे 'शुक्ल जी तन्त्रविद् और रासायनिक साहित्यकार थे' उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के अगो मे निबन्धकार, समीक्षक, अनुवादक, कोशकार तथा कवि रूप परिलक्षित होते हैं। यद्यपि उनकी लोकप्रियता निबन्धकार और समीक्षक रूप मे प्रतिष्ठित हुई है लेकिन लेखक ने उन्हे मूलत कवि रूप मे ही अधिक माना है।

---

१. 'सामयिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६०।

'धरातल' नामक निबन्ध सग्रह मे 'तुलसीदास का सामाजिक आदर्श' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने तुलसीदास कृत रामचरितमानस के मानस जगत अथवा मनोजगत को स्पष्ट किया है जो सियाराममय है तथा रामराज्य मे ही उनका अहर्निश निवास है।[१] तुलसीदास जी का रामराज्य विश्व व्यापी स्नेह का साम्राज्य है। लेखक ने समाज के मूलाधार, वर्णाश्रम, और, धर्म, प्रतिस्पर्द्धा, नारी का व्यक्तित्व, युग विकृति, रामराज्य आदि शीर्षको के अन्तर्गत रामराज्य युग का विश्लेषण किया है जिसमे अधिकारो की होड नही प्रत्युत् कर्तव्यो की होड थी तथा वह 'योग कर्मसु कौशलम्' का युग था।[२] 'सूरदास की काव्य साधना' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने प्रकृति पुरुष, केन्द्र बिन्दु ग्रामीण जीवन, भ्रमर गीत, भाव-पूजा, रस और कला आदि के अन्तर्गत सूरदास के काव्य साहित्य के भाव एव कला पक्ष को स्पष्ट किया है। सूरदास की तात्कालिक परिस्थितियो का भी लेखक ने चित्रण किया है। सूरदास पुष्टिमार्गी कवि है तथा प्रकृति पुरुष की रस साधना ही उनकी काव्य साधना है।[३] सूर काव्य का आलम्बन कला पुरुष है जो स्वय काव्यमय है तथा उनका विहार स्थल ग्रामीण क्षेत्र है। भ्रमर गीत प्रकृति का पुरुष के प्रति मधुर रसाग्रह है। वह भाव मे निहित है, अन्त मे भाव की ही विजय होती है।[४] सूर श्रृगार रस के उत्कृष्ट कवि है लेकिन उनका कवित्व वात्सल्य रस मे भी बेजोड है। सूरदास ने श्रृगार रस के अन्तर्गत अपने गीत काव्यो मे सयोग और वियोग दोनो पक्षो का उद्घाटन किया है। उनके गीतो मे आत्म-साधना है।

'साकल्य' नामक निबन्ध सग्रह के 'ग्राम्य जीवन के काव्यचित्र' शीर्षक के अन्तर्गत लेखक ने काव्य मे निहित ग्राम्य जीवन के चित्रों को प्रस्तुत किया है। ब्रज-भाषा मे ग्रामगीतो की बहुलता थी। आधुनिक युग मे भी विशुद्ध ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित कविताएँ लिखी गयी लेकिन इस युग मे छायावाद मे प्रकृति का रूप भिन्न था। 'प्रसाद और प्रेमचन्द की कृतिया' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने दोनो को सम-कालीन घोषित करते हुए भी उनमे निहित भिन्न युगो की ओर सकेत किया है। 'वर्मा जी के उपन्यास' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने बाबू बृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास 'प्रत्यागत' की समीक्षा को प्रस्तुत करते हुए उसे एक सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना है। 'गुप्त बन्धु और छायावाद' शीर्षक निबन्ध मे बाबू मैथिलीशरण गुप्त तथा बाबू सिया-रामशरण गुप्त जी के काव्य साहित्य के क्रमिक विकास एव उस पर पडे छायावाद

---

१ 'धरातल', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९८।

२. वही, पृ० १००-१०१।

३ वही, पृ० ११०।

४ वही, पृ० १११।

के प्रभाव को स्पष्ट किया है। 'पन्त का काव्य जगत' शीर्षक निबन्ध मे प्रकृति की उपासना, वीणा से युगान्त तक, युगवाणी और ग्राम्या, नयी रचनाएँ आदि के अन्तर्गत श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी के काव्य साहित्य के कला एव भाव पक्ष को प्रकट करने के साथ उनकी विचारधारा के क्रमिक विकास की ओर भी दृष्टिपात किया है। पन्त प्रकृति के उपासक थे तथा उन्होने ही हिन्दी कविता मे प्रकृति की प्रतिष्ठापना की है।[१] पन्त के 'प्राकृतिक दर्शन' मे उनकी स्वतत्र दार्शनिक विचारधारा अन्तर्निहित है। 'महादेवी की मधुर वेदना' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने फ्रायडियन दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए विराट् पुरुष की प्रेयसी, हृदयोल्लास, करुणा का मागल्य, अभिव्यक्ति और अनुभूति, वेदना और आराधना, साधना का स्वरूप आदि के अन्तर्गत महादेवी वर्मा की काव्य साधना मे उनकी विरहानुभूति को प्रकट किया है। 'नयी हिन्दी कविता' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने छायावाद के पश्चात् की धारा प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद को स्पष्ट करते हुए लिखा है 'छायावाद आधुनिक औद्योगिक युग के पूर्व के भाव जगत का नव्यतम काव्योत्कर्ष था, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद हमारे साहित्य मे यन्त्र युग के काव्यारम्भ है।'[२] 'नयी कविता के पाच रूप' शीर्षक निबन्ध मे प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, छायावाद से नि सृत गीत के अतिरिक्त नयी कविता के अन्य और दो रूप—ग्राम्य बोली के आचलिक गीत तथा ग्राम्य बोली की स्वाभाविकता से प्रभाविता सहज सरल गीत—का विश्लेषण गीतो के माध्यम से किया है। 'दिव्या' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने प्रगतिशील कहानी तथा उपन्यासकार यशपाल जी के बौद्धकालीन ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' की आलोचना औपन्यासिक तत्वो के आधार पर कथानक और कथा शिल्प के अन्तर्गत विवेचित की है। 'हिन्दी का आलोचना साहित्य' शीर्षक लेख मे रीतिकाल से आलोचना साहित्य का प्रारम्भ लेखक ने माना है। बीसवी सदी मे तुलनात्मक आलोचना का प्रादुर्भाव हुआ। द्विवेदी युग मे आचार्य श्यामसुन्दर दास जी ने सैद्धान्तिक समीक्षा का प्रवर्तन किया तथा शुक्ल जी ने साहित्यिक सिद्धान्तो को सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण दिया। लेखक ने स्वय काव्य मे एक नवीन शैली भावात्मक आलोचना मे अन्तर्निहित की जिसकी प्रारम्भ मे उपेक्षा हुई लेकिन अन्तत उसे प्राभाविक समालोचना मे स्थान मिल गया।

'पद्मनाभिका' नामक निबन्ध सग्रह मे सर्वप्रथम निबन्ध 'गोस्वामी तुलसीदास की भगवद्भक्ति' मे लेखक ने तुलसीदास जी की समसामयिक परिस्थितियो का उल्लेख करते हुए उनके जन्म तथा दृष्टिकोण का उल्लेख किया है। तुलसीदास जी का रामचरित मानस यद्यपि स्वान्त सुखाय है लेकिन वह साम्प्रदायिक विद्वेषो से अलग

---

१. 'साकल्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १२४।
२ वही, पृ० १६३।

है। लेखक ने उनके निर्विकार, आध्यात्मिक तथा आत्मोज्ज्वल स्वान्त सुख को इसमे स्पष्ट किया है। 'पन्त जी की अतिमा' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी की मुक्तक कविताओ का सग्रह 'अतिमा' का विश्लेषण उनके अन्य काव्य ग्रन्थो को विश्लेषित करते हुए किया है। 'अतिमा' मे अरविन्द दर्शन का प्रभाव है जिसका केन्द्र मानव मे आत्मानुभूति का उद्रेक है। अरविन्द दर्शन मे आत्मचेतना के विभिन्न स्तरो मे से 'अतिमा' मे उसका अन्तिम स्तर परिलक्षित होता है। लेखक ने उनके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। 'यशपाल की कला और भावना' शीर्षक निबन्ध मे यशपाल के क्रान्तिकारी रूप का परिचय तथा उनका कलात्मक व्यक्तित्व अन्तर्निहित है। वस्तुत उन्होने 'कवि का भाव जगत और कहानीकार का वस्तुजगत लेकर अपनी लेखनी को अग्रसर किया। चट्टान जैसे ठोस यथार्थ के भीतर निर्झर की तरह उनका भावुक हृदय अन्तर्हित है।'[१] प्रगतिशील युग मे यशपाल की कहानियो और उपन्यासो मे प्रेमचन्द जी के बाद की युग चेतना मिलती है। 'नया कथा साहित्य' शीर्षक निबन्ध मे कथा साहित्य मे कला और जीवन की दृष्टि से युग-परिवर्तन का विश्लेषण करते हुए अतीत और वर्तमान, सामयिक समस्याएँ, सास्कृतिक पुनरुत्थान, सोवियत क्रान्ति, साहित्यिक गतिविधि प्रेमचन्द जी के बाद, कला और जीवन, पाश्चात्य उपन्यास तथा हिन्दी के नये कथा लेखक आदि के अन्तर्गत लेखक ने हिन्दी के नये कथा साहित्य पर अतीत और वर्तमान की भिन्नता एव विभिन्न पाश्चात्य तथा अतीत के प्रभावो को स्पष्ट किया है।

'वृन्त और विकास' नामक निबन्ध सग्रह के 'छायावाद' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने छायावाद के पूर्व की परिस्थितियो को स्पष्ट करते हुए उसके प्रादुर्भाव की ओर सकेत किया है। इसके अतिरिक्त भारतीय सस्कृति से नि सृत मध्य युग का भी स्पष्टीकरण लेखक ने इसमे किया है। कला की दृष्टि से छायावाद ने प्रकृति के वाह्य रूप को अपनाया किन्तु भाव की दृष्टि से प्रकृति को आन्तरिक रूप से प्राणवन्त किया। इस प्रकार छायावाद की विशेषता प्रकृति के सचेतन व्यक्तित्व की प्रतिस्थापना है।[२] छायावाद मे नारी का अभिषेक करते हुए उसे सम्मान प्रदान किया गया तथा नारी के विविध रूपो मे प्रकृति अपने सगुण रूप मे विद्यमान हो गई। इस युग मे लोकपरक काव्यो का प्रणयन हुआ। लेखक ने छायावाद के प्रति विभिन्न साहित्यकारो के मतो को भी प्रस्तुत किया है। 'पन्त की काव्य प्रगति और परिणति' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने क्रम विकास, समन्वय और अन्विति तथा कला और रागात्मकता शीर्षक के अन्तर्गत श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी के साहित्य के क्रम विकास को प्रस्तुत करते हुए उनके विचारो के क्रमिक विकास का भी आलेखन किया है। इसके अतिरिक्त लेखक

---

१. 'पद्मनाभिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५९।
२. 'वृन्त और विकास', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४६।

ने पन्त के काव्य साहित्य की कलात्मकता तथा भावाभिव्यजना की दृष्टि से उनकी रागात्मक वृत्ति के प्रति दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। 'वीरेन्द्र की काव्य सृष्टि' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने श्री वीरेन्द्र कुमार जैन के कहानी सग्रह 'आत्म परिणय' के आधार पर वीरेन्द्र जी की भावात्मक दृष्टि का परिचय दिया है। लेखक ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है 'इसमे अभीष्ट नारी चेतना को कुल कन्याओ के शील और सौदर्य मे साकार कर अतीन्द्रिय हृदय से प्यार किया था, यही था उसका आत्म परिणय।'[1] कहानियो मे नारी का प्रादुर्भाव समाज के विषम धरातल पर बडी स्वाभाविकता से किया है। वीरेन्द्र के मानस की स्वप्निल दृष्टि कहानियो के अतिरिक्त उनकी कविताओ मे भी परिलक्षित होती है। 'अनागत की आखे' उनकी कविताओ का सग्रह है जिससे उनकी सृष्टि और दृष्टि की प्रभविष्णुता सूचित होती है।[2] लेखक ने भाव एव कला की दृष्टि से वीरेन्द्र जी के साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत की है।

'समवेत' नामक निबन्ध सग्रह मे 'नवीन जी की कविताएँ' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविताओ का विवेचन लेखक ने भाव एव कला की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इनकी अधिकाश कविताएँ जेलो मे लिखी हुई है जो अनुभूति प्रधान है। उनमे कल्पना, शब्द चमत्कार तथा शिल्प सूक्ष्मता का अभाव है। लेखक ने उनके कारावास मे लिखे प्रेम गीतो के स्पष्टीकरण मे लिखा है 'शरीर की जडता मे जिसका चेतन रूप तरल है उसके लिए क्या कारावास, क्या नन्दन निकुज। जेल के भीतर कवि हृदय की तरह, पौरुष के भीतर लालित्य की तरह, शरीर के भीतर माधुर्य की तरह नवीन का प्रेम पिहक उठा है'।[3] कला की दृष्टि से उनकी भाषा मे हिन्दी सस्कृत और ग्रामीण शब्दो के साथ उर्दू का भी सहयोग है। उनकी भाषा स्वच्छद है।

'परिक्रमा' निबन्ध सग्रह के 'कालिदास की कला सृष्टि' शीर्षक विस्तृत निबन्ध को लेखक ने काव्य और नाटक खडो मे विभक्त करते हुए उनका भी विभाजन प्रस्तुत किया है। काव्य में दिग्दर्शन, ऋतु सहार और कुमारसम्भव, मेघदूत, रघुवश की आलोचना तथा नाटक मे पटोद्घाटन, अभिज्ञान शाकुन्तलम् शीर्षक मे समस्त नाटक साहित्य के उल्लेख के साथ अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक की विवेचना प्रस्तुत की है। वस्तुत इसमे लेखक की शास्त्रीय एव सैद्धान्तिक आलोचना की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। कालिदास गुप्त काल के स्वर्णिम युग मे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राजाश्रित कवि थे। लेखक की दृष्टि मे वह 'कालातीत रोमान्टिक, चिर नूतन तथा चिर पौराणिक

१ 'वृन्त और विकास', श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० १४३।
२ वही, पृ० १४३।
३ 'समवेत', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४८।

कवि थे।'[१] कुछ समीक्षको ने कालिदास को प्रकृति से नागरिक जीवन के कवि रूप मे माना है लेकिन उनका नागरिक तथा प्राकृतिक युग भिन्न नही समवेत था। उसमे हार्दिक स्वाभाविकता थी। लेखक ने कालिदास के प्रति अरविन्द के विचारो को प्रकट किया है 'प्रकृति मे प्राप्य ऐन्द्रिय जीवन का सजीव एव सशक्त अनुवचन, तथा सौन्दर्य की महत्ता से पूर्ण मानव जीवन के तत्वो को ऐन्द्रिय आलोक से प्रेषित कर उन्हे रसस्निग्ध पदावली मे अभिव्यक्ति प्रदान करना, यही कालिदास की प्रथम और अन्तिम रचना की महत्ता रही है।'[२] सस्कृति साहित्य के समस्त कवियो की विशेषता उनकी कलाभिव्यक्ति की विभिन्नता है। लेखक ने माघ और कालिदास की कला की तुलना करते हुए लिखा है 'कहा जाता है उनके (माघ) महाकाव्य मे कालिदास की उपमा, भारवि के अर्थ गौरव और दडी के पद लालित्य का समावेश है। किन्तु वे वैयाकरण थे, अतएव स्वभावत उनके काव्य मे पाडित्य और वैदग्ध्य अधिक है। कालिदास भी शब्दशिल्पी है किन्तु उनके काव्य शब्द प्रयोगो के लिए नही, शब्द काव्य के लिए है। वे सरस शक्तियो के उद्भावक हैं। शब्द चित्रो के अप्रतिम चित्रकार महाकवि बाण, कालिदास की सूक्तियो पर मुग्ध थे।'[३] लेखक ने रस और भाव की दृष्टि से कालिदास के साहित्य की विवेचना की है। 'समष्टि के स्वर साधक रवीन्द्रनाथ' शीर्षक निबन्ध के व्यक्तित्व और कला शीर्षक मे भी लेखक की आलोचनात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। लेखक ने रवीन्द्रनाथ के दिव्य व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हुए उनकी कला का उद्घोष करते हुए लिखा है 'स्वर्ग है रवीन्द्रनाथ का आध्यात्मिक ध्येय अथवा सास्कृतिक विकास, धरा है सस्कृति की लोकभूमि अथवा स्वर्ग की धारणा भूमि, आधार पीठिका। उनकी कला स्वर्ग और धरा के बीच एक सतरगी इन्द्रधनुषी सेतु है।'[४] रवीन्द्र जी पृथ्वी के सौन्दर्य और आनन्द को ही महत्व देते थे क्योकि उनमे सौहार्द तथा सवेदना है लेकिन स्वर्ग मे इसका अभाव है। रवीन्द्रनाथ रोमान्टिक होते हुए भी क्लासिक है। इसी प्रकार लेखक ने 'कुसुमकुमार कवि पन्त' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत कवि पन्त की काव्यानुभूति तथा काव्य कला को स्पष्ट किया है। लेखक ने उनकी विभिन्न काव्य कृतियो के माध्यम से उनकी कला के क्रमिक विकास की ओर भी इगित किया है।

व्यावहारिक आलोचनात्मक प्रवृत्ति का परिचय लेखक के 'आधान' निबन्ध सग्रह मे मिलता है। 'रवीन्द्रनाथ का रूपक रहस्य' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने रवीन्द्र नाथ जी की भावुकता एव गूढ साकेतिक अभिव्यजना को प्रकट किया है जो उनके

---

१. 'परिक्रमा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७।
२ वही, पृ० ७।
३ वही, पृ० ११-१२।
४. वही, पृ० १२५।

काव्य के साथ ही रूपक मे भी दृष्टिगोचर होता है। लेखक की दृष्टि मे काव्य आत्म ज्योति के प्रकाशन का एक सुन्दर साधन है।[१] रवीन्द्र जी की कवि प्रतिभा ने ही उनकी अन्तर्दृष्टि को जागरूक रखा था। यही अतर्दृष्टि उनके सपूर्ण साहित्य मे विद्यमान है। उनका रूपक के प्रति अधिक आकर्षण था और यही रूपक साकेतिक रहस्यवाद के रूप मे उनके नाटको और निबन्धो मे प्रचुरता से मिलता है। लेकिन निबन्धो मे उनका रहस्यवाद अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष करता है।[२] इनके छोटे-छोटे नाटको मे, छोटे-छोटे सरल वाक्यो मे भी निगूढ रहस्य विद्यमान रहता है। 'प्रसाद की भाव सृष्टि' शीर्षक' निबन्ध मे प्रसाद का काव्यारम्भ ब्रजभाषा से मानते हुए खडी बोली मे छायावाद की सूक्ष्म व्यजकता को घोषित किया है जो प्रसाद के प्रारम्भिक काव्यो मे ही परिलक्षित होने लगा था। छायावाद की यह प्रेरणा प्रसाद जी की अपनी अन्त प्रेरणा थी। इसके अतिरिक्त जीवन तथा स्वाध्याय से भी यह अन्त प्रेरणा मिलती है। प्रसाद ने भी जीवन और स्वाध्याय से इसे ग्रहण किया था। लेखक ने प्रसाद साहित्य मे विभिन्न प्रभावो को दर्शित करते हुए अनुभूति पक्ष तथा कला पक्ष का उल्लेख किया है। प्रसाद मे अनुभूति पक्ष की प्रधानता है। लेखक ने प्रसाद, महादेवी तथा पन्त के भाव विलास को 'आध्यात्मिक आख मिचौनी'[३] माना है। प्रसाद और महादेवी की करुणा तथा पन्त जी की बौद्धिक सहानुभूति सभी अपने-अपने क्षोभो मे निष्फल हो गये है।[४] 'निराला जी की काव्य दृष्टि' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने प० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' को कवि तथा आलोचक रूप मे प्रदर्शित करते हुए उनके काव्य-सम्बन्धी विचारो को निर्दशित किया है। निराला जी की दृष्टि बकिम हैं जिसकी एक अपनी भाव मुद्रा तथा कलात्मकता है।[५] लेकिन जहा उनकी आलोचनात्मक 'हास्य वक्र दृष्टि' हुई, वह अपने असन्तोष से पाठको मे भी एक असन्तोष की भावना का उद्रेक करने लगते है। लेखक ने निराला जी के 'पत जी और पल्लव' विस्तृत लेख मे अपने व्यग्य विद्रुप किये हैं। लेखक ने उनकी व्यग्य विद्रुप दृष्टि के उदाहरण देते हुए उनके प्रकृति प्रेम तथा भाव एव छायावादी कला पक्ष को निरूपित किया है। निराला जी ने दो तरह के मुक्त वृत्तो की रचना की है—मुक्त छन्द और मुक्त गीत।

'आधान' निबन्ध सग्रह मे भी लेखक की सैद्धान्तिक आलोचनात्मक प्रवृत्ति के दर्शन 'निबन्ध का स्वरूप' शीर्षक निबन्ध मे होते है। इसमे लेखक निबन्ध शब्द के

---

१ 'आधान', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २०।
२ वही, पृ० २०।
३ वही, पृ० ४८।
४ वही, पृ० ४८।
५ वही, पृ० ५६।

प्राचीन प्रयोगो को स्पष्ट करते हुए उसके वास्तविक अर्थ को तथा उसी के माध्यम से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है। लेखक ने निबन्ध के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है 'निबन्ध से किसी रचना का सगठित रूप व्यक्त होता है। वह एक ऐसा लेखन शिल्प है जिससे रचना का रूप विन्यास होता है। वह ऐसा बन्धान या आन्तरिक छन्द है जिससे रचना सन्तुलित हो जाती है।...शिल्प वैशिष्ट्य से निबन्ध के सगठित रूप मे वैविध्य हो सकता है किन्तु उसका सूत्र है अविच्छिन्नता, सयोजकता सम्बद्धता।'[१] निबन्ध का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। वह लेख, काव्य तथा कहानी सभी गद्य विधाओ को स्पर्श करता है। वस्तुत निबन्ध का रूप रचना के किसी भी विषय मे अभिव्यक्ति पा सकता है। लेखक ने निबन्ध के विषय और शैली को विचारो की दृष्टि से तथा कला की दृष्टि से विभाजित किया है। कला की दृष्टि से लाक्षणिक, व्यजनात्मक, ध्वन्यात्मक तथा व्यग्यात्मक आदि शैली हो सकती है तथा विचारो की दृष्टि से वर्णनात्मक, आलोचनात्मक, दृश्यात्मक, विवेचनात्मक तथा स्वानुभूत्यात्मक आदि। 'प्रभाववादी समीक्षा' शीर्षक निबन्ध मे भारतीय हिन्दी परिषद के चतुर्दश वार्षिक अधिवेशन (काशी) की साहित्य गोष्ठी के विषय 'साहित्य शास्त्र और व्यावहारिक समालोचना' के अन्तर्गत उठायी गयी शका कि समीक्षा मे परिवर्तन से साहित्य की शास्त्रीय मर्यादा के लिए सकट उत्पन्न हो सकता है, का समाधान करते हुए लेखक ने प्रभाववादी समीक्षा के अन्तर्गत शास्त्रीय एव व्यावहारिक समीक्षा की स्थिति पर अपने विचार व्यक्त किये है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने रचना को शास्त्रीय प्रतिबन्धो से मुक्त माना है। इसी आधार पर श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी का मत है कि जब रचना शास्त्रीय नही है तो उसकी समीक्षा भी शास्त्रीय नही, प्रत्युत् रचना के सदृश्य ही मौलिक होती है। प्रभाववादी समीक्षा मे रचना के साथ आत्मीयता की तद्रुपता रहती है। आत्मीयता की स्थापना के लिए समीक्षा मे अनुभूति अपेक्षित है। अनुभूति से ही रस-बोध, राग-बोध, भाव-बोध, सौन्दर्य-बोध आदि होता है तथा कलाबोध भी अनुभूति के आधार पर ही होता है।[२] रचना का अनुभूति पक्ष प्रभाववदी समीक्षा मे परोक्ष अनुभूति अथवा सहानुभूति के रूप मे प्रत्यक्ष हुआ है। भाव के अनुरूप ही श्रृगार के सयोजन मे कला का भी परिचय मिलता है। इनके अतिरिक्त 'रचना के अनुरूप श्रृगार की स्वाभाविकता अस्वाभाविकता अथवा सगति असगति को परखने मे समीक्षा अपनी कलाविज्ञता का परिचय देती है।'[३] अत प्रभाववादी समीक्षा मे भावुकता के साथ शिल्प प्रवीणता एव कला मर्मज्ञता भी विद्यमान है। लेखक ने तत्कालीन साहित्य समालोचना की पद्धतियो

---

१ 'आधान', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८१।

२. वही, पृ० ८८-८९।

३ वही, पृ० ९०।

को स्पष्ट करते हुए उनके विषय मे अपने मतो का प्रतिपादन किया है।

'आधान' के अतिरिक्त सैद्धान्तिक आलोचना की प्रवृत्ति लेखक के 'वृन्त और विकास' निबन्ध सग्रह के 'नाटक और रगमच' शीर्षक निबन्ध मे भी परिलक्षित होती है। लेखक ने नाटक को 'जीवन का कलात्मक सकलन' माना है तथा रगमच को ससार का सक्षिप्त क्रीडा स्थल।[1] लेखक ने जीवन के सरस सगम मे इसके महत्व का प्रतिपादन किया है। नाटक और रगमच आदि साधनो से ही मनुष्य का मर्मोद्रेक, रसोद्रेक तथा रागोद्रेक हो सकता है। लेखक की दृष्टि मे सिनेमा से यह सुलभ नही है और यही सुप्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर का भी मत है।[2] लेखक ने नाटक और रगमच के उद्भव और विकास का उल्लेख करते हुए वैज्ञानिक युग मे, जबकि साहित्य भी यात्रिक हो रहा हे, नाटक के यन्त्रीकरण से मुक्ति के लिए रगमच को प्रोत्साहित किया है। विदेशो मे भी नाटक, रगमच तथा मूक अभिनय को ही प्रोत्साहन देने के लिए अनेक कपनियो की स्थापना हो रही है। लेकिन सिनेमा के इस युग मे नाटक और रगमच आज भी दुर्लभ प्रतीत होते हैं। इस क्षेत्र मे जगदीश चन्द्र माथुर जो स्वय रस सिद्ध नाट्य प्रणेता और अभिनेता है अधिक प्रयत्नशील है। लेखक की दृष्टि मे मानव के नैसर्गिक जीवन मे अथवा युवाकाल मे जीवन सुलभ होने पर ही नाटक और रगमच का पुनर्जागरण एव विस्तार सम्भव है।

आलोचनात्मक निबन्ध प्रवृत्ति का एक अन्य रूप पुस्तक परिचयात्मक निबन्धो के रूप मे भी श्री शातिप्रिय द्विवेदी के 'समवेत' निबन्ध सग्रह मे देखा जा सकता हैं। प्रस्तुत निबन्ध सग्रह के 'हार पन्त का रचना-सूत्र' तथा 'झूठा सच . एक युग निरीक्षण' इसी कोटि के अन्तर्गत परिगणित किए जा सकते है। प्रथम निबन्ध मे लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पन्त की सर्वप्रथम रचना 'हार' उपन्यास का वास्तविक परिचय दिया है जिसे पन्त जी ने केवल एक 'खिलौना' कहा है। किन्तु लेखक की दृष्टि मे यह उनके बचपन का खिलौना नही है, यह तो सरस्वती की ग्रीवा मे बालहँस का मुक्तामाल है। यह 'ऊपर ही ऊपर भावो के फेन' को चीर कर 'कागज की नाव' की तरह आर-पार नही चला गया है, बल्कि जीवन के अतल मे 'मानव मन की गहराइयों' मे पैठ कर अपना अभीष्ट पा गया है।'[3] यद्यपि उपन्यास अल्पवयस्कता मे कुछ अस्फुट भावनाओ को केन्द्रित करते हुए लिखा गया है लेकिन पन्त जी की साहित्यिक प्रतिभा का अकुर उसी मे परिलक्षित होता है। 'हार' उपन्यास भाषा, भाव, कथानक, शैली तथा विचार की दृष्टि से अत्यन्त प्राजल एव गरिमामडित है। 'हार' मे पन्त जी विश्व-बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत हैं तथा प्रेम को मात्र सासा-

---

१. 'वृन्त और विकास', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १०४।

२. वही, पृ० १०५।

३ 'समवेत', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २५।

रिक वासना मे केन्द्रित करके अपने भावो के अनुरूप उसे विस्तार दिया है। इसके साथ लेखक ने पन्त जी की 'ग्रन्थि' की भी तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है। 'हार' शब्द मे पत जी के श्लिष्ट-शब्द का आभास होता है। 'हार' श्लिष्ट पद है जिसका अर्थ पराजय तथा माला दोनो ही है। लेखक की दृष्टि मे कथानक का अत चूकि प्रशात, प्रसादान्त मन स्थिति मे हुआ है अत अन्य अन्तर्गभित नामकरण भी हो सकता है।[१] 'झूठा सच. एक युग निरीक्षण' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने निबन्ध की एक नवीन शैली पत्नोत्तर का प्रयोग करते हुए यशपाल जी के लोकप्रिय उपन्यास 'झूठा सच' का परिचयात्मक रूप प्रस्तुत करते हुए अपने मनोभावो को व्यक्त किया है। इसमे समसामयिक वातावरण का रूप भी स्पष्ट लक्षित होता है जो उपन्यास के वातावरण का भी स्पष्टीकरण करता है। 'साकल्य' निबन्ध सग्रह के 'दिव्या' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे भी लेखक की पुस्तक परिचयात्मक आलोचना की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त परिचयात्मक आलोचना की प्रवृत्ति के अन्तर्गत 'समवेत' निबन्ध सग्रह के 'नये उपन्यास · नये उपन्यासकार' शीर्षक निबन्ध मे भी लेखक ने विभिन्न नवीन उपन्यासकारो तथा उपन्यासो का परिचय दिया है। लेखक ने प्रसाद जी के 'ककाल' तथा प्रेमचन्द के 'गोदान' का उल्लेख करते हुए जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यास साहित्य मे स्थान को निर्धारित किया है। इसी सन्दर्भ मे उन्होने वृन्दावन लाल वर्मा के 'प्रत्यागत', 'लगन', सियारामशरण गुप्त के 'गोद', 'अन्तिम आकाक्षा', 'नारी', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आचल', 'परती परिकथा', बलभद्र ठाकुर के 'आदित्यनाथ', 'नेपाल की वो बेटी', 'देवताओ के देश मे', यशपाल का 'झूठा सच', 'सिंहावलोकन', राजेन्द्र यादव का 'उखडे हुए लोग' आदि उपन्यासो की परिचयात्मक आलोचना प्रस्तुत की है। परिचयात्मक आलोचना की प्रवृत्ति के अन्तर्गत 'शिवपूजन जी की साहित्य साधना' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने पद्मभूषण बाबू शिवपूजन जी सहाय का परिचय प्रस्तुत करने के साथ ही उनकी विविध साहित्यिक प्रतिभा की ओर सकेत किया है। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व कई रूपो मे परिलक्षित होता है कहानीकार, उपन्यासकार, पत्रकार, निबन्धकार तथा हास्य लेखक। लेखक ने उनकी साहित्य साधना मे उनकी कृतियो का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार से श्री शाति-प्रिय द्विवेदी के आलोचनात्मक निबन्धो मे व्यावहारिक समीक्षा, सैद्धान्तिक समीक्षा तथा पुस्तक परिचयात्मक समीक्षा की प्रवृत्तियो का परिचय मिलता है।

[५] **भावात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति .** सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भावात्मक निबन्ध विचारात्मक निबन्धो की कोटि के विपरीत रागात्मकता प्रधान होते है। यह बुद्धि प्रधान निबन्धो से पृथक् हृदय की भावनाओ पर प्रत्यक्षत आधारित होते हैं। इसीलिए इसमे आत्मानुभूति की सफल व्यजना होती है। स्थूलत इसके अन्तर्गत गद्य-

१. 'समवेत', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २७।

गीति की कोटि की निबन्धात्मक रचनाएँ परिगणित की जा सकती है। इनका स्वरूप गद्य काव्य से पर्याप्त तात्विक साम्य रखता है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे इस कोटि के निबन्ध प्राय भारतेन्दु काल से ही उपलब्ध होते है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, गोविन्द नारायण मिश्र तथा बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने इस कोटि के निबन्ध प्रथम विकास काल मे प्रस्तुत किए थे। परवर्ती काल मे रायकृष्णदास[१], वियोगी हरि[२], चतुरसेन शास्त्री[३], माखन लाल चतुर्वेदी[४] तथा दिनेश नन्दिनी डालमिया[५] आदि ने इस कोटि की अनेक कृतिया प्रस्तुत की। भावात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत विशम्भर मानव का 'सोने से पहले', सत्यनारायण शर्मा का 'जीवन यात्रा', तारा पान्डेय की 'रेखाएँ' तथा सियारामशरण की 'हा, नही' आदि भी उल्लेखनीय है।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे 'साहित्यिकी', 'सामयिकी', 'साकल्य' तथा 'परिक्रमा' आदि सग्रहो मे सगृहीत कुछ रचनाओ मे भावात्मक प्रवृत्ति विद्यमान है। भावात्मक निबन्धो मे लेखक ने भाव प्रधान शैली के द्वारा ही अपने विचारो को प्रकट किया है। वह बौद्धिक होते हुए भी हार्दिक प्रधानता को ही अपनाते है। 'साहित्यिकी' निबन्ध सग्रह मे सगृहीत भावात्मक निबन्धो मे 'प्रवास', 'एक अतीत स्वप्न' तथा 'कवीन्द्र एक बाल्य झलक' निबन्ध इसी कोटि के अन्तर्गत उल्लेखनीय है। 'प्रवास' मे लेखक ने दिल्ली मे हुए साहित्य सम्मेलन मे जाने के मोह की ओर सकेत करते हुए रेलगाडी का अत्यन्त ही भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है तथा दिल्ली जकशन की तुलना लखनऊ के विशाल जकशन, कलकत्ते के हावडा प्लैन तथा बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस आदि से की है। दिल्ली के प्लेटफार्म के समकक्ष यह सब आलीशान होते हुए भी शान शौकत से परे है। प्राचीन दिल्ली और आधुनिक दिल्ली मे अत्यधिक अन्तर आ गया है। लेखक ने दिल्ली का मानवीकरण रूप प्रस्तुत करते हुए उस पर पडे कठोर प्रहारो की ओर सकेत किया है जो आज भी अपने वैभवपूर्ण बीते क्षणो की याद मे बिसुर रही है। 'सडक के दोनो ओर यह बिजली जल रही है या दिल्ली के जले हृदय की ज्वाला। कैसी अभागिनी है यह कगालिनी बुढिया। ऐश्वर्य के दिनो मे किस प्रकार इसके हृदय का हास शाही मणि दीपो मे दमक रहा था, कितने नृपतियो ने अपने अतुल स्नेह से इसके यौवन को प्रदीप्त किया था और आज भी यह कगालिनी लुटी-सी ठगी-सी खोई-सी अपने फटे हुए अचल को फैलाये हुए, मलिन मुख, झुकी हुई कमर से खडी-खडी, काल की निष्ठुरता की रोगी

१ 'साधना', 'छायापथ' तथा 'प्रवाल' आदि कृतिया।

२ 'तरगिणी', 'अन्तर्नाद', 'भावना', 'प्रार्थना' तथा 'श्रद्धाकार' आदि।

३. 'अन्तस्तल' आदि रचनाएँ।

४. 'साहित्य देवता' आदि कृतिया।

५. 'दुपहरिया के फूल', 'शबनम', 'शारदीया', 'उन्मन', 'स्पन्दन' तथा 'वशीरव'।

आँखो से स्वागत कर रही है। कहती है, हा दिगोडे ! बस एक ठेस और! ! अति रूप से सीता हरी गयी, अति रूप से दिल्ली हरी गयी। कितनी बार द्रौपदी की तरह इस सुकेसिनी के केश खीचे गये, कितनी बार इस लाजवन्ती के चीर खीच-खीच कर इसकी लज्जा उघार दी गई। कौन नही जानता ? इसके स्वामी पाडवो की तरह एकटक ताकते ही रह गये, यह तो द्रौपदी से भी अधिक अनाथिनी है। एक भी द्वारकानाथ इसकी पुकार पर दौड कर इसकी उघरती लाज को बचाने नही आया, नही आया।'[1] 'एक अतीत स्वप्न' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने पौराणिक, ऐतिहासिक एव वर्तमान की क्रमश परिवर्तनशीलता का उल्लेख करते हुए आधुनिक साहित्य मे विभिन्न साहित्य सुधाकरो की देन को अत्यन्त भावात्मक रूप मे प्रस्तुत किया हे। इसके अतिरिक्त श्री सियारामशरण गुप्त के उपन्यास 'नारी' के माध्यम से उन्होने पौराणिक युग की चेतना की महत्ता को ओर सकेत किया है जो आज भी समयान्तर के उपरान्त अपनी लौ मे आध्यात्मिक क्षेत्र मे जगमगा रही है। लेखक ने स्वय को 'पुरातन ग्रामीण' कह कर पुरातन का आराधक माना है। उपन्यास मे वस्तुत वह उसी पौराणिक दर्शन का आवर्तन चाहते है। कालान्तर की परिवर्तनशीलता एव आधुनिक युग की पौराणिक ज्योति का उल्लेख लेखक ने इस प्रकार किया है 'तो पुराण गया, इतिहास आया, इतिहास गया, विज्ञान आया। प्रगति नगरो मे ही दीख पडती है, गावो मे न इतिहास हे न विज्ञान, है पुरखो के मुख से सुने हुए पौराणिक विश्वास—न जाने किस अखड ज्योति से वे आज भी प्रकाशित है घर के दीपक की भाँति। उनके द्वारा आज भी जो मौलिक भारतीय जीवन ज्योति है, उसे ही लेकर ठेठ जीवन के उपन्यास है।'[2] 'कवीन्द्र एक बाल्य झलक' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने कवीन्द्र रवीन्द्र बाबू के बाल्य जीवन के कुछ चित्र भावपरक स्तर पर अभिव्यक्त किये है। रवि बाबू को स्कूल का वातावरण, स्कूल का जीवन एव उसकी कैद आदि रुचिकर न थी। वह एकान्त मे शान्त प्रकृति के नैसर्गिक प्रागण मे बैठ चिन्तन करने मे ही आत्मलीन रहते थे। लेखक ने उनके बाल्य जीवन के पारिवारिक वातावरण का चित्रण किया है जहाँ सदैव वह नौकरो के अनुशासन मे रहे। यह नौकरो का शासन काल विशेष आनन्द का न था, उन्हे स्वतत्रता नाम मात्र भी न थी। यहाँ तक कि घर मे भी वह स्वच्छदतापूर्वक नही घूम सकते थे। इस प्रकार घर और स्कूल दोनो ही स्थानो का वातावरण रवि बाबू के लिए एक-सा ही था—नीरस, निष्ठुर।

'सामयिकी' निबन्ध सग्रह मे सगृहीत 'भविष्य पर्व' शीर्षक निबन्ध मे चेतन प्रकाश की अमिट रेखा बापू के जीवन दर्शन को भाव-प्रधान भाषा मे अभिव्यक्त किया गया है। बापू वस्तुत पुरुष होते हुए भी विश्व रूप है। सपूर्ण विश्व ही उनमे

---

१. 'साहित्यिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १२४-१२५।
२ वही, पृ० २४४।

समाविष्ट हो गया है। बापू को प्राप्त करने के लिए विश्व कल्याण मे योग देने के पथ पर चलना होगा। 'विश्व शाति के लिए अन्त करण की मानवता, पीडित वसुधा के लिए सवेदना के आँसू, भूखे-प्यासो के लिए जीवन दान'[1] ही बापू का मुख्य उद्देश्य है। यही बापू को स्वीकर है। वह चित्रपूजा के विरोधी है। गाधीवाद बापू की आत्मा का ही राजनीतिक अनुवाद है। 'उसकी आत्मा की मौलिकता है बोधोदय मे, सर्वोदय मे, अनासक्त योग मे। गाधी मे 'वाद' नही योग है, उफान नही उदय है, सत्ता नही सज्ञा है।'[2] गाधी का जीवन-दर्शन आत्मा के वातायन को सम्बोधित करता है, उसकी प्राण सचारिणी अभिव्यक्तियाँ आभ्यन्तरिक अनुभूतियो से परिव्याप्त है। वस्तुत 'वह आत्मा का कवि है। सत्य उसकी वीणा है, विश्व वेदना उसकी रागनी, अहिंसा उसकी टेक और करुणा उसका रस है। सस्कृति उसकी स्वर लिपि है। प्रभु उसका आलम्बन या अवलम्बन है, जनता उसका उपकरण है, विश्व उसका काव्य है, कर्म उसके अक्षर है, सयम नियम उसके छन्द। ज्ञान और भाव को लेकर वह अपने व्यक्तित्व मे कवीर्मनीषी है—उसमे कवित्व और ऋषित्व का समन्वय है। इस प्रकार उसका व्यक्तित्व लोकयात्रा मे भक्ति काव्य को लेकर चल रहा है। उसका प्रत्येक पग काव्य का ही पद विन्यास है। समाज निर्माण द्वारा काव्य को वह शब्दो मे नही, प्राणियो के जीवन मे मूर्त करता है।'[3]

'साकल्य' निबन्ध सग्रह के 'दिगम्बर' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने अपने उपन्यास 'दिगम्बर' की रचना प्रेरणा एवं उसके सूक्ष्म रूप को भावात्मक स्तर पर चित्रित किया है। लेखक ने 'दिगम्बर' शब्द के अर्थ को स्पष्ट किया है। जैन साधुओ के एक सम्प्रदाय का नाम दिगम्बर है जो वस्त्र धारण नही करते। लेकिन लेखक की दृष्टि मे यह उसका सकुचित अर्थ है। वह इसे स्वीकार नही करते। वह लिखते है 'दिगम्बर का अभिप्राय है ऐसा आडम्बर शून्य सरल निश्छल निर्मल चेतन अन्त करण जिसका परिवेश सीमित नही, दिगचल तक फैला हुआ है। आज की भाषा मे जिसे श्रमिक सर्वहारा कहते है वह स्वार्थ का सघर्ष करता है, किन्तु दिगम्बर तो ऐसा श्रमण सर्व-हारा है जो वसुधैव कुटुम्बकम् के लिए स्वेच्छा से नि स्व हो जाता है।'[4] दिगम्बर के नायक विमल मे वस्तुत लेखक का स्वय का अन्त करण विद्यमान है जो बाल्यकाल मे प्रकृति के नैसर्गिक उद्बोधन से प्रेरित होता हुआ भी जीवन के यथार्थ धरातल को स्पर्श करता है। उसमे भी शारीरिक एव मानसिक भूख-प्यास है। 'दिगम्बर' की प्रवृत्ति सजीव, सदेह, सचेतन है। यही कारण है कि उसमे स्नेह, श्रद्धा, सस्कृति का

---

१. 'सामयिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २५९।

२ वही।

३ 'सामयिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २६०।

४ 'साकल्य', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० २४५।

अन्तर्विकास हुआ है।'[1] प्रयोग काल की यह रचना अपने शिल्प विन्यास मे लेखक का एक नवीनतम प्रयास है। इसमे लेखक ने सस्मरण, पर्सनल एसे, व्यक्तित्व निरूपण, रिपोर्नाज, रेखाचित्र आदि को स्पर्श करते हुए उपन्यास का रूप विन्यास किया है। इसकी विशेषताएँ व्यक्तित्व निरूपण, शब्द शिल्प तथा कथानक के क्रम-नियोजन मे निहित है।

'परिक्रमा' निबन्ध सग्रह के 'वह अदृश्य चेतना' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने अपनी बहिन कल्पवती की स्मरण रेखा को प्रस्तुत किया है। दिवगत होने पर भी बहिन सूक्ष्म चेतना के रूप मे स्मृति पट एव हृदय पट पर अन्त तक अवस्थित रही। यही कारण है कि स्मृति को चिरकाल जीवित सृष्टि कहा गया है। वह बाल-विधवा बहिन 'क्षर शरीर मे जो कभी सदेह थी वह देहातीत चेतना बन कर मानस मे सूक्ष्म अनुभूति हो गयी है। ओ अदृश्य चेतना ! तुम ओझल होकर भी निष्प्राण नही, अहर्निश मेरी सासो मे प्राणोदित हो—

तुम फिर-फिर सुधि सी सोच्छ्वास।
जी उठती हो बिना प्रयास।।'[2]

उसी बहिन कल्पवती ने लेखक के जीवन मे राग का सचार किया था। लेखक ने बहिन के जीवन का चित्र उसके सामाजिक एव आर्थिक वातावरण मे भावात्मक स्तर पर प्रस्तुत किया है। बहिन विविध निषेधो के रुढिग्रस्त युग मे होते हुए भी निर्जीव धर्म को अगीकार नही कर सकी थी। वह प्रगतिशील युग की नारी न होते हुए भी सचेतन थी, वह स्वय अपनी प्रज्ञा से श्रेय प्रेय का निर्णय लेती थी। वह विधवा के रूप मे भी कलाभिरुचि मे चिरकुमारिका थी।[3] लेखक ने मीरा तथा कलावती मे सादृश्यता स्थापित की है। दोनो को ही ईश्वरीय सौन्दर्य और ऐश्वर्य अभीष्ट था। वस्तुत वह सासारिक प्रलोभनो से परे थी। वह समस्त दुखो को पृथ्वी की तरह सह लेती थी लेकिन कुरूपता और मलिनता उसकी रुचि के बाहर की वस्तु थी। वह करुणा-कोमल होकर भी तेजस्वनी थी। उसमे तपस्या की प्रखरता थी, साच की आँच थी। कुरुचि, कुरूपता और अन्याय के प्रति दुर्गा की तरह प्रचड थी। इस रूप मे द्विवेदी जी के भावात्मक निबन्ध उनके कवि हृदय की कोमल अनुभूतियो की मार्मिक अभिव्यजना प्रस्तुत करते है।

[६] **संस्मरणात्मक निबन्धों की प्रवृत्ति** सस्मरणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति के अन्तर्गत सस्मरण निबन्ध को व्यक्ति प्रधान, आत्मपरक, व्यक्तित्व प्रधान, लघु, ललित, परसनल एसे आदि नामो से भी सम्बोधित किया जाता है। यद्यपि वैयक्तिक

---

१. 'साकल्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २४६।
२. 'परिक्रमा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २०७।
३. वही, पृ० २०९-२१०।

निबन्धो तथा सस्मरणात्मक निबन्धो को पर्याय माना जाता है लेकिन इन दोनो के दृष्टिकोण मे मौलिक अन्तर होता है। वैयक्तिक अथवा आत्मचरित निबन्ध मे लेखक का उद्देश्य अपनी जीवन कथा का वर्णन करना होता है जब कि सस्मरण मे लेखक अपने समय के इतिहास को भी स्पर्श करता है। लेकिन वह इतिहासकार से भी भिन्नता रखता है। वस्तुत सस्मरण लेखक अपने अनुभवो, अनुभूतियो एव सवेदनाओ का ही सस्मरणात्मक शैली मे वर्णन करता है। वह अपने चतुर्दिक जीवन का सपूर्ण भावनाओ और जीवन के साथ सर्जन करता है।[१] उपर्युक्त भिन्नता के होते हुए भी वैयक्तिक और सस्मरण निबन्ध मे अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। डा० गुलाबराय सस्मरण को रेखा-चित्र के समकक्ष रखते हुए उसे व्यक्ति से सम्बन्धित मानते हैं।[२] पडित बनारसीदास चतुर्वेदी वैयक्तिक निबन्ध 'परसनल एसे' तथा 'रेखाचित्र 'स्केच' को पर्यायवादी मानते है।[३] वैयक्तिक निबन्ध तथा सस्मरणात्मक निबन्ध अद्यतन युग की देन है यद्यपि इससे पूर्व भी कुछ निबन्धकार इस शैली मे निबन्धो का सर्जन कर रहे थे। पाश्चात्य साहित्य मे निबन्धो की इस प्रवृत्ति की प्रधानता है तथा इसे आधुनिक आविष्कार के रूप मे मान्यता मिली है। इग्लिश साहित्य मे वैयक्तिक निबन्धो की प्रवृत्ति इतनी अधिक मान्य हुई कि व्यक्तित्व प्रधान निबन्ध ही साधारण निबन्ध का प्रतिनिधित्व करने लगे।[४] वस्तुत आधुनिक युग मे निबन्ध की प्रवृत्ति इतनी अधिक विस्तृत है कि उसमे विभिन्न शैलियो का भी प्रादुर्भाव हो रहा है। सस्मरणात्मक निबन्धो की वैयक्तिक, रेखाचित्र, आत्म कथन, जीवनी आदि आत्माभिव्यजना की नई-नई शैलियाँ है। वैयक्तिक शैली मे लिखे सस्मरणात्मक निबन्धो मे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'अशोक के फूल', 'वसन्त आ गया', 'नाखून क्यो बढते है', 'आम फिर बौरा गये', 'शिरीष के फूल', आदि, श्री लक्ष्मीकान्त झा का निबन्ध 'खोयी चीज की खोज', डा० प्रभाकर माचवे के 'गला', 'मुह', 'गाडी रुक गई', 'छाता', बिल्ली', 'मकान' आदि तथा श्री विद्यानिवास मिश्र के सस्मरणात्मक निबन्ध उल्लेखनीय है। सस्मरणात्मक शैली मे लिखे निबन्धो मे श्री जैनेन्द्र कुमार के 'ये' और 'वे', श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का 'गेहूँ और गुलाब', डा० प्रभाकर माचवे के 'खरगोश के सीग' मे सगृहीत कुछ निबन्ध, श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन का 'जो मैं न भूल सका', 'जो मुझे लिखना पडा', 'रेस का टिकट' मे सगृहीत निबन्ध, डा० कैलाशनाथ काटजू का 'मैं भूल नही सकता', डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' का 'मैं इनसे मिला' आदि इसी कोटि के अन्तर्गत उल्लिखित है।

---

१. 'हिन्दी साहित्य कोश', स० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ८०३।

२. 'काव्य के रूप', डा० गुलाबराय, पृ० २५०।

३. 'हिन्दी निबन्ध और निबन्धकार', ठाकुर प्रसाद सिंह, पृ० १५३।

४. वही, पृ० १४२।

रेखाचित्र शैली मे लिखे सस्मरणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति के अन्तर्गत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के रेखा चित्र के अतिरिक्त श्री बेढब बनारसी का 'उपहार', श्री जैनेन्द्र कुमार की 'दो चिडिया', श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें', श्री रामनाथ 'सुमन' का 'विस्तृत अध्ययन', श्री प्रकाशचन्द गुप्त का 'रेखाचित्र और पुरानी स्मृति', श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का 'एक युग एक प्रतीक', 'रेखाएँ बोल उठी', 'क्या गोरी क्या सावरी', 'कला के हस्ताक्षर', श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का 'जिन्दगी मुस्कुराई', श्री गुरुदयाल मलिक की 'दिल की बात', श्री सत्यवती मल्लिक का 'कैदी' आदि उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त डा० रागेय राघव, श्री लक्ष्मीकान्त भट्ट, श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', श्री रामप्रसाद विद्यार्थी 'रावी' के 'मुझे आपसे कुछ कहना है' 'क्या मै अन्दर आ सकता हूँ' आदि भी सस्मरणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति मे अपना विशिष्ट स्थान रखते है।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे सस्मरणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति उनकी निबन्ध कृतियो, 'साहित्यिकी', 'समवेत' तथा 'परिक्रमा', मे सगृहीत निबन्धो मे यत्र-तत्र ही विद्यमान है। 'साहित्यिकी' का निबन्ध 'महापथ के पथिक प्रसाद' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने प्रसाद जी द्वारा प्राप्त उनके साहचर्य को सस्मरण रूप मे परिवेष्ठित कर लिया है। इसके अतिरिक्त लेखक ने अपने वैयक्तिक जीवन का भी इसमे परिचय दिया है। प्रसाद जी के परिचय के समय का अपनी किशोरावस्था का लेखक ने इस प्रकार चित्र प्रस्तुत किया है 'मन के भीतर नये-नये कुतूहल और नये-नये स्वप्न थे। मानव जीवन के स्वप्नो की झाकी उतारने वाले कलाकारो के लिए मेरे मन मे एक उद्ग्रीव सम्मान था। सौन्दर्य और कला के अनुराग ने मेरे भीतर एक ओर साहित्यिक लेखन की प्रेरणा उत्पन्न कर दी थी, दूसरी ओर अपनी घोरतम असहाय अकिंचन स्थिति के प्रति विस्मृति भी दे दी थी। सौ-सौ अभावो मे भूखे प्यासे रहने पर भी मेरा नया-नया नन्हा सा जीवन सब तरह से भरा-पूरा और स्वर्गीय जान पडता था। पृथ्वी मुझे चारो ओर न जाने कितनी आकर्षक और पुलकित मालूम पडती थी। नवीन वय की अनजानता मे जीवन की कठोरतम वास्तविकताओ से अज्ञात रहकर ही मैं अपने चारो ओर आनन्द ही आनन्द बिखरा हुआ देख सका था।'[१] लेखक ने प्रसाद जी के रहन-सहन एव मकान की स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है। लेखक ने प्रसाद जी के भावुक किशोर हृदय को स्पष्ट करते हुए लिखा है 'प्रौढता को पार कर जाने पर भी वे आजीवन वही सत्रह अठारह वर्ष के नटवर भावुक किशोर थे, जिसके प्रसन्न माध्यम से इन्होने रूखे-सूखे लौकिक जीवन मे प्रवेश किया था और अपने सपूर्ण जीवन को मनोहर बना लिया था।'[२] लेखक ने प्रस्तुत

१. 'साहित्यिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १३३।
२ वही, पृ० १३७।

निबन्ध मे उनके सपूर्ण जीवन का भावात्मक तथा सस्मरणात्मक परिचय चित्र प्रस्तुत किया है। प्रसाद जी के पारिवारिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन का चित्र भी लेखक ने इस प्रकार प्रकट किया है। वस्तुत प्रसाद के हार्दिक सस्कार कलाकार के सस्कार थे। लेखक ने उनके जीवन के कटु अनुभवो का उनके साहित्य मे रूप दिखाते हुए अत्यन्त ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है 'उस नाटककार कवि को जीवन सग्राम के अनेक विचित्र अनुभव हुए। उन अनुभवो ने उन्हे एक दार्शनिक कलाकार बना दिया। अपने कवि हृदय की सवेदना को बौद्ध धर्म की करुणा का रूप देकर उन्होने ऐतिहासिक नाटको की रचना की। साथ ही रूढिग्रस्त, आत्मलिप्त, परपीडक समाज के प्रति उनके मन मे एक व्यग्यपूर्ण विद्रोह भी उदय हो गया था। वही विद्रोह उनके उपन्यासो मे मिलता है।'[१] इसके अतिरिक्त लेखक ने हिन्दी साहित्य मे उनके महत्व का प्रतिपादन करते हुए उन्हे 'महेश' का स्थान प्रदान किया है।

'समवेत' निबन्ध सग्रह के सस्मरणात्मक निबन्धो मे 'हुतात्मा नवीन' शीर्षक निबन्ध मे श्रद्धेय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के जन्म और जीवन का परिचय देते हुए उनकी मृत्यु की ओर सकेत किया है। लेखक ने उन्हे अपनी ही साधन रहित परि-स्थितियो का पूर्वज तथा अग्रज माना है। उनकी मृत्यु के मर्माहत, शोकाकुल सवाद के समय की लेखक ने अपने मानसिक कष्टो का उल्लेख किया है। 'नवीन' जी केवल साहित्यिक क्षेत्र से ही नही राजनीतिक क्षेत्र मे भी अपनी प्रतिष्ठा बनाये हुए थे। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को साहित्यिक स्नेहियो ने भिन्न-भिन्न शब्दो मे एक ही मुग्ध दृष्टि से देखा है। किसी ने उन्हे 'नरोत्तम' कहा है, किसी ने 'कविहृदय सैनिक' कहा है, किसी ने 'राजनीतिक पकज' कहा है, किसी ने 'आत्माभिमानी सौन्दर्य सिक्त कवि' कहा है।[२] पडित जवाहरलाल नेहरू ने भी उन्हे अपना अनुज मानते हुए उनके जोशीले स्वभाव को स्वीकार किया है।[३] वह भी नेहरू से जोशीले थे लेकिन नेहरू जी मे केवल गतिशीलता थी जबकि 'नवीन' जी मे गतिशीलता के साथ गति-धीरता भी थी। 'नवीन' जी गाधी जी के अनुगत रहे। वस्तुत 'नवीन' जी अत्यधिक सवेदनशील प्राणी थे, अतएव कोई भी रसोद्रेग उनमे चरमसीमा पर था—अतिश्रृगार, अतिकरुणा, अतिओज। जिधर ढुल गए, उधर ढुल गये। वे बमभोला थे। उनका हृदय सरल निश्छल था, सत्य से निर्मल था, अतएव किसी का उनसे अहित नही होता था। शिव और सुन्दर का उनके व्यक्तित्व मे समावेश था। शिव उनकी लोक सेवा मे था, सुन्दर उनकी कला मे था। उनके मस्तक पर गाधी टोपी कैसी बाकी तिरछी अदा से खिल पडती थी। कैसे अलबेले थे वे।'[४] 'नवीन' जी ने राष्ट्रीय आहुति

---

१. 'साहित्यिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १३९।

२ 'समवेत', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४१।

३ वही, पृ० ४२।

४. वही, पृ० ४२।

मे अपना सपूर्ण जीवन, सपूर्ण यौवन समर्पित कर दिया। लेकिन जीवन का योग पक्ष उनके सूनेपन की याद दिला देता था। अपने इस दारुण अभाव को वे हास्य से मनोरजक बना देते थे।[१] अपने अभावो से ही आक्रान्त होकर नवीन जी ने पचपन वर्ष की अवस्था मे अपनी गृहस्थी बसा ली थी। लेकिन वह उसका भी अधिक भोग न कर सके और इस ससार के जीवन चक्र से मुक्त हो, जीवन-मरण की सीमाओ को पार कर अतीन्द्रिय हो गये। 'परिव्राजक का जीवन और चिन्तन' शीर्षक सस्मरणात्मक निबन्ध मे लेखक ने युवा सन्यासी स्वामी सत्यदेव परिव्राजक से सम्बन्धित सस्मरणो को प्रस्तुत किया है। स्वामी सत्यदेव द्विवेदी युग मे अमेरिका मे अध्ययन रत थे लेकिन भारत आने पर वह सन्यासी हो गए थे। आज वय के आधिक्य मे भी उनका मस्तिष्क अवरुद्ध न होकर विकसित एव विस्तृत है। बौद्धिक दृष्टि से वह सदैव युवा ही रहेगे। अपनी अदम्य इच्छा के कारण अर्थाभाव मे भी अमेरिका जाकर कठिन परिश्रम करके उन्होने विद्यार्जन किया। उनका गैरिक परिधान उनकी सस्कृति के प्रति निष्ठा को प्रदर्शित करता है। वह मर्यादा पुरुषोत्तम राम के उपासक थे तथा कृष्ण की पूजा हिन्दुओ के लिए श्रेयस्कर नही मानते थे। इसका मुख्य कारण उनका तेजस्वी बाल ब्रह्मचारी रूप था।[२] लेखक ने उनके साहित्यिक परिचय के आधार पर उसमे निहित रामात्मकता को उनके जीवन मे प्रतिष्ठित किया है। वस्तुत उनका समाजसुधारक रूप होते हुए भी वह धर्म के कलात्मक सौष्ठव के प्रशसक थे। स्वामी जी राजनीति तथा साम्प्रदायिकता से ऊपर थे, वह स्थिर और जड समाज मे भी सजीव, सचेतन और जगम है। लेखक ने कर्मदेवी के पास भेजे पत्रो के कुछ दृष्टात भी इस निबन्ध मे प्रस्तुत किए है।

'परिक्रमा' निबन्ध सग्रह मे 'कुसुमकुमार कवि पन्त' शीर्षक मे 'सस्मरण' के अन्तर्गत लेखक ने पन्त से सम्बन्धित अपने सस्मरणो को प्रस्तुत करते हुए उनके काव्य मे निहित भावो एव सस्कारो के आधार पर पन्त का परिचय दिया है। लेखक ने स्वय अपनी तथा पन्त की तुलनात्मक व्याख्या भी प्रस्तुत की है। 'पल्लव' के प्रकाशन समय (सन् २६) मे लेखक का उनसे परिचय हुआ तथा स्वाध्याय के द्वारा लेखक धीरे-धीरे उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के प्रभाव मे आने लगा, लेकिन इस पर भी पन्त जी उनके लिए एक मधुर विस्मय थे और वह स्वय पन्त जी के लिए एक दुर्लभ पहेली। लेखक ने उनके साहित्य के माध्यम से ही उनके पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के चित्र को प्रस्तुत किया है। श्री बच्चन जी ने यह कहा है कि 'उनके साथ आप जितने दिन तक रहे उनसे आप घनिष्ठता नही स्थापित कर सकते।'[३] वस्तुत

---

१. 'समवेत', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४५।

२ वही, पृ० ९१।

३. 'परिक्रमा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १९४।

पन्त जी अपने अन्तर्जगत मे ही आत्मलीन होते-होते वहा से भी अन्तर्धान हो जाते थे। गिरिजा कुमार माथुर ने यद्यपि पन्त जी को रोमानी लेकिन गम्भीर और जटिल माना है, लेकिन लेखक की दृष्टि मे वाह्य वातावरण मे रोमानी न होकर वह अपने अन्तर मे रोमानी है लेकिन चिन्तन मे वह गम्भीर भी है।[१] पन्त जी सत्य शिव सुन्दरम् के कवि हैं। सत्य शिव सुन्दरम् परस्पर भिन्न नही प्रत्युत् भाष्य हैं, उनमे पार्थक्य नही है। 'शून्य मन्दिर की प्रतिमा' शीर्षक निबन्ध मे काव्यदेवी महादेवी के जन्म की प्रसन्नता मे भी करुणा का अवसाद प्रदर्शित करते हुए लेखक ने कवयित्री की 'शून्य मन्दिर मे बनूगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी' पक्ति के आधार पर कल्पना मे अपनी भावात्मक मूर्ति से तद्रुपता को इगित कर, उनके वैभवपूर्ण जीवन मे भी साहित्य की भावात्मकता की ओर दृष्टिपात किया है। महादेवी जी का व्यक्तित्व उनके साहित्य मे प्रतिबिम्बित नही होता। 'यद्यपि उनकी कविता मे उनका जीवन 'स्वर्ग का नीरव उच्छ्वास' था, तथापि वह 'देव वीणा का टूटा तार' था जो इस पृथ्वी पर आ गया था।'[२] वस्तुत वह अत्यधिक मिलनसार तथा हसमुख स्वभाव की है। लेखक का प्रथम परिचय नीरव ही रह गया लेकिन साहित्य मे प्रौढता प्राप्त करने के साथ उनका सम्बन्ध भी बढा। लेखक अपनी सवेदना मे निराला, पन्त और महादेवी से तादात्म्य का अनुभव करता है। उनकी स्नेहिल बहिन कलावती ही लेखक की अन्तरात्मा मे निवास करती, वही उनकी अन्तश्चेतना थी।[३] पन्त और महादेवी की भाषा, भाव और शैली मे भिन्नता होते हुए भी उनका अन्तर्जगत एक ही है। महादेवी की कविता मे लेखक को बहिन का ही अन्तर्जगत आभासित होता। लेखक ने उनसे मिलन के क्षणो का चित्र इस प्रकार चित्रित किया है 'वे मुझसे ऐसे मिलती थी जैसे अपने अन्तर्जगत के किसी पारिवारिक प्राणी से मिलती हो। वार्तालाप के स्वगत क्षणो मे ऐसा जान पडता, वे श्रान्त क्लान्त भाराक्रान्त हैं।'[४] महादेवी की कविताओ मे जो अन्तर्वेदना व्यक्त हुई है वह लौकिक न होकर अलौकिक है। इसे उन्होने स्वय 'रश्मि' की 'अपनी बात' मे स्पष्ट कर दिया है। वह बुद्ध की अनुरागिनी तथा उनके दुखवाद से प्रभावित थी। लेकिन कृष्ण काव्य के प्रभाव से उनके दुखवाद मे भी वेदना का मधुर हास है। महादेवी को 'आधुनिक मीरा' भी कहा जाता है। महादेवी जी कविताओ मे तो अपनी अन्तरात्मा का आसव घोलती थी, लेकिन सामाजिक विषमताओ एव नारी जागरण तथा उनकी समस्याओ से सम्बन्धित लेखो को प्रत्यक्ष किया।

---

१ 'परिक्रमा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १९५।

२. वही, पृ० १९९।

३ वही, पृ० १९९।

४. वही, पृ० २०१।

द्विवेदी जी के निबन्धो का सैद्धान्तिक विश्लेषण

हिन्दी निबन्ध के सैद्धान्तिक स्वरूप का उसके विकास की पृष्ठभूमि मे अध्ययन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि सस्कृत भाषा मे इस शब्द के उद्गम काल से लेकर आधुनिक काल तक इसके अर्थ और धारण मे व्यापक परिवर्तन हुआ है । श्री आप्टे के कोश के अनुसार निबन्ध के कई अर्थ है जिनमे विचार सूत्र के ग्रन्थ से लेकर वैचारिक शृखला के सग्रह तथा औषधि तक का उल्लेख है ।[१] कालान्तर मे निबन्ध शब्द का प्रयोग प्रबन्ध, सन्दर्भ, रचना, लेख आदि के अर्थ मे किया जाने लगा । आधुनिक विचारको मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध को गद्य की वास्तविक कसौटी माना ।[२] निबन्ध विषयक् इस धारणा के अनुसार यदि द्विवेदी जी के निबन्धो का विश्लेषण किया जाये तो वह एक उत्कृष्ट गद्य लेखक सिद्ध होते है । 'जीवन यात्रा', 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास', 'समवेत' तथा 'परिक्रमा' आदि निबन्ध सग्रहो मे उनकी विचार शैली का समुचित विकास स्पष्टत लक्षित किया जा सकता है । समकालीन साहित्य के गद्य और पद्य रूपो से सम्बन्धित जो आन्दोलन वैचारिक स्तर पर द्विवेदी जी के काल मे हुए उनमे रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, यथार्थवाद तथा आदर्शवाद आदि प्रमुख हैं । द्विवेदी जी ने जहा एक ओर इन समकालीन विचारान्दोलनो से व्यापक प्रेरणा ग्रहण की है वहा दूसरी ओर इनके क्षेत्रो मे अपनी मौलिक रचनात्मकता का भी परिचय दिया है । निबन्ध के क्षेत्र मे भी उन्होने वैयक्तिक और भावात्मक शैलियो का दार्शनिकता और आध्यात्मिकता से जो समन्वय किया है वह उनके साहित्य के कलात्मक स्तर के साथ-साथ चिन्तन की प्रौढता से भी युक्त है ।

[१] **निबन्धकार द्विवेदी जी का व्यक्तित्व** इस अध्याय के आरम्भ मे यह सकेत किया जा चुका है कि शातिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव हिन्दी निबन्ध के इतिहास के जिस युग मे हुआ उसमे विचारात्मक, आलोचनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक, सस्मरणात्मक तथा सामयिक निबन्ध क्षेत्रीय विविध प्रवृत्तिया विद्यमान थी । द्विवेदी जी के एक निबन्धकार के रूप मे जिस व्यक्तित्व का परिचय पाठक को मिलता है वह एक ओर उनकी भाषा-शैली की प्रौढता का द्योतन करता है और दूसरी ओर उनके व्यक्तित्व की जागरुकता और चेतन सपन्नता का भी आभास देता है । 'जीवन यात्रा', 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास', 'समवेत' तथा 'परिक्रमा' आदि निबन्ध सग्रहो मे विषयगत वैविध्य और अभिव्यक्तिगत मौलिकता का जो समन्वय मिलता है वह

---

३ 'प्रेक्टिकल सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी', वामन शिवराम आप्टे, पृ० ९०१ ।

४. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५०५ ।

द्विवेदी जी को अपने युग के अन्य निबन्धकारो की तुलना मे सहज ही एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना देता है। उनके सहज चितन की जो अभिव्यजना विविध विषयक् निबन्धो मे मिलती है वह सामान्यत इस युग के अन्य निबन्धकारो की रचनाओ मे दुर्लभ है, विशेष रूप से दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयो पर लिखे गये। उनके निबन्धो मे मानवीय जीवन की परस्पर विरोधी वृत्तियो का जो निरूपण मिलता है वह उनके एक निबन्धकार के रूप मे व्यक्तित्व की आत्म केन्द्रता का परिचायक है। यह इस कारण है क्योकि द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की निर्मित का आधार ही आत्मचिन्तन और आत्मविश्वास है। वास्तव मे द्विवेदी जी ने मनुष्य को स्वय अपनी क्षमता पर विश्वास करने की प्रेरणा दी है और इस प्रकार उसे प्रगति के पथ पर अग्रसारित होने का सकेत किया है। इस प्रकार का दृष्टिकोण लेखक के साहित्यिक व्यक्तित्व की सरलता, आदर्शमयता, आध्यात्मिकता और स्वावलम्बनप्रियता आदि का परिचायक है।

[२] **द्विवेदी जी के निबन्धो का विषय वैविध्य** श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य की एक उल्लेखनीय विशेषता उसका विषय वैविध्य है। उन्होने विचारात्मक निबन्धो के क्षेत्र मे जो रचनाएँ प्रस्तुत की है वे दर्शन, सस्कृति, परम्परा, आधुनिकता, ज्ञान-विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति, साहित्य और जीवन मूल्यो से सम्बन्धित है। इनमे लेखक का गम्भीर चिन्तन प्रवाह परिलक्षित होता है। विचारात्मक निबन्धो के क्षेत्र मे द्विवेदी जी का दृष्टिकोण मुख्यत. समन्वयवादी है। इसके अन्तर्गत उन्होने विश्व-कल्याण, साहित्यिक उपलब्धियो, साहित्य सिद्धान्तो, साहित्यकारो के व्यक्तित्व विश्लेषण, कवियो, कलाकारो, सन्तो तथा आधुनिक भौतिकवादी जीवन से सम्बन्धित विचार प्रस्तुत किये है। अपने विवरणात्मक निबन्धो मे उन्होने मुख्य रूप से बोधिसत्व के रूप मे गौतम बुद्ध जैसी महान् विभूतियो के शाश्वत सन्देशो को काव्यात्मक भाषा और कथात्मक शैली मे उनकी समस्त दार्शनिक गरिमा के साथ प्रस्तुत किया है। इनके साथ ही सामयिक निबन्धो के अन्तर्गत उन्होने समकालीन जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे व्याप्त गम्भीर समस्याओ पर अपने निष्कर्षात्मक विचार प्रस्तुत किये हैं। इन निबन्धो मे लेखक ने आधुनिक काल मे जीवन का लक्ष्य, लौकिक योग्यता, कृषक और शिक्षित युवको का जीवन, कृत्रिम और स्वाभाविक जीवन, नवयुवक और स्वावलम्बन, स्वदेश प्रेम तथा युद्ध की विभीषिका आदि के साथ-साथ यात्रिकता, रोटी की समस्या, काम-भावना, साहित्य का व्यवसाय, विश्वविद्यालयीन शिक्षा, सास्कृतिक शिक्षा, उद्योग और आत्मयोग, लोक कला का आधुनिकीकरण आदि पर जागरूक चिन्तन प्रस्तुत किया है। अपने आलोचनात्मक निबन्धो मे द्विवेदी जी ने मुख्य रूप से ब्रज भाषा का माधुर्य-विलास, उपन्यास कला और उपन्यासकार, हिन्दी साहित्य का भविष्य, सास्कृतिक और प्रगतिशील कवि, वर्तमान कविता का क्रम-विकास, तुलसीदास का सामाजिक आदर्श, सूरदास की काव्य-साधना,

ग्राम्य जीवन के काव्य चित्र, आधुनिक साहित्य के विविध वाद आदि सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना से सम्बन्धित विचार प्रस्तुत किये है। इनके अतिरिक्त अपने भावात्मक निबन्धो मे द्विवेदी जी ने बुद्धि प्रधान निबन्धो से पृथक् भावमयी आत्मानुभूति की सफल व्यजना की है। यह निबन्ध लेखक के प्रतिनिधि निबन्ध हैं।

[३] **द्विवेदी जी का वाद विवेचन** श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने अपने निबन्ध साहित्य मे विभिन्न साहित्यिक एव राजनैतिक वादो का विश्लेषण करते हुए अपने मन्तव्य प्रस्तुत किये है। जैसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है, हिन्दी साहित्य के वर्तमान युग मे द्विवेदी जी के आविर्भाव का समय छायावाद और उसका परवर्ती काल है। उनके विचार से छायावाद मे सगुण रोमान्टिकता की भावना उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार से भक्तियुग मे सगुण पौराणिकता की भावना थी। इन दोनो मे ही सगुण रूप मे सपूर्ण सृष्टि के साथ एकात्मता अथवा ईश्वरता और आत्मानुभूति की विशदता अथवा विश्व व्यापकता है। इतना अन्तर अवश्य है कि भक्ति युगीन सगुण भावना धार्मिक थी जब कि छायावाद युगीन सगुण भावना नैसर्गिक है। साथ ही भक्ति युगीन सगुण मे परमात्म भाव का आलम्बन या माध्यम नर रूप नारायण पुरुष है जब कि छायावाद का आलम्बन नारी रूप नारायणी प्रकृति है। इस दृष्टि से छायावाद मे प्रकृति स्वय अपने मे पूर्ण और सन्तुष्ट है। वह योगमाया है, जिसकी साधना ही राग साधना है। अन्तर इतना है कि यह राग केवल इन्द्रिय व्यापार के माध्यम से व्यक्त होने वाला मनोविकार ही नही है वरन् मानवीय चेतना का अतीन्द्रिय मर्मोद्रेक भी है। द्विवेदी जी के विचार से छायावाद का प्रादुर्भाव भारतीय साहित्य के क्षेत्र मे रवीन्द्र की काव्य प्रतिभा के माध्यम से हुआ था। जैसा कि ऊपर सकेत किया गया है मध्य युगीन भक्ति काव्य की भाति छायावाद युगीन काव्य मे मनुष्य की वैयक्तिक अनुभूतियो की प्रधानता है। इस दृष्टि से उसे कृष्ण काव्य का ऐसा पुनरुत्थान कहा जा सकता है जिसमे रागानुरक्ति अथवा मोहासक्ति रूपी कलानुरजन मिलता है। छायावाद का कवि प्रकृति के सचेतन व्यक्तित्व की स्थापना करता है। इस दृष्टि से उसे आधुनिक युग मे नीति युगीन काव्य की पृष्ठभूमि मे रोमान्टिक पुनरुत्थान कहा जा सकता है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद से छायावाद का स्पष्ट भेद है। यह भेद मुख्यत आर्थिक और औद्योगिक दृष्टिकोणगत विरोध के कारण है। द्विवेदी जी की धारणा है कि भाषा विश्लेषणवाद और मार्क्सवाद के प्रचार के बाद मानवतावादी रचनाओ का ही आधिक्य था जिसके प्रतिनिधि प्रेमचन्द और प्रसाद थे। इनके मानवतावादी दृष्टिकोण मे यथार्थ की जडता न होकर आदर्श की चेतना और जागरुकता थी जो स्वस्थ साहित्य के निर्माण का आधार थी। चूकि मानवतावाद का उद्भव सास्कृतिक आभ्यान्तरिकता से हुआ था इसलिए उसमे हार्दिक सरलता थी। इसके विपरीत मार्क्सवाद का साहित्य मे प्रवेश राजनीति के अभ्यन्तर से होने के कारण उसमे बौद्धिकता? विचार प्राधान्य और रसहीनता है। कलात्मकता के स्थान

पर उसमे प्रचारात्मकता की प्रधानता है। द्विवेदी जी ने फ्रायडवाद का विरोध करते हुए साहित्य मे मानवीय विकृतियो का निषेध किया है। इसी सन्दर्भ मे द्विवेदी जी के प्रभाववादी समीक्षा से सम्बन्धित विचार भी उल्लेखनीय है जिसे उन्होने ऐसी समीक्षा कहा है जो रोमाटिक, भावात्मक और कलात्मक है। इस आधार पर उन्होंने प्रगतिवादी समीक्षा को सवेदना शून्य और मात्र समाजशास्त्रीय निर्दिष्ट किया है।

आधुनिक राजनैतिक जीवन दर्शन से प्रभावित मतवादो मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने गाधीवाद और समाजवाद आदि पर भी विस्तार से विचार व्यक्त किये है। उन्होने सर्वोदय अथवा समाजवाद मे आर्थिक दृष्टिकोण के साथ-साथ सास्कृतिक दृष्टिकोण पर भी बल दिया है। उनका विचार है कि व्यवहारत आर्थिक और सास्कृतिक दृष्टिकोण एक रूपात्मकता रखते है। यह इस कारण है क्योकि इनमे साधन केवल जड वस्तु मात्र नही है और इस दृष्टि से पार्थक्य भी नही है। उनकी धारणा है कि गाधीवाद के अन्तर्गत खादी प्रयोग पर, ग्रामोद्योग के प्रचार-प्रसार पर जो बल दिया गया है वह इन साधनो की स्वाभाविकता के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति के श्रमगत स्वावलम्बन का उन्मेष भी करता है। द्विवेदी जी का विचार है कि किसी भी समाज मे विविध वर्गो के श्रमिको का श्रम मूलत स्वावलम्बी होता है। उसमे कोई असामाजिक विघटन नही होता है और अन्यान्यता होती है। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि अनेक वर्गो के श्रमिको के सहयोग के स्वावलम्बन से ही समाज की सरचना हुई। इसलिए विशुद्ध समाजवाद वह नही है जहा आर्थिक विकेन्द्रीकरण है वरन् वह है जहा साधन की स्वाभाविकता प्राथमिक है, जिसके अनुरूप ही साध्य बनता है और जिससे सस्कृति का उद्भव होता है। द्विवेदी जी का विचार है कि समाजवाद का विकास जीवशास्त्र और अर्थशास्त्र का आधार ग्रहण करके हुआ है, उनमे आधुनिक मानव की सबसे बडी विकृति अर्थात् अहकार के कीर्ति और शक्ति रूपी प्रच्छन्न प्रतीको की निहिति है। यही विकार न्यूनाधिक रूप मे किंचित परिवर्तन के साथ व्यक्तिवाद और पूजीवाद मे विद्यमान है। इससे मुक्ति तभी मिल सकती है जब आत्म चेतना के परिनिष्ठित स्वरूप पर बल देने वाले गाधीवाद को अपनाया जाए।

[४] द्विवेदी जी के निबन्धो की भाषा श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य का अवलोकन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि उनकी भाषा प्राय समकालीन प्रभावो को अपने मे समाविष्ट किए है। जैसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है, उनका रचना काल छायावाद और उसका परवर्ती युग रहा है। इस दृष्टि से उनकी भाषा पर भी छायावाद और उसके परवर्ती साहित्यिक आन्दोलनो का प्रभाव है। द्विवेदी जी के लिखे हुए विचारात्मक, आलोचनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक, सस्मरणात्मक तथा सामयिक विषयो से सम्बन्धित निबन्ध भाषागत वैविध्य रखते है जो मुख्यत. रचना काल और विषय वस्तु के अनुरूप ही है। यहा पर सक्षेप

मे द्विवेदी जी के निबन्धो मे प्रयुक्त भाषा के विविध रूपो की ओर सकेत किया जा रहा है ।

सस्कृत निष्ठ भाषा श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्धो मे भाषा के जो रूप उपलब्ध होते हैं उनमे सर्वप्रथम सस्कृत निष्ठ भाषा का उल्लेख किया जा सकता है । यह भाषा मुख्य रूप से उन स्तरो पर प्रयुक्त हुई है जहा लेखक ने भावनात्मक प्राबल्य से मुक्त विचार विश्लेषण प्रस्तुत किया है । उदाहरण के लिए 'परिक्रमा' पुस्तक के 'कुसुमकुमार कवि पन्त' निबन्ध मे 'अन्तर्निर्माण' शीर्षक के अन्तर्गत यह उदाहरण दृष्टव्य है 'जन्म के दिन ही जिस जन्मजात कवि का शिशु हृदय मातृ वचित हो गया उस नव प्राण कुडमल का अवतरण कितने करुण वातावरण मे हुआ । क्या यह मनोवैज्ञानिक विरोधाभास नही है कि विषादपूर्ण वातावरण मे उत्पन्न होकर भी वह अवमन्नता का नही, श्रद्धा, सौन्दर्य और उल्लास का कवि हो गया । जीवन मे इतना अमृतत्व इतना माधुर्य उसे कहा से मिल गया ? अग-जग से अलिप्त अपने अतीन्द्रिय अन्त करण मे सम्पुटित वह शिशु शतदल की भाति मुकुलित होकर सत्य शिव सुन्दरम् का प्रतिनिधि हो गया ।'[1]

क्लिष्ट अथवा दुरूह भाषा श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे प्रयुक्त भाषा का दूसरा रूप क्लिष्टता अथवा दुरूहता है । इस प्रकार की भाषा मे भी शब्दावली सस्कृत प्रधान ही है । इस दृष्टि से यह भाषा रूप भी सस्कृत निष्ठ भाषा से पर्याप्त साम्य रखती है । अन्तर केवल इतना है कि इसमे ऐसे शब्द गम्भीर भाव व्यक्त करते हुए भी किंचित क्लिष्ट प्रतीत होते है यद्यपि इससे निबन्ध प्रवाह मे कोई बाधा नही आती । इसके उदाहरण मुख्यत गम्भीर विषयात्मक निबन्धो मे उपलब्ध होते हैं । द्विवेदी जी लिखित 'पद्मनाभिका' पुस्तक मे सगृहीत 'बोधिसत्व' शीर्षक निबन्ध से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है—'अरुणोदय की बेला मे राजकुमार देवविमान के सदृश सर्वोत्तम रथ पर बैठकर नगर की ओर चला, रथ मे पारद की तरह चचल और कपूर की तरह उज्ज्वल तुरग जुते हुए थे । सूर्य के प्रकाश से रथ का मडप झलमला रहा था । मडप के स्वर्ण केतु को दूर से फहराते देखकर पुरवासी प्रमुदित हो उठे । समीप आने पर उन्होने उल्लसित कठ से जयघोष किया । पुष्पो की वर्षा से राजपथ कुसुमित हो गया । वाद्य वृन्द बज उठे, देवलोक की पूजा ध्वनि की तरह शखरव वातावरण को अभिमन्त्रित करने लगा । फूलो की मालाओ से कुमार की ग्रीवा मानो स्नेह और सम्मान के आलिगन से आपूर्ण हो गई । द्वार पर खडी कुलवधुओ ने दधि, दुर्वा और गोरोचन से राजकुमार का स्वस्त्ययन किया ।'[2]

---

१ 'परिक्रमा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १५१ ।

२. 'पद्मनाभिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११०-१११ ।

मिश्रित भाषा श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे अनुपात की दृष्टि से बहुत बडी सख्या ऐसी रचनाओ की है जिनमे मिश्रित भाषा का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार की भाषा मे उन्होने सस्कृत, हिन्दी, उर्दू, और अग्रेजी के उन शब्दो का प्रयोग किया है जो सामान्य रूप से हिन्दी मे अगीकृत कर लिए गए हैं। विषय के अनुसार विभिन्न प्रसगो मे सस्कृत, उर्दू अथवा अग्रेजी के शब्दो का आनुपातिक प्रयोग न्यूनाधिक हो गया है। अनावश्यक विस्तार के भय से यहा पर उन सभी भाषा रूपो के पृथक्-पृथक् उदाहरण न देकर केवल एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमे मिश्रित भाषा का प्रतिनिधि स्वरूप दृष्टिगत होता है 'बच्चे से धन्य होने वाले भद्र पुरुष की बात पर आगे विचार कीजिए। वह अपने कार्यालय मे बैठा हुआ कार्य मे व्यस्त है। एकाएक उसे घटी की टन-टन सुनाई देती है। कौन-सी घटी ? टेलीफोन की घटी। वह झपट कर टेलीफोन के पास पहुँचता है, परन्तु सदेश सुनने के समय उसका कलेजा धडकने लगता है। पहले तो कभी ऐसा नही हुआ था। राम-राम। बडा दुखदायी समाचार रहा होगा। बेचारा सिसकिया ले-ले कर कराह रहा है, उसकी सुध-बुध जाती रही, चेहरे का रग उड गया। पीला, मुर्दनी छाया हुआ मुह लेकर वह अपने आसन पर आया, कोट पहना तथा टोपी ली और कार्यालय से चल दिया—मानो उसे बन्दूक की सी गोली लग गयी हो। उसने अपने प्रधान से अनुमति भी नही ली। अपनी चौकी पर फैले हुए कागज पत्रो को भी समेटकर बन्द नही किया। उसका ज्ञान ध्यान सब जाता रहा और सीधा कार्यालय से चल दिया। उसके साथी चकित रह गये।'[1]

[५] **द्विवेदी जी के निबन्धो की शैली** श्री शातिप्रिय द्विवेदी के विविध विषयक निबन्धो मे रागात्मक, रूपात्मक, सश्लिष्ट, आलकारिक, भावात्मक, विचारात्मक, आलोचनात्मक, व्याख्यात्मक, निर्णयात्मक, उद्बोधनात्मक, वर्णनात्मक और हास्य व्यग्यात्मक शैलियो का प्रयोग हुआ है। ये शैलिया विभिन्न विषयो और प्रसगो के अनुरूप परिवर्तित होती रही। इनके उदाहरण द्विवेदी जी के जीवन यात्रा, साहित्यिकी युग और साहित्य, सामयिकी, धरातल, साकल्य, पद्मनाभिका, आधान, वृन्त और विकास, समवेत एव परिक्रमा आदि सभी निबन्ध सग्रहो मे उपलब्ध होते हैं। यहा पर इनमे से प्रत्येक शैली का एक प्रतिनिधि उदाहरण परिचय के लिए उद्धृत किया जा रहा है।

रागात्मक शैली द्विवेदी जी के निबन्धो मे रागात्मक शैली का जो स्वरूप उपलब्ध होता है वह मुख्यत उन निबन्धो मे प्रयुक्त हुआ है जिनमे आध्यात्मिकता और भौतिकता के साथ रागात्मकता का समन्वय हुआ है। यह शैली उनके कवि हृदय की कोमल राग वृत्ति की ही परिचायक है। द्विवेदी जी के लिखे हुए 'परिक्रमा' नामक

---

१ 'जीवन यात्रा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २०-२१।

निबन्ध सग्रह की 'वह अदृश्य चेतना' शीर्षक रचना से इसका एक उदाहरण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है 'उस चिन्मयी का अमृत पावन नाम कल्पवती था। इस जन्म मे वह मेरी बाल विधवा बहिन थी। मेरे दुधमुँहे शैशव मे ही जब मा का आचल सदा के लिए ओझल हो गया तब मस्तक पर उसी का कोमल कर पल्लव वात्सल्य का आचल बन गया। उसी ने मेरे जीवन मे राग का सचार किया। ..वह चिन्मयी पृथ्वी पर वृष्मयी होकर अवतरित हुई थी। पचभूतो से ही उसके शरीर का भी निर्माण हुआ था, किन्तु शरीर भी उसकी आत्मा की तरह ही सूक्ष्म था, आत्मा ही अपने अनुरूप सदेह हो गयी थी जैसे सगीत वीणा के पतले तारो मे। चित्र की भाषा मे वह तन्वगी पद्मिनी थी।'[१]

रूपात्मक शैली श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्धो मे प्रयुक्त विभिन्न शैलियों मे दूसरी प्रमुख शैली रूपात्मक है। इस शैली के उदाहरण 'परिक्रमा' तथा 'जीवन यात्रा' शीर्षक निबन्ध सग्रहो की अनेक रचनाओ मे उपलब्ध होते है। यह शैली विशेष रूप से उन स्थलो पर मिलती है जहाँ लेखक ने किसी वस्तु स्थिति का विशिष्ट कथात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की 'जीवन यात्रा' नामक निबन्ध पुस्तक मे सगृहीत निबन्ध 'मृग-तृष्णा' शीर्षक रचना से इसका एक उदाहरण यहा प्रस्तुत है 'हम लोगो ने अपने जीवन के चारो ओर एक भीषण ज्वाला धधका रखी है। यद्यपि हम उसे देख नही पाते, तथापि हम सब उसमे भस्म हुए जा रहे है। ससार का कोना-कोना उस ज्वाला से जल रहा है। हम त्राहि-त्राहि कर रहे है, हाहाकार से आकाश का हृदय कपा रहे है, किन्तु यह समझने की चेष्टा नही करते कि यह ज्वाला क्या है और कहां धधक रही है? जितनी आसानी से हम घर मे लगी हुई आग को बुझा सकते है, उससे भी अधिक सुगमता से हम इस अदृश्य ज्वाला को शात कर सकते है।'[२]

सश्लिष्ट शैली श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे उपलब्ध विभिन्न शैलियो मे तीसरी उल्लेखनीय शैली सश्लिष्ट शैली है। इसके उदाहरण 'युग और साहित्य' तथा 'सामयिकी' शीर्षक निबन्ध पुस्तको मे सगृहीत अनेक रचनाओ मे उपलब्ध होते है। यह शैली लेखक के साहित्यिक व्यक्तित्व की गम्भीरता, शब्द चयन की सतर्कता और तत्व निरूपण की सम्यक्ता की द्योतक है। 'सामयिकी' मे सगृहीत 'रवीन्द्रनाथ' शीर्षक निबन्ध से इसका एक उदाहरण यहा उद्धृत किया जा रहा है 'जब हम कहते हैं कि रवीन्द्रनाथ ने कलात्मक सत्य दिया, बापू ने कला रहित सत्य, तब इसके माने यह कि रवीन्द्र का सत्य सकल्पात्मक है, बापू का सत्य निर्विकल्प। किन्तु सत्य जब विकल्पात्मक हो जाता है तब उसमे तामसिक कुरूपता आ जाती है,

---

१. 'परिक्रमा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २०७।

२. 'जीवन यात्रा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३५।

रियलिज्म के नाम पर साहित्य मे प्राय यही तामसिकता सत्य बन जाती है। हमे तो कलाकार का सकल्पात्मक सत्य चाहिए या सन्त का निर्विकल्प सत्य। और यही गाधीवाद का निषेध तामसी माया के प्रति होना चाहिए, न कि कलाकार के कलात्मक सौन्दर्यात्मक सत्य के प्रति। कलात्मक सत्य जीवन का राजयोग है।"[1]

आलकारिक शैली श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी की निबन्ध शैलियो मे चौथी प्रमुख शैली आलकारिक है, जिसका उल्लेख यहा किया जा सकता है। यह शैली 'समवेत' 'वृन्त और विकास' तथा 'परिक्रमा' नामक निबन्ध सग्रहो मे बहुलता से प्रयुक्त हुई है। विविध आलकारिक प्रयोगो के माध्यम से उत्पन्न सौन्दर्य ही इसकी प्रमुख विशेपता है। 'परिक्रमा' शीर्षक निबन्ध की 'वह अदृश्य चेतना' शीर्षक रचना से इसका एक उदाहरण यहा उद्धृत किया जा रहा है "निर्गुण कबीर की 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' बहुत सादी थी। उस कल्पवती का जीवन शिल्प भी काया की चदरिया की तरह ही झीना था, किन्तु सगुण के रूप-रग-रस से सुन्दर, सुरग और सरस था। बाल्यावस्था मे ही वैधव्य से जो पतझड की कली हो गयी थी उस बाल विधवा मे वसन्त का यह भाव वैभव कैसे आ गया। सासारिक उपाधियो को छोडकर उसमे उसका शैशव ही अक्षुण्ण हो गया था, काल उसकी अन्तरात्मा को उन्मीलित नही कर सका था। निर्लिप्त होकर भी वह अपनी शिशु सुलभ रागात्मिका दृष्टि से जिस मनोज्ञ सृष्टि को देखती थी उसे अपनी चेतना से आत्मसात् कर सास्कृतिक सुषमा बना देती थी। उसके वयो विकास मे सूर्यमुखी की तरह उसकी ज्योतिष्मती चेतना ही ज्योतिर्मय की ओर विकासोन्मुख होती जाती थी।"[2]

भावात्मक शैली श्री द्विवेदी जी के निबन्ध साहित्य मे प्रयुक्त शैलियो मे पाचवी शैली भावात्मक है। जैसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी के विविध विषयक निबन्धो मे उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के कवि हृदय की भी अभिव्यजना हुई है। यह शैली उनके काव्यात्मक उद्गारो से परिपूर्ण है जो विचार तत्व के समन्वय से विशेप प्रभावयुक्त बन गयी। इसका एक उदाहरण द्विवेदी जी के 'पद्मनाभिका' नामक निबन्ध सग्रह की 'नूतन-पुरातन' रचना से यहा उद्धृत किया जा रहा है "समय का प्रवाह बहता जा रहा है। जीवन के क्षण बुदबुदो की तरह विलीन होते जा रहे है। उन्हे क्या अक्षरो मे बाध लू ? किसलिए ? किसके लिए ? विधाता तो सर्वान्तर्यामी है, वह तो बिना बोले, बिना लिखे, सबका सब कुछ सुनता देखता समझता है, फिर भी मनुष्य बोलता है, किसलिए ? किसके लिए ? वह सास लेता है, सभी जीवन सास लेते हैं। जीने के लिए, जीवन देने के लिए।...इसी तरह तो ससार चलता है, इसी तरह तो समय का प्रवाह बहता है। क्या हर्ज है यदि मनुष्य

---

१. 'सामयिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २७।

२ 'परिक्रमा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २०९।

बुदबुदो की तरह अपनी क्षणभगुर सासो को स्मृतियो मे पिरो ले।"[1]

विचारात्मक शैली श्री शातिप्रिय द्विवेदी की निबन्धात्मक रचनाओ मे प्रयुक्त शैलियो मे विचारात्मक शैली भी यहा पर उल्लेखनीय है। इस शैली के विविध प्रसगानुकूल रूप द्विवेदी जी के 'जीवन यात्रा', 'सामयिकी', 'साहित्यिकी' तथा 'युग और साहित्य' आदि निबन्ध सग्रहो मे उपलब्ध होते हैं। यह शैली मुख्यत विचार प्रधान है जिसकी मुख्य विशेषता चिन्तनात्मक प्रवाहशीलता है। इसका एक प्रतिनिधि उदाहरण यहा द्विवेदी जी लिखित 'जीवन यात्रा' नामक पुस्तक के 'जीवन का उद्देश्य' शीर्षक निबन्ध से प्रस्तुत किया जा रहा है "ससार के पूजा-पाठ, जप-तप, दान, तब तक हमे कुछ भी शाति नही दे सकते जब तक कि वे हमारे सकुचित स्वार्थ के घेरे मे है। ये धार्मिक कृत्य लोक-कल्याण के लिए है। जीवन सग्राम मे लगे रहने के बाद ये पुण्य कृत्य हमारे सामने इसीलिए रखे गये है कि हमारा आन्तरिक ध्यान एक बार व्यष्टि से समष्टि की ओर जाय और हमे बोध हो कि ईश्वर की कितनी विशाल सृष्टि के साथ हमे अपने सच्चे कर्तव्यो का तारतम्य बनाना है। जी से जब हम इन कृत्यो द्वारा परार्थ की ओर बढते है तो मन स्वस्थ होकर शाति का अनुभव करते लगता है और हमे फिर किसी दूरस्थ स्वर्ग की कल्पना नही करनी पडती, क्योकि तब वह स्वर्ग आत्मा मे ही विद्यमान दीख पडता है। हम अपने और दूसरो के कृत्रिम दुख द्वन्द्व और हाहाकार को जितना ही कम कर सके, उतना ही चिर आनन्द के अपने जीवनोद्देश्य के निकट पहुँचेगे।"[2]

आलोचनात्मक शैली श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे आलोचनात्मक शैली का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वही उनके आलोचनात्मक साहित्य मे भी विद्यमान है। अतएव यहा पर केवल सकेत रूप मे इसका एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है जो लेखक की आलोचनात्मक दृष्टि की सर्वांग सपूर्णता का आभास देने मे समर्थ है · "देश द्रोही मे जीवन के सभी अवयव सगठित हो गये है—व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र। इन्ही के अनुरूप इसमे चरित्रो और समस्याओ की विविधता भी है—स्त्रियाँ भी है, पुरुष भी, पूँजीपति भी है, मजदूर भी, साथ ही राजनीतिक क्षेत्र के विभिन्न कार्यकर्ता भी। सामाजिक रूप मे विवाह या प्रेम समस्या है, राजनीतिक रूप मे महायुद्ध अथवा जीवन-मरण की समस्या। अन्त मे सामाजिक और राजनीतिक उलझनो मे उलझी हुई समस्या हृदय या प्रेम की है। मनुष्य अपनी हार्दिक समस्या मे समूह का एक विवश अग है। सामूहिक समस्या के सुलझे बिना वैयक्तिक समस्या भी सुलझ नही सकती, इसलिए लेखक समष्टिवाद (कम्यूनिज्म) की ओर है। आज की विचारधाराओ का मतभेद सामूहिक समस्या के अस्तित्व मे नही, उनके

---

१ 'पद्मनाभिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८।
२ 'जीवन यात्रा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३४।

स्वरूप मे है—राजनीतिक या सास्कृतिक, बौद्धिक या हार्दिक। लेखक ने समस्याओ को सुलझाने के बजाय उन्हे प्रगतिशील दृष्टिकोण से समझने का साधन उपस्थित किया है।"[१]

व्याख्यात्मक शैली श्री शातिप्रिय द्विवेदी के अनेक निबन्धो मे व्याख्यात्मक शैली भी अधिकता से प्रयुक्त हुई मिलती है। इस शैली का प्राचुर्य उन स्थलो पर विशेष रूप से हो गया है जहा पर उन्होने किसी विशिष्ट तत्व के समुचित तथ्य के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया है। द्विवेदी जी के लिखे हुए 'आधान' नामक निबन्ध सग्रह मे 'काव्य मे भक्ति भावना' शीर्षक से इस शैली का एक उदाहरण यहा उद्धृत किया जा रहा है "भक्ति ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए नृत्य और सगीत के अतिरिक्त काव्य की भी सहायता ली। नृत्य, गीत और वाद्य के सहयोग से भक्ति की भावना लहरीली हो गयी किन्तु उसे गहराई और सुस्थिरता काव्य से ही मिली। काव्य मे भक्ति की वे नीरव भावनाएँ भी अभिव्यक्ति हुई जो समाधि मे मूक थी। . हमारे देश मे भक्ति की दो काव्य धाराएँ प्रवाहित हुई है। एक धारा को हम निर्गुण काव्य कहते है, दूसरी धारा को सगुण काव्य। सुव्यवस्थित रूप मे ये दोनो धाराएँ हिन्दी मे ही देखी जा सकती हैं, विश्व के किसी अन्य साहित्य मे नही, सस्कृत मे भी नही।"[२]

निर्णयात्मक शैली श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे एक अन्य शैली का भी प्रयोग हुआ है जिसे निर्णयात्मक शैली कहा जा सकता है। यह शैली वस्तुत उनके चिन्तन प्रधान निबन्धो मे निष्कर्षात्मक मन्तव्यो की अभिव्यजना मे प्रयुक्त हुई। द्विवेदी जी के 'धरातल' नामक कृति के 'मनुष्य और यत्र' शीर्षक निबन्ध से इसका एक उद्धरण दृष्टव्य है ". अतएव अहिंसा को चाहे पुरानी भाषा मे जीव धर्म कहे अथवा छायावाद की भाषा मे हृदयवाद कहे, मानवोचित सद्वृत्तियो को रोपने के लिए वही उर्वर सुकोमल मनोभूमि है। कठोर धरती मे कोई भी बीज नही जम सकता।...वर्तमान प्रचलित अर्थ मे प्रयुक्त मानववाद मे गाधीवाद को सम्मिलित करना उसे सकुचित करना है। यद्यपि वह किसी 'वाद' के अन्तर्गत नही है तथापि यदि इसके बिना काम न चलता हो तो हम कहेगे उसे प्राणवाद, हर स्थिति मे वह यत्रवाद से भिन्न है।"[३]

उद्बोधनात्मक शैली · श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्धो मे जो रचनाए जीवन मे निहित सद्गुण का पुष्टीकरण करती हैं इनमे प्रयुक्त शैली का एक रूप उद्बोधनात्मक भी है। इसमे मुख्य रूप से पाठको को सम्बोधित करते हुए उन्हे उदात्त

---

१ 'सामयिकी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २४५।
२. 'आधान', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १२।
३. 'धरातल', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २२।

जीवन के अगीकरण की प्रेरणा दी गयी है। इसका एक उदाहरण 'जीवन यात्रा' नामक पुस्तक मे सगृहीत 'प्रोत्साहन' शीर्षक निबन्ध से यहा प्रस्तुत किया जा रहा है "हृदय मे सदा आशा और विश्वास रखो—अपनी सफलता के लिए, क्योकि विजयी वही होते है जिन्हे अपनी शक्ति पर विश्वास होता है। विश्वास और आशा का कभी त्याग न करना चाहिए, क्योकि जिसके हृदय मे दोनो रहते है वह सदा धीर और प्रसन्न रहता है, कठिनाइयो और विपत्तियो का उस पर कोई प्रभाव नही पड सकता। यदि निराशा के दिन आयें भी तो गम्भीर होकर विचारो। तुम देखोगे कि तुम्हारी निराशा तुम्हारी गलती थी। जहा तुम निराश होते हो, वही दूसरे पर्दे मे आशा भी तुम्हारी प्रतीक्षा करती है। सिर्फ तुम्हे पहचानने भर की देर है कि वह जीवन किस दिशा मे है।"[१]

वर्णनात्मक शैली श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे वर्णनात्मक शैली का रूप मुख्यता कथात्मक रचनाओ मे उपलब्ध होता है। सामान्य रूप से यह शैली 'बोधिसत्व' जैसी कथात्मक एव विवरण प्रधान रचनाओ मे विद्यमान मिलती है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है "वह आश्रम दिगन्त व्याप्त प्रकृति का एक स्वर्ग द्वार था। उसके चारो ओर नद नदी, पर्वत, निर्झर और हरित भरित वनराजि का शोभा प्रसार था, पशु-पक्षियो की क्रीडन कूजन जीवन का सचार कर रहा था। अनुरागिनी उषा अपने आलोक से उस निसर्ग लोक का पटोद्घाटन करती, विरागिनी सन्ध्या अपने शिथिल करो से पट परिवर्तन कर जाती। इसके बाद ससार अज्ञान की तरह अन्धकाराच्छन्न हो जाता। शनै शनै माया का सघन आवरण भेद कर चिन्मयी ज्योति की तरह चन्द्र ज्योत्स्ना छिटक पडती। क्रमश वह भी क्षीण होकर अपना उत्तराधिकार उषा को दे जाती।"[२]

व्यग्यात्मक शैली श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे प्रयुक्त शैलियो मे एक रूप व्यग्यात्मक भी है। इस शैली का प्रयोग मुख्यत उन स्थलो पर हुआ है जहा लेखक ने जीवन के किसी क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित विडम्बना के प्रति व्यग्योक्ति की है। इसका एक उदाहरण उनकी 'आधान' शीर्षक कृति से यहा प्रस्तुत किया जा रहा है "क्या खादी और हिन्दी का प्रचार व्यापार के लिए किया गया था? व्यापार बन कर दोनो ही नही चल सकते। व्यापार मे स्वार्थान्धता है, खादी और हिन्दी मे प्राणि चेतना है, सामाजिक संवेदना है। जैसे गौ के व्यापार से गौ रक्षा नही हो सकती, वैसे ही खादी और हिन्दी की भी रक्षा नही हो सकती। भारत भी क्या भक्षक ही बना रहेगा, सामाजिक प्राणी नही? यदि पुराकाल मे ही भाषा और साहित्य व्यापार बन गया होता तो वेद उपनिषद् पुराण रामायण महाभारत सरस्वती के

---

१. 'जीवन यात्रा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८२-८३।
२ 'पद्मनाभिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १२६।

मन्दिर के दीप स्तम्भ बन कर सृष्टि को आलोक कैसे प्रदान करते ।"[१] इस प्रकार से श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्धो मे विभिन्न शैलियो का जो स्वरूप उपलब्ध होता है वह विविधता, कलात्मकता तथा प्रौढता से युक्त है ।

निबन्ध के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की उपलब्धियां

प्रस्तुत अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य का जो विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है वह हिन्दी निबन्ध की विकासात्मक पृष्ठभूमि मे उनकी उपलब्धियो का परिचय देने मे समर्थ है । 'जीवन यात्रा', 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास', 'समवेत' एव 'परिक्रमा' आदि निबन्ध सग्रह इस क्षेत्र मे लेखक की रचनात्मक प्रतिभा के द्योतक है। इन कृतियो मे सगृहीत विचारात्मक, आलोचनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक, सस्मरणात्मक तथा सामयिक विषयो पर लिखे गये निबन्ध लेखक की वैचारिक जागरूकता के द्योतक है । अनेक समकालीन समस्याओ पर विचार करते हुए लेखक ने वर्तमान जीवन और उसके विविध पक्षो का विवेचन विभिन्न दृष्टियो से किया है । एक ओर इनमे लेखक ने प्राचीन भारतीय जीवन के गौरवमय आदर्शो के अनुगमन पर बल दिया है तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन मे सतुलन की आवश्यकता बतलाई है । 'जीवन यात्रा' मे सगृहीत निबन्ध स्वावलम्बन, त्याग, बलिदान, सदाचार, आत्मविश्वास आदि सद्गुणो की प्रतिष्ठा करते है और इस विषय पर लिखे गये अन्य निबन्धो से सहज ही पृथक् किये जा सकते है । 'साहित्यिकी' मे सगृहीत निबन्ध वैचारिक, सस्मरणात्मक, भावात्मक तथा आलोचनात्मक कोटि के है । इनमे लेखक ने यदि एक ओर विश्व स्तर पर टाल्स्टाय जैसे मनुष्यो की रचनाओ का उदात्तपरक विवेचन किया है, तो दूसरी ओर 'ब्रजभाषा के माधुर्य विलास' जैसी रचनाओ मे सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टिकोण का परिचय दिया है। 'प्रवास' जैसे निबन्ध लेखक की भावात्मक दृष्टि और अभिव्यजनात्मक परिचय देने मे समर्थ है । 'युग और साहित्य' शीर्षक निबन्ध कृति मे लेखक ने साहित्यिक, सामाजिक, और राजनीतिक गति विधियो पर अपने विचार प्रकट किये है । द्वितीय विश्व युद्धकालीन रची गयी इस पुस्तक मे समकालीन विचारान्दोलनो का भी विवेचन है । लेखक का मन्तव्य है कि गाधीवाद तथा छायावाद की तुलना मे समाजवाद एक नवीन आर्थिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो तार्किक पुष्टता से भी युक्त है । लेखक की यह भी धारणा है कि स्वतन्त्रता सग्राम के समय राष्ट्रीय भावना का विरोध करने वालो के मध्य आर्थिक स्वार्थ की भावना प्रबल थी । आधुनिक हिन्दी कविता के विषय मे लेखक ने अपने इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया कि सन् १९४० के उपरान्त छाया-

---

१. 'आधान', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९७-९८ ।

वाद के अभ्यन्तर से ही समाजवाद का उद्‌भव हुआ। 'कथा साहित्य का जीवन पृष्ठ' जैसे निबन्धो मे लेखक ने आधुनिक युग के गद्य साहित्य के विकास की पूर्व पीठिका मे सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक वातावरण का योग स्पष्ट किया है। 'सामयिकी' मे सगृहीत निबन्धो मे सस्कृति और प्रगति का समन्वित रूप प्रस्तुत करते है। इन निबन्धो मे समग्र भारतीय साहित्य की आत्मा का निदर्शन है। 'धरातल' मे सगृहीत निबन्धात्मक रचनाएं गाधीवाद के मूलभूत तत्वो, सेवा, सत्याग्रह, अहिंसा और सर्वोदय, के जीवनदर्शन की व्यावहारिक गरिमा पर बल देती है। लेखक की धारणा है कि आधुनिक यान्त्रिक जीवन की अधिकाश समस्या का निदान गाधीवाद मे है। 'साकल्य' मे सगृहीत निबन्ध मुख्यत साहित्य, समाज और सस्कृति से सम्बन्धित है। इनमे लेखक ने भाषा समस्या पर भी विचार व्यक्त किये है। 'पद्‌मनाभिका' मे सगृहीत निबन्धो मे भी व्यापक दृष्टिकोण से लेखक ने प्राचीनता और नवीनता के समन्वय का निरूपण करने के साथ-साथ साहित्य क्षेत्रीय विविध विषयो का विवेचन किया है। 'आधान' के निबन्धो मे जीवन मे साहित्य, कला और सस्कृति की स्थापना का दृष्टिकोण है। 'वृन्त और विकास' मे साहित्य, सस्कृति और कला की विकासात्मक पृष्ठभूमि मे विभिन्न रचनाएँ सगृहीत की गयी है। 'समवेत' मे इन विषयो के साथ-साथ आधुनिक जीवन की एक प्रमुख आवश्यकता अर्थात् औद्योगिकता के सामजस्य पर भी बल दिया गया है। इस रूप मे यह निबन्ध कृतिया जहा एक ओर श्री शातिप्रिय द्विवेदी की विचारधारा और जीवन दर्शन की सुस्पष्टता का द्योतन करती है वहा दूसरी ओर उनके चिन्तन क्षेत्र की व्यापकता और विषयगत विविधता का भी परिचय देने मे समर्थ है। जहा तक निबन्ध के सैद्धान्तिक स्वरूप और तात्विक कलापूर्णता का सम्बन्ध है द्विवेदी जी के निबन्ध उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की प्रखरता का ही आभास देते हैं। अपने अनेक निबन्धो मे द्विवेदी जी ने विभिन्न सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक समीक्षा सिद्धान्तो पर भी अपना मत व्यक्त किया है, जिसका उल्लेख द्वितीय अध्याय मे किया जा चुका है। उन्होने विचारात्मक, आलोचनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक, सस्मरणात्मक तथा सामयिक निबन्धो की समकालीन प्रवृत्तियो के विकास मे भी योगदान दिया है। सैद्धान्तिक तत्वो के सम्यक् निर्वाह के साथ द्विवेदी जी के निबन्धो मे अभिव्यक्तिगत मौलिकता का जो समन्वय मिलता है वह इस क्षेत्र मे उनकी विशिष्ट उपलब्धि का परिचायक है। जैसा कि पीछे सकेत किया गया है दर्शन, सस्कृति, परम्परानुगामिता, आधुनिकता, ज्ञान-विज्ञान, समाज शास्त्र, राजनीति, साहित्य, जीवन-मूल्य आदि का विविध पक्षीय विवेचन उन्होने किया है। साहित्यिक और राजनैतिक विचारान्दोलनो पर भी उन्होने जो निबन्ध लिखे है वे परिनिष्ठित अभिव्यजना तत्वो से युक्त है। द्विवेदी जी के निबन्धो की भाषा समकालीन प्रभावो से युक्त है और विषयानुरूप परिवर्तित होती रही है। रागात्मक, रूपात्मक, सश्लिष्ट, आलकारिक, भावात्मक, विचारात्मक, आलोचनात्मक, निर्णयात्मक, उद्‌बो-

धनात्मक, वर्णनात्मक और व्यंग्यात्मक शैलियो का प्रयोग विविधता, कलात्मकता एव शैलीगत प्रौढता का निदर्शक है। सक्षेप मे इस अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी की विभिन्न निबन्ध कृतियो के आधार पर उनकी रचनाओ का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक हिन्दी निबन्ध साहित्य के विकास मे विभिन्न प्रवृत्तियो के रूप मे उन्होने जो योग दिया है वह साहित्य की इस विधा के क्षेत्र मे उनकी देन और उपलब्धियो का परिचय देने मे समर्थ है।

शांतिप्रिय द्विवेदी का उपन्यास साहित्य

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के आलोचना तथा निबन्ध साहित्य का विश्लेषण इस प्रबन्ध के द्वितीय तथा तृतीय अध्याय मे किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय मे उनकी औपन्यासिक कृतियो का विवेचन किया जा रहा है। हिन्दी उपन्यास के इतिहास तथा समकालीन औपन्यासिक प्रवृत्तियो की पृष्ठभूमि मे यदि द्विवेदी जी के उपन्यासो का मूल्याकन किया जाय तो इस तथ्य की अवगति होगी कि द्विवेदी जी की तथाकथित औपन्यासिक कृतिया उपन्यास के प्रचलित स्वरूप और अर्थ से पर्याप्त भिन्नता रखती हैं। इन दोनो मे ही सिद्धान्त उपन्यास के तत्व अत्यन्त क्षीण रूप मे मिलते है। इसलिए इन्हे उपन्यास कहने का औचित्य लेखक के इनके सम्बन्ध मे दिये गये वक्तव्यो से ही अधिक सिद्ध होता है। शास्त्रीयता की दृष्टि से 'दिगम्बर', 'चारिका' तथा 'चित्र और चिन्तन' तीनो मे ही उपन्यास का जो स्वरूप उपलब्ध होता है वह मात्र एक औपन्यासिक रेखाकन ही है। इन तीनो उपन्यासो के आधार पर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की देन का मूल्याकन करने के पूर्व हिन्दी उपन्यास के विकास एव समकालीन प्रवृत्तियो का भी यहाँ पर सक्षिप्त परिचय देना असगत न होगा क्योकि उनकी पृष्ठभूमि मे इन उपन्यासो का प्रयोगात्मक महत्व भी आपेक्षिक रूप मे स्पष्ट हो सकेगा।

शांतिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियों का परिचय एव वर्गीकरण

[१] **'दिगम्बर'** हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र मे 'दिगम्बर' द्विवेदी जी की प्रथम एव प्रमुख रचना है। लेखक ने इसे उपन्यास न मान कर केवल उसका रेखाकन मात्र माना है।[१] 'दिगम्बर' उपन्यास २९ अध्यायो मे विभक्त है। यह औपन्यासिक कृति आत्मकथात्मक शैली मे लिखी गयी है। 'दिगम्बर' का नायक विमल है। उसे ही केन्द्र मान कर कथा का निर्माण किया गया है। कथानक की पृष्ठभूमि आधुनिक समाज की परिवर्तित और सघर्षपूर्ण परिस्थितियो पर आधारित है। कथा का प्रारम्भ नायक विमल के पडोस मे हुए एक अनमेल विवाह से होता है। एक ऐसी लडकी का विवाह जिसका गरीबी के कारण बचपन न खिल सका और न किशोरावस्था का ही ठीक से प्रस्फुटन हो सका एक धनवान व्यक्ति से हो

---

१ 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, 'प्राक्कथन', पृ० २।

जाता है। वधू विवाह के उपरान्त और भी श्रीहीन हो जाती है। विमल को अपने सयुक्त परिवार मे केवल अपनी वृद्धा दादी का ही स्नेह एव सरक्षण प्राप्त था अन्यथा वह भूखा-प्यासा ही रह जाता था। सिद्धि श्री काशी मे एक स्वस्तिमती बाल विधवा तपस्विनी तीर्थवास करती थी। वह वैष्णवी थी। हिंसा से उसे घृणा थी। वह तपस्विनी शिल्पिनी थी। उषा और सध्या की स्वर्णाभा मे वह साडी के किनारे पर टाके जाने वाले गोटे की बुनाई कर के स्वावलम्बिनी बन गई थी, जिसने उसे निर्भय बना दिया था। एक दिन विमल भी उसके आश्रम मे पहुँच कर दीदी कह कर पुकार उठा, जिसमे ममता का विकल कठ था। उसने विमल को भी आत्मसात कर लिया। अब विमल को अपनी वात्सल्यमयी मा मिल गई थी, जो उस बालक के साथ लाड-दुलार कर अपना सूनापन हर लेना चाहती थी। धीरे-धीरे विमल ने पढना शुरू किया। वह मेधावी छात्र था लेकिन शरीर से निर्बल। वह किशोरावस्था तक पहुँच भी न पाया था कि उसने पढने से अवकाश ग्रहण कर लिया। और एक दिन वह वैष्णवी को भी त्याग कर, उसे मर्माहत कर घर से चला गया। अब विमल इधर-उधर निरुद्देश्य घूमने लगा। लेकिन यह परावलम्बी जीवन भी उसे अधिक पसन्द नही आया। अपनी थोडी-सी विद्या के कारण वह सभ्य और पढे-लिखे समाज के ससर्ग मे भी आने लगा परन्तु किसी से भी उसे परामर्श एव अपने मन का समाधान न मिला। इधर कुछ समय से विमल को साहित्य से प्रेम हो गया था। विमल एक दिन एक विलायत से बैरिस्टरी पास हुए प्रतिष्ठित व्यक्ति से मिला, जो लडको-सा सरल और भीतर से गुरु गम्भीर नागरिक थे। और इस प्रकार विमल अपने बाल्य सस्कारो मे प्रकृति की स्वाभाविकता, रसाल की सरसता, पिता की परिव्राजकता, वैष्णवी की सात्विकता लेकर अनिश्चित भविष्य की ओर चलता गया।

इधर-उधर भटकने के पश्चात् विमल एक वैद्य के यहाँ रहने लगा और उसके बदले मे वह उनका छोटा-मोटा काम कर दिया करता। लेकिन एक दिन कुछ देर से घर लौटने पर वह मार खा गया और घर से निकाल दिया गया। विमल ने अपना नाम राष्ट्रीय विद्यालय मे लिखा लिया और चर्खा कर्घा चलाना सीखने लगा, परन्तु वहा भी उसका चित्त न रम सका। अब विमल किशोरावस्था को पार कर रहा था। उसे अपने से छोटी लडकिया आकर्षित करती, उसमे भी काम चेतना जाग्रत हो रही थी। एक दिन एक धनाढ्य बाल्यावस्था को पार करती हुई लडकी के साथ उसका ससर्ग हुआ एव अपनी अबोधता के कारण उसके पिता से उसे बहुत ही प्रताडना मिली। शहर मे वह छापेखाने से भी परिचित हो गया, परन्तु उसकी बुद्धि व्यवसायी न थी। फिर वह रोजी के लिए एक शहर से दूसरे शहर मे घूमने लगा। अब वह एक महाशय के यहा पर जम गया, जो प्रौढावस्था को पार कर रहे थे और कला के पारखी थे। यहाँ वह कभी-कभी बीमार रहने लगा। इसी बीच नगर के एक अन्य साहित्यकार से भी विमल का परिचय हुआ, जो बहुत मिलनसार थे और हमेशा अपनी धाक

बनाए रखते थे और जिन्होने विमल को भग और देसी शराब का स्वाद करा दिया था। कभी-कभी वह बन्धन से मुक्त होकर भ्रमण के लिए भी चल देता था। ऐसे ही विचरण करते हुए उसका परिचय कलाविद् से हो गया, जो सुरुचि और सौन्दर्य का साकार स्वरूप था। उसका नाम इन्दुमोहन था। विमल को अब तक चारो ओर से उपेक्षा ही मिली थी, लेकिन यमुना उससे सहानुभूति रखती थी। यमुना मे मानवीय सवेदना थी। यमुना के सगीत मे उसे एक और व्यथित कठ सुनाई देने लगता और वह वैष्णवी के लिए तडप उठा। गगा तट पर श्रावणी मेले के दिन उसने अपनी वैष्णवी दीदी, मा को ढूढ लिया और उसके चरणो मे गिर पडा। विमल अब तक मन से वैष्णवी के समीप रह कर भी उससे उतनी ही दूर था। उसे अपने तन बदन, असन वसन की सुध न रह गयी। वह अपनी भावनाओ, विचारो और कल्पनाओ मे समाधिस्थ होकर लिखता ही रहता। दोनो का जीवन अभावो से जर्जरित हो चुका था। इसके अतिरिक्त जप-तप, पूजा पाठ और निराहार व्रत ने वैष्णवी को और भी अधिक कोमल कृश शरीर कर दिया था। एक दिन वह यज्ञ की ज्वाला-सी धधक कर शान्त हो गयी। वैष्णवी का वियोग अब विमल का चिरन्तन क्रन्दन हो गया। अब वैष्णवी की स्मृति ही विमल की जीवन शक्ति बन गयी। विमल मे कवि वेदना तो थी ही, अब वैष्णवी की विश्व वेदना से वह और अधिक सवेदनशील हो गया। वह चाहता था कि पुन इधन-उधर स्वच्छद घूमा करे परन्तु वैष्णवी ने उसमे पारिवारिक सस्कार जगा दिया था, वही उसके लिए लोक-बन्धन हो गया। अब वह एक अन्य परिवार मे रहने लगा। अपनी रुचि स्वभाव और भाव के अनुरूप वातावरण न मिलने पर भी प्रतिकूल परिस्थितियो मे विमल साहित्य ज्योति की साधना आराधना करने लगा। अब विमल सौन्दर्य को देख कर आत्म विस्मृत नही होता, क्योकि जिस सौन्दर्य मे आत्मा होगी वह अनायास ही आत्मसात् हो जायगा। यद्यपि कभी-कभी उसे अकेलापन सा महसूस होता, उसे भी प्रेरणा के लिए किसी रागवती की आवश्यकता महसूस होती। लेकिन वह केवल कल्पना लोक मे ही विचरण करता। अपने सस्कार के वशीभूत हो वह एक दिन देहात की ओर गगास्नान करने गया और वहा से देहात के रास्ते ही अपने आवास की दिशा में चल पडा। इस प्रकार 'दिगम्बर' उपन्यास मे विमल और वैष्णवी का सघर्षपूर्ण जीवन, उनकी दयनीयता और चारित्रिक परिणति का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है।

[२] 'चारिका' · औपन्यासिक रचना के क्रम मे दूसरी कडी के रूप मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी लिखित 'चारिका' शीर्षक रचना का उल्लेख किया जा सकता है। यह उपन्यास भगवान बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा पर आधारित है। लेखक ने इसे आख्यानिका नाम दिया है, जो प्राचीन शास्त्रीय कथात्मक विधा है, जिसका स्वरूप आधुनिक उपन्यास से पर्याप्त साम्य रखता है। समस्त कथा का विभाजन सोलह अध्यायो मे हुआ है। धर्म चक्र प्रवर्त्तन, युग दर्शन, अन्तर्निवेश, अनुसन्धान, प्रबोधन, पथ निर्देश,

समर्पण, सान्त्वना, वात्सल्य, परितोष, सम्मिलन, उत्सर्ग, लोकमाता, हृदय परिवर्तन, विसर्जन तथा प्रस्थान शीर्षको के अन्तर्गत इस रचना का कथा विकास हुआ है। कथा का प्रारम्भ भगवान बुद्ध के सम्बोधि प्राप्ति से होता है। इसके बाद भगवान बुद्ध एकान्त समाधि से उठ कर इस विकल सृष्टि की शाति के लिए लोक भूमि मे आते है। अपने अन्तश्चक्षुओ से वे अपने उन पाँच साथियो को देखते है, जो उन्हे तपोभ्रष्ट समझ कर त्याग गये थे। तथागत भगवान बुद्ध अपने धर्मचक्र प्रवर्त्तन के लिए पुन उनसे मिलने के हेतु सारनाथ की ओर आते है। भगवान बुद्ध के दर्शन कर तथा वार्तालाप के पश्चात् अपने मन के सशयो का पूर्णत निराकरण करके वह भी आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेते है। कालान्तर मे यही पचवर्गीय भिक्षु कौडिय, महानाम, भद्रक, वासव और अश्वजित् के नाम से विश्व प्रसिद्ध होते हैं।

युग दर्शन मे तथागत को समस्त सृष्टि मे एकता का आभास मिलता है। समस्त सृष्टि मे मनुष्य, पेड-पत्ते, पृथ्वी, आकाश, समस्त चराचर एक प्राण, एक कठ और एक हृदय है। सबमे एक अलौकिक शक्ति विद्यमान है। अपने वर्तमान समय मे तथागत ने जिस धर्म चक्र का प्रवर्तन किया वह केवल मनुष्यो तक ही सीमित न रहे, समस्त हिंसक जन्तु भी उसे शिरोधार्य करे। यही उनकी आकाक्षा थी। यह कैसे सम्भव हो, यही उनके चिन्तन मनन का विषय था। कौडिय और तथागत वार्तालाप करते हुए अपने आवास मे पहुँच जाते है, तभी एक आकुल व्याकुल पथिक उनकी शरण मे आकर चरणो मे गिर पडता है। तथागत उस सर्वसुख सपन्न तरुण की विभिन्न आशकाओ एव जिज्ञासाओ का शातिपूर्वक वार्तालाप द्वारा पूर्ण निराकरण करके उसे भी भिक्षु बना लेते है। इधर तरुण युवक यश के अपने महल से चले आने पर वहा उसकी माता एव कुलवधू क्रन्दन करने लगती है। नगर के बाहर उनके स्वर्ण पादिका के चिन्ह के आधार पर महाश्रेष्ठि अकेले ही उन पद चिन्हो का अनुसरण करते हुए सारनाथ की ओर बढने लगे। तथागत के शातिनिवास मे पहुँच कर उनके सन्तप्त चित्त को कुछ शाति मिलती है। यहा तथागत की कृपा से महाश्रेष्ठि का भी रूपान्तर हो जाता है। महाश्रेष्ठि मायामोह से अनावृत्ति दृष्टि से उन लोगो मे यश को सशरीर बैठे देखता है परन्तु अब उसकी इन्द्रिया ज्योतिर्मयी हो जाती है। अन्त मे श्रेष्ठि भी परिव्राजक के चरणो मे प्रणत होकर उन्ही की शरण मे आ जाता है। इसके साथ ही उन्हे दूसरे दिन अपने यहाँ भोजन पर आमन्त्रित करता है। दूसरे दिन तथागत एव उनके शरणागत महाश्रेष्ठि के महल मे पधारते हैं जहाँ तथागत ने मा और पुत्र-वधू को धर्म चक्षु दिए, वास्तविक धर्म से अवगत कराया। इसके उपरान्त उन्हे समझाया कि स्वार्थ से अलग होकर प्राणी मात्र मे अपने पराये का भेद भाव नही रह जाता और यही आत्मबोध जीवनबोध हो जाता है।

तथागत ने सोचा कि चैतन्य को हमेशा गतिशील होना चाहिए नही तो वह एकान्त स्वार्थ से जड हो जायेगा। अत तथागत ने प्रत्येक को अलग-अलग दिशा मे

अन्य दुखी सासारिक मनुष्यो की मुक्ति के लिए, बहुजन हिताय, मनुष्यो और देवताओ के कल्याण के लिए विचरण करने की आज्ञा दी। इस प्रकार उन्मुक्त चित्त से शास्त्र आदेश निर्देश कर एव स्वयसेवको को विविध दिशाओ मे भेज कर स्वय बुद्ध भी गया की ओर चले गये। उरुबेला जा कर परिव्राजक ने वरिष्ठ तपस्वियो और आश्रमवासियो को अपना बोधित्व प्रदान किया। उरुबेल काश्यप और मगधराज बिम्बसार भी महाश्रमण के चरणो मे उपस्थित होकर सम्बोधि का सार ग्रहण कर उनके उपासक हो जाते है। तथागत के आयुष्मान शिष्य अश्वजित् को देख कर महन्त सजय के दो प्रमुख शिष्य सारिपुत्र और मोद्गल्यायन भी तथागत के अनुयायी हो जाते है। 'सान्त्वना' मे सिद्धार्थ के प्रत्यागमन पर यशोधरा का विलाप एव उसकी गति-यति का चित्रण है। यशोधरा अपने अतीत मे विचरण करती हुई मधुर सुखद क्षणो को स्मरण करती है। 'वात्सल्य' मे राहुल अपने क्रीडा कौतुक के द्वारा अपनी माता यशोधरा के साथ ही अपने पितामह और महाप्रजावती को भी प्रसन्नता प्रदान करता है जो सिद्धार्थ गमन से अत्यन्त ही विक्षुब्ध है। 'परितोष' मे यशोधरा उडते पक्षियो से अपने प्रिय के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त करते हुए अपना सन्देश उस तक पहुँचाने का अनुनय करती है। इतने मे खिडकी से कपोत आकर बोल उठता है और उसका वाम नेत्र भी फडक उठता है अर्थात् शुभ लक्षण उत्पन्न होने लगते है। उसी समय दासी आकर यह शुभ सम्वाद देती है कि त्रपुष और मल्लिक नामक दो बडे व्यापारियो ने आर्यपुत्र सिद्धार्थ को देखा है। वे बोधिसत्व लाभ प्राप्त कर बुद्ध हो गये हैं और परिभ्रमण करते हुए सबको मगल प्रसाद दे रहे है। राजा शुद्धोधन ने अपना पत्र दे कर नव तरुण सामन्तो को सिद्धार्थ के पास भेजा जिसमे उन्हे कपिलवस्तु मे आगमन के लिए लिखा था। वे सामन्त वेणुवन मे पहुँच कर एव तथागत के प्रवचन को सुनकर आत्मविस्मृत हो गये और प्रव्रज्यित होकर सघ मे सम्मिलित हो गये। इसी प्रकार जितने भी सन्देश वाहको को राजा ने भेजा वह सभी तथागत के सघ मे सम्मिलित हो गये। अब राजा ने सिद्धार्थ के समवयस्क सचिव कालउदायी को सन्देशवाहक के रूप मे भेजा। वह भी तथागत के प्रवचन से प्रभावित होकर प्रव्रज्यित हो गया। परन्तु उसे अपना कार्य याद था अत उचित अवसर पा कर यात्रा के लिए तथागत को उत्साहित किया, और अन्त मे निवेदन किया कि राजा शुद्धोधन तथागत के दर्शनो के लिए अत्यन्त व्याकुल हैं। अत तथागत ने अपने भिक्षु सघ से यात्रा के लिए प्रस्तुत होने का आदेश दिया। तथागत राजप्रसाद मे गए, जहाँ उनकी शख नाद एव पुष्पो से अभ्यर्थना की गई। तथागत ने वहाँ पर अपने माता-पिता के सशयो का निराकरण करके यशोधरा के सन्तप्त हृदय को शान्ति प्रदान किया। राजप्रासाद से चलते समय राहुल तथा अन्य कुमारो को भी तथागत ने यशोधरा के अनुरोध पर प्रव्रज्या प्रदान किया।

कपिलवस्तु से तथागत पुन. राजगृह मे आए। श्रावस्ती का गृहपति अनाथ

पिडक भी इन्ही दिनो यही पर था। वह तथागत से मिलने गया। पिडक के कहने पर तथागत ने उसके कर्तव्य का उसे बोध कराया कि लोक कल्याण के लिए तू मुक्त हस्त से दान कर, दान देना निर्वाण को क्रियान्वित करना है, धन देना ही दान नही है, मैत्री करुणा सेवा श्रद्धा आदि भी हार्दिक दान है। इस उपदेश को ग्रहण करके अनाथ पिडक ने उन्हे श्रावस्ती मे पधारने के लिए आमन्त्रित किया जिसे उन्होने मौन वाणी से स्वीकार किया। श्रावस्ती मे कौशल नरेश प्रसेनजित् और राजकुमार जेतकुमार भी तथागत के आदेश उपदेश एव प्रवचन से अनुगृहीत हुए।

'हृदय परिवर्तन' मे श्रावस्ती के वन्यप्रान्त मे निवास करने वाले नरपशु अगुलिमाल के हृदय परिवर्तन की कथा है। अपनी किशोरावस्था मे वह तक्षशिला के गुरुकुल का सुशील छात्र था। उसका नाम मानवक था। वह आचारवान, आज्ञाकारी, प्रियभाषी एव प्रतिभाशाली युवक था जिससे अन्य सहपाठी उससे ईर्ष्या करते थे। आचार्य एव आचार्यायणी दोनो ही उसे पुत्र सदृश स्नेह करते थे लेकिन आचार्य के अन्य समस्त शिष्यो ने मिल कर आचार्य के मन मे सन्देह का बीच बो दिया। आचार्य ने गुरुदक्षिणा के रूप मे सहस्त्र नर-नारियो को मार कर साहस का परिचय देने की आज्ञा दी। फलत वह अब नर पशु बन गया था जो तथागत के दर्शन लाभ प्राप्त करके पुन अपने सरल एव सुशील रूप मे आ गया था।

'विसर्जन' मे वैशाली की जनपद कल्याणी आम्रपाली की जन्य कथा के साथ ही उसके प्रौढावस्था मे तथागत से उपसम्पदा एव प्रव्रज्या ग्रहण करने की कथा है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यास 'वैशाली की नगर वधू' का साराश 'विसर्जन' मे दिया गया है परन्तु कथावस्तु मे कही-कही भिन्नता अवश्य है। 'प्रस्थान' मे तथागत के कुशी नगर मे महाप्रणायण की कथा है। वैशाली से प्रस्थान करते हुए बुद्ध अत्यन्त स्मृति विह्वल हो गये थे। उन्हे विदित हो गया था कि अब वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो रहे है। उनका मन अपने अरण्य आवासो को स्मरण कर अभिभूत हो गया था। महापरिनिर्वाण के पथ पर चलने से पूर्व उन्होने भिक्षुओ को सन्देश दिये। कथा का अन्त इन्ही सन्देशो से हो जाता है। इस प्रकार से, प्रस्तुत औपन्यासिक कृति को न केवल शिल्प की दृष्टि से वरन् वस्तु-तत्व की दृष्टि से भी विशिष्ट कोटि मे रखा जाना चाहिए क्योकि जहाँ एक ओर शिल्प रूप की नवीनता की दृष्टि से यह एक विलक्षण कृति है वहाँ दूसरी ओर दार्शनिक आध्यात्मिक तत्वो से बोझिल कथावस्तु के कारण भी यह कृति महत्वपूर्ण है। इसी अध्याय मे आगे चल कर शास्त्रीय उपकरणो तथा अन्य तत्वो के आधार पर इस उपन्यास का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा।

[३] **'चित्र और चिन्तन'** औपन्यासिक रचना क्रम मे तृतीय एव अन्तिम कडी के रूप मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी लिखित 'चित्र और चिन्तन' शीर्षक कृति उल्लेखनीय है। यह रचना लेखक ने लोक-निरीक्षण और युग-विश्लेषण के रूप मे

लिखी है। इसीलिए इसके विभिन्न अध्याय यद्यपि औपन्यासिक अध्यायो से भिन्न निबन्धात्मक स्वरूप के द्योतक हैं परन्तु उनका आयोजन एव गृन्थन इस कृति मे उपन्यास के ही रूप मे किया गया है। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि इस कृति मे विभिन्न शब्द-चित्र औपन्यासिक आवरण मे प्रस्तुत किये गये हैं। यह चित्र मुख्यत जीवन के दैनिक अनुभवो एव सामयिक परिस्थितियो तथा समस्याओ से सम्बन्धित चिन्तन के रूप मे प्रस्तुत किये गये है। इनमे लेखक ने समाज के नव-निर्माण की योजना पर विचार किया है। इनकी सर्वप्रमुख विशेषता इनमे निहित वह सप्राणता है जो इस कृति के औपन्यासिक स्वरूप का बोध कराती है। लेखक की पूर्व उल्लिखित औपन्यासिक रचना 'दिगम्बर' से इस उपन्यास का रचना विन्यास पर्याप्त साम्य रखता है। पुस्तक मे 'दो शब्द' के अन्तर्गत लेखक ने स्वय इस तथ्य की ओर सकेत किया है 'उपन्यास न होते हुए भी निबन्धो के रूप मे पुस्तक का क्रम विन्यास उपन्यास जैसा है। इसमे व्यक्ति, उसका परिवेश, उसका युग, उसका रचनात्मक चिन्तन है। 'दिगम्बर' मे लेखक का अन्तरग विमल था, इस पुस्तक मे कमल है। दोनो एक ही हैं। ··आशा है पुस्तक पाठको को अपनी रुचिरता से रुचेगी और अपने मूलभूत विचारो से युग-युग के जीवन के देखने समझने के लिए एक अदृश स्वाभाविक दृष्टि प्रदान करेगी।'[१]

आधुनिक युग मे बुद्धिवादी सस्कृति का जो विकास हो रहा है, उसके फल-स्वरूप जीवन मे अनेक प्रकार की व्यावहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयी है। व्यक्तिवाद और समाजवाद का सघर्ष ही मुख्यत शेष रह गया है। पूर्व युगीन साम्राज्यवादी विचार धाराएँ अब पूर्ण रूपेण समाप्त हो चुकी है। भारत ऐसे जन-सख्या प्रधान देश मे यान्त्रिक आधार पर औद्योगिक उन्नति की तुलना मे खादी तथा अन्य हस्त कलाओ के विकास को लेखक ने न केवल एक नैसर्गिक साधना के रूप मे मान्यता दी है वरन् एक सार्वभौम समस्या के रूप मे भी उसे स्वीकार किया है। इस सन्दर्भ मे यह उल्लेख करना अप्रासगिक न होगा कि लेखक ने गाधीवादी जीवन-दर्शन का सैद्धान्तिक समर्थन करते हुए उसका व्यावहारिक आरोपण भी अपनी इस कृति मे किया है, और अहिंसा तथा नि शस्त्रीकरण की भाति खादी आन्दोलन को भी सामाजिक स्वावलम्बन की दिशा मे एक राष्ट्रीय साधना के रूप मे मान्य किया है। 'चित्र और चिन्तन' एक ऐसी औपन्यासिक रचना है, जिसमे लेखक ने लोक जीवन का निरीक्षण कर उसे एक चित्र के रूप मे अकित किया है। इसके साथ ही अपने युग का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए मानव जीवन की समस्याओ एव उनकी परिस्थितियो का चिंतनपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अत. इसमे व्यक्ति, उसका परिवेश, उसका युग एव उसका रचनात्मक चिन्तन है। सम्पूर्ण कथा का

---

१. 'चित्र और चिन्तन', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, 'दो शब्द', पृ० १।

विभाजन अट्ठारह अध्यायो मे हुआ है। भूख और हूक, काफी हाउस की बातचीत, व्यवधान, विडम्बना, अन्तर्मिलन, निर्लिप्त, वातावरण, तीर्थ स्मृति, पश्चाताप, विद्रुप, व्यक्ति और युग, शेष चिह्न, खादी . एक सार्वभौम समस्या, खादी एक नैसर्गिक साधना, लक्ष्मी की प्रतिष्ठापना, विज्ञान और अध्यात्म, युग और जीवन तथा भविष्य की चिंता शीर्षको के अन्तर्गत इस औपन्यासिक कथा का पूर्ण विकास हुआ है।

इस औपन्यासिक कृति का नायक कमल है जो गाव की शस्यश्यामला भूमि पर उत्पन्न हुआ था। जीवन मे चारो ओर हरियाली ही हरियाली थी। वह भी एक परिवार का सदस्य था लेकिन नियति के क्रूर कठोर हाथो ने एक-एक करके सबको बुला लिया। अब कमल बेचारा नितान्त अकेला रह गया। वह इतना आत्म-लीन था कि वाह्य ससार का विषाक्त वह अनुभव ही न कर सका। मन के स्वप्नो को पृथ्वी पर देखने के लिए ज्यो ही उसने दृष्टि उठाई, वह अवाक् रह गया। स्वार्थ मे मनुष्य सवेदनशील न होकर उससे शून्य हो गया है। लोग रूढिवादिता मे अधे बन गये हैं। ससार केवल बाजार बन गया है और जीवन का भी मोल-तोल होता है। कमल कलाकार था वह अपनी कला मे इतना समाधिस्थ हो गया कि उसे अग जग का कुछ भी ध्यान न रहा। परन्तु उसका शारीरिक अस्तित्व तो था, उसे भी भूख लगती थी, प्यास लगती थी। मानसिक तृप्ति तो कला से हो जाती थी परन्तु शारीरिक तृप्ति के लिए किसी साधन की आवश्यकता थी। सासारिक दृष्टि से मन्द बुद्धि कमल किस प्रकार अपनी शारीरिक भूख को मिटा सकता ? कला के सदृश ही उसे कहाँ ससार मे सुरुचि पूर्ण वातावरण मिलता ? अतः कमल भोजन मे स्वास्थ्य एव सस्कृति का सौष्ठव पाने के लिए इधर-उधर भटकता रहता है। किसी प्रकार भोजन का प्रबन्ध हो जाने पर भी उसके हृदय की हूक, रति के लिए किसी रसवन्ती का अभाव उसे अब भी अखरता। काफी हाउस जहाँ विविध वर्ग के मनुष्य अपनी विभिन्न विचारधाराओ को स्पष्ट करते है और केवल अपना ही मत स्वीकार करते हैं, दूसरो के विचारो की वह परवाह भी नही करते। सब आपस मे फूहड हसी मजाक करते। काफी हाउस मे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी समस्याओ पर वार्तालाप होता है और यह वार्तालाप अथवा वाद-विवाद राजनैतिक स्तर से धीरे-धीरे खिसक कर सौन्दर्य कला पर और उसके बाद अश्लील सौन्दर्य पर आ जाता है। लोग दूसरो के विचारो को सुन कर उसकी हँसी उडाते है। कमल भी किसी कमलिनी से एकाकार हो जाना चाहता था लेकिन उसके पास केवल सूक्ष्म प्रतिभा थी, सासारिक स्थूल सम्पदा नही। उसके मार्ग मे हमेशा साम्य-वाद, पूजीवाद या रूढिवाद के कुटिल और जटिल अवरोध उपस्थित हो जाते थे। किसी रागिनी के न मिलने से वह अकेला निःसहाय वीतराग हो गया। अभावग्रस्त मनुष्य जिधर भी जरा सी सहानुभूति पाता है, आत्मीयता अनुभव करता है वह उधर ही झुक जाता है, ललक पड़ता है उसे आत्मसात् करने के लिए। यही हाल

कमल का भी था, जो उसे प्रिय होता उसे ही वह अपना लेना चाहता। एक बालिका कुमुदिनी से भी उसका परिचय किसी प्रकार हो गया। वह अपनी मौसी के साथ रहती थी। उन लोगो के पानी की समस्या तो कमल ने अपने यहाँ के नल से दूर कर दी थी परन्तु अब घर की समस्या उठ खडी हुई थी। किराये का मामला अदालत मे गया और जमानत के लिए कुमुदिनी को दाव पर लगा दिया गया। कमल का उससे फिर साक्षात्कार न हो सका। राह मे आते-जाते उसका परिचय एक स्पेनिश युवती से हो गया। वह युवती होते हुए भी बालिका सी जान पडती थी। विदेशिनी होते हुए भी आकार प्रकार, रूप रग मे वह भारतीय बालिका लगती थी। भाषा की अडचन के कारण बातचीत न होने पर भी हृदय की मौन भाषा मे सभी भावात्मक प्राणियो का तादात्म्य हो जाता है। क्षण भर मे सवेदना से आत्मैक्य हो जाता है।

आज ससार की घनी आबादी मे प्रत्येक व्यक्ति अकेला पड गया है। व्यक्ति का पशुत्व ही सब कुछ हो गया है। जीवन मे आनन्द न मिलने पर लोग आत्महत्या कर लेते हैं, अथवा नशा करना आरम्भ कर देते है। आज मनुष्य अपने ही स्वार्थो मे लिप्त है। जब तक अर्थशास्त्र टकसाली सिक्को से आकी जायेगी, शासन से ही बाजार भाव निश्चित होगा तब तक मनुष्य सवेदनशील नही हो सकता। वह अपने स्वार्थ से अलग नही जा सकता। लेकिन कमल इन से अलग था—वह अतृप्त तो था लेकिन अर्थक्षुब्ध नही। कमल निद्रावस्था मे अपने अतीत मे विचरने लगता। उसकी वे ही बाल्य प्रवृत्तिया जीवन की सुषमा, सजलता, ज्योति बन कर कालान्तर मे कला और सस्कृति मे जीवन्त हो जाती। प्रकृति मे नव परिवर्तन देख कर जब कमल ससार के वातावरण पर दृष्टि डालता तो उस वस्तु जगत मे कही भी परिवर्तन नही होता, वह अपने विकृत रूप मे ही ससार मे विद्यमान रहता। कमल गली से लगी एक कुटिया मे रहता था। वह देवी देवताओ और मन्दिरो की श्रद्धा भक्ति से भी अनजान था। मा का सबल जब उसके लिए न रहा तो कमल की अग्रजा ने अपने पुण्य स्पर्श से कमल के बाल्यसस्कारो को प्रस्फुटित किया। वह बाल-विधवा आजन्म एकाकिनी कुमारी थी जो घर को भी मन्दिर बना देती थी। मन्दिरो को देख कर कमल को उसी की याद आ जाती। वह मन्दिरो के सामने प्रणत हो कर उसी को प्रणाम करता जो अब इस लोक मे नही थी। कमल ने अपनी डायरी मे जीवन की सबसे बडी भूल को स्वीकार किया है और उसके लिए वह पश्चाताप की अग्नि मे झुलस भी रहा है। वह भूल उसने बहन के साथ की थी। बहन की रुग्णावस्था मे वह उसे देहात से शहर मे ले आया। यहा भी सेवा शुश्रुषा और चिकित्सा का अभाव सा ही था। बहन के मना करने पर भी वह उसे अस्पताल मे भर्ती करा आया जहा उन्होने दूसरे दिन ब्रह्ममुहूर्त मे नश्वर काया को त्याग दिया। बहन की मृत्यु से पूर्व वह ससार की विद्रुपता से परिचित न था। अब अपनी चीजे चोरी चले जाने पर भी कमल को ससार का अविश्वास नही था, वह सभी को दुष्ट प्रकृति का नही मानता

था। लेकिन अन्त मे उसका यह विश्वास भी हट जाता है। ससार के कटु अनुभव होनेपर भी वह अपने सहज सरल स्वभाव को बदल नही पाता है।

कमल आज आधुनिक युग मे विचरण कर रहा है जो किसी नवनिर्माण के अभाव मे अव्यवस्थित और अशान्त अन्धड की तरह चल रहा है। दूसरे महायुद्ध और औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् अब पूजीवाद भी पगु हो गया है, उसे पग-पग पर साम्यवाद का सामना करना पडता है। भारत की परतन्त्रता मे गाधी युग स्थूल रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ही सूक्ष्म चेतना लेकर अग्रसर हुआ था। स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् आज मनुष्यो का यह नैतिक पतन उस परतन्त्रता का ही दुष्परिणाम है जिसने अपनी दमन नीति से पराधीन पीडित मनुष्य के पशुत्व को भी दबा दिया था। वही अब पुन उभर आई है। कमल की धारणा है कि अणुबम और ससार के समस्त अस्त्र-शस्त्र नष्ट कर दिये जाने पर भी युद्ध होगा। इसका कारण जड अर्थशास्त्र है जिसने मनुष्य के विवेक को कुन्ठित कर दिया है। आज चारो ओर अकाल और अभावो का ही साम्राज्य है जो केवल स्थायी उपायो से दूर हो सकता है, और स्थायित्व के लिए अर्थशास्त्र को टकसाली सिक्को से और श्रम को यन्त्रो से मुक्त करना चाहिए। खादी के सूत्र मे गाधी जी का भी यही कर्म निर्देश था। एक युग के पश्चात् जब पुन कमल की स्वय पर दृष्टि गई तो उसने अनुभव किया कि अग्रजा का वात्सल्य अब केवल स्मृति मे ही रह गया है, जीवन मे उस स्नेह का अभाव है। अब वह सर्वथा बेसहारा है। अभी भी उसे किसी की माया-ममता और आत्मीयता की आवश्यकता है। उसे अपने भविष्य की चिन्ता है कि अन्तिम क्षणो मे कौन उसका सहारा बनेगा, किसका हाथ उसके मस्तक पर होगा। इस प्रकार से 'दिगम्बर', 'चारिका' तथा 'चित्र और चिन्तन' नामक उपन्यासो मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने मध्यवर्गीय भारतीय सामाजिक जीवन का ग्रामीण और नागरिक पृष्ठभूमि मे भावात्मक परन्तु यथार्थपरक चित्रण प्रस्तुत किया है।

उपन्यासकार द्विवेदी जी और हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओ की भाति ही उपन्यास का आविर्भाव भी उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश मे हुआ। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास श्रद्धाराम फुल्लौरी लिखित 'भाग्यवती' माना जाता है। कतिपय साहित्यिक इतिहासकारो का यह भी मत है कि लाला श्रीनिवास दास लिखित 'परीक्षा गुरु' हिन्दी का पहला उपन्यास है। इसमे से प्रथम की रचना सवत् १९३४ मे हुई थी। इसके पूर्व कथा साहित्य के क्षेत्र मे आधुनिक हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक स्वरूप का निदर्शन करने वाली एकमात्र रचना इशाअल्ला खा लिखित 'रानी केतकी की कहानी' शीर्षक से उपलब्ध होती है। लगभग एक शताब्दी मे विकसित होने वाली उपन्यास साहित्य की परम्परा को ऐतिहासिक क्रम से पाच भागो मे

विभाजित किया जा सकता है । इनमे से प्रथम विकास काल को भारतेन्दु युग, द्वितीय विकास काल को द्विवेदी युग, तृतीय विकास काल को प्रेमचन्द युग, चतुर्थ विकास काल को प्रेमचन्दोत्तर युग तथा पचम विकास काल को स्वातत्र्योत्तर काल के रूप मे माना जा सकता है । इन विविध युगो मे विकसित होने वाली प्रमुख औपन्यासिक प्रवृत्तियो की सक्षिप्त रूपरेखा यहा पर पृष्ठभूमि के रूप मे प्रस्तुत की जा रही है ।

[१] **भारतेन्दु युग** भारतेन्दु युग हिन्दी उपन्यास के इतिहास का प्रथम युग है । जैसा कि ऊपर सकेत किया गया है इस युग मे सर्वप्रथम 'भाग्यवती' तथा 'परीक्षा गुरु' शीर्षक उपन्यास समाज सुधार की प्रवृत्ति के द्योतक हैं । 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की एक मात्र औपन्यासिक रचना है । इसका प्रकाशन सन् १८८९ मे हुआ था । यह मराठी भाषा की एक रचना के आधार पर समकालीन कुरीतियो को ध्यान मे रख कर लिखी गयी थी । इसके लेखक ने उन कुरीतियो का विरोध कर स्त्री शिक्षा का समर्थन किया है । बाल कृष्ण भट्ट की उपन्यास साहित्य के क्षेत्र मे दो कृतिया 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान' उपलब्ध होती है । भारतेन्दु मडली के एक अन्य सदस्य जगमोहन सिंह की एक मात्र औपन्यासिक रचना 'श्यामा स्वप्न' है । इस उपन्यास की भाषा शैली की मुख्य विशेषता काव्यात्मकता और भावात्मकता है । हिन्दी के इस प्रथम विकास युगीन उपन्यास काल मे सर्वप्रसिद्ध उपन्यास लेखक बाबू देवकीनन्दन खत्री है । रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हे हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यासकार माना है ।[१] 'नरेन्द्र मोहनी' (दो भाग), 'कुसुम कुमारी' (चार भाग), 'काजर की कोठरी', 'वीरेन्द्र वीर', 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' आदि इनके प्रमुख उपन्यास है । इनके उपन्यास मुख्यत ऐय्यारी और तिलिस्म से सम्बन्धित विषयो पर आधारित हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के सम्बन्धी श्री राधाकृष्ण दास ने 'निस्सहाय हिन्दू' शीर्षक एक उपन्यास लिखा । इस उपन्यास मे प्रथम बार एक महत्व-पूर्ण सामाजिक समस्या को उठाया गया है । दो विभिन्न धर्मानुयायियो का एक पवित्र उद्देश्य के लिए अपने प्राणो का उत्सर्ग कर के साम्प्रदायिक वैमनस्य मे भी एकता पर बल दिया गया है जो एक सर्वथा नवीन दृष्टिकोण और भावना का परिचायक है । इनके अतिरिक्त हरिनारायण टडन लिखित 'चाचा का खून', गोकुलानन्द प्रसाद लिखित 'कमला', चुन्नीलाल खत्री लिखित 'जबर्दस्त की लाठी', राधाचरण गोस्वामी लिखित 'विधवा विपत्ति', रतननाथ शर्मा लिखित 'बिछुडी हुई दुलहिन', महावीर प्रसाद लिखित 'जयती', विश्वेश्वर प्रसाद वर्मा लिखित 'चन्द्रिका', अम्बिकादत्त व्यास लिखित 'आश्चर्य वृतान्त', शिवनाथ शर्मा लिखित 'चडूलदास', देवदत्त लिखित 'सच्चा मित्र', जैनेन्द्र किशोर लिखित 'कमलिनी', सत्यदेव लिखित 'आश्चर्य', कार्तिक प्रसाद खत्री लिखित 'जया', शिवशकर झा लिखित 'चन्द्रकला', जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

१. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

लिखित 'वसत मालती', तथा शिवनाथ शर्मा लिखित 'गदर का फूल या रूपवती', सरस्वती गुप्त लिखित 'राजकुमार' आदि उपन्यास हिन्दी साहित्य के प्रथम विकास युग के अन्तर्गत रखे जा सकते है। ये उपन्यास मुख्यत सामाजिक, तिलिस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा पौराणिक कथा प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व करते हैं।

[२] **द्विवेदी युग** हिन्दी उपन्यास का आविर्भाव और प्रारम्भिक विकास उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश मे हुआ। बीसवी शताब्दी के प्रथम दो दशको को हम नवीन उत्थान अथवा द्वितीय विकास युग के अन्तर्गत परिगणित कर सकते है। इस नवीन उत्थान काल मे भी प्रथम विकास काल की औपन्यासिक प्रवृत्तियो का प्रसार हुआ, अन्तर केवल इतना हुआ कि पहले के कल्पनात्मक तत्वो के स्थान पर यथार्थात्मक तत्वो का अधिक समावेश हुआ एव सामाजिकता की प्रवृत्ति मे भी विस्तार हुआ। तिलिस्मी और जासूसी प्रवृत्तिया भी इस युग मे यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आधारित मिलती हैं। इस युग के सर्वप्रमुख उपन्यासकार श्री गोपालराम गहमरी हैं। इनकी प्रारम्भिक कृतियो मे प्रमुखता 'चतुर चचला', 'भानुमती', 'नये बाबू' आदि है। इनके अतिरिक्त 'घटना घटाटोप', 'खूनी कौन है ?', 'जमुना का खून', 'जासूस की भूल', 'देवरानी जिठानी की कहानी', 'जासूस की चोरी', तथा 'दो बहिने' आदि भी उल्लेख्य हैं। इनके 'रहस्य विप्लव', 'जासूस की बुद्धि', 'भयकर भेद', 'हसा देवी' तथा 'गुमनाम चिट्ठी' आदि जासूसी उपन्यास विशेष रूप से लोकप्रिय हुए। श्री गोपालराम गहमरी ने उपन्यासो मे रोचकता के आधिक्य को दृष्टि मे रख कर तिलिस्मी तत्वो का समावेश किया। इसके साथ ही उनका दृष्टिकोण सुधारवादी आदर्शात्मक था। इनके सामाजिक उपन्यासो मे आदर्शवाद का आग्रह अधिक है। सामाजिक उपन्यासो मे समाज एव परिवार की विभिन्न समस्याओ का स्पर्श किया है। यह उनकी यथार्थवादी दृष्टि के परिचायक हैं तथा मनोवैज्ञानिक आधार पर लेखक ने सामाजिक समस्याओ का निराकरण करने का प्रयत्न किया है। सभी उपन्यासो की भाषा ग्रामीण शब्दो से युक्त मुहावरेदार एव अपनी स्वाभाविकता और अर्थपूर्णता से युक्त सामान्य वर्ग की है। इनके अतिरिक्त हिन्दी उपन्यास के इस द्वितीय उत्थान काल मे उमराव सिंह गुप्त लिखित 'आदर्श बहू', प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखित 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल', मेहता लज्जाराम शर्मा लिखित 'धूर्त रसिक लाल', 'कपटी मित्र', 'हिन्दू गृहस्थ', 'आदर्श दम्पति', तथा 'आदर्श हिन्दू' (तीन भाग), केदारनाथ शर्मा लिखित 'तारामती', गया प्रसाद लिखित 'दुनिया', देवकीनन्दन सिंह लिखित 'कौशल किशोर', गौरीदत्त लिखित 'गिरिजा', भगवानदास लिखित 'उर्दू बेगम', गगाप्रसाद गुप्त लिखित 'वीर पत्नी', 'कुमार सिंह सेनापति', 'पूना मे हलचल', 'हम्मीर', 'कुवरसिंह', 'कृष्ण कान्ता', देवराज लिखित 'कर्कशा सास', आदि उपन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस युग के दूसरे प्रमुख उपन्यासकार प० किशोरी लाल गोस्वामी की मौलिक औपन्यासिक कृतियो मे 'प्रेममयी',

'तारा'(तीन भाग), 'चपला' (चार भाग), 'कटे मूड की दो-दो बाते या तिलिस्मी शीशमहल', 'तरुण तपस्विनी या कुटीर वासिनी', 'इन्दुमती या वन विहगिनी', 'पुनर्जन्म या सौतिया डाह', 'रजिया बेगम', 'लीलावती', 'राजकुमारी', 'लवगलता', 'हृदय-हारिणी', 'हीरा बाई', 'लखनऊ की कब्र', 'कनक कुसुम', 'मल्लिका देवी', 'स्वर्गीय कुसुम', 'याकूती तख्ती', 'लावण्यमयी', 'जिन्दे की लाश' तथा 'मदन मोहन या माधवी माधव' आदि मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके उपन्यासो मे एक साथ ही प्रेम, सुधार-वादी दृष्टिकोण, घटना वैचित्र्य, आदर्शवाद, कल्पनाशीलता, ऐतिहासिकता, जासूसी आदि मिलती है। इसके अतिरिक्त इस युग की विभिन्न औपन्यासिक कृतियो मे अमृत लाल चक्रवर्ती का सामाजिक उपन्यास 'सती सुखदेवी', रक्षापाली का समस्यापरक मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'त्रियाचरित्र', जयन्ती प्रसाद उपाध्याय का ऐतिहासिक उपन्यास 'पृथ्वीराज चौहान', मथुराप्रसाद शर्मा का ऐतिहासिक उपन्यास 'नूरजहा बेगम वा जहागीर', लोच प्रसाद पाडेय की जासूसी औपन्यासिक कृति 'दो मित्र', अम्बिका प्रसाद गुप्त का रहस्यात्मक और रोमाचक उपन्यास 'सच्चा मित्र या जिन्दे की लाश', लाल जी सिंह का ऐतिहासिक उपन्यास 'वीर बाला' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भावनाप्रधान उपन्यासकारो मे ब्रजनन्दन सहाय का नाम उल्लेखनीय है, जिनकी मौलिक औपन्यासिक कृतियो मे 'राजेन्द्र मालती', 'अद्भुत प्रायश्चित', 'सौन्दर्योपासक', 'राधाकात', 'लाल चीन', 'विस्मृत सम्राट', 'विश्व-दर्शन' तथा 'अरण्यबाला' आदि हैं। इनके साथ ही इस युग के अन्य उपन्यासो मे जगमोहन विकसित लिखित 'मनुष्य बलिदान', रामप्रसाद सत्यपाल लिखित 'प्रेमलता', केदार नाथ लिखित 'तारामती', बलभद्र सिंह लिखित 'सौन्दर्य कुसुम', गोस्वामी ब्रजनाथ शर्मा लिखित 'असभ्य रमणी', ब्रजमोहन लाल लिखित 'चन्द्रवती', शकरलाल गुप्त लिखित 'प्रेम का फल', रामप्रसाद शर्मा लिखित 'चन्द्रमुखी', ब्रह्मदत्त लिखित 'किशोरी नरेन्द्र', शालिग्राम गुप्त लिखित 'आदर्श रमणी', रामनरेश त्रिपाठी लिखित 'मारवाडी और पिशाचनी', सूरजभान वैश्य लिखित 'कटा हुआ सिर', द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी लिखित 'सावित्री सत्यवान', जगन्नाथ मिश्र लिखित 'मधुप लतिका वा इश्क की आग', राधिका प्रसाद सिंह अखौरी लिखित 'मोहिनी', दुर्गा प्रसाद खत्री लिखित 'रक्त मडल', अवधनारायण लिखित 'विमाता', किशोरी लाल गुप्त लिखित 'राधा', मन्नन द्विवेदी गजपुरी लिखित 'रामलाल', मगलदत्त शर्मा बहुगुणा लिखित 'राजनैतिक षडयत्र', शिवसहाय चतुर्वेदी लिखित 'बैलून बिहारी', और रामचरित उपाध्याय लिखित 'देवी द्रौपदी' आदि उपन्यास इस द्वितीय विकास युग अथवा नवीन उत्थान के अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व करते है। हिन्दी उपन्यास के द्वितीय विकास युग मे मौलिक उपन्यासो के साथ ही अनूदित साहित्य के क्षेत्र मे भी गतिशीलता आई।

[३] **प्रेमचन्द युग** : हिन्दी उपन्यास साहित्य के तृतीय विकास युग मे प्रेमचन्द का आविर्भाव हुआ। उन्होने 'इसरारे मुहब्बत', 'रूठी रानी', 'श्यामा', 'प्रेमा' उपन्यासो

की उर्दू मे रचना की। हिन्दी मे इन्होने 'सेवा सदन', 'प्रतिज्ञा', 'निर्मला', 'कायाकल्प', 'रगभूमि', 'गबन', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' आदि उपन्यासो की रचना की, जिनका हिन्दी साहित्य मे ऐतिहासिक महत्व है। प्रेमचन्द के समय से हिन्दी उपन्यास मे मनोवैज्ञानिकता तथा यथार्थवाद आदि का आरम्भ हुआ। श्री देव नारायण द्विवेदी लिखित 'कर्तव्याघात', नरोत्तम व्यास लिखित 'पाप का परिणाम', रामचन्द्र शर्मा लिखित 'कलक', टीकाराम सदाशिव तिवारी लिखित 'पुण्यकुमारी', भगवानदीन पाठक लिखित 'सती सामर्थ्य', कमलदेव नारायण शर्मा लिखित 'युगल कुसुम' और रामनाथ पाडेय लिखित 'शैतानी लीला या सुनहरा साप' आदि उपन्यासो मे पूर्व युगीन कथा प्रवृत्तिया ही मिलती हैं। जयशकर प्रसाद ने यथार्थवादी आधारभूमि पर 'ककाल' की रचना की। 'तितली' मे भी लेखक का दृष्टिकोण यथार्थता की आधारभूमि पर है। इस युग के आदर्शवादी उपन्यासकारो मे विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' का नाम उल्लेखनीय है। इनके लिखे हुए 'मा', 'भिखारिणी' तथा 'सघर्ष' आदि उपन्यासो मे आदर्शपरक आधारभूमि पर यह सकेत किया गया है कि वास्तविक सन्तोष एव सुख धन और वैभव से नही अपितु सच्ची भावनाओ से होता है। हिन्दी उपन्यास साहित्य मे यथार्थपरक स्तर पर कथा रचना करने वालो मे पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके उपन्यास 'दिल्ली का दलाल', 'चन्द हसीनो के खतूत', 'बुधवा की बेटी', 'सरकार तुम्हारी आखो मे', 'जीजा जी' तथा 'शराबी' आदि है। इस युग के अन्य सामाजिक उपन्यासो मे रूपनारायण पाडेय लिखित 'तारा', जगमोहन वर्मा लिखित 'लोकवृत्ति', जयगोपाल लिखित 'उर्वशी', विश्वम्भर नाथ जिज्जा लिखित 'तुर्क तरुणी', 'प्रेम पूर्णिमा', दादू विनायक लाल लिखित 'चन्द्रभागा', गौरीशकर शुक्ल 'पथिक' लिखित 'रमणी रहस्य', विनोद शकर व्यास लिखित 'अशात', लक्ष्मी नारायण सुधाशु लिखित 'भ्रात प्रेम' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी ने अपने उपन्यासो मे जीवन के विविध पक्षो का चित्रण कर समाज की विभिन्न समस्याओ पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। इनके उपन्यास 'प्रेमपथ', 'अनाथ पत्नी', 'त्यागमयी', 'लालिमा', 'प्रेम निर्वाह', 'पिपासा', 'दो बहिनें', 'निमत्रण', 'गुप्त धन', 'चलते-चलते', 'पतवार', 'मनुष्य और देवता', 'धरती की सास', 'यथार्थ से आगे', 'विश्वास का बल', 'चन्दन और पानी', 'टूटते बन्धन' आदि हैं। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'अप्सरा', 'अलका', 'निरूपमा', 'प्रभावती', 'काले कारनामे', ,बिल्लेसुर बकरिहा', 'कुल्ली भाट', जी०पी० श्रीवास्तव लिखित 'लखोरी लाल', 'दिल जले की आत्मकथा', शिव-पूजन सहाय लिखित 'देहाती दुनिया', सियारामशरण गुप्त लिखित 'गोद', 'अन्तिम आकाक्षा', 'नारी', गोविन्द बल्लभ पत लिखित 'प्रतिमा', 'मदारी', 'जूनिया', 'अनुरा-गिनी', 'अभिताब', 'एक सूत्र', 'नूरजहा', 'मुक्ति के बन्धन,' 'चन्द्रकात', 'यामिनी', 'नौजवान', 'जल समाधि', 'पर्ण', 'मैत्रेय', 'फारगेट मी नाट', 'कागज की नाव', 'प्रगति की राह' आदि तृतीय विकास युग के अन्तर्गत उल्लिखित की जा सकने योग्य

कृतिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस काल मे प्रेमचन्द के आविर्भाव ने हिन्दी उपन्यास को नवीन मोड देकर उसमे विविध क्षेत्रीय विकास की आधारभूमि निर्मित की।

[४] **प्रेमचन्दोत्तर युग :** यद्यपि प्रेमचन्द के आविर्भाव काल मे हिन्दी उपन्यास के विकास की आधारभूमि प्रस्तुत हो चुकी थी तथापि प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य का विषय विस्तार अपेक्षाकृत अधिक हुआ। इस युग मे ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना के अतिरिक्त मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास और राजनैतिक विचार-धारा एव चेतना से पूर्ण उपन्यासो का प्रणयन हुआ। इस युग के लेखक किन्ही मुख्य प्रवृत्तियो के अन्दर सीमा बद्ध नही रहे अपितु उन्होने पूर्ववर्ती प्रवृत्तियो का भी अनु-गमन किया है। हिन्दी उपन्यास साहित्य के इस चतुर्थ विकास काल मे पूर्व युगीन ऐतिहासिक उपन्यासो की परम्परा को प्रशस्त करने वाले उपन्यासकारो मे सर्वप्रमुख डा० वृन्दावनलाल वर्मा है। इनके प्रमुख सामाजिक ऐतिहासिक उपन्यासो मे 'गढ कुन्डार', 'लगन', 'सगम', 'प्रत्यागत', 'कुन्डली चक्र', 'प्रेम की भेट', 'विराटा की पद्मिनी', 'मुसाहिबजू', 'कभी न कभी', 'झासी की रानी', 'कचनार', 'अचल मेरा कोई', 'माधव जी सिंधिया', 'टूटे काटे', 'मृगनयनी', 'सोना', 'अमरबेल', 'भुवन विक्रम' तथा 'अहिल्याबाई' आदि है। वर्मा जी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासो की कथा वस्तु के लिए मुख्य रूप से बुन्देलखड के इतिहास की विविध गाथाओ को ही चुना है। इस युग मे ऐतिहासिक तथा सामाजिक विषयो पर कथा रचना करने वाले दूसरे उपन्यास-कार आचार्य चतुरसेन शास्त्री है। इनके प्रमुख उपन्यासो मे 'प्लेग विभ्राट', 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास', 'खवास का व्याह अथवा पूर्णाहुति', 'अमर अभिलाषा अथवा बहते आसू', 'आत्मदाह', 'नीलमणि', 'वैशाली की नगरवधू', 'नरमेध', 'मन्दिर की नर्तकी अथवा देवागना', 'रक्त की प्यास', 'आलमगीर', 'सोमनाथ', 'धर्मपुत्र', 'गोली', 'सोना और खून', 'खग्रास', 'सह्याद्रि की चट्टाने', 'बिना चिराग का शहर', 'पत्थर युग के दो बुत' तथा 'मोती' आदि हैं। ऐतिहासिक उपन्यासो मे सास्कृतिक पक्ष को प्रधानता देकर महापडित राहुल साकृत्यायन ने इस युग मे कथा रचना की। इनकी रुचि विशेषत इतिहास, पुरातत्व, स्थापत्य, भाषा शास्त्र एव राजनीति मे थी। साहित्य रचना के क्षेत्र मे सन् १९२७ से इन्होने लेखन कार्य प्रारम्भ किया था और लगभग सवा सौ ग्रन्थ प्रकाशित किए। उनके प्रसिद्ध उपन्यासो मे 'जीने के लिए', 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न', 'विस्मृत यात्री' तथा 'शब्द सिंधु' आदि उल्लेख-नीय है। उपर्युक्त उपन्यास मुख्यत ऐतिहासिक सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिखे गए हैं। उपर्युक्त कृतियो के अतिरिक्त लक्ष्मी नारायण गर्दे लिखित 'नकली प्रोफेसर', गुरुदत्त लिखित 'अवतरण', 'आवरण', 'उमडती घटाएँ', 'एक और अनेक', 'कला', 'न्यायाधिकरण', 'पत्रलता', 'परिमल', 'परिवर्तन', 'पुष्यमित्र', 'प्रगतिशील', 'प्रवचना', 'प्रवृत्ति', 'वनवासी', 'सुमति', कृष्ण देव प्रसाद गौड 'बेढब बनारसी' लिखित 'मिस्टर पिगसन की डायरी', राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह लिखित 'तरग', 'राम रहीम',

'गाधी टोपी', 'सावनी समा' तथा 'सूरदास', सुदर्शन लिखित 'झकार' तथा 'भागवन्ती', उषादेवी मित्रा लिखित 'वचन का मोल', 'नष्ट नीड', 'सोहनी', 'पिया', 'जीवन की मुस्कान', उदयशकर भट्ट लिखित 'नये मोड' तथा 'सागर लहरे और मनुष्य', रामवृक्ष बेनीपुरी लिखित 'चिता के फूल' तथा 'गेहूँ और गुलाब', इलाचन्द जोशी लिखित 'घृणामयी', 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', प्रेत और छाया', 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ', 'सुबह के भूले', 'जिप्सी' तथा 'जहाज का पछी', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'पतन', 'चित्र-लेखा', 'तीन वर्ष', 'टेढे-मेढे रास्ते', 'आखिरी दाव', 'भूले बिसरे चित्र', 'वह फिर नही आयी', 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'सीधी सच्ची बाते', यशपाल लिखित 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप', 'दिव्या', 'अमिता', 'झूठा सच', प्रताप नारायण श्रीवास्तव लिखित 'निकुज', 'विदा', 'विजय', 'विकास', 'बयालीस', 'विश्वास की वेदी पर', 'बेकसी का मजार', 'वेदना', 'व्यावर्तन', 'विसर्जन', देवीप्रसाद धवन 'विकल' लिखित 'कुबेर', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', सच्चिदानन्द हीरानद वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने अपने अजनबी', रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाडी' लिखित 'सराय', 'चलचित्र', रामेश्वर शुक्ल 'अचल' लिखित 'चढती धूप', 'नयी इमारत', 'उल्का', 'मरुदीप' आदि हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास के चतुर्थ विकास युग के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। इस चतुर्थ विकास युगीन जो उपलब्धिया सामने आयी वे सभी अपने व्यापक महत्व की ओर सकेत करती हैं।

[५] **स्वातन्त्र्योत्तर युग** . स्वतत्रता के पश्चात् हिन्दी उपन्यास के स्वरूप मे विविधता का आविर्भाव हुआ। पूर्व युगीन कथा प्रवृत्तियो के साथ ही कुछ नवीन प्रवृत्तियो का भी विकास हुआ। भारत की स्वतंत्रता एव भारत के विभाजन के फलस्वरूप अनेक धार्मिक, साम्प्रदायिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओ का उपन्यासकारो ने सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया और उन्हे अपनी रचनाओ मे यथार्थ रूप मे उतार लिया। अत इस युग मे पौराणिक, ऐतिहासिक प्रवृत्तियो के साथ ही राजनैतिक प्रवृत्तियो का भी विकास हुआ। इसके साथ ही हास्य-व्यग्य प्रधान औपन्यासिक कृतियो की परम्परा का भी विकास हुआ। आचलिक उपन्यासो की परम्परा का नवीन रूप मे विकास हुआ। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आधुनिक युग के विशेष सन्दर्भ मे शाश्वत्, नैतिक, दार्शनिक, सास्कृतिक और मनोवैज्ञानिक मान्यताओ का विवेचन हिन्दी उपन्यास के नवीनतम स्वरूप का द्योतक है। इस काल मे डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक सास्कृतिक पृष्ठभूमि मे 'वाणभट्ट की आत्म-कथा' तथा 'चारु-चन्द्रलेख' नामक उपन्यास प्रस्तुत किये। अन्य लेखको की कृतियो मे विंध्याचल प्रसाद गुप्त लिखित 'चादी का जूता', 'गाव के देवता' तथा 'नया जमाना', अन्नपूर्णानन्द लिखित 'महाकवि चच्चा', 'मगन रहु चोला' तथा 'मेरी हजामत' उल्लेखनीय हैं। सामाजिक आदर्शवादी उपन्यासो मे यज्ञदत्त शर्मा के उपन्यास

'इन्साफ', 'अतिम चरण', 'इन्सान', 'महल और मकान', 'रजनीगधा' तथा 'विश्वास-घात' उल्लिखित किये जा सकते हैं। राजनैतिक विचारधारा प्रधान उपन्यासो मे 'बहता पानी', 'रैन अधेरी', 'सवेरा', 'नयी प्रतिक्रिया', 'उलझन', 'अपराजित', 'घेरे के अन्दर', 'जागरण', 'जाल', 'ज्वालामुखी', 'दिशाहीन', 'दुश्चरित्र', 'देख कबीरा रोया', 'रगमच' मुख्य हैं जिनके लेखक मन्मथनाथ गुप्त है। आनन्द प्रकाश जैन लिखित 'आग और फूस', 'आग के फूल', 'तीसरा नेत्र', 'पलको की ढाल', डा० कु० कचनलता सब्बरवाल लिखित 'पुनरुद्धार', रघुवीर शरण मित्र लिखित 'आग और पानी', 'उजला कफन', 'कापती आवाज', 'ढाल तलवार', 'पहली हार', 'राख की दुलहन', 'सोने की राख' आदि उपन्यास ऐतिहासिक आदर्श प्रस्तुत करते है। नरेश मेहता लिखित 'डूबते मस्तूल', 'वह पथ बधु था', नागार्जुन लिखित 'अग्रतारा', 'दुखमोचन', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'रतिनाथ की चाची', 'वरुण के बेटे', 'हीरक जयती', तथा विश्वम्भर 'मानव' लिखित 'उजडे घर', 'कावेरी', 'नदी', 'पीले गुलाब की आत्मा', 'प्रेमिकाएँ' आदि उपन्यास मुख्यत प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित हैं। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' लिखित 'सितारो के खेल', 'गिरती दीवारे', 'गर्म राख', 'बडी-बडी आखें', 'पत्थर अल पत्थर' तथा 'शहर मे घूमता आइना' आदि उपन्यासो मे मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त अमर-बहादुर सिंह 'अमरेश' लिखित 'क्राति के कगन', अमृतलाल नागर लिखित 'महाकाल', 'बूद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष', फणीश्वरनाथ रेणु लिखित 'मैला आचल', तथा 'परती परिकथा' आदि औपन्यासिक कृतिया हिन्दी उपन्यास मे पचम विकास युग के अन्तर्गत उल्लिखित की जा सकती है। इनमे प्रमुखत सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक तथा आचलिक कथा प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व किया गया है। इन्ही प्रवृत्तियो के अन्तर्गत इस युग के अन्य उपन्यासो मे डा० रागेय राघव लिखित 'घरौदे', 'विषाद मठ' तथा 'मुर्दों का टीला', प्रभाकर माचवे लिखित 'परन्तु', 'द्वाभा', राजेन्द्र लिखित 'सावन की आखें', डा० देवराज लिखित 'पथ की खोज', 'बाहर-भीतर', 'रोडे और पत्थर', 'अजय की डायरी', विष्णु प्रभाकर लिखित 'तट के बन्धन', 'निशिकात', 'स्वप्नमयी', अमृतराय लिखित 'नागफनी का देश', राजेन्द्र यादव लिखित 'उखडे हुए लोग', डा० प्रतापनारायण टडन लिखित 'रीता की बात', 'अधी दृष्टि', 'रूपहले पानी की बूदे', 'वासना के अकुर', 'अभिशप्ता' आदि भी उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी जी के उपन्यास और समकालीन प्रवृत्तिया

हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकासात्मक इतिहास मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव पचम विकास काल मे हुआ था। इस युग मे प्रेमचन्द युगीन उपन्यास की विशिष्ट उपलब्धिया ही नवीन उपन्यास साहित्य की आधार स्तम्भ बनी हुई थी। परन्तु इस विकासात्मक काल मे उपन्यास का विषय विस्तार पहले की अपेक्षा कही

अधिक हुआ और प्रेमचन्द की पूर्ववर्ती प्रवृत्तियो का भी इस युग मे अनुगमन किया गया। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की समकालीन औपन्यासिक प्रवृत्तियो पर दृष्टि डालने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम उस युग का और विशेषत उसकी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, साम्प्रदायिक आदि परिस्थितियो का अवलोकन करें। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे आपका आविर्भाव द्वितीय महायुद्ध से पूर्व ही हो गया था। यह वह युग था जबकि राजनैतिक स्तर मे अत्यन्त उथल-पुथल मच गयी थी। इसके साथ ही सामाजिक जीवन मे भी नवजागरण का उत्थान हो रहा था। राजनैतिक स्तर पर विभिन्न मतो एव वादो का बोलबाला था। जहा एक ओर गाधी जी की क्रियाशीलता के कारण गाधीवाद का प्रचार एव प्रसार हो रहा था वही दूसरी ओर क्रान्तिकारी साम्यवाद का भी प्रभाव राजनीति पर पड रहा था। साम्यवादी हिंसा के आधार पर भारत मे स्वाधीनता चाहते थे परन्तु गाँधी जी इसके विपरीत शातिपूर्वक अपना स्वराज्य माग रहे थे। इस प्रकार उद्देश्य एक होते हुए भी दोनो के पथ अलग-अलग थे। ऐसे सघर्षपूर्ण वातावरण का प्रभाव साहित्य पर न पडे, यह असम्भव है। अत अपने युग से प्रभावित होकर साहित्य की सबसे सचेतन विधा उपन्यास मे उपन्यासकारो ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा के साथ ही अपनी सचेतन सूक्ष्म दृष्टि का भी परिचय दिया।

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व ही भारत मे नवजागरण व्याप्त चुका था। गाधी जी मनुष्यो मे सोई चेतना को जाग्रत कर उनमे स्वावलम्बन की भावना का उद्रेक करना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होने चर्खा-कर्घा योजना के साथ ही कृषि एव कुटीर उद्योग धन्धो को भी महत्व दिया। गाधीवाद की विचारधारा तर्क पर आधारित न होकर स्वानुभूति पर आधारित है। यही कारण है कि उसमे एक प्रकार की आध्यात्मिकता और विचार स्वातत्र्य का आभास होता है। गाधी जी का सर्वोदय सामाजिक आदर्श था, सत्याग्रह जीवनादर्श और रामराज्य शासनादर्श था। हिन्दी साहित्य मे गाधी व्यक्तित्व के अनेक पक्ष, उनकी व्यवहार प्रक्रिया के विविध रूप तथा विचार शक्ति के अश अभिहित हुए। हिन्दी उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो और कहानियो मे सत्याग्रह, हृदय परिवर्तन, स्वाधीनता सग्राम मे सत्य अहिंसा के शस्त्रो के प्रयोग का चित्रण, आश्रमो की स्थापना द्वारा सुधार आदि गाधीवाद के अनेक पक्षो की अभिव्यक्ति की है। प्रेमचन्द के कुछ उपन्यास एव कहानियो मे तो गाधीवाद का व्यवहार पक्ष इतना उभर आया है जितना उनके समकालीन अन्य लेखको मे भी नही मिलता है। कौशिक, सुदर्शन, भगवतीचरण वर्मा, एव जैनेन्द्र आदि उपन्यासकारो ने भी गाधीवाद की यत्र-तत्र अभिव्यक्ति की है।

[१] **द्विवेदी जी और ऐतिहासिक औपन्यासिक प्रवृत्ति** . सामान्य कथा रचना की प्रक्रिया से इतिहास कथा रचना की प्रक्रिया सर्वथा भिन्न होती है। अत इसमे

कथाकार को बहुत ही सतर्कतापूर्वक इतिहास के कथा सूत्रो का सकलन करना होता है। इस क्षेत्र मे उसके लिए यह आवश्यक है कि वह जिस युग से कथा सूत्र ले रहा हो उस युग की पृष्ठभूमि और वातावरण का उचित रूप से अध्ययन कर ले। ऐतिहासिक कथा वस्तु से सम्बन्धित सामग्री का पर्यवेक्षण और अध्ययन उपन्यास की उपकरणात्मक समृद्धता के लिए आवश्यक होता है। पूर्ववर्ती ऐतिहासिक औपन्यासिक दोषो से मुक्ति के लिए भी इसकी आवश्यकता है। अग्रेजी समालोचक वाल्टर वैग-हौट ने ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास की तुलना बहते हुए जल प्रवाह मे पडी हुई प्राचीन दुर्ग मीनार की छाया से की है। जल नवीन है, नित्य परिवर्तनशील है परन्तु मीनार पुरानी है और अपने स्थान पर डटी हुई है। ऐतिहासिक उपन्यास लेखक की भी यही समस्या है कि उसके पैर तो इस पृथ्वी पर ही हैं, वह सास इस युग और निमिष मे ले रहा है परन्तु उसका स्वप्न पुरातन है और फिर भी नवीन है। एक ही ऐतिहासिक विषय पर विभिन्न युग के लेखक इसी कारण से विभिन्न प्रकार से लिखेगे। ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास का पार्थक्य निश्चय ही विज्ञान युग का स्वाभाविक परिणाम है। यह पृथकता होते हुए भी ऐतिहासिक उपन्यास मे इतिहास और वर्तमान का तथा यथार्थ और कल्पना का बहुत सन्तुलित और आनुपातिक समन्वय होना आवश्यक है। इसके साथ ही कल्पना को कलात्मक रूप से प्रकट करना भी आवश्यक है तभी वह यथार्थ सी लगेगी। यही ऐतिहासिक उपन्यास की विशेषता है। ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कथा की इस पुरातन समीपता की नूतन समन्वयात्मक अभिव्यक्ति है जिसके पीछे युग-युग के अतीतोन्मुखी सस्कार निहित है। उसकी उत्पत्ति विगत मे आत्मविस्तार की आन्तरिक मानवीय वृत्ति से हुई है। कथा की कोई भी कल्पना विगत अथवा ऐतिह्य से उसी प्रकार अपने को सर्वथा मुक्त नही कर सकती जिस प्रकार इतिहास अपने को कल्पना से पृथक नही कर सका। हिन्दी मे ऐतिहासिक उपन्यासो की परम्परा का प्रवर्तन यद्यपि भारतेन्दु युग मे ही हो चुका था, परन्तु उसके साहित्यिक और कलात्मक रूप का विकास प्रेमचन्द युग मे हुआ। प्रेमचन्दोत्तर ऐतिहासिक उपन्यास लेखको मे वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल साकृत्यायन, यशपाल और रागेय राघव आदि के नाम प्रमुखता से लिए जाते है। इसका मुख्य कारण है इनकी रचनाओ मे दो मूल प्रवृत्तियो का पोषण—प्रथम प्रेमचन्द की सामाजिक प्रवृत्ति और द्वितीय समाजवादी अथवा प्रगतिवादी प्रवृति। ऐतिहासिक क्षेत्र मे दो और प्रवृत्तियो, व्यक्तिवादी और मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति, का आभाव है। डा० वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासो मे जात्याभिमान, राष्ट्र प्रेम, आदर्श स्थापन तथा वीर पूजा की भावना उद्वेलित हो रही है तो आचार्य चतुरसेन शास्त्री की ऐतिहासिक रचनाएँ इतिहास-रस मे लिप्त रहने की नैसर्गिक भावना और वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिए अतीत से उपजीवन खोजने की भावना से प्रभावित हैं। राहुल साकृत्यायन

तथा यशपाल के उपन्यासो मे जीवन की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करने की भावना तथा ऐतिहासिक पात्रो एव घटनाओ के प्रति न्याय की भावना का प्रतिनिधित्व चित्रित है । इस प्रकार अतीत का उपयोग उपादेयता के रूप मे साहित्य के नवजागरण काल मे आदर्शवादी एव सुधारवादी प्रवृत्ति है जिसे प्रेमचन्द परम्परा की सामाजिक कोटि की सज्ञा दी जाती है और इस कोटि मे वृन्दावन लाल, चतुरसेन तथा हजारी प्रसाद की ऐतिहासिक रचनाएँ उल्लेखनीय है । इनमे समाज कल्याण एव व्यक्ति मगल के समन्वय की भावना अन्तर्निहित है । समाज के समक्ष व्यक्ति तुच्छ हो जाता है । अत. समाज कल्याण की धारणा मे व्यक्ति मगल का समाहार हो गया है । इनकी कृतियो मे अतीत को मानवतावादी जीवन दर्शन के रूप मे अकित कर वर्तमान जीवन के लिए उसकी उपादेयता की ओर सकेत है ।

[२] **द्विवेदी जी और सामाजिक औपन्यासिक प्रवृत्ति** . हिन्दी उपन्यास मे प्रमुख रूप से सामाजिकता की प्रवृत्ति ही मिलती है, जो भारतेन्दु युग से लेकर परवर्ती युगो तक अनेक रूपो मे विकासशील रही । इसकी पुष्टि सामाजिक उपन्यास के क्रमिक विकास के अध्ययन से ही हो जाती है । वस्तुत सामाजिक उपन्यास कला की आधारभूत विचारधारा व्यक्ति चिन्तन से सम्बद्ध न होकर समाज मगल की भावना से अनुप्रेरित है । इस दृष्टि से सामाजिक उपन्यास की निजी विशेषताएँ है तथा उसका अपना विशिष्ट स्वरूप है । उपन्यास की इस प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने कहा है कि सामाजिक यथार्थवाद अन्य यथार्थवादो की अपेक्षा अधिक स्वस्थ एव विकासोन्मुखी है । इसके द्वारा जीवन तथा समाज मे अधिकाधिक सन्तुलन एव समन्वय स्थापित किया जा सकता है । भारतीय समाज के विविध वर्गों मे नव जागरण का आभास समकालीन उपन्यासो से ही सम्भव हो सकता है । हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' मे भी समाज मे होने वाले विविध परिवर्तनो का आभास मिलता है । रूढिवादिता के विरुद्ध प्रतिक्रिया तथा नवीन चेतना का बौद्धिक परिवेश मे जागरण इन उपन्यासो मे प्रतिभासित होता है । भारतेन्दु युगीन उपन्यासो के चरित्र ही इस नवीनता के सूचक है । समाज के विभिन्न वर्गो और विशेष रूप से मध्य तथा निम्न वर्गो मे सामाजिक चेतना एव जागरण की प्रक्रिया अधिक तीव्र थी । भारतेन्दु युगीन उपन्यासो मे मध्य वर्ग के चित्रण की बहुलता है जब कि भारतेन्दु के परवर्ती युग के उपन्यासो मे अधिकाशत॰ निम्न वर्ग को ही प्रधानता दी गई है । विषय-विस्तार की दृष्टि से सामाजिक उपन्यास का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक एव प्रशस्त है । भारतेन्दु युग, प्रेमचन्द युग तथा प्रेमचन्द के परवर्ती युगो मे जो सामाजिक उपन्यास लिखे गये उनका क्षेत्र विस्तार बहुत अधिक है । समाज मे होने वाले विविध क्षेत्रीय परिवर्तनो के फलस्वरूप जो नवीन समस्याएँ सामने आयी उनका उपन्यासकारो ने विस्तार से निदानात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया । बालकृष्ण भट्ट के 'एक सुजान सौ अजान' तथा राधाकृष्ण दास के 'निस्सहाय

हिन्दू' मे जो समस्याएँ मिलती हैं वे ही आगे चल कर प्रेमचन्द के विभिन्न उपन्यासो मे व्यापक आधार पर विश्लेषित की गई है। इसी विषय पर जो भाव-प्रधान आदर्शवादी उपन्यास ब्रजनन्दन सहाय जैसे उपन्यासकारो ने पूर्व युगो मे प्रस्तुत किये थे विशम्भर नाथ शर्मा, श्रीनाथ सिंह, उषा देवी मित्रा तथा गोविन्द बल्लभ पन्त आदि ने उसका प्रसार किया। आधुनिक औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि मे कृषक जीवन की समस्या, श्रमिक जीवन की समस्या एव आर्थिक वर्ण भेद की अन्य समस्याएँ, शोषक एव शोषित वर्गो के सन्दर्भ मे उठाई गई समस्याएँ, स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह एव कुरीति निवारण की समस्याएँ, समकालीन सामाजिक जीवन की विकासशीलता की द्योतक है। प्रेमचन्द ने जो मानववादी दृष्टिकोण अपने सामाजिक उपन्यासो के माध्यम से प्रस्तुत किये थे उसका प्रसार सियारामशरण गुप्त, विशम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', चडीप्रसाद 'हृदयेश' तथा विष्णु प्रभाकर आदि उपन्यासकारो ने किया। भगवतीचरण वर्मा, यशपाल तथा अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारो ने सामाजिक पृष्ठभूमि मे व्यष्टि और समष्टि के समन्वय के द्वारा यान्त्रिकता के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियो का निदान प्रस्तुत किया है।

[३] **द्विवेदी जी और व्यक्तिवादी उपन्यासो की प्रवृत्ति** व्यक्तिवादी उपन्यासो मे सामाजिक मान्यताओ की अपेक्षा वैयक्तिक मूल्यो को अधिक महत्व दिया जाता है और उसी की अभिव्यक्ति होती है। व्यक्तिवादी औपन्यासिक प्रवृत्ति सामाजिक प्रवृत्ति एव मनोविश्लेषणवादी प्रवृत्ति के मध्य की कडी है यद्यपि स्थूल रूप मे दोनो ही व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के समकक्ष जान पडते हैं। व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन आधुनिक युग की देन है और मानव चेतना के अभिनव विकास का सूचक है। इन उपन्यासो मे व्यक्ति विशेष के मनोभाव एव विचार ही अधिक मुखरित होते है। इसमे सामाजिक रूढियो एव परम्पराओ के प्रति विद्रोह के साथ ही साथ नैतिकता अनैतिकता को नवीन कसौटी पर परखने का वास्तविक चित्रण दर्शित होता है। इनके पात्रो के जीवन की सबसे जटिल समस्याएँ होती हैं प्रेम तथा विवाह की, पाप-पुण्य के अन्तर की, नैतिक-अनैतिक की, इसके साथ ही सामाजिक बन्धनो तथा वैयक्तिक आकाक्षाओ के मूल्य को आकने की। इस तरह व्यक्तिवादी उपन्यास मे चरित्र चित्रण की शैली भी व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि से प्रभावित हैं। व्यक्तिवादी उपन्यासकारो मे भगवतीचरण वर्मा, जयशकर प्रसाद, उदय शकर भट्ट, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि नि सन्देह व्यक्तिवादी जीवन दर्शन से प्रभावित है। उपेन्द्रनाथ अश्क, रामेश्वर शुक्ल अंचल, लक्ष्मीनारायण लाल, जनार्दन मुक्तिबोध आदि की रचनाओ मे यद्यपि सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है परन्तु उनके पात्रो को रूप तथा प्रेरणा व्यक्तिवादी चिन्तन के ही द्वारा मिलता है। प्रसाद के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि मे मानवतावादी भावना विद्यमान है। मध्यवर्गीय समाज की व्यक्तिवादी चेतना भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासो मे विद्यमान मिलती है। इसी सन्दर्भ मे लेखक ने कतिपय

व्यक्तिपरक मूल्यो का विश्नेषण किया है जिनमे नैतिक मान्यताओ के पुनर्निर्धारण की समस्या भी है। इस काल के अन्य व्यक्तिवादी उपन्यासकारो ने युग जीवन की यथार्थपरक पृष्ठभूमि मे उन समस्याओ का निरूपण किया है जो शिक्षित समाज को प्रभावित कर रही है। इसी कारण से इस वर्ग के उपन्यास वैचारिक तत्वो से किसी सीमा तक बोझिल भी हो गये है। अज्ञेय तथा अश्क जैसे कुछ लेखको ने अपनी कृतियो मे आत्मचरित्रात्मक शैली मे वैयक्तिक अनुभूतियो का प्रभावशाली चित्रण किया है जिनमे रूढिगत भावनाओ तथा प्रतिक्रियात्मक रूप मे उपजने वाली अपेक्षाकृत स्वच्छदतावादी भावनाओ का द्वन्द्व व्यक्त हुआ है।

[४] **द्विवेदी जी और मनोविश्लेषणवादी औपन्यासिक प्रवृत्ति** आधुनिक उपन्यासो मे मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के आधार पर पात्रो का चित्राकन करना आधुनिकतम युग चेतना की देन है। आधुनिक युग मे बीसवी शताब्दी के कतिपय विदेशी मनोविश्लेषण शास्त्रियो और विशेष कर फ्रायड, एडलर और युग आदि ने मानव मन का क्रान्तिकारी एव सर्वथा नवीन विश्लेषण कर अपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया जिसका प्रभाव साहित्य पर अत्यन्त ही सूक्ष्मता से पडा। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासो के कथानक का सम्बन्ध वाह्य घटनाओ से न होकर चरित्रो के मानसिक और भावनात्मक जीवन से होता हे। पात्रो के कार्यकलाप के मूल प्रेरणा स्रोत का उद्घाटन करना ही इनका प्रमुख लक्ष्य होता है। अत उपन्यासकारो ने अन्तर्दृष्टि तथा सवेदनात्मक सहानुभूति के आधार पर पात्रो के द्वन्द्वात्मक चरित्र का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन ने उनके दृष्टिकोण को और भी अधिक आत्म-केन्द्रित एव अन्तर्मुखी बना दिया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास मनुष्य के हृदय मे स्थित अनुभूतियो के उद्रेक को अभिव्यक्त करता है, यही उसकी आत्मनिष्ठा का प्रतीक है। इसके साथ ही इसमे मनुष्य के अवचेतन मन का भी विश्लेषण बहुत सूक्ष्मता से प्रतिपादित होता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी उपन्यास के विकास के अन्तर्गत मनोविज्ञान प्रधान उपन्यासो की रचना प्रथम महायुद्ध के उपरान्त ही आरम्भ हुई परन्तु उपन्यास की मूल प्रवृत्ति प्रधानत परम्परावादी ही रही। अत भारतेन्दु युग के उपन्यासो मे मानव के वाह्य क्रिया कलाप का विवरण ही प्रस्तुत किया गया। परन्तु प्रेमचन्द युगीन मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे मानव के वाह्य क्रिया कलाप को उसके अवचेतन मन की अदृष्ट प्रक्रिया का व्यावहारिक परिणति रूप माना गया। यही कारण है कि सामान्य उपन्यासो की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक उपन्यास के मूल उपकरणो मे न्यूनाधिक भिन्नता आ जाती है। इसमे कथावस्तु गौण हो जाती है, कोई निश्चित उद्देश्य नही होता अपितु उसका महत्व केवल पाठक पर पडने वाली प्रतिक्रिया एव अनुभूतियो मे है। इसी प्रकार इसका कथानक दीर्घता अथवा सकुचितता से प्रभावित न होकर इसकी प्रत्येक घटना एक विशिष्ट परिस्थिति का प्रतीक होती है। मानव मन के विश्लेषण के लिए किसी काल अवधि की सीमा पर भी प्रतिबन्ध नही है।

उसका कथानक पाच दिन, सात दिन, कुछ महीनो अथवा कुछ घन्टो तक मे भी सीमित हो सकते है। इन उपन्यासो मे कम से कम पात्रो की सयोजना की जाती है। नाटकीय तत्व के सन्दर्भ मे मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे यह तत्व समाविष्ट होता है परन्तु उसके पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक कारण अवश्य होता है। अपनी प्राचीन परिपाटी का त्याग कर आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार यथासम्भव लघुतम सवाद सकेतो की योजना करता है। प्रेमचन्द तथा अन्य सामाजिक परम्परा के उपन्यासकारो ने विवाह के बन्धन की पवित्रता को प्रधानता दी है। इसके लिए प्राणी जगत को चाहे जितना भी सघर्ष क्यो न करना पडे। इसके विपरीत आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास-कारो मे विशेषत धर्मवीर भारती, अनन्त गोपाल शेवडे, देवराज तथा अन्य ने अपनी औपन्यासिक कृतियो मे प्रेम के विविध स्वरूपो के चित्रण द्वारा मध्यवर्गीय ह्रासोन्मुखी एव मरणशील चेतना को अभिव्यक्त किया है। आधुनिक युग चेतना की आवश्य-कताओ ने उपन्यास के विषय तथा शैली को नवीनता के साचे मे ढाल दिया है। अन्तश्चेतनावादी उपन्यासकार ने युग परिस्थितियो के प्रभाववश साहित्य की परिभाषा ही बदल दी है। वह साहित्य को रसात्मक वस्तु न मान कर उसे केवल वैयक्तिक और अन्तर्मुखी पदार्थ मानता है। मनोविश्लेषणात्मक आधारभूमि पर हिन्दी उपन्यास को विकास की नई दिशाएँ प्रदान करने वाले लेखको मे जैनेन्द्र कुमार का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होने आधुनिक बौद्धिकता और परम्परागत दार्शनिकता के अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त मानव मन का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इलाचन्द जोशी ने अपने मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे विशेष रूप से मानवीय कुठाओ, विकृतियो तथा मानव मन की चेतन, अर्द्धचेतन एव अचेतन सत्ताओ का चित्रण किया है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे काम कुठाओ का विश्लेषण, मानसिक विकृतियो का चित्रण एव अवचेतन के विविध रूपात्मक चित्रण का प्रयत्न किया है। जैनेन्द्र कुमार लिखित 'त्याग पत्र' और 'सुनीता', इलाचन्द जोशी लिखित 'सन्यासी' और 'जहाज का पक्षी', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'नदी के द्वीप' तथा 'शेखर : एक जीवनी', डा० देवराज लिखित 'द्वाभा' तथा नरेश मेहता लिखित 'डूबते मस्तूल' आदि उपन्यास इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत प्रतिनिधि कृतियो के रूप मे मान्य किये जा सकते हैं।

द्विवेदी जी के उपन्यासो का सैद्धान्तिक विश्लेषण

उपन्यास साहित्य के सैद्धान्तिक विश्लेषण के लिए उसके शास्त्रीय स्वरूप एव महत्व को दृष्टि मे रखना आवश्यक है। प्राचीन सस्कृत साहित्य शास्त्र मे विविध कथा रूपो की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक उपन्यास विधा उनसे सर्वथा भिन्न है। यह भिन्नता कथा रूपो के विभिन्न तत्वो मे भी दर्शित होती है। शास्त्रीय दृष्टि से उपन्यास विधा को गद्य काव्य के अन्तर्गत उल्लिखित किया जा सकता

है। गद्य काव्य के ही प्राचीन रूपो से आधुनिक हिन्दी उपन्यास के स्वरूप का विकास हुआ है। उपन्यास शब्द का प्रयोग प्राचीन सस्कृत साहित्य मे भी मिलता है। आचार्य भामह के 'काव्यालकार' मे, आचार्य दडी के 'काव्यादर्श' मे, आचार्य विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' के साथ ही गुणाढ्य की 'वृहत्कथा', 'पचतत्र' और 'बौद्ध जातक कथाओ' तक मे 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग विविध अर्थों मे मिलता है। 'उपन्यास' दो शब्दो के योग से बना है—उप = समीप तथा न्यास = थाती, जिसका अर्थ निकट रखी हुई वस्तु अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसमे अपने ही जीवन का प्रतिबिम्ब हो, अपनी कथा स्वय की भाषा मे कही गई हो। आधुनिक उपन्यास मे उपपत्ति कृतत्व और प्रसादनत्व दोनो मौलिक गुणो की रक्षा होते हुए भी इसका क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि दोनो मे गुणात्मक अन्तर आ गया है। साहित्य के जितने भी रूप विधान हो सकते हैं, उनमे उपन्यास का रूप विधान सबसे लचीला है और वह परि-स्थिति के अनुसार कोई भी रूप धारण कर सकता है। यही कारण है कि इस नवीन साहित्याग को सम्यक् रूप से परिभाषित करने के प्रयत्न के साथ ही विद्वानो ने इसके पृथक्-पृथक् पक्षो का भी अवलोकन किया है। अतएव उपन्यास की उपलब्ध परि-भाषाओ मे अत्यधिक वैविध्य मिलता है। विचारको एव अन्य प्रबुद्ध जनो ने उपन्यास के आकारिक स्वरूप, गद्यात्मकता, यथार्थात्मकता, कल्पनात्मकता, चित्रणात्मकता, कथात्मकता और कलात्मकता आदि पर जोर देते हुए इस साहित्याग को विविध रूप से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। आकारिक दृष्टिकोण से 'दि न्यू पिक्चर्ड इन्साइक्लोपीडिया' मे उपन्यास या नावेल दीर्घ आकार की गद्य मे रचित उस कल्पित कथात्मक रचना को कहा गया है जिसमे जीवन के यथार्थ स्वरूप की परिचायक कथा तथा पात्र सर्जित किये गए हो। इसी प्रकार प्रसिद्ध उपन्यास शास्त्री ई०एम० फार्स्टर ने उपन्यास को गद्य मे लिखी हुई कथा के रूप मे परिभाषित करते हुए उसके आकार के सम्बन्ध मे यह मन्तव्य प्रस्तुत किया है कि उपन्यास को कम से कम पचास हजार शब्दो की रचना अनिवार्य रूप से होनी चाहिए।[१] नवीनता की दृष्टि से आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने भारत तथा पश्चिमी देशो मे भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन माना है तथा उसके आविर्भाव को नवीन युग के आगमन का सूचक बताया है। श्री शिवदान सिंह चौहान ने आधुनिक उपन्यास को 'साहित्य का एक नया और सश्लिष्ट रूप विधान बताया है, जिसके क्षेत्र एव सभावनाएँ अपरिसीमित है।[२] डा० सत्येन्द्र ने भी उपन्यास को 'नये युग की नयी अभिव्यक्ति का नया रूप' माना है।[३] गद्यात्मकता की दृष्टि से डा० गुलाबराय के अनुसार 'उपन्यास कार्य कारण शृखला मे

---

१. 'आधुनिक साहित्य', श्री नन्द दुलारे वाजपेयी, पृ० १२३।

२ 'हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, श्री शिवदान सिंह चौहान, पृ० १४१।

३. 'साहित्य सन्देश' आधुनिक उपन्यास अक, जुलाई-अगस्त, १९५६, पृ० ७।

बधा हुआ वह गद्यात्मक कथानक है जिसमे अपेक्षाकृत अधिक विस्तार एव पेचीदगी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियो से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओ द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।'[1] पाश्चात्य लेखिका ईरा वाल्फर्ट ने उपन्यास की परिभाषा करते हुए व्यक्त किया है कि 'उपन्यास मानवीय जीवन और भावनाओ का गद्य मे प्रस्तुत किया गया अनुवाद मात्र है। उसका विचार है कि इस उपन्यास रूपी गद्यात्मक अनुवाद को पाठको का आत्मज्ञान बढाने मे सहायक होना चाहिए क्योकि उपन्यास और मानव जीवन घनिष्ठ रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं।'[2] इसी प्रकार हेनरी जेम्स ने भी उपन्यास मे यथार्थात्मकता की प्रवृत्ति को उसके स्वरूप निर्माण मे महत्वपूर्ण माना है। कल्पनात्मकता की दृष्टि से ई०ए० बेकर ने इसको उपन्यास का प्रमुख तत्व माना है और बताया है कि उपन्यास एक कल्पित गद्य कथा के रूप मे ही मानव जीवन की व्याख्या करता है। उपन्यास लेखक कल्पना शक्ति की प्रखरता के ही अनुपात मे सफलता प्राप्त करता है, यद्यपि उसमे युगीन बौद्धिकता तथा तर्कशीलता की प्रतिक्रिया भी ध्यान देने योग्य होती है। इसी प्रकार फ्रासिस बेकन, बारेन, शिपले, एडिथ हार्टन ने भी उपन्यास मे कल्पना को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। विलियम हेनरी हडसन का मत है कि वह एक ऐसी कथा होती है जो कल्पित होती है। परन्तु इस कल्पित कथा का आधार मनुष्य का यथार्थ जीवन ही होता है।[3] चित्रणात्मकता की दृष्टि से हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-कार मुशी प्रेमचन्द ने उपन्यास की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यो को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।'[4]

उपन्यास के छ मूल उपकरण माने गये हैं। विलियम हेनरी हडसन ने इन तत्वो का नाम (१) कथानक, (२) पात्र, (३) कथोपकथन, (४) देश काल (वाता-वरण), (५) शैली तथा (६) उपन्यास द्वारा प्रस्तुत आलोचना, व्याख्या अथवा जीवन दर्शन दिया है। उपन्यास के इन्ही छ· तत्वो को लगभग सभी विद्वान एक मत से स्वीकार करते है। लेकिन कुछ विद्वानो ने 'जीवन दर्शन' के स्थान पर 'उद्देश्य' तत्व को माना है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानो ने द्वन्द्व या सघर्ष और कुतूहल या द्वैधाभाव को भी उपन्यास के तत्व माने है लेकिन वास्तव मे यह रचना कौशल के अग हैं। हिन्दी काव्य शास्त्रकारो ने उपन्यास के सात तत्वो की ओर सकेत किया है। उनके मत मे उपन्यास मे निम्न तत्व पाये जाते है· (१) कथा अथवा कथा

---

१ 'काव्य के रूप', डा० गुलाब राय, पृ० १५६।
२ 'दि राइटर्स बुक', ईरा वाल्फर्ट, पृ० ८।
३ 'एन इट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ लिटरेचर', विलियम हेनरी हडसन, पृ० १६६।
४ 'साहित्य का उद्देश्य', प्रेमचन्द, पृ० ५४।

वस्तु, (२) पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, (३) कथोपकथन अथवा सम्वाद, (४) भाषा तत्व, (५) शैली, (६) देशकाल अथवा वातावरण, (७) उपन्यास का उद्देश्य । आगे उपन्यास के प्रमुख तत्वो की विवेचना के साथ ही साथ श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो का भी उन्ही औपन्यासिक तत्वो के आधार पर शास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

[१] **द्विवेदी जी के उपन्यासों मे कथानक तत्व** आधुनिक युग मे उपन्यास के तत्वो मे कथानक को सर्वप्रमुख स्थान दिया गया है । कुछ विद्वानो ने कथा को ही उपन्यास का प्राण तत्व मान लिया है । वस्तुत कथानक ही उपन्यास रचना का मूलाधार होता है । कथानक के अन्तर्गत वे समस्त घटनाएँ, जीवन के विविध क्रिया कलाप एव सूत्र आ जाते है जिनसे उपन्यास की रचना होती है । श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे घटनाओ की प्रमुखता नही है प्रत्युत् विशेष चरित्र के ही चारो ओर घटनाओ का सयोजन है । इनकी प्रथम औपन्यासिक कृति 'दिगम्बर' मे प्रमुख पात्र विमल है जो अपने अतीत जीवन की झाकी मे खो जाता है । प्रस्तुत उपन्यास का नायक अन्य विशिष्ट गुणो से आभूषित एव काव्य शास्त्र मे वर्णित नायकत्व के गुणो से ओतप्रोत मनुष्य नही है, अपितु इसी समाज का एक मध्यम वर्ग का मानव है जिसे जीवन मे पग-पग पर वेदनानुभूति होती है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे, प्रत्येक वर्ग मे होने वाले दूषित कार्यो का उसे आभास होता है । अत. वह आज के मानव समाज का एक जीता जागता चित्र प्रस्तुत करता है एव आज के पीडित मनुष्यो का प्रतिनिधित्व करता है । अपने ग्रामीण वातावरण से निकल कर वह अनजान मे ही सिद्धि श्री काशी मे बाल-विधवा तपस्विनी के आश्रय मे पहुँच कर उस समाज द्वारा प्रताडित वैष्णवी के वात्सल्याभाव को विमल भर देता है । परन्तु भ्रमणशील वृत्ति के कारण एक जगह न रम कर वह निरन्तर अध्यापको, विश्वविद्यालयो के छात्रो के सपर्क मे आकर अनेक कटु और मधुर अनुभवो को अपने मस्तिष्क मे सजोने लगता है । अपने इस भ्रमण काल मे वह मानव जगत से परिचित होता है । समाज के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक वर्गो के सपर्क मे आ कर समाज की कटुताओ का अनुभव करता है ।

वैष्णवी के परलोकवासिनी होने पर वह पुन इस ससार मे विरक्त सा हो गया । परन्तु हृदय के किसी कोने मे अब उसमे पारिवारिक सस्कार जाग उठा था अत वह एक अन्य स्थान मे पहुँचा जहा उसके पिता एव वैष्णवी की स्मृति जुडी हुई थी । अपने उसी घर के पडोस से उसका सम्बन्ध हो गया । परन्तु वह परिवार अशिक्षा, असस्कारिता, दरिद्रता, अकर्मण्यता, लोलुपता और वचकता के प्रगाढ अन्धकार से आवेष्ठित था । जहा पिता अपनी पुत्री का सौदा करता था । आर्थिक लोलुपता का जहा ताडव नृत्य होता था । वह अचेतनावस्था मे अपनी स्मृतियो मे डूबता है, स्वप्नो मे नीरव आनन्द लोक मे भ्रमण करता है । ग्राम्य की प्रकृति उसे आकर्षित करती है

जिसे सजीवता प्रदान कर वह उसे अपने साहित्य मे चित्रित कर लेता है। अन्त मे वह पुन अपनी यथार्थता की कठोर भूमि पर आ जाता है। इस प्रकार 'दिगम्बर' उपन्यास मे एक मूल कथा के साथ ही कई प्रासगिक कथाओ का समावेश भी लेखक ने किया है। परन्तु उससे कथानक मे कोई व्यवधान न उत्पन्न होकर वह उसके सहायक रूप मे ही आया है।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी की दूसरी औपन्यासिक कृति 'चारिका' है जिसमे गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा का चित्रण किया गया है। इसे लेखक ने उपन्यास न कह कर 'आचारिका' की सज्ञा दी है जो वस्तुत आख्यायिका का प्रतिरूप है। आख्यायिका उपन्यास का ही एक प्राचीन रूप है। 'चारिका' के आमुख मे लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास की कथा वस्तु को इस प्रकार स्पष्ट किया है—'यह पुस्तक तथागत भगवान बुद्ध की न तो जीवनी है और न बौद्ध धर्म का कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ है, यह तो अढाई हजार वर्ष बाद बीसवी शताब्दी के एक क्षीणतनु प्रतनु ब्राह्मण कुमार का अपने दुर्बल पगो से उनकी चारिका का यथाशक्ति अनुगमन है। इसे मेरी आचारिका कह सकते है। .. पुस्तक के प्रणयन मे अश्वघोष के 'बुद्ध चरित' और राहुल जी की 'बुद्धचर्या' से विशेष सहयोग मिला है।' चारिका की कथा आध्यात्मिक सकेत सूत्रो के रूप मे गौतम बुद्ध के जीवन के विविध रूपो को आधार बना कर प्रस्तुत की गयी है। स्थूल रूप से 'धर्मचक्र प्रवर्तन' के अन्तर्गत लेखक ने परिव्राजक के सम्बोधि प्राप्ति का उल्लेख किया है। 'युग दर्शन' के अन्तर्गत गौतम के सारनाथ निवास से सम्बन्धित कथा है। 'अन्तर्निवेश' मे श्रेष्ठि पुत्र के भिक्षु बनने का दृष्टान्त है। 'अनुसन्धान' मे आत्मशाति को ही सबकी शाति निर्दिष्ट किया गया है। 'प्रबोधन' मे धर्म चक्षु के सचेतन होने का सकेत है। 'पथ निर्देश' मे विवेक के माध्यम से प्रकाश के आविर्भाव का उपदेश है। 'समर्पण' मे दो भिक्षुओ का बुद्ध की शरण मे आना दिखाया गया है। 'सान्त्वना' मे यशोधरा की मन स्थितियो का अकन है। 'वात्सल्य' मे राहुल से सम्बन्धित सकेत है। 'परितोष' मे यशोधरा की मनोभावनाएँ सम्मिलित हैं। 'सम्मिलन' मे राज परिवार का आत्मबोध चित्रित है। 'उत्सर्ग' मे प्रसेनजित और तथागत की कथा है। 'लोकमाता' मे आनन्द को दिये गये उपदेश है। 'हृदय परिवर्तन' मे बुद्ध के उपदेशो की व्यावहारिक प्रभावात्मकता का चित्रण करता है। 'विसर्जन' मे गौतम बुद्ध और आम्रपाली की विश्व प्रसिद्ध कथा वर्णित है। 'प्रस्थान' मे गौतम बुद्ध के कुशीनगर गमन का उल्लेख है। इस प्रकार से इस औपन्यासिक कृति के विभिन्न कथा खड गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा को एक उपन्यास का स्वरूप प्रदान करते है।

'चित्र और चिन्तन' श्री शातिप्रिय द्विवेदी की तृतीय और अन्तिम औपन्यासिक कृति है। इसमे लेखक ने नायक के माध्यम से लोक के सूक्ष्म निरीक्षण का आभास देते हुए अपने युग को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। लोक-जीवन का निरीक्षण एव युग के विश्लेषण पर आधारित इस उपन्यास का नायक कमल आधुनिक

समाज की परिस्थितियो एव उसकी बिडम्बनाओ से ग्रसित आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व करता है। इसका कथानक कमल के विगत जीवन की अनुभूतियो एव स्मृतियो पर आधारित है। कमल एक कल्पना जीवी कलाकार है। वह कला की साधना को ही अपने जीवन का परम लक्ष्य बनाता है। कमल का अनुमान है कि सस्कृति के अभाव मे सारा विश्व मृत्यु तुल्य एव निर्जीव है, जहा आत्मिक रुचि, साहित्य, सौन्दर्य और कला का समन्वय उसे अपने वातावरण मे नही मिलता। सपूर्ण ससार ही सवेदन शून्य है। आज महत्व है तो केवल टकसाली सिक्को का, जिसके बिना मानव एक पग भी आगे नही बढ सकता। इस अभिशप्त ससार मे भोजन वृत्ति की तृप्ति के साथ ही किसी रागिनी अनुरागिनी की प्रेरणा भी दुर्लभ है। वहा भी आर्थिक टकसाली सिक्को का राज्य है। ससार मे एक ओर जहा सरलता, सुकुमारता एव सौन्दर्य का आधिक्य है वही दूसरी ओर विद्रुप ताडव नृत्य भी होता रहता है और ससार की इस विद्रुपता के समक्ष सरलता एव निरीहता भी दाव पर लगा दी जाती है। कमल ने खादी को एक सार्वभौमिक समस्या के रूप मे चित्रित करके उसे एक नैसर्गिक साधना के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। इस प्रकार गाधीवादी विचारो को भी इस उपन्यास मे प्रोत्साहन एव एक विशिष्ट स्थान मिला है। कमल अपने सास्कृतिक त्यौहारो को भी विस्मृत नही कर सका है जो मानव जीवन के एव जीविका के लिए उत्पादन के विशिष्ट महोत्सव हैं। उदाहरणार्थ 'विजयादशमी जीवन दर्शन का त्यौहार है, दीपावली जीविका पुरुषार्थ का त्यौहार है। जो कुछ धर्म ग्रन्थो मे लिखित है वही त्यौहारो मे दृश्याकित है।"[1] इसके अतिरिक्त कमल ने अपरोक्षत. वैज्ञानिक और औद्योगिक तकनीको के विरुद्ध आवाज उठाई है। समाज को अपने नैसर्गिक वातावरण मे लाने के लिए यह आवश्यक है कि श्रम को यान्त्रिक बन्धनो से मुक्त किया जाय और अर्थशास्त्र को टकसाली सिक्को से। 'भविष्य की चिन्ता' परिच्छेद मे एक प्रश्नवाचक चिन्ह लगा हुआ है, कारण कि भविष्य अभी क्षितिज मे है और उसी के सदृश अदृश्य एव अप्राप्य।

कथानक की प्रमुख विशेषताएँ कथानक मे विभिन्न घटनाओ का नियोजन विभिन्न रूप मे होता है। अत उसमे घटना-विन्यास सम्बन्धी विशिष्टताओ का होना अत्यन्त आवश्यक है। घटनाक्रम की ये ही विशेषताएँ कथानक के गुण कहलाते हैं और वे ही गुण कथानक की स्वाभाविकता, अस्वाभाविकता, सफलता या असफलता का कारण होते है। यहा पर सक्षेप मे द्विवेदी जी के उपन्यासो मे नियोजित कथानक तत्व की प्रमुख विशेषताओ का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) पारस्परिक सम्बद्धता . उपन्यास के कलात्मक सौन्दर्य के लिए कथानक का शृखलाबद्ध सयोजन अत्यन्त आवश्यक है। नवीन शिल्प विधान की दृष्टि से श्री

---

१. 'चित्र और चिन्तन', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७५।

शातिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियो के कथानको मे नवीनता ही लक्षित होती है। इस नवीनता मे भी एक पारस्परिक सम्बद्धता का आभास मिलता है। यद्यपि कथा शृखलाबद्ध नही है, इसका मुख्य कारण यही है कि लेखक की दृष्टि नवीन प्रयोगो एव रचनात्मक चिन्तन की ओर ही केन्द्रित रह गई थी। नवीन प्रयोगो की दृष्टि से 'दिगम्बर' के कथानक पर अगर दृष्टिपात करे तो स्पष्टत. ही उसमे गद्य साहित्य की अन्य विधाओ—कहानी, शब्दचित्र, पर्सनल ऐसे आदि—की विशेषताएँ उपलब्ध होगी। लेखक ने इस उपन्यास के प्राक्कथन मे इसे सीधे उपन्यास न कह कर केवल उसका रेखाकन मात्र ही माना है। कथा साहित्य के क्षेत्र मे इस नवीन प्रयोग मे लेखक ने आधुनिक उपन्यास कला और प्राचीन उपन्यास कला का समन्वय किया है। इसी प्रकार से अपनी दूसरी औपन्यासिक कृति 'चारिका' को लेखक ने 'आख्यानिका' नाम से सम्बोधित किया है, जो उपन्यास का ही एक प्राचीनतम रूप कहा जा सकता है। इसके कथानक मे कुछ क्रमबद्धता का आभास होता है परन्तु कथानक के आगे बढने एव प्रासग्कि कथाओ के आगमन से वह शृखला टूट सी जाती है। इसमे बुद्ध जी की आध्यात्मिक यात्रा का वर्णन है अत कथानक कही-कही पर दार्शनिकता से बोझिल सा हो गया है। परन्तु इसमे आध्यात्मिकता एव व्यावहारिकता की पारस्परिक सम्बद्धता साधना के क्षेत्र मे दिखलाई देती है। द्विवेदी जी की तीसरी औपन्यासिक कृति 'चित्र और चिन्तन' मे कथानक को अठारह अध्यायो मे विभक्त कर निबन्धो के रूप मे उनका सयोजन उपन्यास जैसा करने का प्रयत्न किया गया है। अत इसका क्रम-विन्यास विविध निबन्धो के होते हुए भी उपन्यास-सा ही है जो लेखक के नवीन प्रयोग की ओर ही सकेत करता है। इसका कथानक लेखक के लोक जीवन के निरीक्षण एवं युग के यथेष्ठ विश्लेषण से आबद्ध है। इसमे आदि से अन्त तक एक ही कथा विकसित होती गयी है, अन्य प्रासगिक कथाओ का बहुत ही कम समावेश हुआ है परन्तु वह भी कथा शृखला मे बाधक नही, सहायक रूप मे अवतरित हुई है।

(ख) वैचारिक मौलिकता · कथानक का दूसरा आवश्यक गुण वैचारिक मौलिकता उपन्यासकार की प्रतिभा का परिचायक होता है। एक सफल उपन्यासकार की दृष्टि की सूक्ष्मता का परिचय इस तथ्य से होता है कि वह जीवन की गहनता से कहा तक परिचित है और जीवन की मूलभूत समस्याओ का किस रूप मे साक्षात्कार हुआ है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियो मे वैचारिक मौलिकता स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। यह मौलिकता उसके वस्तु वर्णन मे, घटनाओ की कल्पना के सयोजन के साथ ही साथ उसके कथा विन्यास मे तो देखी ही जा सकती है परन्तु उपन्यास के कथानक मे स्थान-स्थान पर मतो का विवेचन एव समाज की वास्तविक स्थिति के चित्रण मे भी मौलिकता स्पष्टत ही लक्षित होती है। आज व्यावहारिकता मे चारो ओर अभाव ही अभाव है, अकाल का साम्राज्य है,

जिसके पीछे मनुष्य का स्वार्थ कार्यान्वित हो रहा है—'इस अकाल ग्रस्त युग मे अब न सस्कृति है न दाक्षिण्य है, केवल स्वार्थो की कूटनीति और आर्थिक लोलुपता है।' इनका मूलाधार है सिक्का। केवल सिक्का ही क्यो, यात्रिक जडता और मानव की व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा की भावना ने उसे और भी निम्नतर बना दिया है। सिक्के से मनुष्य की सामाजिकता का ह्रास होता है, वह बाजारू बन जाता है तथा यन्त्रो से अकर्मण्य एव आलसी हो जाता है। दोनो ही मनुष्य को निर्जीवता प्रदान करते है। अत. इसके निवारण हेतु लेखक ने अपना निर्णय प्रतिपादित किया है जिसमे गाधी जी का कर्म निर्दशित किया गया है। 'दिगम्बर' का नायक विमल आध्यात्मिकता एव अपनी प्राचीन सस्कृति का आश्रय लेकर उनमे चेतना का सचार करता है। प्रकृति और अन्य जीवधारियो के सदृश ही मनुष्य के लिए भी मिट्टी सजीव भौतिक तत्व है जो मनुष्य से आत्मीयता की माग करती है, पुरुषार्थो का मानवीकरण चाहती है। इस प्रकार लेखक ने अपने इन दोनो उपन्यासो मे गाधीवादी सिद्धान्तो का प्रतिपादन कर उनके कर्म योग का सन्देश दिया है। आज ग्रामीण समुदाय जो शहरो की ओर भागता आ रहा है, किसान वर्ग जिसमे खेती के लिए अरुचि उत्पन्न हो गयी है, उन लोगो मे अपनी भूमि के प्रति सचेतना का जागरण करके, उनमे मिट्टी के प्रति मोह को उत्पन्न करके ग्रामो की ओर उन्मुख होने का प्रेरणात्मक सन्देश दिया है। इसी प्रकार 'चारिका' मे यद्यपि आध्यात्मिक क्षेत्र मे दार्शनिक मतो का प्रतिपादन हुआ है परन्तु लेखक ने उसमे भी अपने व्यावहारिक दृष्टिकोण का समावेश किया है।

(ग) घटनात्मक सत्यता उपन्यासकार जो कथानक प्रस्तुत करता है वह कल्पना की सहायता से निर्मित होता है। उपन्यासकार की इन कल्पनाओ के पीछे उसका उद्देश्य होता है पाठक के समक्ष सम्भाव्य सत्य को अधिक प्रभावशाली रूप मे प्रस्तुत करना। कथानक की घटना सम्भावना क्षेत्र का उल्लघन न करे, इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि स्थानीय विवरण, पारिवारिक तथा सामाजिक विवरण, वेषभूषा आदि के वर्णन भी उपन्यासकार के परिपक्व अनुभवो तथा सूक्ष्म दृष्टि की द्योतक हो। वाह्य सम्भावना के साथ ही अन्तस् के रहस्य उद्घाटन मे भी पूर्ण सत्यता एव यथार्थता की आवश्यकता होती है। इस दृष्टिकोण से श्री शातिप्रिय द्विवेदी की तीनो औपन्यासिक कृतियो मे यद्यपि कल्पना का योग अवश्य है, परन्तु उसकी सत्यता की भी हम उपेक्षा नही कर सकते। इसकी सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण पाठक को अपने युग एव समाज मे दृष्टि खोल कर चलने पर ही मिल सकता है। आज मानव का क्या मूल्य रह गया है ? समाज किस गर्त मे डूबता जा रहा है और सामाजिक मानव की आज क्या स्थिति है ? इन सबका मूल्यांकन लेखक ने अत्यन्त ही सूक्ष्मता से किया है जो यह सिद्ध करता है कि लेखक ने अपने समाज एव युग का बहुत गहनता से अध्ययन किया था। 'दिगम्बर' मे समाज की विभिन्न परिस्थितियो—सामाजिक,

राजनीतिक, आर्थिक, वैयक्तिक का यथार्थ चित्र खीचने का प्रयास किया है तथा समाज की विडम्बनाओ का अत्यन्त ही मार्मिक चित्रण किया है।

(घ) शैलीगत निर्माण कौशल शैलीगत निर्माण कौशल से तात्पर्य है किसी भी औपन्यासिक कृति मे कथानक के अन्तर्गत विभिन्न घटनाओ के नियोजन का प्रस्तुतीकरण रूप। किसी कथानक मे घटना अथवा क्रिया कलाप का सीधा सादा चित्रण करने की अपेक्षा उसे कलात्मक ढग से कथानक के साथ सम्बद्ध करना उपन्यासकार की निर्माण कुशलता का परिचायक है। आधुनिक उपन्यासो मे नवीन प्रयोग एव उनकी प्रसिद्धि का एक मात्र कारण यही है कि आधुनिक युग मे हिन्दी उपन्यास शिल्प की नवीन उपलब्धियो के साथ ही उनमे शैलीगत निर्माण कौशल का भी गुण विद्यमान है। शैली की दृष्टि से कथानक मुख्यत व्यग्यात्मक, वर्णनात्मक, घटनात्मक, विवरणात्मक, वस्तु प्रधान, विचार या कल्पना प्रधान होते हैं। शैलीगत निर्माण कौशल कथानक का चौथा आवश्यक गुण है। इस गुण के अन्तर्गत मुख्यत कथानक के प्रस्तुतीकरण मे नाटकीयता और चामत्कारिकता का समावेश होता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे प्राय कथानक को विभिन्न रेखा सूत्रो के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। 'दिगम्बर' मे लेखक ने अपने बचपन और किशोरावस्था का चित्रण भावात्मक विकास के आधार पर प्रस्तुत किया है। उसका अनुभूत्यात्मक विकास इस चित्रण की विशेषता है। उदाहरणार्थ, 'गाव से नगर मे आने पर विमल का मन नही लगता था। वहा प्रकृति का दिगन्त विस्तृत मुक्त प्रागण था, यहा जन सकुल सकीर्ण गलिया थी, कृत्रिम राजमार्ग था। घनी आबादी के होते हुए भी नगर मे वह सूनापन अनुभव करने लगा। नगर की तरह गाव मे भी उसके लिए कोई सामाजिक जीवन नही था, व्यावहारिक जगत तो सब जगह एक ही जैसा जटिल है। फिर भी गाव मे वह पिंजरबद्ध विहग नही था। पेड पत्ते और पक्षियो के आकाश मे स्वच्छन्द विहार करता था। मनुष्यो का साथ न मिलने पर प्रकृति से खेलता था। कल्पना से कवि जहा पहुँचता है वहा वह अपनी ग्राम्यचर्या से पहुँच जाता था। उसका वह निसर्ग लोक पीछे छूट गया, अब स्मृतिया ही उसके हृदय के एकान्त मे करुण रागिनी बजाया करती। वह उदास हो जाता, बिलख-बिलख कर रोने लगता।'[1] इस जैसे उदाहरण कथानक के इसी गुण के कारण प्रभावयुक्त बन पडे है। 'चारिका' मे भी लेखक ने गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा के प्रसग मे अनेक सहायक उद्धरण प्रस्तुत किये है जिनसे कथा कलात्मक दृष्टि से परिपक्व बनी है।

(ङ) वर्णनात्मक रोचकता. रोचकता कथानक का एक महत्वपूर्ण गुण है। आधुनिक युग मे उपन्यास मे चामत्कारिक तत्वो का समावेश न करके मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रोचक बनाने का प्रयत्न किया जाता है। अत घटनाओ मे अविश्वसनीय

---

१. 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १६।

तत्वो के आश्रय के साथ ही आधुनिक युग मे पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ के द्वारा भी कथानक मे रोचकता लाने का प्रयास किया जाता है। रोचकता के गुण की सृष्टि के लिए उपन्यासकार आकस्मिक और अप्रत्याशित का आश्रय लेता है जिसकी सहायता से पाठक की कौतूहल प्रवृत्ति को वह आदि से अन्त तक जाग्रत रख सके। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के तीनो उपन्यास कथा सगठन एव औपन्यासिक स्वरूप की दृष्टि से भले ही विवादास्पद हो, परन्तु इतना निश्चित है कि रोचकता का उनमे अभाव नही है। 'दिगम्बर' मे लेखक ने जिस रचनात्मक उद्बोधन को कथाबद्ध किया है वह सर्वथा मौलिक होने के साथ रोचकता की दृष्टि से भी सफल है। कथा नायक विमल के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व और व्यावहारिक यथार्थता की उस पर प्रतिक्रिया का जो स्वरूप इसमे चित्रित हुआ है, वह समकालीन राजनीतिक और सामाजिक विचार-धारा से प्रभावित है। विमल की यह मान्यता है कि वास्तविक क्रान्ति केवल नारो और विज्ञानो से नही हो सकती, इसीलिए वह सिक्के की तरह ही यन्त्रो का भी विरोध करता है। 'चारिका' मे लेखक ने कथा मे रोचकता की सृष्टि के लिए अनेक मनोरजक दृष्टान्तो के माध्यम से आध्यात्मिक सत्यो का निरूपण किया है। इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी बडी सख्या मे इस उपन्यास मे उपलब्ध होते हैं जो गौतम बुद्ध के जीवन के उपलब्ध्यात्मक प्रसग है और जो उपन्यास की सपूर्ण कथा मे रोचकता की सृष्टि करने मे सहायक हुए है। 'दिगम्बर' और 'चित्र और चिन्तन' मे लेखक ने क्रमश विमल और कमल की विभिन्न मन स्थितियो का चित्रण किया है जिसमे चित्रण की सूक्ष्मता परिलक्षित होती है। इसके साथ ही दोनो औपन्यासिक कृतिया अपने युग, समाज तथा लोक जीवन के चित्र का प्रतिनिधित्व करती है एव इसमे जीवन की विविध अवस्थाओ का सूक्ष्म विश्लेषण भी हुआ है। 'चारिका' उपन्यास मे लेखक ने गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा के द्वारा दार्शनिकता से ओत-प्रोत मानव मन का चित्राकन किया है। आज मानव अपने मे लिप्त होकर इस वितृष्ण ससार मे भटक रहा है परन्तु आत्म ज्ञान के बोध से वह अपने समस्त बन्धनो, वेदना, क्लेष, दुख, जरा मरण शोक, तृष्णा आदि से मुक्त हो जाता है। इसके लिए मन शुद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है।

[२] द्विवेदी जी के उपन्यासों मे चरित्र-चित्रण . शास्त्रीय दृष्टिकोण से उपन्यास के उपकरणो मे कथानक के पश्चात् पात्र अथवा चरित्र चित्रण का स्थान है। वस्तुत उपन्यास का मूल विषय मनुष्य और उसका जीवन है और इस जीवन के विविध रूपो को पात्रो के ही माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इस दृष्टि से पात्र अथवा चरित्र चित्रण का तत्व उपन्यास मे आपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार ससार का अस्तित्व प्राणि मात्र पर निर्भर रहता है अथवा बिना मानव के हम समाज की कल्पना नही कर सकते, दोनो ही एक दूसरे के बिना अधूरे हैं, उनका कोई अस्तित्व नही, उसी प्रकार पात्रो के अभाव मे कथानक की भी कल्पना नही की जा

सकती। अत कथानक की आधार शिला उसके पात्र ही है। पाश्चात्य विद्वानो मे एब्बट का विचार है कि वस्तुत चरित्र वही कुछ होता है जो कि मनुष्य होता है।[1] लाजोये एग्री का विचार है कि चरित्र की सम्यक् व्याख्या करना कठिन है, क्योकि चरित्र वास्तव मे मनुष्य की अन्त प्रकृति होती है। उसे सामान्य रूप से नही जाना जा सकता। इसी जटिलता के कारण अभी तक चरित्र की पूर्ण विवृत्ति नही हो सकी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव चरित्र के स्वरूप पर विचार करते हुए विलियम आर्चर ने चरित्र को एक प्रकार की बौद्धिक, भावुक और हताश आदतो का सम्मिश्रण माना है। स्काट मेरेडिथ ने पात्रो के चरित्र चित्रण की व्याख्या इस प्रकार की है—चरित्र चित्रण किसी गद्य के पात्रो की वैयक्तिक तथा विशिष्ट विशेषताओ के पारस्परिक वैभिन्न्य का स्पष्टीकरण करने वाली प्रणाली है।[2] आधुनिक हिन्दी साहित्यकारो मे बाबू गुलाबराय ने चरित्र की व्याख्या इस प्रकार की है—'चरित्र से तात्पर्य है पात्र या मनुष्य के व्यक्तित्व का वाह्य और आन्तरिक स्वरूप। मनुष्य का वाह्य (उसका आकार-प्रकार, वेष-भूषा, आचार-विचार, रहन-सहन, चाल-ढाल, बात-चीत का निजी ढग तथा कार्य कलाप) उसके अन्त करण का बहुत कुछ प्रतीक होता है।'[3] श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे चरित्र चित्रण भी एक महत्वपूर्ण तत्व है, जिसका निर्वाह लेखक ने सजगता के साथ किया है। द्विवेदी जी के तीनो उपन्यास 'दिगम्बर', 'चारिका' तथा 'चित्र और चिन्तन' मुख्यत चरित्र-चित्रण प्रधान है। 'दिगम्बर' मे लेखक ने एक औपन्यासिक रेखाकन के रूप मे कृति का परिचय दिया है। इससे भी यह सकेत मिलता है कि इस रचना मे एक साकेतिक व्यजना है। 'चारिका' गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा का गूढ अभिव्यजना से युक्त कथा रूप है। इसमे लेखक ने अध्यात्मपरक एव बुद्धिवादी पात्रो की योजना करके कथा को परिपूर्णता प्रदान की है। द्विवेदी जी के उपन्यासो मे आयोजित पात्र विविध रूपात्मक हैं और उनका सम्बन्ध इतिहास के विभिन्न युगो से है। इसके अतिरिक्त इनकी कृतियो मे पात्रो की चारित्रिक व्याख्या के लिए चरित्र-चित्रण के विभिन्न स्वरूपो का आश्रय लिया है, जिनमे परिचयात्मक, विश्लेषणात्मक, साकेतिक, मनोवैज्ञानिक एव व्याख्यात्मक आदि रूप दृष्टिगोचर होते है। उपन्यास के चरित्र-चित्रण तत्व मे कलात्मक सौन्दर्य के हेतु यह आवश्यक है कि इसके प्रस्तुतीकरण के साथ इनके गुणो एव विशेषताओ को ध्यान मे रखा जाय। डा० प्रतापनारायण टडन

---

१. 'राइटर्स न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी आफ इग्लिश लैंगुवेज', एब्बट, १९५१, पृ० ४६१।

२. स्काट मेरेडिथ कृत 'स्टफिग दि हालो मैन . करैक्टराइजेशन', 'राइटिंग टु सेल्फ,' १९५०, पृ० ६२।

३. 'काव्य के रूप', बाबू गुलाब राय, पृ० १७८।

ने "हिन्दी उपन्यास कला" मे चरित्र-चित्रण के कतिपय गुणो का उल्लेख किया है। उनके अनुसार चरित्र-चित्रण मे निम्न विशेषताएँ होनी आवश्यक है—पात्रो की कथात्मक अनुकूलता, व्यावहारिक स्वाभाविकता, चारित्रिक सप्राणता, आधारिक यथार्थता, भावनात्मक सहृदयता, रचनात्मक मौलिकता, अन्तर्द्वन्द्वात्मकता, बौद्धिकता तथा कलात्मक परिपूर्णता। इन विविध गुणो के समावेश से लाभ यह होता है कि पात्र काल्पनिकता से परे व्यावहारिकता का आभास देते है।

उपन्यास अपने समग्र रूप मे सपूर्ण मानव जाति अथवा समाज का इतिहास होता है। मानव मे निजी स्वभावगत भिन्नता पाई जाती है, उसी के अनुरूप उपन्यास मे चित्रित पात्रो मे भिन्नता का आना स्वाभाविक ही है। उपन्यासो मे चित्रित कुछ पात्र आदर्शप्रिय होते है तो कुछ साधारण कोटि के। कुछ मे मानवीय गुणो की प्रचुरता होती है तो कुछ अमानवीय गुणो की बहुलता लिए हुए होते है। समस्त पात्र अपने-अपने वर्गो का प्रतिनिधित्व करते है, लेकिन उनमे से कुछ ऐसे भी होते है जो वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी अपने बौद्धिक स्तर पर उनसे भिन्न हो जाते हैं। इस प्रकार वर्गो के आधार पर पात्रो की भिन्न कोटिया हो सकती है (१) वर्ग प्रधान पात्र—जो अपनी सामान्य विशेषताओ एव आर्थिक हितो मे समानता के कारण किसी विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। (२) व्यक्तित्व प्रधान पात्र—जो बौद्धिक दृष्टि से अपनी निजी विशेषताओ के कारण उपन्यास के अन्य पात्रो से किंचित भिन्न एव विलक्षण होते हैं। कुछ विद्वानो ने एक अन्य भेद भी स्वीकार किया है . (१) स्थिर और (२) गतिशील या परिवर्तनशील। 'स्थिर चरित्रो मे बहुत कम परिवर्तन होता है और गतिशील चरित्रो मे उत्थान और पतन अथवा पतन और उत्थान दोनो ही बाते होती है।'[१] इसके अतिरिक्त पात्रो का वर्गीकरण एक अन्य दृष्टि से भी किया जाता है प्रमुख और सहायक पात्र। प्रमुख प्रात्र वे होते हैं जिनमे उपन्यास का मूल अभिप्राय केन्द्रित रहता है और जो उपन्यास मे गति का स्रोत माना जाता है। सहायक पात्र वे होते है जिनका कार्य बहुत कुछ घटनाओ को आगे बढाना तथा ऐसी परिस्थितियो का निर्माण करना होता है जो मुख्य पात्र या नायक के विकास मे सहायक हो। सहायक पात्रो को अग्रेजी मे 'फ्लैट', 'थिन' या 'डिस्क' चरित्रो का नाम दिया जाता है।[२] इस प्रकार उपन्यास के पात्रो मे वैविध्य और विस्तार होता है और वे अपनी चारित्रिक विशेषताओ के कारण विभिन्न युगो एव वर्गो का प्रतिनिधित्व करते है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे मुख्यत तीन कोटियो के अन्तर्गत पात्रो को वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमे से प्रथम कोटि मे वे पात्र आते है जो इन उपन्यासो के नायक हैं। औपन्यासिक रचना क्रम के अनुसार इस वर्ग मे केवल तीन

---

१. 'काव्य के रूप', डा० गुलाबराय, पृ० १७९।

२. 'हिन्दी उपन्यास कला', डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० १८१।

पात्र ही विशेष रूप से उल्लिखित किये जा सकते है—विमल, गौतम बुद्ध और कमल। इसी प्रकार से द्वितीय कोटि मे अर्थात् सहायक वर्ग के अन्तर्गत मालती, वैष्णवी, यमुना, इन्दुमोहन, शुद्धोदन, प्रसेनजित तथा यशोधरा आदि के नाम उल्लिखित किये जा सकते है। द्विवेदी जी के उपन्यासो मे एक तीसरी कोटि के पात्र भी है जो ऐतिहासिक युगो से सम्बन्धित है। गौतम बुद्ध, शुद्धोदन, राहुल तथा प्रसेनजित आदि के साथ बुद्ध के जीवन वृत्तान्त से सम्बन्धित अनेक पात्र पात्रिया इस वर्ग के अन्तर्गत रखे जा सकते है।

चरित्र-चित्रण की शैलियाँ उपन्यास के विविध पात्रो के चरित्र चित्रण के लिए उपन्यासकार को विभिन्न विधियो अथवा शैलियो का आश्रय लेना पडता है। स्थूल रूप से इन विविध विधियो को प्रत्यक्ष विधि अथवा अप्रत्यक्ष विधि के अन्तर्गत रखा जाता है, परन्तु आधुनिक विकासशील युग मे उपन्यास साहित्य के विकसित स्वरूप मे इन दोनो के भी अनेक सूक्ष्म भेद-प्रभेद किये गये है। यो मुख्यत॰ दो शैलिया विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष विधि तथा अभिनयात्मक या परोक्ष विधि है, जिनके अनेक भेद-प्रभेद उपन्यास मे अपना अलग अस्तित्व रखते है।

(क) विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष विधि इसमे उपन्यासकार अपने उपन्यास के पात्रो का एक वैज्ञानिक या आलोचक की भाति सूक्ष्म भावो, विचारो तथा मनोवृत्तियो का तटस्थ भाव से विश्लेषण करते हुए कभी-कभी उस विशेष पात्र के सम्बन्ध मे अपना अभिमत भी प्रस्तुत कर देता है। यही कारण है कि पाठक पात्रो से हार्दिक सामजस्य नही स्थापित कर पाते। इस पद्धति की एक अन्य मुख्य कमी यह भी है कि इसमे प्रमुख पात्र को छोड कर अन्य पात्रो के विकास की उपेक्षा कर दी जाती है। अन्य पात्रो के सम्यक् विश्लेषण एव उनके चारित्रिक विकास को दिखाने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हे ऐसी परिस्थितियो तथा सघर्षो के मध्य चित्रित किया जाए जिससे वे आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक, सास्कृतिक, आध्यात्मिक आदि स्तर पर क्रियाशील दिखने के साथ ही चरित्र के जटिलतम पक्षो का भी उद्घाटन करे। चरित्र-चित्रण की यह प्रणाली विशेष रूप से प्रचलित मानी जाती है और अधिकाश उपन्यास के पात्रो के चरित्र-चित्रण मे लेखक विश्लेषणात्मक शैली का ही अनुसरण करता है।

(ख) अभिनयात्मक या परोक्ष विधि उपन्यास के पात्रो के चरित्र-चित्रण की दूसरी विधि अभिनयात्मक कहलाती है। नाटक की चरित्र-चित्रण की प्रणाली ही उपन्यास मे अभिहित होने पर अभिनयात्मक विधि कहलाती है। अत प्रथम विधि की अपेक्षा यह अधिक कलात्मक एव नाटकीयता से पूर्ण होती है। इसमे उपन्यासकार स्वय कुछ न कह कर किसी पात्र के चरित्र का चित्रण या तो दूसरे पात्रो के माध्यम से करवाता है अथवा पात्र स्वय अपने सम्बन्ध मे वक्तव्य देता है। यह विधि अधिकाशत आत्मकथात्मक, पत्रात्मक अथवा डायरी शैली मे लिखे उपन्यासो मे प्रयुक्त होती है। इस पद्धति के द्वारा उपन्यासकार पात्र की सूक्ष्म से सूक्ष्म

वृत्तियो का उद्घाटन स्वय अपरोक्ष मे रह कर भी करने मे पूर्ण सफल होता है ।

(ग) स्वगत कथात्मक विधि . अभिनयात्मक विधि का ही एक रूप स्वगत कथन की विधि है । मनोवैज्ञानिक प्रभाव से प्रेरित उपन्यासो मे इस विधि का प्रयोग किया गया है । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस विधि का प्रमुख स्थान है । नाटको मे साधारणत इसका प्रयोग पात्रो के मनोभावो को व्यक्त करने के लिए किया जाता था जिन्हे अन्य पात्रो से गुप्त रखा जाता था । नाटको मे स्वगत कथन का स्वरूप अपरिवर्तित ही रहा परन्तु उपन्यास के क्षेत्र मे इसका समुचित विकास हुआ और यहा तक कि नाटक और उपन्यास मे स्वगत कथन के अभिप्राय मे भी भिन्नता आ गयी है ।

(घ) आत्मकथात्मक विधि यह विधि स्वगत कथन से कुछ भिन्न है । इसमे एक पात्र को प्रमुखता तो दी जाती है परन्तु उपन्यासकार उस पात्र के द्वारा स्वय की मानसिक प्रतिक्रियाओ और अनुभवो को व्यक्त करता है । स्वगत कथन एक शिल्प रूप है जब कि आत्मकथात्मक शैली किसी उपन्यास के आधार को वास्तविकता प्रदान करती है । चरित्र-चित्रण मे आत्मकथात्मक का उद्देश्य आत्मोन्वेषण, आत्मसमर्थन या अतीत की पुनरानुभूति की अभिव्यक्ति करना है । इसमे उपन्यासकार अपनी आप बीती को किसी विशिष्ट पात्र द्वारा कल्पना का समावेश करता हुआ अभिव्यक्त करता है ।

(ङ) सवादात्मक विधि · पात्र के चरित्र चित्रण मे कथोपकथन का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । चरित्र चित्रण मे सजीवता लाने के लिए सवाद अथवा कथोपकथन का आश्रय लिया जाता है । दो पात्रो के वार्तालाप से सूक्ष्म मानसिक प्रतिक्रियाएँ, आचार-विचार, सकल्प विकल्प, तर्क क्षमता, भावनाएँ, सवेदनाएँ, सहानुभूतियां आदि चरित्र के गूढतम रहस्यो का उद्घाटन कथोपकथन विधि के द्वारा ही सम्भव हो पाता है । इस प्रकार कथोपकथन के द्वारा मानव के अन्तर्मन की अनेक मनोवैज्ञानिक गुत्थियो का रूप प्रस्तुत हो उठता है जो जाने अनजाने मे मुख से निकल जाता है ।

(च) विवरणात्मक विधि पात्रो के चरित्र-चित्रण की एक अन्य विधि विवरणात्मक है, जिसमे उपन्यासकार पात्र के चरित्र-चित्रण मे उसके स्वभाव एव विशेषताओ से सम्बन्धित विवरणो को प्रस्तुत करता है । इसकी मुख्य विशिष्टता चरित्र-चित्रण की पूर्णता है जिससे पात्र के व्यक्तित्व के सभी पक्ष उभर कर स्पष्ट हो उठते हैं । व्यावहारिक दृष्टि से इसमे कलात्मकता का अभाव होता है तथा उपन्यास मे नीरसता सी आ जाती है ।

(छ) सकेतात्मक विधि · विवरणात्मक प्रणाली से आधुनिक सकेतात्मक प्रणाली सर्वथा भिन्न है । इसमे किसी पात्र के चरित्र का सीधा सादा वर्णन न करके उसका मात्र सकेत कर दिया जाता है । नायक के चरित्र के किसी पक्ष विशेष की

अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम सकेतात्मक भी है। इसमे लेखक प्रतीक, वातावरण, उपमान, घटनाओ, फ्लैश बैक आदि के द्वारा साकेतिक विधि से चारित्रिक विशिष्टताओ की ओर सकेत करता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस विधि का विकास उपन्यास के आधुनिक रूपो के साथ हुआ है।

(ज) मनोवैज्ञानिक विधि आधुनिक उपन्यासो मे मनोविज्ञान के तत्वो का समावेश एक महत्वपूर्ण घटना है। इसने आधुनिक उपन्यासो के विकास एव प्रगति मे अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक उपन्यास के प्राय. सभी रूपो मे चरित्र-चित्रण के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि को स्वीकार किया गया है जो इसकी नवीनता की ओर सकेत करता है। इसके साथ ही मनोविज्ञान चित्रण की सूक्ष्मता का भी परिचायक है। चरित्र-चित्रण की अन्य विधियो की तुलना मे इस नवीन विधि को ही उपन्यास मे अधिक महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

द्विवेदी जी के उपन्यासो मे विभिन्न कोटियो के पात्रो के चरित्र-चित्रण के लिए जिन विधियो का प्रयोग किया गया है उनमे से प्रमुख परिचयात्मक, विश्लेषणात्मक, सकेतात्मक, व्याख्यात्मक तथा मनोवैज्ञानिक है। उदाहरण के लिए विमल तथा कमल के चरित्र विश्लेषणात्मक, मनोवैज्ञानिक एव सकेतात्मक विधियो से चित्रित हुए हैं। गौतम, शुद्धोदन, प्रसेनजित तथा यशोधरा के चरित्रो मे परिचयात्मक तथा सकेतात्मक विधियो का भी आश्रय लिया गया है। मालती, वैष्णवी, यमुना तथा यशोधरा आदि के चरित्र भी मुख्यत मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रधान ही है तथा परिचयात्मक एव व्याख्यात्मक विधियो का प्रयोग भी यथास्थान हुआ है। नीचे द्विवेदी जी के पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ के सन्दर्भ मे उनका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

विमल 'दिगम्बर' के प्रमुख पात्र विमल के चरित्र के अकन मे मुख्यत. विश्लेषणात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा सकेतात्मक शैलियो का आश्रय लिया गया है। प्रस्तुत तथ्य को 'दिगम्बर' मे स्थान-स्थान पर अवलोकित किया जा सकता है। 'दिगम्बर' का नायक काव्य शास्त्र मे वर्णित नायकत्व के विशिष्ट गुणो से आभूषित न होते हुए इसी ससार का चलता-फिरता मानव है जो इस ससार मे रहते हुए भी निर्लिप्त रहता है, परन्तु निर्लिप्त रहते हुए भी संघर्षो से लडता है। बचपन की अबोधता मे भी उसके अन्दर एक लालसा पनप रही थी जो उसके भविष्य के जीवन की ओर सकेत करती है 'बचपन मे देहाती मदरसे मे जमीन पर उगलियो से वह वर्णमाला लिखने का अभ्यास करता था। इसके बाद कलम से कागज पर खुशखत लिखने लगा। सुन्दर सुडौल अक्षर लिखने का उसे शौक था। यह उसका कलानुराग था, शिल्प प्रेम था, सौन्दर्य सस्कार था।' विमल को दुखी मनुष्यो से स्नेह है। वह अपनी नैसर्गिक प्रतिभा से मानव की प्राकृतिक सुषमा मे स्वय को आत्मसात् कर लेता है। प्रकृति मे उसे अपना प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है, उससे वह तादात्म्य स्थापित कर लेता था परन्तु इस संसार मे वह नही रम पाता। सभी ओर विद्रुपता का

नर्तन होता रहता था। विमल के चरित्र का विश्लेषण लेखक ने अत्यन्त सूक्ष्मता से किया है 'गवई गाव का गोबर गणेश विमल नगर मे आकर प्रवृत्तियो की ओर उन्मुख होता जा रहा था। वह भी संसार मे सतरण करना चाहता था, लेकिन मार्ग नही मिल रहा था। ससार यदि नदी, तालाब और समुद्र की तरह आर्द्र होता तो उसका सजल कोमल हृदय ऊब डूब कर भी उसमे सन्तरण कर लेता। किन्तु यह तो चट्टान की तरह कठोर, पहाड की तरह दुर्गम, दुर्ग की तरह दुर्भेद था। अपने सुकुमार पगो से कैसे इस पर अभियान करे। जीवन-यात्रा उसे एक जटिल समस्या जान पडती थी।' लेखक ने नायक के चरित्र का विश्लेषण आधुनिक समाज को दृष्टि मे रख कर किया है एव नायक के माध्यम से अपने वास्तविक समाज का चित्र खीचने का प्रयास किया है। ऊँची हवेलियो के पीछे भी कृपण मन छिपे होते है, जो समाज की चपलता, चालाकी एव चापलूसी मे शीघ्र ही पिघल उठते है। समाज मे मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे स्वार्थों के दाव-पेच एव चतुराई की मोहरें चलती हैं। ससार मे आज गतिशील केवल सिक्का है। मानव स्वय टकसाली होता जा रहा है। सिक्के का मान दिन प्रतिदिन बढता ही जा रहा है।

प्रस्तुत उपन्यास का प्रमुख पात्र विमल एक कला जीवी मानव है, जो ससार मे अपने वर्ग का सागोपाग प्रतिनिधित्व करता हुआ ससार मे निस्सहाय, बेसहारा, अर्थसिक्को से अनभिज्ञ अपनी अबोधता और निरीहता लिए हुए प्रवेश करता है। समाज से सघर्ष करता हुआ भी उससे सामजस्य नही कर पाता। इस सघर्षात्मक स्थिति मे भी मानव स्वय की इच्छाओ का प्रत्यक्षत कितना ही दमन क्यो न करे, वह निर्लिप्त क्यो न रहे, अप्रत्यक्ष रूप मे उस पर इस ससार की चमक-दमक, रूप-रग, माया का प्रभाव अवश्य ही पडता है, वह उस ओर आकर्षित होता है। लेखक ने इस तथ्य का विश्लेषण विमल के माध्यम से ही कराया है 'भाग्य का परिहास—बाल विहग को आश्रय मिला भी तो ठूठ पर। घर के दरबो मे कपोत की तरह, निष्प्राण गृह मे प्राणवायु की तरह विमल उस प्रासाद मे रहता था। वहा का विषण्ण वातावरण अपनी नीरसता से उसकी सजीवता का शोषण करने लगा। . एक जगह जम जाने पर विमल को रूप रग माया का ससार गृहस्थो की तरह ही शोभा श्रृगार के लिए उकसाने लगा। खादी की लुगी पहनने वाला वह बालयोगी अब तरुण रसभोगी हो चला। ..खादी तो वह अब भी पहनता था, क्योकि नगर के चाकचिक्य मे आत्मविस्मृत नही हो गया था। लेकिन खादी जिस प्रकृति का मानवीय परिधान था, उस प्रकृति की इन्द्रधनुषी शोभा से अछूती नही रह सकी। विमल की सादगी मे रगीनी की झलक आ गयी।' आधुनिक युग के समाज मे बिना किसी घर द्वार के आधार के यह समाज एव जीवन एक बुद्धिजीवी मानव के लिए बीहड जगल बन जाता है जहा दया, माया, ममता, स्नेह एव मनुष्यता का अभाव रहता है। परन्तु विमल इन अभावो को भी अपने पर हावी नही होने देता था वह इन सबसे ऊपर मनस्वी व्यक्ति था। लेखक ने विमल के

चरित्र को अकित करने के लिए विश्लेषणात्मक शैली का यत्र-तत्र प्रयोग किया है। विभिन्न सकेतो एव मनोवैज्ञानिक तथ्यो का आश्रय लेकर उनके जीवन की अनेक झाकियो को चित्रित कर वास्तविक समाज मे उसकी स्थिति का परिचय दिया है। इसके लिए लेखक ने सकेतात्मक एव मनोवैज्ञानिक शैलियो का आश्रय लिया है। विमल मे आकाश वृत्ति के साथ ही सग्रह करने की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव था जो उसकी दानप्रियता एव ससार से निर्लिप्तता की ओर सकेत करती है। इसी कारण वह आधुनिक युग मे समाज के व्यावहारिक रूप रग से सर्वथा विलग है। 'विमल भी क्या जनता जैसा ही है। जीवन की समस्याओ और आवश्यकताओ मे वह उसी की सतह पर है, किन्तु उसमे जनता की दुनियादारी नही है। इसीलिए उसके जीवन मे निर्धनता है। इस युग मे जबकि सभी वर्गो, सभी वर्णों मे वाणिज्य वृत्ति ओर धोखा-धडी आ गयी है, विमल अब भी आकाशवृत्ति से ही जीने का प्रयास कर रहा है। भगवती बीणापाणि के आशीर्वाद से जो मिल जाता है उसी मे सन्तोष करता है, उससे अधिक के लिए राग द्वेष और प्रतिस्पर्द्धा नही करता। . विमल कैसे जी रहा है, यह नही जानता है। उसकी वेदना तो मूक पशुओ की सी है। किससे कहे, क्या कहे—काहू के मन की काहू न जाने, लोगन के मन हासी।'[१].. लेखक ने विमल का वास्तविक चित्र इस प्रकार चित्रित किया है 'विमल भावुक ही नही, स्वय भाव था, कवि ही नही, स्वय काव्य था, कलाकार ही नही, स्वय कला था, साहित्यकार ही नही, स्वय साहित्य था। जैसे फूल अपने सौन्दर्य का स्रष्टा भी है और स्वय ही सृष्टि भी है।' अन्य साहित्यकारो का साहित्य भी एक फैशन था जिसमे स्पन्दन, कम्पन, धडकन और जीवन का आभास न था। जो स्वय उपहास के पात्र थे वही उसका उपहास करते थे। लेकिन विमल मे भी दुर्बलताएँ थी क्योकि वह भी इसी समाज का एक जीता जागता सजीव प्राणी था। 'विमल मे भी देह की दुर्बलता है। लेकिन उसकी दुर्बलता किसी कृत्रिम आवरण से ढकी छिपी नही है, अपने बाहर-भीतर अच्छा-बुरा वह जैसा भी है सबके सामने खुला हुआ है, उघरा हुआ है। फिर भी नगा नही, दिगम्बर है।...भीतर की जो चेतना बाहर भी दिशाओ की तरह सूक्ष्म होकर देह का दिगचल अथवा द्रौपदी का अनन्त दुकूल बन गयी है, सीमा को असीमता और दृश्य को अदृश्य का आभास दे रही है, उसी की साधना स्थूल की मर्यादा है, जडता की सजीवता है, देह की दिगम्बरता है। विमल जीवन के इस स्वरूप को पहिचानता है। उसी से तद्रुप हो जाना चाहता है। . अपने पशु शरीर मे वह प्राकृत प्राणी है, अपनी चेतना मे सुसस्कृत आत्मा। उसकी दिगम्बरता मे यथार्थ की वास्तविकता और आदर्श की आत्मव्यजना है। एक साधन है, दूसरा साध्य। विमल साध्य के प्रति सजग है।' विमल के जीवन के विभिन्न रूपो के चित्रण मे लेखक ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का

---

१ 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १०६-१०७।

भी आश्रय लिया है 'विमल मे देह की दुर्बलता (भूख, प्यास) है, मन की मलिनता नही, इसी लिए वह विमल है। अपने नाम के अनुरूप ही सबमे विमलता देखना चाहता है। किन्तु उसे कही भी जीवन की शुद्धता नही मिलती। लोग पशुओ की तरह खाते है, उन्ही की तरह मल मूत्र का विसर्जन करते है। अपनी दुष्प्रवृत्तियो से वातावरण को दूषित करते है।' इस प्रकार 'दिगम्बर' का प्रमुख पात्र विमल वास्तव मे इस युग एव समाज के लिए दिगम्बर सदृश है, जो ससार से निर्लिप्त एव शान्त हृदय है। ससार के विभिन्न विकार जिसे अपनी ओर आकर्षित करते हुए भी अपने मे लिप्त नही रख पाते। इस प्रकार लेखक ने उपन्यास मे प्रमुख पात्र के रूप मे विमल के चरित्र चित्रण द्वारा अपरोक्ष रूप मे इसी समाज के एक भावुक, कल्पनाशील एव निम्न मध्यम वर्ग के व्यक्ति का यथार्थ एव सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

वैष्णवी 'दिगम्बर' के अन्य चरित्रो मे वैष्णवी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वह बाल विधवा तपस्विनी के रूप मे सासारिक कष्टो को सहती एव उनसे अपनी आत्मिक शक्ति के आधार पर सघर्ष करती हुई जीवन व्यतीत करती है। लेखक ने उसके चरित्र को व्यक्त करने के लिए प्रमुखत- परिचयात्मक शैली का ही आश्रय लिया है पर कही-कही पर अन्य शैलिया भी वैष्णवी के चरित्र को सजीव बना देती है, अत यत्र-तत्र उनका रूप भी दृष्टिगोचर होता है। परिचयात्मक शैली के अन्तर्गत हम यह दृष्टान्त ले सकते है 'दैव दुर्विपाक से वह विधवा थी, समाज मे अभिशप्ता थी, किन्तु दैवी और सामाजिक सहयोग न मिलने पर भी वह कगाल नही थी। उसकी चेतना ने उसे आत्मिक ऐश्वर्य (अन्तर्विकास) दे दिया था। सस्कृति और कला से उसका जीवन सगुण काव्य हो गया था।...काशी वह तीर्थ यात्रा के लिए नही आयी थी। यहा तो उसके पिता जी ज्ञानोपार्जन के लिए आये थे, उन्ही के पीछे-पीछे जान्हवी की तरह माता भी इस नीरजा को अपने वक्षस्थल से लगाये हुए चली आयी। पिता तो विरक्त सन्यासी हो गये, माता गोलोकवासिनी हो गयी। दोनो की सजीव स्मृति इस विप्रकन्या (आत्मप्रज्ञा) मे शेष रह गयी।' वैष्णवी के चरित्र के उज्ज्वल पक्षो को प्रकाशित करने के लिए लेखक ने विश्लेषणात्मक शैली को प्रश्रय दिया है। वैष्णवी अबला, कोमल और सुकुमार थी परन्तु कमजोर न होकर सबल थी। उसमे सौन्दर्य और कला का सामजस्य था। नारी अपनी कोमलतम भावनाओ मे ही केन्द्रित रहती है। दूसरो को अभिशप्त देखकर उसकी करुण पुकार पर वह दौड पडती है। समाज की प्रताडना की उसे चिन्ता नही रहती। अपने साथ वह अन्य दुखी जनो को भी अपने मे ही समेट रखना चाहती है। स्वय उसके नैराश्य पूर्ण एव दुखमय समय मे भी यदि कोई अपनी मनोवृत्तियो मे बाल रूप अबोधता लिए, उसके समक्ष प्रस्तुत हो जाये तो वह उसे भी ललक कर अपना लेती है। वैष्णवी भी इन मनोवैज्ञानिक सत्यो से अपने को अलग नही रखती है। उसके चरित्र मे नारी की समस्त कोमल एव वात्सल्ययुक्त भावनाओ का स्पन्दन और सम्मिश्रण हो गया है।

मालती . अन्य सहायक स्त्री पात्रो मे मालती का नाम भी उल्लिखित है। मालती एक गरीब घर की अभिमानिनी लडकी है। उसके माता-पिता लडके के सिक्को की चमक-दमक की ओर आकर्षित हो कर उसकी शादी कर देते है। लेकिन उनमे सामजस्य का अभाव ही रहता है। अपने घर की अभावग्रस्तता के कारण उस बेचारी का बचपन न खिल सका था, और ससुराल मे भी वह सुख का आनन्द न प्राप्त कर सकी। विवाह के उपरान्त भी 'उसके शरीर मे कोई परिवर्तन नही हुआ। शरीर तो पनप नही सका, बचपन का मुकुलित मन भी मुरझाया ही रहता। अब वह न तो कन्या ही थी, न परिणीता वधू ही थी। उसकी दुबली-पतली श्रीहीन काया नियति की एक पैरोडी मात्र थी। उसके सीमन्त मे सुहाग का सिन्दूर किसी कच्ची सडक पर सुर्खी के निशान की तरह थी। महाकाल ने मानो अब उसके जीवन को भी अपने लाल फीते से नापना शुरू कर दिया था।' इस प्रकार लेखक ने एक दुखमारी स्त्री का चित्र खीचा है जो अपनी निरीहता के कारण न तो खुल कर सघर्ष ही कर सकती है और न उनमे लिप्त ही तो पाती है। लेखक ने मालती के चरित्र का विश्लेषण अत्यन्त ही सूक्ष्मता से चित्रित किया है। मानव के कई रूप होते है। एक ओर जहा वह समाज मे अपने वाह्य आवरण मे सबलता एव निडरता दर्शित करता है वही दूसरी ओर वह स्वय अपने अन्तर्द्वन्द्वो मे फस कर उचित और अनुचित का बोध नही कर पाता है। परन्तु जब उसे बोध होता है तब या तो वह उसका वहिष्कार कर देता है अथवा स्वयं को उसे स्वीकार करने हेतु तैयार कर लेता है और वह चल पडता है उसी राह पर, वह उचित हो अथवा अनुचित। नारी भी इन परिस्थितियो से विलग नही है। वह अपनी सबलता मे समाज से सघर्ष करते हुए जीवनयापन करती है, तो अपनी अबोधता मे वह समाज के बन्धनो को भी स्वीकार करती है। इस पर भी वह अपने आन्तरिक द्वन्द्वो मे फसती है और दृष्टि खुलते ही वह उसका वहिष्कार कर देती है। लेखक ने इस मनोवैज्ञानिक सूत्र को भी मालती के माध्यम से चित्रित किया है '...किसी दिन मालती की मा के अनुरोध से जब विमल ने उसके यहा भोजन किया तब वहा का घरेलू भोजन उसे रुच गया। घर की वृद्धा के शय्याग्रस्त हो जाने पर वह फिर भोजन के लिए वही जाने लगा। मालती आयी थी। विमल को देखकर उससे कहा—कहा थे इतने दिन। मैं तुम्हे पूछ रही थी। ..विमल को विश्वास नही हुआ कि यह सदा की रूखी मालती उसे पूछ सकती है। उसने आश्चर्य और हर्ष से विस्मित होकर कहा—क्या सचमुच मुझे पूछ रही थी? . हा, इनसे पूछो—मालती ने मुस्कराते हुए मा की ओर इशारा कर दिया। सदा अपने मे गुमसुम रहने वाली मालती कैसे हो गई। उसकी मुस्कराहट मे कैशोर्य्य का सारल्य था, किन्तु मुख कुछ विवर्ण था, मानो सारल्य और तारुण्य का सघर्ष अवसाद बन कर छा गया था।...जब कभी आते-जाते अचानक उससे भेट हो जाती तब मालती मुह से कुछ नही कहती, हाथ हिला कर 'नही-नही' कहती। यह कैसी पहेली है। अभी

उस दिन तो कहती थी, पूछ रही थी, अब यह कैसी अवहेलना है, वर्जना है। विमल तो उससे कुछ कहता नही था, मागता नही था, फिर इस निराशाजनक उत्तर की क्या आवश्यकता थी।' और जब मालती अपनी ससुराल से हमेशा के लिए पुन अपने पिता के यहा आई तो विमल सवेदना के वशीभूत होकर उससे विवाह के लिए तत्पर हो गया, लेकिन उसके पास उसे खरीदने एव उनके माता-पिता को तृप्त करने के लिए धन का अभाव था 'सवेदना से विगलित विमल के मन मे एक बात आयी क्यो न वह मालती से विवाह कर ले। शायद वह उसे वैभव का सुख न दे सके, किन्तु जैसे सबके लिए वैसे उसके लिए भी अपनी सुविधाओ का उत्सर्ग तो कर ही सकता है, प्रेम की तन्मयता तो दे ही सकता है।' मालती मे कोई कवि कल्पित सौन्दर्य नही था। शिक्षा का भी अभाव था। किन्तु विमल उसके बाल्य चापल्य पर रीझा हुआ था। सयानी हो जाने पर भी उसमे शिशुता की झलक बनी हुई थी। बच्चो जैसा मन और घर गृहस्थी मे श्रम से तपा हुआ जीवन। अपनी साधना के लिए विमल को ऐसी ही सगिनी चाहिए।' ..प्रसगवश एक दिन उसने मालती की मा से कहा—थोडे से अन्न वस्त्र के लिए इसे किसी की पराधीनता की क्या आवश्यकता है। मैं इसे अपनी गृहस्वामिनी के रूप मे शिरोधार्य कर सकता हूँ।·· पिता अपने छक्के पजे मे लगा हुआ था। कई दिनो बाद विमल ने जब अपनी बात दोहराई तब मा ने कहा—वे तो राजी है, लेकिन . लेकिन...मालती पसन्द नही करती।' उपर्युक्त उदाहरण मे लेखक ने मालती की वास्तविक परिस्थितियो पर प्रकाश डाल कर उसके जीवन एव कतिपय चारित्रिक विशेषताओ की ओर सकेत मात्र किया है। मालती निरीह एव अबोध स्त्री है जिसे माता-पिता अपने बचाव के लिए ढाल बना कर प्रयोग करते है और वह सिर्फ सहती है समाज के प्रहारो को तथा मुँह से सिसक भी नही निकालती। लेखक ने मालती के माध्यम से समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने का भरसक प्रयत्न किया है।

इन्दुमोहन इस उपन्यास के सहायक पात्र 'इन्दुमोहन' के नाम के सदृश ही लेखक ने उसका व्यक्तित्व भी वैसा ही चित्रित किया है। विमल के भावो की वह प्रतिमूर्ति था। लेखक ने इन्दुमोहन के परिचय का विश्लेषण इस प्रकार से दिया है जिससे उसके आन्तरिक गुणो का भी बोध हो जाता है—'जैसा नाम वैसा ही आकर्षण। सुन्दर प्रसन्न मुख, हृदय ही मानो सुधाकर हो गया था। कोमल, उज्ज्वल, स्निग्ध सजल, उस व्यक्तित्व को देखकर ही विमल के प्राण जुडे जाते थे। उसके मौन सपर्क से ही शाति मिल जाती थी। . विमल अब तक जिन कलाकारो से परिचित हुआ था, वे सब कला के रगरेज थे। किन्तु इन्दुमोहन था प्रकृति का प्रेमल चित्रकार। जिस शिल्पी ने प्रकृति का निर्माण किया था उसी का दिव्य प्रतिनिधि था इन्दुमोहन।' इन्दुमोहन एक धनाढ्य चित्रकार था जिसने अभावो का कभी दर्शन तक न किया था। उसी के चित्रो मे कवि बिमल को अपने जीवन की

झाकिया मिलती। उसमे प्रकृति की नैसर्गिक सुन्दरता के आभास के अतिरिक्त इन दोनो के मध्य कही पर एक बडा अन्तर था जो मिलने पर भी इन दोनो को दूर रखता। यह मनोवैज्ञानिक अन्तर था, वह केवल अपने ही आनन्द मे आत्मविभोर रहता, अपनी ही वेदना मे लिप्त परन्तु दूसरो के प्रति वह सवेदनशील नही हो पाता था। विमल इस अन्तर को कुछ समय पश्चात् स्पष्ट रूप मे समझ गया था। 'विमल इन्दुमोहन से प्राय मिलता रहता था। सच तो यह कि कला के क्षेत्र मे वही उसका आराध्य था। लेकिन दोनो की सामाजिक परिस्थितियो मे बडा अन्तर था, इसीलिए दोनो मे व्यावहारिक अन्तर भी था। ..अब तक विमल ने कभी किसी के सामने आत्महीनता का अनुभव नही किया था, अब वह आत्महीनता का अनुभव करने लगा।.. एक इन्दु था तो दूसरा ओस विन्दु। हृदय से समीप होकर भी दृश्य जगत मे दोनो मे दूरी बनी रही। विमल पृथ्वी पर रहकर ही पृथ्वी से निर्लिप्त था, इन्दुमोहन निर्लिप्त होते हुए भी पृथ्वी पर नही था। उसमे अग-जग के प्रति सजग तटस्थता थी, अन्यमनस्कता थी। कभी-कभी जब वह विमल से हस-बोल लेता तो उसकी अधेरी दुनिया मे कुछ देर के लिए चादनी छिटक जाती। इसके बाद फिर वही अन्धकार, वही प्रतिदिन का स्वार्थलिप्त तामसिक ससार। ..'

यमुना इन्दुमोहन के विपरीत लेखक ने यमुना का चरित्र अत्यन्त ही करुणा से पूर्ण दिखलाया है। यमुना अपनी निरीहता मे भी दूसरो के प्रति सवेदनशील थी। यद्यपि वह भी इस विद्रुप ससार की कटुता से आक्रान्त थी परन्तु उसकी नैसर्गिक आभा, करुणापूर्ण हृदय एव सवेदनशीलता लुप्त न हुई थी। लेखक ने उसका परिचयात्मक सकेत अत्यन्त ही सूक्ष्म एव भाव प्रवणता मे किया है 'कुहू-कुहू...अरे, अन्धकार मे यह कौन कुहुकिनी कुहुक उठी। यह तो वेदना की सगीतमयी आत्मा यमुना है। अपनी हूक से विधाता के अभिशाप (जीवन के अन्धकार) को चुनौती दे रही है। इसके सन्तप्त कठ मे सीता, राधा और शकुन्तला का सामाजिक क्रन्दन है, नारी के विगलित हृदय का युग प्लावन है। प्रकृति का यह भी एक दुखान्त चित्र है।' इस प्रकार लेखक ने स्पष्ट परिचय न देकर सकेतात्मक विश्लेषण का आश्रय लिया है जो उस वेदना की मूर्ति की स्पष्ट भावात्मक छवि अकित करती है। लेखक ने इन्दुमोहन और यमुना के मध्य अन्तर को अत्यन्त हृदयस्पर्शी रूप मे इस प्रकार व्यक्त किया है कि एक वस्तु के दो पक्ष दोनो मे अलग-अलग थे। एक की कला कृतियो मे जो सौन्दर्य और उल्लास था वही विवादात्मक रूप मे यमुना के सगीत मे गुजरित होता रहता था। इस प्रकार लेखक ने मनोवैज्ञानिक तथ्यो के द्वारा विमल और इन्दुमोहन के चरित्रो को प्रश्रय देकर यमुना के चरित्र का परिचय विश्लेषणात्मक शैली मे दिया है जिसका आविर्भाव मात्र एक प्रासगिक कथा के अन्तर्गत इन्दुमोहन के चरित्र को विश्लेषित करने के लिए हुआ है।

कमल . 'दिगम्बर' के प्रमुख पात्र विमल के ही प्रतिरूप मे 'चित्र और चिन्तन'

का प्रमुख पात्र कमल भी इस ससार की विद्रुपता से त्रस्त है। वह कल्पना जीवी कलाकार था परन्तु यथार्थता की सासारिक पृष्ठभूमि मे बौद्धिक होते हुए भी व्यावहारिकता मे वह मन्द बुद्धि था। आत्मलीनता उसके चरित्र का स्वाभाविक गुण है। उसे अपना अतीत जीवन याद आता है और स्मरण आते है इस नश्वर जीवन के वे विशिष्ट क्षण · 'वह भी किसी परिवार मे उत्पन्न हुआ था। उसे याद आती है माता पिता, भाई बहिन की। एक-एक कर सभी तो चले गये, रह गया वह अकेला। सूनापन ही उसका जीवन हो गया।' ससार की विभिन्न परिस्थितियो मे वह अपने भावो का स्पन्दन नही देख पाता है। उसे मानव स्वार्थी और सवेदन शून्य दृष्टिगोचर होता है। इस ससार मे मानवता एव प्राणता का लोप हो गया है, वह केवल बाजार बन गया है और जीवन केवल मोल-तोल रह गया है। ससार की सासारिकता और समाज के कटु आघात उसे क्षत विक्षिप्त कर देते है 'कमल कलाकार है। शैशव मे परिवार से जो रागात्मक सस्कार मिला उसी को सजोकर वह पृथ्वी पर स्वर्ग की सृष्टि करता आ रहा था। अचानक एक दिन उसे ऐसा जान पडा कि उसका हृदय वैसे ही रिक्त हो गया है जैसे किसी चित्रकार का रग जगत।' इस प्रकार लेखक ने सकेतात्मक शैली मे कमल के चरित्र को चित्रित किया है। वह कल्पना जगत मे रहने वाला भावुक व्यक्ति है एव अनासक्ति उसके चरित्र का सबसे बडा गुण है। अपने इस एकाकीपन मे कुमुदिनी का परिचय उसके मन मे कोमल भावनाओ की सृष्टि करता है, परन्तु विपत्ति ग्रस्तता कुमुदिनी और उसकी कल्पना की कमलिनी दोनो ही उसके सूनेपन मे उसे छोड देती हैं। दोनो ही अपने अभिशप्त जीवन को स्वीकार कर समाज की तराजू मे स्वय को तौल कर उसे निस्सहाय छोड देती है और वह जिस सूनेपन से बाहर निकलता है पुन उसी मे लौट जाता है। शून्य ही उसका बसेरा है। इस प्रकार लेखक ने कमल के माध्यम से आधुनिक युग के एक कल्पनाशील एव भावुक व्यक्ति का चित्र प्रस्तुत किया है जो समाज मे अपना कोई स्थान न बना पाने के कारण तथा अपनी आत्मा का प्रकाश ससार मे न देख कर वह स्वय ही आत्मलीन हो जाता है, अपने ही शून्य मे खो जाता है।

लेखक ने आधुनिक समाज का वास्तविक विश्लेषण कमल की मन स्थिति के आधार पर किया है। इसमे कमल की विरक्तिजनक भावनाएँ हैं जो लेखक के दार्शनिक विचारो की अभिव्यक्ति करते है। आधुनिक धर्म भावना कमल मे एक श्रद्धा जाग्रत करती है। उसे अपनी हिन्दू परम्परा के कलात्मक और सास्कृतिक पर्वो का स्मरण होता है जो किसी न किसी धार्मिक भावना से ओतप्रोत होते हैं। कमल को अपनी अग्रजा का स्मरण होता है जिसमे 'दीनता नही, कुरूपता नही, अपवित्रता नही, उसका जीवन ओजस्विता, रुचिरता, शुद्धता का सगम था। अपनी सुसस्कृत रुचि से वह जीवन के पग-पग को प्रयाग बना कर चलती थी, घर को भी मन्दिर बना देती थी।' उपन्यास मे कमल की डायरी के अन्तर्गत मृत्यु से सम्बन्धित चिन्तन को

प्रत्यक्ष किया गया है । इसमे कमल की अग्रजा की बीमारी, मृत्यु तथा कमल के द्वारा हुई गलती के प्रति पश्चाताप है । लेखक ने आधुनिक समाज का वास्तविक चित्रण किया है । कमल की विभिन्न चारित्रिक विशेषताओ को प्रकाश मे लाया गया है तथा इसमे सासारिक विडम्बनाओ का अकन है । ससार की निर्ममता एव निष्ठुरता मे भी कमल अपने को चेतन रखने की चेष्टा करता है । वह दूसरो पर अविश्वास नही कर सकता । कमल जीवन की शुचिता, रुचिरता और सनातन सस्कार की ऋजुता के आधार पर ही लोक के पथरीले मार्ग को पार करना चाहता है परन्तु जनता की जडता और यात्रिक निर्जीवता से लोक पथ इतना दुर्गम हो गया कि उसे पग-पग पर गत्यावरोध का सामना करना पडता है । 'भक्ति और युग' मे व्यक्ति विशेष का सकेत करके लेखक ने गाधीवादी जीवन दर्शन की व्यावहारिक व्याख्या की है । लेखक ने कमल के अभावो एव व्यक्तिगत रिक्तता को समग्र रूप से उसे विश्व का अभाव तथा शून्यता माना है ।

कुमुदिनी कुमुदिनी की चारित्रिक विशेषताओ के अकन मे लेखक ने कमल के माध्यम से उसका परिचयात्मक सकेत किया है जो उसकी सादगी, सुषमा से प्रभावित था—'किसी सीधी-सादी कविता सी उसकी सरलता देख कर कवि हृदय कमल उससे आत्मीयता का अनुभव करने लगा । वह उसे जानना और अपनाना चाहने लगा । कमल का यह कैसा स्वभाव है कि जो कुछ प्रिय देखता है उसे अपना लेना चाहता है, अपनी रिक्तता को भर लेना चाहता है । स्वाती की एक बूद भी उसे मिल जाती तो उसका जीवन इतना शून्य और लालायित नही होता । .जब वह बोलती तब मानो पृथ्वी ही उसके कठ मे प्रस्फुटित हो जाती । कमल ने अनुभव किया, यदि ऐसी ही कन्या गृहिणी के रूप मे मिल जाती तो उसका जीवन कितना धन्य हो जाता ।' लेकिन विधि की विडम्बना—जहा कीचड है वही कमल पुष्प खिलता है, कुछ ऐसी ही स्थिति कुमुदिनी की भी थी । वह अपनी विधवा मौसी के साथ देवोत्तर सपत्ति (मकान) मे किराये पर निवास करती थी । उसकी विधवा मौसी मे शुचिता रुचिरता के अभाव के साथ ही कुत्सित और घिनौनापन सा था । वह जहा रहती थी, उस देवस्थान का रखवारा.स्वय देवता बन बैठा था जो केवल वा ह्याडम्बर मे ही शुद्ध तथा सात्विक था, स्वभाव मे सात्विक और व्यवहार मे शालीनता का उसमे सर्वथा अभाव था । इसी प्रकार कमल ने कुमुदिनी के मध्य एक अन्य व्यक्ति के भी दर्शन किए थे जो उसकी मौसी का देवर मास्टर, था और उसी के साथ रहता था । वह मदिर के रखवारे के समान ही कुटिल और काइयाँ था । इन तीन विभत्स प्राणियो के मध्य भी वह अपनी सरलता, अबोधता मे ग्राम्य शरद चन्द्रिका सी खिली रहती थी । परन्तु वह बेचारी भी इस समाज के दाव पर लगा दी जाती है । समाज की विभीषिका से वह भी त्रस्त हो उठती है परन्तु उसकी मूक वेदना है जो किसी से कही नही जा सकती । वह स्वय को परिस्थितियो के हाथो मे सौंप देती है । अन्त

मे किराये की जमानत के लिए दाव पर लगा दी जाती है। इस प्रकार लेखक ने आधुनिक समाज मे नारी जीवन का वास्तविक चित्रण किया है जिनका मूल्य अर्थ-शास्त्र के टकसाली सिक्को से आका जाता है।

गौतम बुद्ध 'चारिका' उपन्यास के प्रमुख पात्र गौतम बुद्ध है, जो सम्बोधि प्राप्ति के उपरान्त धर्म चक्र प्रवर्तन हेतु इस ससार मे भ्रमण करते है। इसमे लेखक ने अनेक काल्पनिक आख्यानो को गौतम बुद्ध से सम्बन्धित किया है जिनका इतिहास मे कोई प्रमाण नही मिलता। गौतम बुद्ध का समस्त जीवन पृथक्-पृथक् दृष्टान्तो के आधार पर 'चारिका' मे एक क्रमबद्ध रूप मे प्रस्तुत किया गया है। गौतम बुद्ध का चरित्र अत्यन्त ही उच्च कोटि का अथवा यो कहे कि मानवीयता की कल्पना से परे किसी अलौकिक मानव के चरित्र का रूप लेखक ने प्रस्तुत किया है। बोधि वृक्ष के नीचे सम्बोधि ज्ञान अथवा आत्म ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त उसे विश्व जगत को अव-गत कराने हेतु एव ससार मे वास्तविक शाति के लिए वह चारिका के लिए चल पडते है। इसके उपरान्त की सपूर्ण कथा का नियोजन इसमे अत्यन्त भव्य रूप मे हुआ है। कथा के प्रारम्भ से ही उनकी आलोचना ससार के प्रबुद्ध जन करते है। परन्तु वे उससे विचलित नही होते, कारण रूढियो की तरह पूर्वग्रह से भी मुक्त थे, मताग्रही नही सत्याग्रही थे। अपने प्रति भी जनता का अन्ध विश्वास नही चाहते थे, सबमे प्रज्ञा का प्रस्फुरण देखना चाहते थे। सबको विचार स्वातत्र्य का अवसर देते थे। विवाद नही करते थे, ग्रन्थो और आप्तवाक्यो का सहारा नही लेते थे, दैनिक जीवन के दृष्टान्तो से ही उनकी समस्याओ का शमन करते थे। इस प्रकार लेखक ने प्रमुख पात्र के चरित्र को उद्घाटित करने के लिए कथोपकथन का आश्रय लेकर विश्लेषणात्मक शैली को अपने उपन्यास का आधार बनाया है। इसके अतिरिक्त लेखक ने मनोवैज्ञानिक और कही-कही पर व्याख्यात्मक शैली का भी अनुकरण किया है। मनोवैज्ञानिक शैली के द्वारा लेखक ने गौतम बुद्ध के आन्तरिक मनोभावो को व्यक्त किया है। गौतम बुद्ध समस्त प्रकार की जिज्ञासाएँ शान्त करके भिक्षु दल की वृद्धि करते है। तरुण श्रेष्ठि पुत्र के भिक्षु बनने की कथा भी कुछ इसी प्रकार की है। इसके साथ ही उनके माता-पिता द्वारा की गयी अनेक शकाओ का समाधान गौतम बुद्ध के चरित्र को प्रखरता प्रदान करती है। श्रेष्ठि पुत्र यश के पूर्व सहचर मित्र आदि की भी परिव्रज्या धारण की कथा पथ निर्देश मे उल्लिखित है जो गौतम के चरित्र का विश्लेषित रूप प्रस्तुत करती है। राजा शुद्धोदन, यशोधरा, महाप्रजावती आदि के विविध सवादो एव राहुल के प्रव्रज्या धारण के समय दीक्षा समारोह का चित्रण आदि मे गौतम बुद्ध का चरित्र सम्बोधि पथ की कसौटी पर खरा उतरता है जो उनकी अन्तःशुद्धि का परिचायक है। अनाथ पिंड का लोक कल्याण हेतु समस्त सपत्ति का उत्सर्ग करना गौतम बुद्ध का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रतिबिम्बित करता है। गौतम के मान-सिक विकास का एक अन्य रूप उस समय भी आभासित होता है जब लोकमाता

महाप्रजावती अपनी विह्वल अवस्था मे स्त्रियो को प्रव्रज्या मिलने की अभिलाषा व्यक्त करती हैं। गौतम बुद्ध का उस क्षण का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त ही मार्मिक है। इस प्रकार व्याख्यात्मक शैली मे गौतम के विभिन्न प्रश्न और उनका आनन्द के द्वारा उन्ही के मतो के आधार पर किया गया विश्लेषण गौतम बुद्ध के चरित्र को और भी निखारता है। बुद्ध के अन्त करण के प्रकाश का ही प्रभाव था कि नर सहारक अगुलिमाल का भी हृदय परिवर्तन हो जाता है। इसके उपरान्त आम्रपाली का तथागत के चरणो मे आत्म विसर्जन और अन्तत गौतम बुद्ध का प्राणायाम है जिसमे भिक्षुओ को सदेश दिया गया है, जो बुद्ध चरित्र की श्रेष्ठता के प्रमाणस्वरूप है।

यशोधरा अन्य सहायक पात्रो एव पात्रियो के अन्तर्गत यशोधरा के चरित्र का सर्वोत्कृष्ट पक्ष चित्रित है। मानव चरित्र अत्यन्त ही विलक्षण है, उसमे कभी स्वार्थ की प्रवृत्ति का उद्रेक होता है तो कभी परमार्थ का। मन कभी वेदना मे डूबता उतराता है तो कभी अतीत की सुखद स्मृतियो मे डूबकर उसी मे प्रसन्नता अनुभव करने के साथ ही स्वय को परमार्थ मे लगा कर आनन्द की पराकाष्ठा पर पहुँचता है। इस प्रकार विभिन्न परिस्थितियो मे मानव की चिन्तन धारा के विभिन्न पक्षो का उद्घाटन स्वत ही हो जाता है। कुछ ऐसी ही स्थिति यशोधरा की है जो गौतम की पत्नी है और गौतम के निष्क्रमण के उपरान्त अत्यन्त ही व्याकुल एव विह्वल होकर अतीत की मधुर स्मृतियो मे स्वय को साकार होता देखती है जिसमे केवल स्व की भावना ही काम करती है। परन्तु लेखक ने मनोवैज्ञानिक शैली के द्वारा 'स्व' को भी 'पर' की ओर उन्मुख कर दिया है। उदाहरणार्थ 'एक दिन उन्होने कहा था—प्रिये, पूर्व जन्म मे तू मेरी राधा थी, मैं तेरा चितचोर था। तेरा अथाह विरह क्रन्दन मुझे फिर इस भवसागर मे खीच लाया।...आज भी तो मैं विरह क्रन्दन कर रही हूँ। क्या मेरे आसू उन्हे फिर खीच नही लायेंगे। अरे, मै यह क्या कह रही हूँ। अपने लिए मैं उन्हे शेष सृष्टि से विमुख कर देना चाहती हूँ। यही यदि प्रेम है तो स्वार्थ किसे कहते है।...आजीवन क्या मै प्रेमिका और नववधू ही बनी रहूँगी। यह देखो, वे मेरे अचल मे अपना कैसा दायित्व दे गये है—राहुल। विश्व को वात्सल्य देने के लिए वे जिस साधना के पथ पर चले गये वही साधना मेरे लिए गृह मे सुलभ कर गये।.. प्रणय मे जिसकी मैं समभागिनी थी, सन्यास मे भी मैं उसकी सहयोगिनी बनूगी।"[1] यशोधरा का चरित्र उस समय और भी मुखर होता है जब वह राजा शुद्धोदन के विकल व्यथित मन को सान्त्वना प्रदान करती है अथवा उस समय जब कि राहुल को प्रव्रज्या प्रदान करवाती है। उस क्षण तथागत भी उस त्यागमयी आत्मा के लिए सोच मे पड जाते हैं 'यशोधरा ने सविनय कहा—प्रभो! आपके आने के पहले यह राजपुत्र था, अब परिव्राजक की प्रजा है, इसे परिव्राजक का दायज

१ 'चारिका' श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५०।

दीजिये। ..तथागत ने सोचा—ओह, यह कैसी त्यागमयी महान् आत्मा है। अपने शेष अवलम्ब को भी कल्याण मार्ग मे अर्पित कर देना चाहती है। उन्होने श्रद्धा से नतमस्तक होकर कहा—देवि ! क्या तुम्हे दुख नही होगा ?.. यशोधरा ने आत्मस्थ होकर कहा—आपसे इसे जो प्राप्य मिलेगा उससे मेरा ही नही, त्रैलोक्य का दुख दूर हो जायेगा, फिर मैं अपने क्षुद्र अहम् की चिन्ता क्यो करूँ।'[1] इस प्रकार लेखक ने यशोधरा का परमार्थपूर्ण एव त्यागमयी नारी के रूप मे चित्रण किया है।

शुद्धोदन कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन राजपाट सपूर्ण वैभव के होते हुए भी अपने पुत्र सिद्धार्थ के निष्क्रमण से व्यथित थे। सिद्धार्थ राजकुमार ही सम्बोधि प्राप्ति के उपरान्त बुद्ध हुए। जिस प्रकार माता-पिता की दृष्टि मे उनका पुत्र सदैव ही एक बालक सदृश होता है वह कितना भी प्रौढ एव समझदार क्यो न हो जाय उसी प्रकार राजा शुद्धोदन की दृष्टि मे भी सिद्धार्थ एक बालक से ही थे। यद्यपि वह युवावस्था को पार कर चुके थे, राजा को अभी भी यह चिन्ता थी कि 'मेरे लिए वह अब भी अबोध है। बचपन की तरह ही उसे अपने तन बदन की सुध-बुध नही है। अपने साथ वह कुछ भी तो नही ले गया।' इसीलिए उनका मन और भी व्यथित विक्षिप्त-सा है। इस प्रकार लेखक ने जहा राजा शुद्धोदन के मन मे अपने पुत्र के प्रति प्रेम को चित्रित किया है वही दूसरी ओर राहुल के प्रति अपने वात्सल्य को भी अकित किया है। अत राजा शुद्धोदन का परिचय उनके पारिवारिक वातावरण के अन्तर्गत मुखर हुआ है। राजा शुद्धोदन एक नृपराज के रूप मे भी चित्रित है। अत. राज दरबार का वातावरण भी 'चारिका' उपन्यास मे उपस्थित हुआ है लेकिन उसका व्याख्यात्मक परिचय नही है। त्रपुष और भल्लिक दो व्यापारियो को बुद्ध के दर्शन करके आया हुआ जान कर राजा ने उन्हे बुद्ध के कुशल क्षेम पूछने हेतु दरबार मे बुलाया। और जब उन्हे यह ज्ञात हुआ कि वह द्वार-द्वार भिक्षा मागते है तो उनका राजदर्प मर्माहत हो उठा। फिर भी वह उसके लिए विकल हो उठे 'राजा ने आदेश दिया—अश्वचालन मे प्रवीण नवतरुण सामन्तो को द्रुतिगति से राजगृह भेजो। मेरा शासन (पत्र) देकर वे सिद्धार्थ से निवेदन करे, जहा आपका सब कुछ है वहा भी पधारे। माता-पिता पुत्र कलत्र स्वजन परिजन पुरजन सब आपके दर्शनो के लिए लालायित हैं। वृद्ध पिता तो पतझड का पत्ता है, उसके धाराशायी हो जाने के पहिले अपना वर्षों से ओझल श्रीमुख एक बार तो दिखला दें।'[2] लेखक ने इस प्रकार राजा शुद्धोदन के चरित्र मे नृप गुणो का भी समावेश किया है जिनमे कार्य के शीघ्र पूरा करवाने की तत्परता है। साथ ही राजाओ मे जिस दर्प, घमड एव अनुशासनप्रियता की आवश्यकता होती है शुद्धोदन के चरित्र मे सभी गुण घुलमिल से गये हैं।

---

१. 'चारिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६६।

२ वही, पृ० ५६।

प्रसेनजित् सहायक पात्रो मे प्रसेनजित् का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है। यह कौशल के नरेश है। नरेश होते हुए भी जिन्हे आन्तरिक शाति नही है अत राजनीति मे भी शातिपूर्ण वातावरण नही हो पाता है। इनके चरित्र की प्रमुख विशेषता विनम्रता है। तथागत से वार्तालाप के उपरान्त ही राजनीतिक द्वन्द्व एव सघर्ष के वास्तविक कारण का बोध होता है, इसमे अहकार वृत्ति का बहुत महत्व-पूर्ण हाथ होता है। इस बोध के उपरात ही उन्हे अपने कर्तव्य का ज्ञान होता है। मन शाति के लिए आत्म निरीक्षण और प्रत्यवेक्षण (गम्भीर चिन्तन) की आवश्यकता होती है जो गृहस्थ आश्रम मे रह कर भी पूर्ण की जा सकती है। राजा प्रसेनजित् अपने राज्य मे शाति चाहता था लेकिन वह उसमे सर्वदा सफल नही हो पाता था। इसी का एक वृत्तान्त इन उपन्यास मे उल्लिखित है। अन्त मे बुद्ध ने उसे अपनी शरण मे ले लिया था।

आम्रपाली 'चारिका' उपन्यास मे उद्धृत विभिन्न कथाओ मे एक कथा की प्रमुख पात्री आम्रपाली है जिसका पालन-पोषण पद से अवकाश प्राप्त वृद्ध सेना-नायक महानमन् ने किया था। इतिहास मे भी आम्रपाली का चरित्र अवस्थित है। आम्रपाली की माता वैशाली की सर्वश्रेष्ठ अनिन्द्य सुन्दरी परन्तु विधवा थी। आम्र-पाली का बचपन आनन्द ग्राम के प्रकृति प्रागण मे मुकुलित हुआ। लेखक ने सकेतात्मक शैली मे उसका परिचय एव मानसिक चित्रण इस प्रकार किया है 'अपने ही भीतर निमीलित रहने वाली बालिका क्रमश मुकुलित प्रस्फुटित होने लगी। अपनी शिशु आखो से जब वह सृष्टि को विस्मित दृष्टि से देखती तब भावना से उसका अन्तर्जगत स्वप्निल हो जाता...परियो की सी थी उसकी आत्मा। . खिलौनो से खेलते-खेलते वह अपनी भावनाओ को कलाभिव्यक्ति देने लगी। उसका अन्तर्जगत घरौंधो से लेकर गुडियो तक मे साकार होने लगा।...वह निसर्ग कन्या वय के साथ-साथ अपनी अनु-भूतियो मे भी किशोरी हो गयी; वह स्वयं अपनी भावनाओ की सदेह अभिव्यक्ति हो गयी। . तन्वगिनी लहरी सी उसकी देह थी। ज्योत्स्ना-सी उसकी गौर द्युति थी। उसी जैसी शुक्ल वसना थी। वह शुभ्रा थी। उसकी उच्छल भावनाएँ जब उमड पडती तब उमगो से उसकी देह हिल्लोलित विलोलित हो उठती। कैसी अल्हड किशोरी थी। विहगिनी सी निर्द्वन्द्व इधर-उधर फुदकती रहती, फुर्र-फुर्र उडती रहती, न आत्मकुठा, न लोकलाज, सामाजिक विधि निषेधो से परे मुक्त वायुमडल मे अतीन्द्रिय चेतना की तरह विचरती रहती।' इस प्रकार लेखक ने प्रकृति के माध्यम से उसकी सुन्दरता की रूपरेखा खीचने का प्रयास किया है। लेखक ने आम्रपाली के चरित्र को उद्घाटित करने के लिए मनोवैज्ञानिक शैली का भी आश्रय लिया है। उदाहरणार्थ · 'तरुण ने मुस्कराते हुए वशी ओठो पर रख कर उसमे अपने प्राणो को पुलकित प्रकम्पित कर दिया। किशोरी ने देखा कि जिस गहराई मे पहुँच कर वशी हिये मे हूक उठा देती है, उसी गहराई मे साँस लेकर यह कूक रही है। क्या इसके हृदय

मे भी कोई हूक कुहुक रही है। . अरे, क्या है जो उसके भीतर रह-रह कर हूक उठता है। वह अपने हृदय को टटोलने लगी। कोई मनोरथ उसे मथ रहा है, किन्तु पकड मे नही आ रहा है। वह अनुभावित होकर भी अपरिचित-सा है। जिसे खोज रही थी उसे सामने पाकर भी क्या जान पहचान सकी ? वह भी तो अभी मनोरथ की तरह ही अपरिचित है।'

[३] **द्विवेदी जी के उपन्यासो मे कथोपकथन** कथोपकथन उपन्यास का तीसरा मूल तत्व है। उपन्यास मे दो अथवा अधिक पात्रो के वार्तालाप के लिए 'कथोपकथन' शब्द प्रयुक्त होता है। परन्तु कभी-कभी केवल एक ही पात्र आत्म-तल्लीनता की स्थिति मे स्वय से ही वार्तालाप करने लगता है, इसे स्वगत कथन कहा जाता है। कथोपकथन के स्वरूप की विविधता की ओर सकेत करते हुए डा० प्रताप-नारायण टडन ने लिखा है—'कथोपकथन का स्वरूप इतना विविधतापूर्ण है कि उसे आज तक ठीक से परिभाषाबद्ध करना सम्भव नही हो सका है। आज के ही युग मे यदि देखा जाय तो कथोपकथन का, नवीनतम वैज्ञानिक साधनो मे प्रयुक्त होते हुए, एक नया रूप निखर रहा है, जैसे रेडियो प्रसारण मे या सिनेमा आदि मे। · मुख्य रूप से देखा जाय तो कथोपकथन के द्वारा कुछ विचारो को सजीवता देने मे सरलता पडती है। नाटको मे जो वस्तु अभिनय द्वारा व्यक्त होती है, उपन्यासो मे वह बहुत कुछ कथोपकथन द्वारा लायी जाती है।'[1]

कथोपकथन के उद्देश्य किसी भी औपन्यासिक कृति मे कथोपकथन की योजना कई कारणो से आवश्यक होती है। विचारो की सजीवता को व्यक्त करना एव कथानक को गति देना इसका महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इसके साथ ही कथानक मे इसके लोप से कलात्मकता प्रभावात्मकता एव उसकी सवेदनशीलता का लोप हो जायेगा। कथोपकथन के माध्यम से लेखक अपने उद्देश्य की अभिव्यक्ति तो करता ही है, साथ ही वह कथोपकथन के द्वारा अपनी औपन्यासिक कृति मे देशकाल अथवा वातावरण, वर्ग आदि की भी सृष्टि करता है। अतएव उपन्यास मे कथोपकथन का सयोजन प्राय. निम्न उद्देश्यो को दृष्टि मे रख कर होता है। इसके अतिरिक्त श्री शातिप्रिय द्विवेदी अपनी औपन्यासिक कृतियो मे इन उद्देश्यो मे कहा तक सफल हो सके है, इसका विश्लेषण कथोपकथन के विभिन्न सैद्धान्तिक उद्देश्यो के साथ ही साथ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) कथानक का विकास करना उपन्यास के कथानक की पारस्परिक क्रमबद्धता और उसकी विविध घटनाओ मे किसी न किसी प्रकार के सामजस्य के लिए सवाद योजना की आवश्यकता उपन्यासकार को अपने उपन्यास के हेतु होती है जो मूल कथा को अन्य प्रासगिक कथाओं के साथ समन्वित करता हुआ कथा को

---

१. 'हिन्दी उपन्यास कला', डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० २१८-१९।

एक गति प्रदान करता है। उपन्यास मे लेखक कथा वस्तु के विकास के लिए वर्णनात्मक या साकेतिक आधार लेता है परन्तु भिन्न-भिन्न पात्रो का पारस्परिक वार्तालाप भी कही-कही आगे की कथा का सकेत करके कथा वस्तु के भावी विकास की दिशा का उद्घाटन करता है। कथावस्तु के विस्तृत विवरण एव विस्तृत घटनाओ को सक्षेप मे व्यक्त करने के साथ ही कथोपकथन के माध्यम से लेखक कथावस्तु मे आयोजित अनेक घटनाओ का केवल साकेतिक परिचय ही देता है। इसके अतिरिक्त कथोपकथन का कार्य उपन्यास के कथानक मे विविधता, रोचकता और स्वाभाविकता भी उत्पन्न करना है।[१] इस दृष्टि से श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने अपनी औपन्यासिक कृतियो मे कथानक के विकास के लिए विभिन्न प्रासगिक कथाओ का समावेश किया है और कही-कही कथोपकथन के माध्यम से कथानक का विकास हुआ है। 'चित्र और चिन्तन' औपन्यासिक कृति मे कमलिनी, कुमुदिनी की प्रासगिक कथा कथानक के विकास के साथ ही युग के विश्लेषण की ओर भी सकेत करती है जो लेखक के लोक-निरीक्षण एव सूक्ष्म दृष्टि की परिचायक है। इसके कथोपकथन कथानक के विकास की दृष्टि से नही, लेकिन युग विश्लेषण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(ख) पात्रो की व्याख्या करना उपन्यास के पात्रो के भावो एव विचारो के प्रत्यक्षीकरण, उनकी विविध जटिल परिस्थितियो, उनकी अन्तर्द्वन्द्व सम्बन्धी प्रतिक्रियाओ का चित्रण लेखक अपनी औपन्यासिक कृति मे कथोपकथन के माध्यम से करता है। इस प्रकार कथोपकथन के माध्यम से वह चरित्र की व्याख्या एव उन्हे विकास की ओर अग्रसर करता है। अत स्पष्ट है कि कथोपकथन का मुख्य आधार चरित्र चित्रण ही है। स्पष्ट, सजीव, सरस एव औचित्यपूर्ण कथोपकथन चरित्र के चित्रण मे निखार उत्पन्न करके पात्रो के चरित्र की विवृत्ति मे सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त कथोपकथन के द्वारा ही उपन्यास मे नाटकीय तत्वो का भी समावेश होता है, जो विवरण के माध्यम से सम्भव नही हो सकता है। अत कथोपकथन के माध्यम से उपन्यास के पात्रो के चरित्र की आन्तरिक विशेषताओ का भी विश्लेषण होता है। इस दृष्टि से द्विवेदी जी के 'दिगम्बर' उपन्यास मे यद्यपि कथोपकथन अशत ही है परन्तु पात्रो की आन्तरिक विशेषताओ का उद्घाटन उन्होने अत्यन्त ही सूक्ष्मता से किया है। पात्र अपनी अन्तर्द्वन्द्वात्मक परिस्थितियो मे अपने भाव एव विचारो को प्रकट करते चलते है जिससे उपन्यास मे नाटकीय तत्व का भी यत्र-तत्र समावेश हो जाता है। उदाहरणार्थ, विमल वैष्णवी को छोडकर चला जाता है परन्तु दैवी सयोग से वह पुन उसे मिल जाता है तब वह स्वय अपने हार्दिक भावो को इस प्रकार व्यक्त करती है जिससे उपन्यास मे नाटकीय तत्व का भी समावेश हो जाता है 'एक दिन वैष्णवी ने कहा—जब से तुम चले गये विमल

१. 'हिन्दी उपन्यास कला', डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० २१९।

तब से न जाने कितने दु स्वप्नो मे तुम्हे देखती आयी। कभी देखती कोई काल की तरह महाकराल राक्षस पैने पजो और लम्बे नुकीले दातो से तुम्हारे ऊपर आक्रमण कर रहा है, कभी देखती कोई दुर्दान्त दानव तुम्हारे दुबल शरीर पर लोमहर्षक अत्याचार कर रहा है।.. मैं क्रोधित होकर अपने हाथो से प्रहार करती हुई उसे बरजती रहती दूर हटो, दूर हटो, हिंसक। यह कोमल कलेवर तुम्हारा ग्रास होने लायक नही है।'[1]

(ग) लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना उपन्यास उपन्यासकार के अनुभवो का ही लेखा जोखा होता है। अतएव वह अपनी अभीष्ट बात को कहने के लिए पात्रो को ऐसी परिस्थितियो मे प्रतिबिम्बित करता है कि लेखक स्वय कुछ न कह कर पात्रो के कथोपकथन के माध्यम से उसे प्रकट कर देता है। उपन्यासकार किसी भी पात्र पर अपने व्यक्तित्व को आरोपित करके अपने भावो की अभिव्यक्ति करता है। कुछ विद्वान उपन्यास के कथोपकथन द्वारा अपने निश्चयो, सिद्धान्तो, कल्पनाओ, ज्ञान भडार आदि के दिग्दर्शन को अधिकार का दुरुपयोग मानते है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियो के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि इनके उपन्यासो मे समाज का वास्तविक चित्र अध्यात्म का स्पर्श करता है। 'दिगम्बर' तथा 'चित्र और चिन्तन' मे लेखक का उद्देश्य प्रमुख पात्रो द्वारा स्वचिन्तन के रूप मे अकित हुआ है जो कथोपकथन का ही एक अन्यतम रूप है।

कथोपकथन के गुण सैद्धान्तिक रूप से उपन्यास मे कथोपकथन की सफलता के लिए कतिपय गुणो की निहिति अपेक्षित है। यह गुण जहा एक ओर उपयोगिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते है वहा दूसरी ओर इनसे उपन्यास की कलात्मक उत्कृष्टता मे भी वृद्धि हो जाती है। जैसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है कथोपकथन या सम्वाद योजना उपन्यास मे कथात्मक विकास, चरित्राकन तथा उद्देश्य के स्पष्टीकरण की दृष्टि से की जाती है। कथोपकथन के विभिन्न गुण इनकी सार्थकता भी सिद्ध करते है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के विभिन्न उपन्यासो मे संवाद योजना का जो रूप उपलब्ध होता है उसके आधार पर उनका सक्षिप्त विश्लेषण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) उपयुक्तता ' कथोपकथन का प्रथम गुण उसकी उपयुक्तता है। उपयुक्त कथोपकथन ही उपन्यास के विशेष स्थलो मे चमत्कार की सृष्टि करता है। अत. कथोपकथन का उपन्यास की घटना, अवसर तथा वातावरण के अनुकूल होना बहुत ही आवश्यक है। केवल इसी क्षेत्र मे ही नही उपन्यास के साहित्यिक पक्ष मे भी विषय की एकता, शैलीगत उत्कृष्टता और रूपात्मक गठन आदि गुण भी इसके लिए आवश्यक है। इस दृष्टिकोण से श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे 'चारिका' उपन्यास उल्ले-

---

१. 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८०।

खनीय है जिसमे घटना, अवसर, वातावरण की अनुकूलता के साथ ही विषय और पात्रो की अनुकूलता का भी ध्यान रखा गया है ।

(ख) स्वाभाविकता उपन्यासकार को उपन्यास मे कथोपकथन के समावेश करने मे उसकी स्वाभाविकता का विशेष ध्यान रखना चाहिए । कथोपकथन मे विषय की सत्यता के साथ ही उसमे स्वाभाविकता के लिए यह भी आवश्यक है कि घटना स्थल मे अनेक अनावश्यक पात्रो को एकत्र न करे तथा उनमे अनर्गल और अनावश्यक कोटि का वार्तालाप न हो । इस दृष्टि से श्री शातिप्रिय द्विवेदी के 'दिगम्बर' उपन्यास का एक उदाहरण दृष्टव्य है 'विमल को किस लिए बुलाया था, उसे मालूम नही । विमल जब वहा पहुँचा तब एक कोने मे रखी हुई टोकरी की ओर इशारा कर उन्होने कहा– देखो, इसे घर दे आना, राह मे बन्दरपना मत करना ।. वटी और गोलियो को गिन-गिन कर हिसाब रखने वाले बुद्धराज जी दुकान से जब घर आये, तब अपनी टोकरी को ज्यो का त्यो पाकर खुश हो गये । हस कर बडी मिठास से बोले—राह मे कही कुछ गपक तो नही गया रे ।' इस प्रकार आपके उपन्यासो मे स्थान-स्थान पर स्वाभाविकता का बोध तो होता ही है, इनमे उद्धृत कथोपकथन भी स्वाभाविकता के गुण से युक्त है ।

(ग) सक्षिप्तता कथोपकथन का एक अन्य गुण उसकी सक्षिप्तता है जो परिस्थितियो का परिचय देने मे अधिक सफल होते है । लम्बे कथोपकथन उपन्यास मे अस्वाभाविकता तथा दुरूहता उत्पन्न करते है, जब कि सक्षिप्त कथोपकथन उपन्यास मे कलात्मकता एव प्रभावात्मकता का उद्रेक करते है । श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे कथोपकथन की मुख्य विशेषता उसकी सक्षिप्तता है । उपन्यासो मे कथोपकथन छोटे परन्तु सारगर्भित है जो अपने अन्दर कथोपकथन के अनेक गुणो को आत्मसात् किए हुए हैं । उदाहरणार्थ 'उसने निर्निमेष दृष्टि से तरुण की ओर देखा, जैसे चकोरी कलाधर को देखती है । तरुण ने किशोरी को देखा, जैसे गायक अपनी स्वर लिपि को देखता है । दोनो मे सौहार्द स्थापित हो गया । ..सखियो ने कहा—इसी तरह आया करो जी, वशी बजाया करो जी । अपने मनोरथ को स्पष्ट न समझ पाने पर भी किशोरी ने दर्शनो की आशा से उत्कठित होकर कहा—हा, आया करो जी ।'[1]

(घ) उद्देश्यपूर्णता : उपन्यास का प्रत्येक कथोपकथन यथासम्भव उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए । वस्तुत कथानक के विकास एव पात्रो के चरित्र-चित्रण मे कथोपकथन का विशेप योगदान रहता है । इस दृष्टि से विशेष परिस्थितियो मे पात्रो की मानसिक प्रतिक्रिया को प्रस्तुत करना, घटना विषयक जटिलताओ के परिचय के साथ ही दो विरोधी पात्रो का एक दूसरे के मन की थाह लेने का प्रयत्न चित्रित करना एव भावी घटनाओ का पूर्व सकेत करना यही कथोपकथन की समर्थता एव सार्थकता के परि-

---

१. 'चारिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९० ।

चायक हैं । श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे कथोपकथन का यह गुण भी यत्र-तत्र मिलता है । उनके कथोपकथनो मे पात्रो की मानसिक प्रतिक्रिया के प्रस्तुत होने के साथ ही उसमे विभिन्न जटिल समस्याओ को उठा कर उनका विश्लेषित रूप प्रस्तुत किया गया है । इसके अतिरिक्त भावी घटनाओ अथवा परिस्थितियो का भी पूर्व सकेत हो जाता है । उदाहरणार्थ 'भिक्षुओ ! मल मूत्र के जैसे शरीर की उपेक्षा नही की जा सकती, वैसे ही मनोविकारो के कारण भी इसकी उपेक्षा नही की जा सकती । मल शुद्धि की तरह मन शुद्धि भी इसी शरीर से किया जा सकता है। यदि मल और मनोविकार न हो तो साधना की क्या आवश्यकता !

भिक्षुओ ने पूछा—शरीर की रक्षा करने से क्या भौतिक सपत्ति का सचय नही होने लगेगा ?

परिव्राजक ने कहा—जैसे शरीर मे मल-मूत्र का सचय करना कोई बुद्धिमान पसन्द नही करता, वैसे ही जीवन मे भौतिक सपत्ति का सचन करना भी पसन्द नही होना चाहिए । मल-मूत्र के सचय से शरीर व्याधिग्रस्त हो जाता है, भौतिक सचय से मन विकारग्रस्त हो जाता है । स्वस्थ जीवन के लिए देह शुद्धि की तरह मन शुद्धि भी आवश्यक है।

भिक्षुओ ने पूछा—मन शुद्धि (चित्त शुद्धि) कैसे की जाय ?

परिव्राजक ने कहा—जैसे देह शुद्धि के लिए नियम सयम है वैसे ही मन शुद्धि के लिए भी नियम सयम है । जैसे शरीर अपने सर्वांग सगठन से व्यवस्थित है वैसे ही मन भी सम्यक् बोध से सुव्यवस्थित (सुस्थिर चित्त) हो सकता है ।' प्रस्तुत कथोपकथन अपनी दीर्घता मे भी मानव जीवन के यथार्थ परन्तु दार्शनिक जीवन मूल्यो से सम्बद्ध है जो लेखक के मौलिक चिन्तन की अपेक्षा रखता है । इसमे मानव जीवन का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य मे मूल्याकन किया गया है जो आधुनिक समाज के अशान्तिमय वातावरण मे एक उचित एव निश्चित धरातल को प्रस्तुत करता है ।

(ड) अनुकूलता और सम्बद्धता . उपन्यास मे चरित्र विकास की दृष्टि से कथोपकथन पात्रो के स्वभाव के अनुकूल होना आवश्यक है । इसके साथ ही उनमे उपन्यासकार के विचार, कथानक एव पात्रो मे किसी न किसी प्रकार की प्रत्यक्ष एव पारस्परिक सम्बद्धता भी आवश्यक है । कथोपकथन केवल विविध पात्रो के स्वभाव के ही अनुकूल न हो अपितु उसे पात्रो के सामाजिक, बौद्धिक और सास्कृतिक स्तर के भी अनुकूल होना चाहिए । इस दृष्टि से श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे यत्र-तत्र अनुकूलता एव सम्बद्धता लक्षित होती है । उदाहरणार्थ, 'चारिका' मे यश के गौतम की शरण मे चले आने पर उनकी माता का तथागत से वार्तालाप उनके स्वाभावानुकूल ही है · 'माता ने कहा—भगवन् फूल के वृन्तच्युत हो जाने से जैसे क्षुप का हृदय मर्माहत हो जाता है वैसे ही अपने रक्त मास की सृष्टि के विच्छिन्न हो जाने से माता का हृदय भी पीड़ित हो जाता है । माया ममता को क्लेष होना स्वाभाविक है ।...

तथागत ने कहा—विच्छिन्नता तो उसी दिन आरम्भ हो गई जिस दिन शिशु मा के गर्भ के बाहर आ गया। मा क्या यही चाहती है कि शिशु उसके गर्भ मे अजन्मा पडा रहे ?

माता ने कहा—नही भगवन् !

तथागत ने कहा – तो फिर विच्छिन्नता का अनुभव क्यो करती हो ?

माता ने कहा—जो कभी निकट था वह दूर जान पडता है।

तथागत ने कहा—जो कभी गर्भ मे था वह तुम्हारे आचल मे आया, जो आचल मे दूध पीता था वह किलक कर पुलक कर पृथ्वी पर ठुमकने लगा, जो ठुमकता था वह प्रवृत्तियो से प्रेरित होकर ससार मे ससरण करने लगा।. '[1]

(च) मनोवैज्ञानिकता प्रारम्भिक युगीन उपन्यासो मे प्राप्त कथोपकथन सर्वथा मनोवैज्ञानिकता से दूर होते थे एव उनमे कलात्मकता का अभाव था। परन्तु ज्यो-ज्यो उपन्यासो मे कथानक की अपेक्षा चरित्र-चित्रण को महत्व प्रदान किया गया, उसमे मनोवैज्ञानिकता का समावेश होने लगा तथा मन की अनेक गुत्थियो के सुलझे रूप को स्पष्ट करने मे उपन्यासो का महत्व बढने लगा। अतएव आधुनिक उपन्यासो मे कथोपकथन की प्रमुख विशेषता की दृष्टि से श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे कथोपकथन मनोवैज्ञानिकता के गुण को स्पर्श करते है। उदाहरणार्थ 'परिव्राजक ने कहा—तुम्हारा क्या नाम है पथिक ?

श्रेष्ठि पुत्र ने कहा—आपके चरणो मे शरणागत इस दास का नाम यश है सुगत। अब-तक के जीवन मे तो मेरा नाम रूप विद्रुप मात्र है, मै तथागत से तद्रुप होना चाहता हूँ। यश नही, शाति चाहता हूँ।

परिव्राजक ने कहा—शाति के लिए जिस दिन तुम्हारे मन मे प्रेरणा जगी, उस दिन से ही तुम्हारे सासारिक नाम रूप का स्वत परिवर्तन होने लगा। अब तुम्हे ऐसा आचरण चाहिए जो अन्त प्रेरणा को स्थायी बना दे।'[2]

(छ) भावात्मकता. उपन्यास को प्रभावशाली बनाने मे कथोपकथन मे भावात्मक गुण के समावेश का भी महत्वपूर्ण हाथ है। कभी-कभी कथोपकथन के मध्य भावात्मक चेष्टाएँ एव आकुलता के चिह्न के साथ ही कतिपय मूक सकेत अनुभूत्यात्मक अभिव्यक्ति मे सहायक होते हैं। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो के कथोपकथनो मे कही-कही पर भावात्मकता का गुण भी परिलक्षित होता है, उनमे भावना का प्रवाह होता है। उदाहरणार्थ : 'लोगो ने कहा—इस बेजानी-पहिचानी को ठहराना मत जी, न जाने किसके घर से क्या चुरा ले जाय।

किन्तु वैष्णवी ने आगे बढ कर उसे अपना लिया।. रात्रि की निस्तब्ध

---

१. 'चारिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३५-३६।
२. वही, पृ० २१-२२।

नीरवता मे रो-रो कर उसने अपनी जो राम कहानी सुनाई वह समाज के युग-युग के अत्याचारो की रोमाचक कथा थी। दीपक का धुधला उजाला उसके इतिहास पर क्षीण प्रकाश डाल रहा था।

बैष्णवी ने विगलित होकर कहा—अब तुम कही मत जाओ, यही रहो। हम दोनो मिलकर सुख-दुख मे एक हो जायँगी।

दुखिया ने भारी मन से कहा—अपना-अपना भाग्य तो भोगना ही होगा जीजी। मुझ अभागिन के कारण तुम अपने को परेशानी मे मत डालो।''[1]

कथोपकथन का महत्व उपन्यास मे कथोपकथन के उपर्युक्त उद्देश्य एव गुण होने के साथ ही इसमे एक रूप और मिलता है। वह है स्व वार्तालाप या स्वगत कथन। स्वगत कथन की योजना यद्यपि नाटक की वस्तु है तथा उसी मे प्रयुक्त होती है परन्तु आधुनिक युग मे चारित्रिक विक्षिप्तता एव मनोभावो के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करने के लिए उपन्यासो मे स्वगत कथन को स्थान मिला है। उपन्यास के विभिन्न पात्रो मे निकटता एव आत्मीयता नही होती, इसका मुख्य कारण कथा की विशिष्टता एव पात्रो की विपरीतता होती है जो कथा मे पृथक-पृथक से लगते है अथवा वह कथा प्रवाह मे धीरे-धीरे पृथक हो जाते है। उनमे निकटता लाने के लिए कथोपकथन की योजना की जाती है जिसके माध्यम से पात्र पारस्परिक सवेदना और अनुभूतियो के कारण एक दूसरे के निकट आ जाते हैं। अतएव इससे स्पष्ट होता है कि कथोपकथन उपन्यास का नाटकीय तत्व है जो चामत्कारिक परिस्थितियो को उत्पन्न करके उपन्यास को प्रभावात्मक बनाने मे सहायक होता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे स्वगत कथन को भी स्थान मिला है जिसका विश्लेषण ऊपर किया जा चुका है। इनके उपन्यासो मे प्रयुक्त कथोपकथन अत्यन्त सजीव, सार्थक एव प्रभावोत्पादक बन पडे है। कथोपकथन की जितनी सैद्धान्तिक विशेषताएँ है वे द्विवेदी जी के सवादो मे विद्यमान हैं। कथानक के विकास, पात्रो की चारित्रिक व्याख्या और लेखक के उद्देश्य के स्पष्टीकरण के लिए ही द्विवेदी जी की कृतियो मे सवाद योजना हुई है। पात्रो के विविध विषयक विचार भी उनके सवादो से स्पष्ट हुए है। उपयुक्तता, स्वाभाविकता, सक्षिप्तता, सोद्देश्यता, अनुकूलता, मनोवैज्ञानिकता, भावात्मकता, काव्यात्मकता, व्यग्यात्मकता, तथा बौद्धिकता आदि विशेषताओ से युक्त द्विवेदी जी के सवाद कलात्मकता एव परिपक्वता के द्योतक है।

[४] द्विवेदी जी के उपन्यासो में भाषा तत्व : उपन्यास का चौथा तत्व भाषा है। इसमे प्राय भाषा दो अर्थों मे प्रयुक्त होती है—सकुचित और व्यापक अर्थ मे। सकुचित अर्थ मे भाषा का पृथक् और सैद्धान्तिक महत्व होता है, परन्तु व्यापक अर्थ मे उपन्यास के अन्य महत्वपूर्ण तत्व भी इसी के अन्तर्गत आ जाते है। हिन्दी

---

१ 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १३-१४।

उपन्यास के आरम्भिक युग मे भाषा को महत्ता प्रदान नही की गई थी। भाषा अपने विकास की अवस्था मे थी तथा उसका स्वरूप भी निर्धारित नही हुआ था। उपन्यासो की भाषा प्राय मिश्रित भाषा थी। कथानक मे कल्पनात्मकता और विलक्षणता की प्रवृत्ति अत्यधिक थी। परन्तु भाषा के परिष्कार एव परिमार्जन के साथ ही भाषा के रूपो मे स्थिरता आने पर भाषा तत्व का महत्व भी बढ गया। परवर्ती युग मे उपन्यास के सभी उपकरणो मे अन्त सम्बद्धता के रूप मे भाषा तत्व को महत्व दिया गया। औपन्यासिक प्रगति का एक आधार उस भाषा की समृद्धि भी है, जो उसमे प्रयुक्त की जा रही होती है। साहित्य और भाषा घनिष्ठ रूप मे पारस्परिक सम्बद्धता रखते है। भाषा क्षेत्रीय समृद्धि से साहित्यिक माध्यमो की उपलब्ध्यात्मक सम्भावनाओ मे भी वृद्धि होती है। उपन्यास साहित्य रूपी माध्यम चूकि मानव समाज और जीवन से अत्यधिक निकटता रखता है, अत वह विशेष रूप से उससे सम्बद्ध होकर उसकी समृद्धि का आधार ग्रहण करता हुआ एक आवश्यक साधन के रूप मे उसका प्रयोग करता है।[1]

समन्वित भाषा भिन्न-भिन्न युगो मे उपन्यासो मे प्रयुक्त की गयी भाषा का जो स्वरूप मिलता है उसे समन्वित भाषा कहा जाता है। यदि भिन्न-भिन्न युगो क उपन्यासो मे उपन्यासकारो द्वारा प्रयुक्त भाषा का अवलोकन किया जाय तो स्पष्टत ही लक्षित होता है कि खडी बोली के अतिरिक्त उसमे सस्कृत के तत्सम शब्दो की भी बहुलता है। इस प्रकार की सस्कृत गर्भित भाषा का प्रयोग प्राय उपन्यासो के भाव पूर्ण प्रसगो मे किया जाता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे एकाध स्थलो मे इस प्रकार की भाषा दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ 'भोजन मे भी सस्कृति और स्वास्थ्य का सौष्ठव पाने के लिए कमल इधर-उधर भटकता है, किन्तु जहाँ लोगो का स्वभाव ही शुद्ध (सुसस्कृत) नही है वहा उनके असन वसन मे सस्कारिता कहा मिलेगी?...सास्कृतिक चेतना के अभाव मे क्या सारा ससार ही जीवन्मृत निश्चेतन जनता का महास्मशान नही बन गया है?'[2]

सामान्य प्रयोग की भाषा हिन्दी उपन्यासो मे प्रयुक्त भाषा का रूप खडी बोली है जिसे बोलचाल की भाषा अथवा सामान्य प्रयोग की हिन्दुस्तानी भाषा कहते है। इसमे भाषा के शुद्ध और क्लिष्ट शब्दो का प्रयोग नही मिलता है। यद्यपि स्फुट रूप मे सस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू और अग्रेजी के भिन्न-भिन्न शब्दो का प्रयोग मिलता है। हिन्दी उपन्यासकारो मे अधिकाश ने भाषा के इस रूप का प्रयोग किया है। इसका कारण यही है कि यह भाषा भारतीय सामाजिक जीवन के अधिक निकट है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास की भाषा भी उपर्युक्त गुणो से युक्त है। वह

१. 'हिन्दी उपन्यास कला', डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० २३४।
२ 'चित्र और चिन्तन', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८।

कही-कही पर जन साधारण के अधिक निकट है। उदाहरणार्थ 'जिन्दगी की जरूरतो का ही नही, दिन-रात का भी अस्तित्व उसके लिए नही रह गया है। उसकी साँसे अपने आप चलती है, इसलिए चल रही है। देह मे यदि घडी की तरह चाभी लगानी पडे तो वह चाभी लगाने की झझट मे नही पडेगा। कमरे मे एक कैलेंडर टगा है, लेकिन उसे तारीख बदलने की भी फुरसत नही है, दिलचस्पी नही है। दुनिया का सब कुछ भूल कर वह अपने मे ही डूबा रहता है, अपने मे ही खोया रहता है।'[1]

मिश्रित भाषा भाषा के इस स्वरूप के अन्तर्गत क्लिष्ट तथा बोलचाल की भाषा के शब्द, सस्कृत, उर्दू, अरबी, फारसी, अग्रेजी तथा प्रादेशिक भाषाओ के शब्द एव भिन्न-भिन्न ग्रामीण बोलियो के शब्दो का सम्मिश्रण मिलता है। आशिक रूप से उपर्युक्त भाषा के समस्त स्वरूप इसी के अन्तर्गत परिगणित किए जाते है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे भाषा का यह स्वरूप अधिकता से प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ 'विमल वहा आने-जाने लगा। कभी-कभी मालती जब सुसुराल से आती तब उसकी ओर ध्यान से देखता। उसके शरीर मे कोई परिवर्तन नही हुआ। शरीर तो पनप नही सका, बचपन का मुकुलित मन भी मुरझाया ही रहता। अब वह न तो कन्या ही थी, न परिणीता वधू ही थी। उसकी दुबली-पतली श्रीहीन काया नियति की एक पैरोडी मात्र थी। उसके सीमन्त मे सुहाग का सिन्दूर किसी कच्ची सडक पर सुर्खी की निशानी की तरह था। महाकाल ने मानो अब उसके जीवन को भी अपने लाल फीते से नापना शुरू कर दिया था।'[2]

लोक भाषा : उपन्यास की भाषा के विविधात्मक प्रयोगो मे लोक भाषा का भी महत्व है। उपन्यासो मे लेखक समाज के विविध वर्गों के जीवन चरित्र की झाकी सजाता है, अतएव उनमे ग्रामीण पात्रो का होना स्वाभाविक ही है। इसलिए उसकी भाषा ग्राम्य भापा ही होती है। यह ग्राम्य भाषा प्राय. अनेक बोलियो मे प्रयुक्त की जाती है। इस भाषा के प्रयोग से लेखक स्वाभाविकता लाने के लिए ग्रामाचलो मे प्रचलित मुहावरो, कहावतों एव लोकोक्तियो का प्रयोग अधिकता से करता है और उनकी चारित्रिक विशेषताएँ जैसे सरलता, निर्भयता, अशिष्टता, वाचालता या उद्दडता आदि भी स्पष्ट हो जाती है।[3] श्री शातिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियो मे लोकभाषा का यत्र-तत्र प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। परन्तु उनमे कहावतो एव मुहा-वरो का प्रयोग नहीं के बराबर है। चूकि लेखक स्वय ही एक विशिष्ट पात्र के विषय मे दिग्दर्शित करता चलता है अत उसमे सरलता गुण का ही आभास होता है। अन्य गुणो का तो उसमे स्पर्श भी नही है। उदाहरणार्थ : 'अकेले वही नही, गाव के अन्य

१. 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १२४।

२. वही, पृ० ५।

३. 'हिन्दी उपन्यास कला', डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० २४१।

घरो के लडके लडकिया भी अमराई मे आम की रखवाली करते थे। किसका-किसका नाम लें। उनके लिए घर-घर मे कोई कमी नही थी, आम की फसल तो घलुए मे थी। किन्तु इस बालक के लिए तो आम ही सहारा था। बाकी दिनो मे भूखा-प्यासा ही रहता था। उसके रक्त मासहीन शरीर की तरह ही उसका मस्तिष्क भी निर्बल था। उसे चक्कर आता, रास्ते चलते आखो के सामने झाय-झाय मालूम पडती।'[1]

सस्कृत प्रधान भाषा श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे भाषा का जो रूप मिलता है वह सस्कृत प्रधान है। शुद्ध खडी बोली मे सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग इसमे बहुलता से किया गया है। उदाहरणार्थ 'श्रद्धा और प्रेम के लिए भावना की आवश्यकता है, इसके बिना वस्तु दर्शन वाह्य उपादान मात्र रह जाता है जैसे विज्ञान मे। जहा भावना रहती है, वहा वाह्य उपादान भी वस्तु मात्र न रह कर एक सजीव अस्तित्व बन जाते है, सूर्य-चन्द्र, नदी-वृक्ष सब पूज्य और प्रिय हो जाते है। पचभूत उपादान नही, प्रकृति के अपने ही जैसे सजीव सम्प्रदान है, इसीलिए उनसे प्राणोदन होता है और जीवमात्र के साथ सवेदनात्मक सम्बन्ध जुडता है। पचभूत यदि उपादान मात्र होते तो वह उदात्त प्रेरणा नही जाग्रत होती जिससे मनुष्य सस्कृति और कला मे अपना मनोविकास प्रतिफलित करता है और अन्य प्राणियो को भी अपना अभिन्न बना लेता है।'[2]

काव्यमयी भाषा श्री द्विवेदी जी की भाषा का एक अन्य स्वरूप काव्यमयी भाषा भी है जिसमे काव्य की सी भाव-प्रवणता है। यो इनके उपन्यासो मे बहुत कम स्थल ऐसे है जहा भाषा मे काव्यमयता लक्षित हो। उदाहरणार्थः 'कुहू कुहू—अरे, अन्धकार मे यह कौन कुहुकिनी कुहुक उठी। यह तो वेदना की सगीतमयी आत्मा यमुना है। अपनी हूक से विधाता के अभिशाप (जीवन के अन्धकार) को चुनौती दे रही है। इसके सन्तप्त कठ मे सीता, राधा और शकुन्तला का सामाजिक क्रन्दन है, नारी के विगलित हृदय का युग प्लावन है। प्रकृति का यह भी एक दुखान्त चित्र है।'[3]

क्लिष्ट भाषा भाषा के अन्य गुणो के अतिरिक्त द्विवेदी जी की भाषा की एक अन्यतम विशेषता उसकी क्लिष्टता है जो कही-कही पर तो भाषा को अत्यन्त ही दुरूह बना देती है। अत. जिन उपन्यासो मे क्लिष्ट भाषा का प्रयोग हुआ है वह जन-साधारण से अलग साहित्यिक वर्ग के लिए श्रेष्ठ कहे जा सकते है। क्लिष्ट भाषा का एक उदाहरण 'जैसे देह शुद्धि के लिए नियम-सयम है वैसे ही मन शुद्धि के लिए भी नियम-सयम है। जैसे शरीर अपने सर्वांग सगठन से व्यवस्थित है वैसे ही मन भी सम्यक् बोध से सुव्यवस्थित (सुस्थिरचित) हो सकता है। बोधिवृक्ष के

---

१. 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६।
२. 'चित्र और चिन्तन', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७९।
३. 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७०।

नीचे जब मुझे मनोविकारो का कारण ज्ञात हुआ तब उनके निराकरण (शुद्धीकरण) का भी परिज्ञान हो गया। भिक्षुओ ! कार्य-कारण की परम्परा के अनुसार चित्त-शुद्धि और आत्म शाति किंवा लोक शाति के लिए यही चेतना प्रसूत विश्वसनीय उपलब्धि मेरा 'प्रतीत्य समुत्पाद' है।"[1] श्री द्विवेदी जी के उपन्यासो मे क्लिष्ट भाषा का प्रयोग वही पर हुआ है, जहा दार्शनिकता से पूर्ण गूढ अर्थ व्यजक आध्यात्मिक तत्वो का निरूपण हुआ है। अन्यथा इनकी भाषा शुद्ध खडी बोली है और कही-कही सस्कृत के तत्सम शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। अत श्री द्विवेदी जी के उपन्यासो की भाषा क्लिष्ट, दुरूह, गभीर चिन्तन युक्त, परिष्कृत एव परिमार्जित है।

साहित्य की अधिकाश विधाओ मे भाषा को ही अभिव्यजनात्मकता की दृष्टि से प्राथमिकता दी जाती है। इसीलिए विविध विधाओ मे हुए परिवर्तन वस्तुत भाषागत ही होते है। उपन्यास मे भाषा का प्रयोग दोहरे अर्थ मे महत्व रखता है। प्रथम वह उपन्यासकार के कथा वैचारिक स्वरूप की अभिव्यक्ति करती है और द्वितीय वह उपन्यासकार के विभिन्न पात्रो के चरित्रो के माध्यम से हृदय की विविध अनुभूतियो एव भावनाओ की प्रतीति दूसरो तक पहुँचा देती है। द्विवेदी जी के उपन्यासो की भाषा काव्यात्मक एव बौद्धिक रूपो की प्रधानता लिए हुए है। जो लेखक के कवि और आलोचक व्यक्तित्व की प्रधानता इगित करती है। उनकी भाषा के विविध रूप समकालीन जीवन और व्यवहार मे प्रयुक्त भाषा के परिचायक हैं। मुख्यत. उन्होने सामान्य प्रयोग की भाषा, मिश्रित भाषा, लोक भाषा, तथा सस्कृत-प्रधान भाषा के ही रूप प्रस्तुत किये है। ग्राम्य भाषा, उर्दू प्रधान भाषा एव अग्रेजी प्रधान भाषा के प्रयोग द्विवेदी जी की औपन्यासिक कृतियो मे विरल रूप मे ही उपलब्ध होते है। यत्र-तत्र इन भाषाओ के स्फुट शब्द अवश्य प्रयुक्त हुए है। सक्षेप मे भाषा के काव्यमय रूप ने इनके उपन्यासो को प्रभावात्मकता से युक्त बना दिया है जो भाषा क्षेत्रीय कलात्मकता और प्रौढता का ही सूचक है।

[५] **द्विवेदी जी के उपन्यासो मे शैली तत्व** हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भिक काल मे शैली तत्व भी उपन्यास के अन्य तत्वो की भाँति नगण्य सा ही था एवं शैली क्षेत्रीय नवीन विकास की सम्भावनाओ को भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। पूर्व युगीन अधिकाश उपन्यासो मे तृतीय पुरुष के रूप मे वर्णनात्मक शैली का ही प्राय' प्रयोग किया जाता था। परन्तु बाद मे कलात्मक विकास के साथ उपन्यासो मे अन्य शैलियो का भी प्रयोग प्रारम्भ हुआ और इस प्रकार अनेक नवीन शैलियो का आविष्कार हुआ। तृतीय पुरुष के रूप मे लिखित वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त प्रथम तथा द्वितीय पुरुष के रूप मे भी लिखित शैलियो का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। उपन्यास की कथा मे वर्णन तत्व के जितने भी रूप हो सकते है, उपन्यास मे उतनी ही शैली

---

१. 'चारिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७-८।

की कोटिया भी हो सकती हैं। उपन्यास मे शैली तत्व के स्वरूप का यदि सम्यक् अवलोकन किया जाय तो स्पष्ट ही ज्ञात होगा कि प्रत्येक भिन्न साहित्यिक विधा अपने मूल रूप मे वाङ्मय की एक विशिष्ट शैली होती है। एक लेखक जब उपन्यास रूपी साहित्यिक माध्यम का चयन करता है तब वह इस शैली के प्रति एक विशिष्ट आग्रह प्रदर्शित करता है।[1]

वर्णनात्मक शैली उपन्यास मे प्रयुक्त सबसे प्राचीन और प्रारम्भिक शैली वर्णनात्मक है। इसमे उपन्यासकार का स्थान एक कथाकार सा होता है, जो निर्लिप्त भाव से कथा का वर्णन करता है। इस पद्धति की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमे उपन्यासकार का कार्य अधिक सुविधाजनक हो जाता है क्योकि कथा की वर्णनात्मक सम्भावनाएँ अधिक होती है। इसके साथ ही चरित्र-चित्रण की सफलता की अधिक आशा होती है। वर्णन एक लेखन कला के साथ ही एक सक्रिय कला भी है जिसके माध्यम से कथानक का काल, समय तथा सामाजिक वातावरण का निर्धारण होता है। उदाहरण के लिए हम श्री शातिप्रिय द्विवेदी के 'चित्र और चिन्तन' उपन्यास का निम्न उदाहरण ले सकते है: 'कमल का जीवन अभावो का ऐसा गहन गर्त है जो न केवल उसकी व्यक्तिगत रिक्तता को सूचित करता है अपितु सारी पृथ्वी की अतल शून्यता को भी ज्ञापित करता है। यह ठीक है कि पृथ्वी पर हरे-भरे मैदान भी है, पेड भी हैं, नदी और समुद्र भी है, फिर भी जीवन कहा है, बाहर के भराव की नीव अभावो से खोखली है, तभी तो कभी भूकम्प आता है, कभी ज्वालामुखी का विस्फोट होता है। कहा जा सकता है कि यह तो प्राकृतिक नियम है, किन्तु ध्वस ही नही, निर्माण भी प्रकृति का नियम है, उसी से वह अपनी क्षति पूर्ति करता है। इस वैज्ञानिक युग मे मनुष्य जब कि प्रकृतिविजयी होने का दावा करता है वह निर्माण क्या कर रहा है ? कभी-कभी सहअस्तित्व का नारा सुनायी पडता है, किन्तु उसके लिए स्नेह और सहयोग कहा है ? स्नेह और सहयोग के बिना जैसे गह्वर वैसे शिखर, सब जीवन शून्य है।'[2]

विश्लेषणात्मक शैली उपन्यास मे प्रयुक्त होने वाली दूसरी शैली विश्लेषणात्मक है जिसका उपन्यास मे विशिष्ट अर्थो मे प्रयोग होता है। ऐसे उपन्यास जो विवेचनात्मक अथवा तर्क प्रधान शैली मे लिखे गये हो वह विश्लेषणात्मक शैली को कोटि के अन्तर्गत आते है। विचारो के विश्लेषण के लिए इस विशिष्ट शैली का प्रयोग होता है जिसमे विचारो के व्यावहारिक और सैद्धान्तिक पक्षो का विवेचन और विश्लेषण होता है। विश्लेषणात्मक शैली मे लिखे उपन्यासो मे लेखक प्राय बौद्धिक और शिक्षित वर्ग के पात्रो का चयन करता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के

१. 'हिन्दी उपन्यास कला', डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० २५७।
२. 'चित्र और चिन्तन', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५१।

उपन्यासो मे यत्र-तत्र विश्लेषणात्मक पद्धति के समस्त रूप मिलते है और कही-कही पर तो एक साथ ही दो-तीन पद्धतियो का सम्मिश्रण सा हो गया है। निम्न उद्धरण यथार्थपरक विश्लेषणात्मक शैली का अनुकरण करता है 'जहा प्रकृति अठखेलिया करती है वहा उसी की प्रतिकृति बच्चे भी खेलते-कूदते थिरकते थे। किन्तु विमल तो इस विश्व लीला मे अधिक भाग नही ले सका। उसमे खेलने की प्रतिभा नही थी। उसमे तो उस बाल समाज की सरलता थी जो अपनी अनभिज्ञता के कारण बिना पात्रापात्र का विचार किये ही सभी को अपने समाज का अग बना लेती है। विमल का तो कोई स्थान नही था—न छोटे-बडो के समाज मे, न घर मे, न किसी के हृदय मे। बचपन मे ही वह अनाथ हो गया था। लोग उसे टूअर-पातर कहते थे। उसने भी किसी परिवार मे ही जन्म लिया था। किन्तु माया ममता का दुलार नही पा सका था। सब लोग उसे दुरदुराते ही रहते थे। कोई पालन-पोषण न मिलने पर भी उसका मृगछौने सा क्षीण शरीर प्रकृति के क्रोड मे मृणाल तन्तु की तरह हिलता डुलता रहा।'[1]

डायरी शैली डायरी शैली मुख्यत प्रथम पुरुष मे लिखी जाती है। इस शैली मे लिखे उपन्यासो मे कभी-कभी एक से अधिक पात्रो की डायरी भी कथा मे सम्बद्ध होती है। कभी-कभी डायरी शैली किसी औपन्यासिक कृति मे पूर्ण रूप से समाविष्ट न होकर आशिक रूप से प्रस्तुत की गयी मिलती है। आत्मकथात्मक शैली और डायरी शैली मे अन्तर केवल यह है कि डायरी शैली मे प्रथम के अतिरिक्त द्वितीय और तृतीय पुरुष की ओर से लिखी गयी डायरिया भी सम्मिलित हो सकती हैं परन्तु आत्मकथात्मक शैली मे केवल प्रथम पुरुष मे ही कथा अन्तर्निहित होती है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के केवल 'चित्र और चिन्तन' उपन्यास मे डायरी शैली का प्रयोग हुआ है और वह भी कथा के मध्य मे आशिक रूप से। लेखक ने कथा के मध्य डायरी शैली का प्रयोग इस प्रकार से किया है 'कमल ने अपनी डायरी मे लिखा है ..अपने जीवन की सबसे बडी भूल क्या कहूँ ?...भूल समझदारो से होती है, जिसमे समझ नही, उसकी क्या सही और क्या भूल। मे समझदार कभी नही रहा। फिर भी यदि कहना ही है तो यही कह सकता हूँ कि मेरी सबसे बडी भूल यह है कि मा के उदर से मैं दुर्बल तन, दुर्बल मन लेकर पृथ्वी पर आ गया। ससार इस प्राकृतिक नियम को क्षमा कर दे तब भी मैं अपने को क्षमा नही कर सकता क्योकि अपनी नासमझी से जीवन मे भूल करता रहा। मानवीय विवेक तो दूर, मुझमे उन पशु पक्षियो जितनी भी समझ नही है जो अपना हानि लाभ समझते है।...एक सास्कृतिक कुल मे मेरा जन्म हुआ। मा गृहसाधिका भारतीय नारी, पिता गृहत्यागी बनवासी सन्यासी। आर्यललना की कला रुचिरता और माता की सात्विकता की प्रतिमूर्ति

१. 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९-१०।

तपस्विनी बालविधवा बहिन। माता-पिता जब मेरे शैशव मे ही चल बसे तब बहिन के ही आचल मे आश्रय पाकर मै जी गया। . '[1]

स्मृतिपरक अथवा फ्लैशबैक शैली 'फ्लैशबैक' शब्द सिनेमा शिल्प से सम्बन्धित है। इसमे घटना अथवा घटनाओ को तत्काल न दिखा कर किसी पात्र की स्मृति मे दिखलाया जाता है। वह स्मरण शक्ति के आधार पर उस घटना को प्रत्यक्ष प्रतिबिम्बित होते देखता है। इस टेकनिक की मुख्य विशेषता यह है कि इसमे एक घटना पर पात्र विशेष के दोहरे मनोभावो का प्रभाव सरलता एव स्पष्टता से दिखाया जा सकता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियो मे फ्लैशबैक शैली का प्रयोग खुलकर हुआ है। इनके तीनो उपन्यासो मे इस शैली का रूप मिलता है। 'चित्र और चिन्तन' उपन्यास मे इसका रूप जीवन की अतीत घटनाओ को स्वप्न मे देखने के रूप मे प्रस्तुत हुआ है। उदाहरणार्थ · 'कमल जब सो जाता है तब उसकी आखो मे उसके अनुभवो का ससार सिमट कर स्वप्न बन जाता है।.. कभी-कभी मरुस्थल मे ओएसिस की तरह सुखद स्वप्न भी देख लेता है। ..ग्रीष्म मे कमल छोटे से मकान की छत पर सोता है। सवेरे जब उसकी नीद खुलती है तब देखता है मस्तक पर विस्तृत नीला आकाश चदोवे की तरह फैला हुआ है, नीचे पृथ्वी पर पूरब की ओर चौडे पाटो मे गगा का अमृत प्रवाह बह रहा है। न जाने किस प्राण प्रवेग से प्रेरित होकर तरह-तरह के छोटे-बडे पक्षी द्रुतगामी से सरकते और उडते जा रहे हैं। कोटरो से निकल कर अलसाये कपोत इधर-उधर फुदकते हैं। कभी-कभी जल विहग हस पृथ्वी पर अपने शुभ्र पख फडफडा कर नयी स्फूर्ति से गगा की ओर अग्रसर हो जाते है। सामने उत्तर की ओर कमल का वह पुराना जाना पहिचाना विशाल बट वृक्ष है जिसकी छत्रछाया मे कभी उसका बचपन हसता खेलना था, जिसके किसी पल्लव मे वप्पत्र-शायी बालमुकुन्द की तरह उसका शैशव सोया हुआ है।.. क्षण भर प्रकृति से प्रफुल्ल होकर कभी द्वाभा को, कभी उषा को, कभी अरुणोदय को नमस्कार कर कमल विफल स्वप्नो से बोझिल मस्तिष्क लेकर फिर वस्तुजगत मे आ जाता है।'[2]

कथोपकथन या संवाद शैली वस्तुत· सवाद नाटक का प्रमुख तत्व है, लेकिन उपन्यासो मे इसका उपयोग अपनी विशिष्ट महत्ता लिए हुए है। कुछ उपन्यासो मे कथोपकथन को आशिक रूप मे प्रयोग मे लाया जाता है परन्तु कभी-कभी उपन्यासो मे कथोपकथन को प्रमुख स्थान भी दे दिया जाता है। ऐसे उपन्यासो की विशेषता ही कथोपकथन होता है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासो को उद्धृत किया जा सकता है जिसमे विशिष्ट वातावरण की सृष्टि करने के लिए सस्कृत गर्भित भाषा को सवादो मे रखा जाता है। इस शैली के प्रयोग का महत्व उपन्यास मे चामत्कारिकता उत्पन्न करना है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे और विशेष रूप से 'चारिका'

---

१. 'चित्र और चिन्तन', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४२।

२. वही, पृ० ३३-३४।

उपन्यास मे कथोपकथन की बहुलता है। अतएव इसमे कथोपकथन का प्रमुख स्थान है 'सारिपुत्र ने अश्वजित् के समीप जाकर कहा—आवुस! तेरी इन्द्रिया प्रसन्न है, तेरी भ्रान्ति शुद्ध और उज्ज्वल है, तू किस दिव्यात्मा का शिष्य है? तेरा शास्ता कौन है।

अश्वजित् ने कहा—महाश्रमण तथागत मेरे शास्ता है।

सारिपुत्र ने पूछा—आयुष्मान के शास्ता किस सिद्धान्त को मानते है?

अश्वजित् ने कहा—मैं अभी नया स्नातक हूं। विस्तार से अपने धर्म का सिद्धान्त नही समझा सकता।

सारिपुत्र ने कहा—सक्षेप मे ही बतलाओ आयुष्मान्! मुझे तो सार चाहिए। चातक के लिए एक बूद भी पर्याप्त है।

अश्वजित् ने तथागत के शातिमत्र से उसके अन्त करण को अभिषित कर दिया। गर्भ विन्दु पाकर सारिपुत्र भीतर से उद्भिज्ज हो उठा।'[१]

काव्यात्मक शैली काव्यात्मक शैली को ही दूसरे शब्दो मे भावात्मक शैली भी कहा जाता है। इसका आविर्भाव हिन्दी उपन्यास के प्रथम विकास काल मे हुआ था। हिन्दी गद्य साहित्य और विशेषत उपन्यास विधा, अपने विकास से पूर्व प्रचलित काव्य की विविध शैलियो से प्रभावित है। उसी का प्रभावात्मक रूप उपन्यास मे काव्यात्मक या भावात्मक शैली है। आधुनिक युग की विभिन्न प्रवृत्तियो के अन्तर्गत आने वाले उपन्यासो मे भाव-प्रधान काव्यात्मक शैली आशिक रूप मे मिलती है। इस शैली का पूर्णात्मिक प्रयोग बहुत कम उपन्यासो मे हुआ है। इस पद्धति का एक रूप आधुनिक युग के उपन्यासो मे प्रकृति चित्रण का आधार लेकर विकसित हुआ है। इस दृष्टि से श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास भी भाव प्रधान काव्यात्मक शैली से अनुप्राणित प्रतीत होते है। यत्र-तत्र उसके उदाहरण परिलक्षित होते है। 'दिगम्बर' मे तो प्रकृति के माध्यम से ही एक पात्री का चित्राकन किया है 'कुहू कुहू अरे, अन्धकार मे यह कौन कुहुकिनी कुहुक उठी। यह तो वेदना की सगीतमयी आत्मा यमुना है। अपनी हूक से विधाता के अभिशाप (जीवन के अन्धकार) को चुनौती दे रही है। इसके सन्तप्त कठ मे सीता, राधा और शकुन्तला का सामाजिक क्रन्दन है, नारी के विगलित हृदय का युग प्लावन है। प्रकृति का यह भी एक दुखान्त चित्र है।'[२]

आंचलिक शैली आचलिक शैली पूर्ण मौलिकता लिए हुए है परन्तु वह लोककथात्मक शैली के अत्यधिक समीप है। इस शैली का आधारभूत तत्व कथा मे विशिष्ट प्रदेश का स्थानीय चित्रण है जिसमे प्रदेश की लोक कथाओ, लोक परम्पराओ, रीति-रिवाजो, आचार-विचार, समाज-व्यवहार, भाषा बोली आदि का विस्तृत एव

---

१. 'चारिका', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४५।

२ 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७०।

सूक्ष्मता से अकन होता है। इस शैली की सबसे बडी सीमा इसमे वैयक्तिकता का अभाव है। विविध पात्रो की निजी चारित्रिक विशेषताएँ समाप्त हो जाती हैं और वह केवल अपने-अपने वर्गो का एकात्मक प्रतीक ही रह जाते हैं। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे आशिक रूप मे ही आचलिक शैली का प्रयोग हुआ है जिसमे केवल एक गाव विशेष का अपरोक्ष रूप मे अकन है। उदाहरणार्थ 'गाव की अमराइयो मे एक बालक घूमता रहता था। आमो की रखवाली करता था। खेती नाम मात्र की थी। बगीचे मे जैसे अनेक पेड वैसे ही घर मे अनेक प्राणी। यहा तक कि पुरानी पीढी की निशानी वृद्धा दादी भी अभी तक जीवित थी। . पेडो के झुड से अलग जैसे कही कोई नन्हा बिरवा दिखाई देता है वैसे ही परिवार की सीमा मे वह बालक था। मानव शिशुओ की तरह उसका लालन-पालन नही हो सका था, पेड-पौधो की तरह ही वह अमराइयो मे खिलता खेलता रहा। . जब सब लोग सवेरे की मीठी नीद मे सोये रहते तभी वह घर से बगीचे मे चला आता। उस सूने निर्जन मे उसे भय नही मालूम होता क्योकि वहा डाल-डाल पर चिडियो की चहचहाहट उसका स्वागत करती, मानो वह भी उन्ही मे से कोई एक हो।.. साझ को जब बगीचा फिर सुनसान हो जाता, तब और कोई नही, वही बालक वहा वन की सूक्ष्म आत्मा की तरह, सध्या समीर की तरह घूमता रहता। वह पेडो के शिखरो की ओर देखता—कहा किन पत्तो की ओट मे कौन आम पका हुआ है। दूर से ही वह कच्चे और पक्के आमो को पहचान लेता। ऐसी थी उसकी पैनी दृष्टि।"[1]

मनोविश्लेषणात्मक शैली ' हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र मे मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रादुर्भाव पाश्चात्य मनोविश्लेषणशास्त्री सिगमड फ्रायड, एडलर और युग आदि के वैचारिक सिद्धान्तो के आधार पर हुआ। इस शैली के अन्तर्गत कथानक के पात्रो की विविध मन स्थितियो का चित्रण होता है। आधुनिक युगीन उपन्यासो मे यह शैली चरित्र के विश्लेषण तथा अन्तर्विवृत्ति मे विशेषत सहायक होती है। आधुनिक उपन्यास लेखन के क्षेत्र मे रचनात्मकता और क्रियाशीलता की दृष्टि से इसी शैली का प्रयोग और प्रचार अधिक है। हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक शैली मे लिखे उपन्यासो मे मन की चेतन और अचेतन दोनो ही अवस्थाओ का स्पर्श किया जाता है। सर्वप्रथम प्रेमचन्द के उपन्यासो मे मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का समावेश हुआ परन्तु उसका आशिक प्रयोग ही मिलता है। उसका विशुद्ध रूप तो प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यासो मे परिलक्षित होता है। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासो के कथानको में सगठनात्मकता तथा पात्रो की सख्या कम होने के कारण इसमे मनुष्य की अन्त. चेतना का सूक्ष्म विश्लेषण होता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे मनोविश्लेषण का विशुद्ध रूप एव शैली तो नही दृष्टिगोचर होती है परन्तु यत्र-तत्र उसका प्रभाव अवश्य ही दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ . 'एक दिन ब्रह्ममुहूर्त मे जब

---

१. 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६-७।

गगा स्नान कर के लौट रही थी तब सीढी पर कोई शुभ्र वस्तु दिखाई पडी। उसने सगमरमर के ठाकुर जी की बटिया समझ कर उसे उठा लिया। कैसी भोली थी। हाथ मे लेते ही वह सफेद चीज कच्च से फूट गयी। वह तो किसी चिडिया का अडा था। कीचड मे पाव पड जाने से जैसी जुगुप्सा होती है वैसी ही जुगुप्सा से उसका हृदय खिन्न हो गया। आत्मग्लानि से वह विक्षिप्त हो गयी थी, मानो मस्तिष्क को कोई 'शाक' लग गया था।''[1] इसी प्रकार 'चारिका' उपन्यास मे गौतम के निष्क्रमण के पश्चात् यशोधरा की चित्तवृत्ति एव मानसिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण लेखक की सूक्ष्म विश्लेषणात्मक दृष्टि का परिचायक है।

उपन्यास मे शैली का महत्व शैली उपन्यासकार के व्यक्तित्व का अभिन्न अग है। उपन्यास लेखक की विशिष्ट कृति के आधार पर औपन्यासिक कला भी व्यक्तिगत कही जा सकती है। अतएव सर्वश्रेष्ठ उपन्यासो की विशिष्टता स्वय लेखक की अपनी विशिष्टता होती है। उपन्यास की रसात्मकता एव प्रभावोत्पादकता के लिए शैली का विशेष महत्व है। उपन्यास साहित्य के विकास के विविध युगों मे न केवल स्वरूपगत विकास होता रहा है वरन् विभिन्नता भी परिलक्षित होती है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पूर्वयुगीन उपन्यास साहित्य मे वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया जाता था। इसके अनन्तर साधारण रूपगत परिवर्तन के साथ इसी शैली का प्रयोग हुआ है। परन्तु शैली के क्षेत्र मे अत्यधिक विस्तार एव प्रसार होने के कारण तथा नवीन आकर्षण के कारण अनेक शैलियो का आविर्भाव हुआ जो शैली के वास्तविक महत्व का द्योतक है। इस दृष्टि से श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास विभिन्न शास्त्रीय उपकरणो मे मुख्यत. शैली क्षेत्रीय नवीनता का ही परिचय देते हैं। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है शातिप्रिय द्विवेदी जी के उपन्यास स्थूलत: औपन्यासिक रेखाकन मात्र है जिनमे कथा तत्व का निर्वाह करते हुए उसे सूत्रबद्धता प्रदान की गयी है। जैसा कि हिन्दी उपन्यास की सक्षिप्त विकास रेखा प्रस्तुत करने के सन्दर्भ मे सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी के उपन्यास शैली की दृष्टि से उस परम्परा से पृथक् है। उपन्यास लेखन की सभी प्रमुख शैलियो, प्रमुखत वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्रात्मक शैली, स्मृतिपरक शैली, सवाद शैली, काव्यात्मक शैली, लोककथात्मक शैली, आचलिक शैली, तथा मनोविश्लेषणात्मक शैली आदि, का प्रयोग द्विवेदी जी के उपन्यासो मे हुआ है। इसीलिए इनके उपन्यास शैलीगत कलात्मकता से युक्त होने के साथ-साथ नवीनता तथा प्रयोगात्मकता की दृष्टि से भी मौलिक एव महत्वपूर्ण कहे जा सकते है।

[६] **द्विवेदी जी के उपन्यासो मे देश-काल अथवा वातावरण चित्रण :** देश-काल अथवा वातावरण के अन्तर्गत किसी भी देश अथवा समाज की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक परिस्थितिया, आचार-विचार, रूढिया, प्रथाएँ, रीति-रिवाज तथा समाज

---

१. 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १३।

की विशेषताएँ एव कुरीतिया आदि का चित्रण आता है। उपन्यास के कथानक और पात्रो के चित्रण मे वातावरण एक सीमा का निर्धारणा सा कर देता है जिसका अतिक्रमण करने से उपन्यास का अशक्त हो जाना सम्भव है। उपन्यास की विविध घटनाओ, उसके पात्रो के क्रियाकलाप और विभिन्न परिस्थितियो मे उनकी प्रतिक्रियाओ को यथार्थ रूप मे चित्रित करने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि मे देश-काल का यथार्थ चित्रण एव वास्तविक लेखा-जोखा प्रस्तुत हो। परिवर्तनशीलता प्रकृति का एक नैसर्गिक सिद्धान्त है। प्रकृति के समान समाज मे भी समयानुसार विविध परिवर्तन लक्षित होते हैं और मानव उन परिवर्तनो से प्रत्यक्ष या परोक्षत अवश्य ही प्रभावित होता है। अतएव उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक है कि उपन्यास की पृष्ठभूमि मे कथा और पात्रो की जीवन्तता के लिए विविध क्षेत्रीय नवीनता के सयोजन के साथ ही वह समाज के विविध आन्दोलनो से प्रभावित पात्रो की बदलती विचारधाराओ का एक सामाजिक मानव के सदृश दिग्दर्शन करे।

देश-काल के गुण उपन्यास मे कथा समय और कथा प्रकार की विशिष्टता की दृष्टि से प्राय· देश-काल का चित्रण होता है। इस चित्रण के लिए उपन्यास मे कुछ निश्चित आधार और गुण होते हैं जिनका पालन उपन्यासकार के लिए आवश्यक होता है। इन गुणो का समावेश वातावरण चित्रण को अभिव्यक्ति पूर्णता प्रदान करता है एव उसमे विश्वसनीयता का समावेश होता है। ये गुण सक्षेप मे इस प्रकार उल्लिखित किये जा सकते है

(क) वर्णनात्मक सूक्ष्मता · उपन्यास मे अन्य वर्णनो की तरह ही देश-काल और वातावरण का वर्णन भी कलात्मक और सूक्ष्म तथ्यपरक होना चाहिए। स्थूल वर्णन उपन्यास मे वातावरण सृष्टि की सफलता एव उपादेयता मे बाधक ही होता है। वर्णनात्मक सूक्ष्मता ही पाठक के सम्मुख काल और युग विशेष का सजीव चित्र अकित कर सकती है।

(ख) विश्वसनीय कल्पनात्मकता : उपन्यास मे वातावरण की सृष्टि का दूसरा महत्वपूर्ण गुण उसकी विश्वसनीय कल्पनात्मकता है। अत. स्पष्ट ही है कि उपन्यासकार को युग और वातावरण के चित्रण मे भी कल्पना का आश्रम लेना पडता है। परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि उपन्यासकार यथार्थ चित्रण और कल्पना तत्व का अनुपातिक रूप ही प्रस्तुत करे। शुष्क, नीरस, प्रभावहीन यथार्थ चित्रण करते समय लेखक उसमे कल्पना का समावेश करके उसे सजीवता प्रदान कर सकता है। सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासो मे कल्पनात्मकता का महत्वपूर्ण योग रहा है। प्राकृतिक वर्णन प्रधान उपन्यासो मे भी कल्पना के योग से किसी चित्र को स्वरूपात्मक पूर्णता प्रदान की जा सकती है। अतएव सन्तुलित, मर्यादित और अनुपातिक रूप में कल्पना तत्व का समावेश उपन्यास के वातावरण तत्व का आवश्यक गुण है।

(ग) उपकरणात्मक सन्तुलन : जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है,

उपन्यास मे वातावरण तत्व उपन्यास के अन्य तत्वो और मुख्यत दो प्रधान तत्वो कथानक और पात्र से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होता है। पात्र का सम्बन्ध कार्य कलाप, वार्तालाप और रीति विचार के कारण किसी न किसी युग विशेष से रहता है और उस युग का चित्रण वातावरण तत्व के माध्यम से ही होता है। अत उपन्यास मे वातावरण और चित्रण का उपकरणात्मक सन्तुलन होना आवश्यक है। केवल वातावरण चित्रण पर अधिक बल देने से वह वर्णनात्मक कृति ही हो जायेगी और पात्र तथा अन्य उपकरण अशक्त से परिलक्षित होगे।

देश-काल के भेद देश-काल का वातावरण के वाह्य रूप से सम्बन्ध है। यह उपन्यास मे युग अथवा परिस्थिति चित्रण मे सहायक होता है। देश काल के सभी भेद अलग-अलग क्षेत्रीय महत्व रखते हैं। ये विपयानुकूल होने पर लेखक की सूक्ष्म दृष्टि सपन्नता और मनोरम चित्रण क्षमता का परिचय देते है परन्तु अरोचक होने पर कथा प्रवाह मे बाधक भी होते है। देश-काल चित्रण के वाह्य रूपात्मक भेद निम्नलिखित है -

(क) सामाजिक वातावरण इसके अन्तर्गत विशिष्ट समाज के युग विशेष की परिस्थितियो एव सामाजिक दशा का यथार्थ चित्रण किया जाता है। सामाजिक जीवन से सम्बन्धित समस्त वर्णन वेष-भूषा, भाषा, रीति-रिवाज, सामाजिक वर्ग, शिक्षा, सस्कृति, सामाजिक व्यापार आदि सामान्य व्यवहार मे आने वाले तत्व इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सभी उपन्यासो मे अपने युग का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ। ऐतिहासिक उपन्यास मे अपने विशिष्ट युग का सामाजिक चित्रण चित्रित करने मे लेखक सफल हुआ है। उसी प्रकार अन्य सामाजिक उपन्यासो मे तो आधुनिक सामाजिक जीवन का जीता जागता चित्र उपन्यासकार ने चित्रित कर दिया है। इसके चित्रण मे लेखक ने परोक्ष और अपरोक्ष दोनो ही रूपो का आश्रय लिया है। उनमे व्यक्ति, उसका परिवेश, उसका युग और उसका रचनात्मक चिन्तन चित्रित है। उदाहरणार्थ 'उसे भी भूख लगती थी, प्यास लगती थी। कला से उसे जो मानसिक तृप्ति मिलती थी, वही तृप्ति शरीर भी मागने लगा। देश काल की तरह अपनी भूख प्यास को भी भूले हुए वह कला की साधना करता था, किन्तु यह भुलावा कब तक चल सकता था, शरीर अपनी अवहेलना नही सह सकता था। जीवन का पथ उसके लिए दूभर हो गया, एक पग भी चलना मुश्किल हो गया।...कहा मिलेगी उसे सुरुचि ? कहा मिलेगी उसे शुचिता रुचिरता ?[१]

(ख) प्राकृतिक वातावरण उपन्यास मे घटना की प्रभावात्मकता और अनुकूलता की सार्थकता के लिए कभी-कभी लेखक कथा मे नियोजित पात्रो के सुख-दुख के साथ प्रकृति की समता विषमता को बडे ही नाटकीय ढग से प्रस्तुत करता है। उपन्यास मे प्राकृतिक वातावरण का चित्रण उसके पात्रो के अनुभूति साम्य के उद्देश्य

१ 'चित्र और चिन्तन', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६।

से किया जाता है। मनुष्य स्वभावत अपनी आह्लादकारी तथा वेदनात्मक दोनो ही प्रकार की अनुभूतियो की प्रतिछवि प्रकृति मे लक्षित करता है। उसे प्रकृति मे कभी प्रसन्नता का आवरण प्रतिभासित होता है तो कभी वेदना की प्रतिमूर्ति दृष्टिगोचर होती है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने अपनी औपन्यासिक कृतियो मे प्रकृति का वर्णनात्मक शैली मे उल्लेख न करके प्रकृति को पात्रो के परिचय का माध्यम बनाया है। अत प्रकृति चित्रण का अशत ही उपयोग हुआ है। उदाहरणार्थ 'अपने लौकिक अस्तित्व मे वह मानवी थी, किन्तु अपनी चेतना में स्वय प्रकृति थी। प्रकृति के सभी रूप-रग-रस उसके स्वभाव और सौन्दर्य मे समन्वित हो गए थे। कमलिनी सी वह तन्वगिनी थी। पिक सी मधुर भाषिणी थी। अग्नि सी तेजस्विनी थी। सघन कादम्बिनी सी करुणार्द्र थी। हृदय की तरह सरला थी। उसका अन्त करण गगाजल की तरह निर्मल था, जिसमे राग-विराग उषा-सन्ध्या की तरह प्रतिबिम्बित था। इसीलिए विधवा होते हुए भी उसके परिधान मे गगा के उस पार (प्राची) की अनुरागिनी उषा भी रगीन थी, इस पार (प्रतीची) की सन्यासिनी सन्ध्या भी रगीन थी।''[1]

(ग) राजनीतिक वातावरण राजनीतिक उपन्यासो मे कथा राजनीतिक घटनाओ से सबधित होती है। अतएव चरित्र तथा वातावरण भी राजनीतिक होता है। कुछ उपन्यासो का वातावरण राजनीतिक ऐतिहासिक होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि घटनाएँ इतिहास से सम्बन्धित होती हैं और उसका वातावरण राजनीतिक होता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सामाजिक उपन्यासो मे राजनीतिक वातावरण का अशत: प्रयोग मिलता है—जहा लेखक ने स्वय अपना मन्तव्य व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ 'बौद्ध युग मे राजनीति भी धार्मिक हो गयी थी, अशोक का धर्मचक्र इसका ऐतिहासिक सकेत है। किन्तु कालान्तर मे राजनीति का पुन प्राधान्य हो गया, धर्म (परमार्थ) का स्थान स्वार्थ ने ले लिया। धर्म निर्जीव शरीर की तरह सम्प्रदाय मात्र रह गया। राजनीति ने मनुष्य मे जो हिंसात्मक स्वार्थ सचेष्ट कर दिया, वही तामसिक स्वार्थ व्यक्तियो मे, परिवारो मे, सम्प्रदायो मे, राष्ट्रो मे, तरह-तरह की दलबन्दियो मे और गुटो मे अधिकार और न्याय के नाम पर पाशविक सघर्ष करने लगा। गाधी-युग का जब उदय हुआ तब हमारे देश मे अग्रेजो का शासन था। अग्रेजी शासन मे भारत मे भी वे सभी दूषण आ गये जो पश्चिमी देशो मे आधि-व्याधि के रूप मे फैले हुए थे। भारत भारत नही रह गया, उसका जीना अग्रेजो पर, उसका बोलना अग्रेजी पर निर्भर हो गया।...गाधी-युग की राष्ट्रीयता भारत के उस मौलिक व्यक्तित्व को जगाने के लिए थी, जो अपनी अहिंसा मे वसुधैव कुटुम्बकम् की ओर उसी तरह उन्मुख थी, जैसे सरिता समुद्र की ओर।.. गाधी जी के बाद बौद्ध युग के 'पचशील' शब्द का प्रयोग किया गया, किन्तु उसका रूप राजनीतिक ही रह गया। राजनीति ने 'पचशील' के राजनीतिक रूप का भी शील भग कर दिया, जिसका

---

१. 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११।

प्रमाण सम्प्रति चीन का आक्रमण है।'[१]

(घ) ऐतिहासिक वातावरण ऐतिहासिक उपन्यासो मे प्राय. ऐतिहासिक वातावरण की आवश्यकता है। इन उपन्यासो मे उपन्यासकार को अधिक सतर्क रहना पडता है जिससे कि किसी भी स्थल पर काल दोष न आने पाये और वर्णन इतिहास विरुद्ध न होने पाये। कथा का मूल ढाचा इतिहास सम्मत होते हुए भी उसमे कल्पनात्मकता का अधिक स्थान होता है। वातावरण की दृष्टि से उपन्यास की ऐतिहासिक कोटि के अन्तर्गत एक उपकोटि ऐतिहासिक सास्कृतिक भी है जिनमे ऐतिहासिक सामाजिक एव सास्कृतिक जीवन का चित्रण होता है। ऐतिहासिक सास्कृतिक उपन्यासो की विशुद्ध भारतीय परम्परा के अन्तर्गत द्विवेदी जी का 'चारिका' उपन्यास रखा जा सकता है जिसमे साहसिक अथवा रोमाटिक कथा तत्व का अभाव है परन्तु कथोपकथन तत्व की प्रमुखता लिए हुए परिष्कृत सस्कृत गर्भित भाषा का प्रयोग हुआ है। 'चारिका' का कथानक गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा से सम्बद्ध है अत. इसमे धार्मिक आध्यात्मिक तत्वो का अधिक समावेश हुआ है।

देश-काल और स्थानीय रग : उपन्यास मे प्रभावात्मकता और स्वाभाविकता के लिए स्थानीय रग का विशेष महत्व है। इसका महत्व ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण प्रधान उपन्यासो मे सामान्य रूप से होता है। देश-काल और वातावरण के चित्रण का सम्बन्ध विशिष्ट प्रदेश की क्षेत्रीय विशेषताओ से भी होता है अतएव उपन्यासो मे वातावरण चित्रण मे विभिन्न क्षेत्रीय परिस्थितियो के अनुरूप उनमे पृथकता और परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सामाजिक उपन्यासो मे स्थानीय रग का आभास तो होता है लेकिन उसका तीखापन दृष्टिगोचर नही होता। इसका मुख्य कारण यह है कि उसमे बडे शहरो के काफी हाउस और विश्वविद्यालयो का चित्रण है, इसके साथ ही उनके उपन्यास बौद्धिक है एव उनमे विभिन्न समस्याओ का विश्लेषण हुआ है। अतएव आशिक रूप मे स्थानीय रग यत्र-तत्र परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ काशी मे गगातट का चित्रण लेखक ने पात्री की मनोदशा के आधार पर किया है. 'एक दिन ब्रह्म मुहुर्त मे जब गगास्नान करके लौट रही थी तब सीढ़ी पर कोई शुभ्र वस्तु दिखाई पडी। उसने सगमरमर के ठाकुर जी की बटिया समझ कर उसे उठा लिया। कैसी भोली थी। हाथ मे लेते ही वह सफेद चीज फच्च से फूट गयी। वह तो किसी चिडिया का अडा था। कीचड़ मे पाव पड जाने से जैसी जुगुप्सा होती है वैसी ही जुगुप्सा से उसका हृदय खिन्न हो गया।'[२]

देश-काल और आंचलिक चित्रण उपन्यास साहित्य के सूक्ष्म अवलोकन से स्पष्ट होता है कि आचलिक चित्रण का वर्तमान और पूर्ववर्ती स्वरूप सर्वथा भिन्न है। उनमे एकरूपता का अभाव है और इसका मुख्य कारण यह है कि प्राचीन उपन्यास

१. 'चित्र और चिन्तन', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५४-५५।
२ 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १३।

साहित्य के कथा तत्व मे आदर्शवादिता का गुण विद्यमान रहता था तथा उनमे लोक जीवन का ही मूल स्वर गूजता था परन्तु आधुनिक उपन्यासो मे आचलिक चित्रण यथार्थपरक भाषण से अनुप्राणित है। आचलिक उपन्यासो मे प्रादेशिक जीवन की बडी ही स्पष्ट और जीती जागती तस्वीर मिलती है परन्तु उनके पीछे वैचारिक या सास्कृतिक प्रेरणा स्पष्ट नही हो पाती है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास आचलित कोटि मे नही आते है यद्यपि आचलित तत्व का आशिक प्रयोग हुआ है।

देश-काल और लोक तत्व · सामाजिक वातावरण का एक रूप लोक तत्वो पर भी आधारित है। इसका क्षेत्र विस्तार बहुत अधिक है। इन तत्वो का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जन समाज से होता है। जन समाज अपनी विविधता और नवीनता के साथ भिन्न-भिन्न रूपो मे लोक साहित्य के अन्तर्गत अभिव्यक्ति पाता है। उसका प्रसार भिन्न-भिन्न युगो मे नवीन रूप धारण करता है। साहित्य का प्राय प्रत्येक नवीन रूप इसी उद्गम स्थल से निकलता है और अपने परिष्कृत तथा विकसित रूपो मे दूसरे क्षेत्रो से इसकी सम्बद्धता स्वीकार कर ली जाती है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे प्राय लोक तत्व का अभाव सा ही है। एकाध स्थलो मे ही ग्रामीण जन जीवन का उल्लेख मिलता है 'वह न जाने कैसी-कैसी स्मृतिया जगाती थी—घर की रसोई से लेकर गाव की बातो तक से उसका मन लहराता रहता था। चाचर के उतार-चढाव के अनुसार ही उसकी स्मृतियो मे भी एक ताल-सुर रहता था, उसी के साथ-साथ वह नाचती थी, थिरकती थी। मानो लोक कथा के साथ लोकनृत्य करती थी।'[१]

देश-काल के चित्रण का महत्व विभिन्न औपन्यासिक कोटियो मे जिस प्रकार कथा प्रधान और चरित्र प्रधान उपन्यासो मे क्रमश. कथा और चरित्र की प्रधानता होती है उसी प्रकार आचलिक आदि की कोटि मे आने वाले उपन्यासो मे देश-काल और वातावरण का प्राधान्य होता है। परन्तु देश-काल और वातावरण चित्रण प्राय: सभी उपन्यासो मे अपना स्थान रखता है। इसके लिए वातावरण चित्रण की कोई न कोई विशिष्ट सार्थकता का होना आवश्यक है। अन्य औपन्यासिक तत्वो के सदृश ही आधुनिक दृष्टिकोण से देश-काल और वातावरण की सृष्टि के अन्तर्गत स्थानीय रग को भी महत्व प्रदान किया गया है। वस्तुत वातावरण सृष्टि उपन्यास मे औपन्यासिकता का मूल आधार होती है, कारण कि उपन्यास के वातावरण मे ही पात्र और उनके क्रिया कलाप की यथार्थता का बोध होता है। आधुनिक उपन्यासो मे तो बहुधा वातावरण की प्रमुखता पर ही अन्य औपन्यासिक तत्वो का विकास किया जाता है। द्विवेदी जी के उपन्यासो मे मुख्य रूप से सामाजिक और ऐतिहासिक वातावरण उपलब्ध होता है। सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत उन्होने आधुनिक समाज मे व्याप्त विडम्बनात्मक परिस्थितिया अकित की है। काशी और प्रयाग आदि नगरो

---

१. 'दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८।

की सामाजिक पृष्ठभूमि मे उन्होने वहा के लोगो की धार्मिक मनोवृत्ति और धार्मिक चेतना का विस्तृत अकन किया है। अनेक स्थलो पर प्राकृतिक सुषमा के भी विविध चित्र मिलते है, विशेष रूप से वैशाली पूर्णिमा आदि अवसरो पर 'विमल ज्योत्स्ना मे नहाई' प्रकृति के विविध चित्र। ऐतिहासिक वातावरण के अन्तर्गत लेखक ने बुद्ध कालीन जीवन और समाज का सम्यक् रूपात्मक चित्र प्रस्तुत किया है जो समकालीन सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक चेतना का द्योतक है। द्विवेदी जी की कृतियो मे वातावरण की तत्वगत सफलता का मुख्य कारण लेखक की अनुभूत्यात्मकता और सवेदनशीलता है।

[७] **द्विवेदी जी के उपन्यासो मे उद्देश्य तत्व** · उपन्यास का सातवा और अन्तिम तत्व उद्देश्य है। औपन्यासिक कला रूप के विकास के साथ ही इसका भी महत्व धीरे-धीरे बढता गया। प्राचीन युग मे कथाओ की रचना प्राय नैतिक उपदेशात्मकता और कौतूहल जनित कल्पना पर आधारित मनोरजन के उद्देश्य से होती थी। परन्तु आधुनिक युग के प्रारम्भिक चरण से ही सामाजिक और समस्या प्रधान कथाओ की रचना प्रारम्भ हो गई। उसी समय से उपन्यास के गम्भीर उद्देश्यो को भी स्वीकार किया जाने लगा। आधुनिक काल के प्रारम्भिक युगीन उपन्यासो मे ही उद्देश्य तत्व के विस्तार का भाव परिलक्षित होता है। उपन्यास के विषय क्षेत्र के साथ ही साथ उसके लक्ष्य मे भी वैविध्य दृष्टिगोचर होने लगा और प्राचीन उद्देश्यो का आधुनिक उपन्यासो मे केवल खडन ही नही हुआ प्रत्युत् उनमे मानव जीवन के विविध परिवेशो की सम्भाव्य समस्याओ का चिन्तनपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

उद्देश्यगत विभिन्न धारणाएँ हिन्दी उपन्यास के विकास के विविध युगो मे उद्देश्य की दृष्टि से वैभिन्न्य लक्षित होता है। पूर्ववर्ती उपन्यासो मे उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति के आधार पर समाज-सुधार की भावना का प्राधान्य था। इसके अन्तर्गत अधिकाश सामाजिक उपन्यासो को रखा जा सकता है। आधुनिक उपन्यासो मे जीवन के सम्बन्ध मे एक व्यापक दृष्टिकोण से विचार करते हुए किसी आस्थावादी सदेश को प्रस्तुत किया जाता है।

(क) समस्याओ का चित्रण पूर्ववर्ती उपन्यासो मे उद्देश्यगत भिन्नता के कारण उनमे स्वरूप की भिन्नता भी मिलती है। आधुनिक उपन्यासो का उद्देश्य केवल मनोरजन करना ही नही, प्रत्युत् उसमे मानव जीवन के विविध पक्षो से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओ का दिग्दर्शन भी होता है। किसी भी औपन्यासिक कृति मे उठायी गयी समस्याएँ और उनके प्रति लेखक का दृष्टिकोण जितने गहन स्तर पर सत्य का स्पर्श करेगी उस कृति की सफलता की सम्भावनाएँ उतनी ही अधिक होगी। उपन्यासो मे प्राय उन्ही समस्याओ को प्रश्रय दिया जाता है जो मानव के मनोभावो अथवा उनके जीवन से सम्बन्धित होती हैं। कभी-कभी समकालीन समस्याओ को भी स्थान दिया जाता है। वर्तमान युगीन उपन्यासो मे मनोविज्ञान से

सम्बन्धित समस्याओ की बहुलता के कारण उपन्यास जगत मे एक नवीनीकरण हुआ, उसे एक नई दिशा प्राप्त हुई। उनमे विभिन्न समस्याओ एव कुरीतियो का चित्रण है जिनका आधार समसामयिक सामाजिक परिस्थितिया है। स्थूल रूप से प्रारम्भिक युग मे उपन्यास के अन्तर्गत जिन विशेष समस्याओ को अभिहित किया गया था, परवर्ती युग मे कथा साहित्य के अन्तर्गत उन्ही समस्याओ के विभिन्न पक्षो से सम्बन्धित प्रश्नो को कुछ अधिक विस्तृत आधारभूमि पर प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ बाल विवाह और विधवा विवाह की प्रमुख समस्या का ही विस्तृत रूप परवर्ती युग मे अनमेल विवाह, दहेज की समस्या, वेश्या समस्या आदि के रूप मे उपन्यास मे समन्वित हुआ। इसी प्रकार राजनीति सम्बन्धी विभिन्न समस्याओ का वैचारिक मूल्याकन हुआ है। इसके अतिरिक्त वर्तमान युग के हिन्दी उपन्यासो की प्रमुख विशेषता उसकी मनोवैज्ञानिकता है। उसमे विभिन्न मनोवैज्ञानिक समस्याओ का प्राधान्य है और इनका मुख्य आधार मनोविश्लेषणात्मक सम्बन्धी सिद्धान्त हैं। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे मानव जीवन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओ का स्पर्श किया गया है परन्तु उनका दृष्टिकोण सुधारवादी नही है। उन्होने समाज के वास्तविक चित्रण के लिए केवल विभिन्न समस्याओ को सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

(ख) राजनीतिक उद्देश्य हिन्दी उपन्यास साहित्य मे राजनीतिक क्षेत्र का विशुद्ध रूप लक्षित नही होता है अपितु उसमे राजनीतिक और सामाजिक तत्वो का ही अधिक सम्मिश्रण हुआ है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् राजनीति मानव जीवन का एक अग सा बन गयी है एव राज्य का प्रभाव व्यक्तिगत जीवन मे प्रविष्ट होने लगा। फलस्वरूप उपन्यासकारो का ध्यान मुख्यत. उन मनोवैज्ञानिक समस्याओ की ओर आकृष्ट हुआ जो युद्ध जैसे राजनीतिक परिणामो के लिए उत्तरदायी हैं और दूसरी ओर दैनिक जीवन मे उत्पन्न होने वाली मनोवैज्ञानिक विकृतियो की ओर भी जो युद्ध की विभीषिका एव उसके दुष्प्रभाव की परिचायक है। काग्रेस की स्थापना एव उसके आन्दोलन के फलस्वरूप ही हिन्दी उपन्यास साहित्य मे भी राजनीतिक वातावरण का समावेश होने लगा और उनका मुख्य उद्देश्य राजनीति से सम्बन्धित घटनाओ का दिग्दर्शन कराना हो गया। अतएव गाधी जी के सत्याग्रह और भारत छोडो आन्दोलनो का देश के सामाजिक और साहित्यिक स्तर पर विशेष प्रभाव पड़ा तथा इन क्षेत्रो मे क्रान्तिकारी जागरण हुआ। ब्रिटिश सत्ता और साम्राज्यवाद का सघर्ष, स्वतत्रता की माग, क्रान्तिकारी आन्दोलन आदि उपन्यास के प्रेरक बने तथा उपन्यास मे राजनीति का भी समावेश परिलक्षित होने लगा। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सामाजिक उपन्यासों मे राजनीतिक आन्दोलनो को स्पर्श कर समाज मे उसके प्रभाव का अत्यन्त सूक्ष्मता से चित्रण हुआ है। उसमे गाधी युग की अहिंसा का सम्यक् विवेचन हुआ है। लेखक ने उसका तुलनात्मक रूप चित्रित किया है। राजनीति का समाज पर पडे प्रभाव का लेखक ने इस प्रकार मूल्याकन किया है. 'कालान्तर

मे राजनीति के प्राधान्य से धर्म का स्थान स्वार्थ ने ले लिया। धर्म निर्जीव शरीर की तरह सम्प्रदाय मात्र रह गया। राजनीति ने मनुष्य मे जो हिंसात्मक स्वार्थ सचेष्ट कर दिया वही तामसिक स्वार्थ व्यक्तियो मे, परिवारो मे, सम्प्रदायो मे, राष्ट्रो मे, तरह-तरह की दलबन्दियो और गुटो मे अधिकार और न्याय के नाम पर पाशविक सघर्ष करने लगा। गाधी युग का रचनात्मक प्रतीक खादी का आधुनिक युग मे महत्व एव उसका उचित मूल्याकन करना भी लेखक का उद्देश्य रहा है। समाज मे यात्रिक जडता, व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा, पूजीवाद की दुष्प्रवृत्ति, चर्खा, कर्घा योजना के साथ ही विभिन्न वादो साम्यवाद, पूजीवाद, सम्प्रदाय वाद, कम्युनिष्ट आदि का भी भारतीय समाज पर विश्लेषित प्रभाव स्पष्ट करना लेखक का उद्देश्य है। राजनीति केवल राष्ट्रीय क्षेत्र मे ही नही, उसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे भी है और लेखक ने इस क्षेत्र को भी स्पर्श किया है। 'चित्र और चिन्तन' उपन्यास मे अखिल भारतीय विश्व महासघ सम्मेलन (दिल्ली) मे वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और राष्ट्र सघ की सस्थापना का मुख्य उद्देश्य प्रतिबिम्बित करके विभिन्न लोगो के मतो का भी विवेचन किया है जैसे ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मत्री मिस्टर एटली और पडित जवाहरलाल नेहरू आदि। इन सब के विवेचनात्मक रूप को प्रस्तुत करके लेखक ने पुन मानव को अपने नैसर्गिक जीवन की ओर उन्मुख किया है—अपनी पृथ्वी से, मिट्टा से स्नेह स्वरूप कृषि व्यवस्था पर ही अधिक बल दिया है। 'दिगम्बर' मे भी राजनीतिक वातावरण का लेखक ने दिग्दर्शन किया है लेकिन उसके यथार्थ एव व्यावहारिक पक्ष को ही स्पर्श किया है।

(ग) जीवन-दर्शन का प्रकटीकरण कुछ उपन्यासकारो ने उपन्यास का अनिवार्य अग जीवन-दर्शन के प्रकटीकरण को माना है। आधुनिक उपन्यास साहित्य के जिन उपन्यासो मे कथानक तत्व शिथिल और विश्रृखलत है उसमे लेखक का जीवन दर्शन ही उपन्यास को सूत्रबद्ध रखता है। ऐसे उपन्यास मुख्यत चरित्र प्रधान होते है। इसमे लेखक प्रशस्त जीवन दृष्टि के बोध एव गहरे जीवन-दर्शन के प्रतीकात्मक रूप के द्वारा विशिष्ट चरित्र की चारित्रिक विशेषताओ को उभार कर पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। कुछ विद्वान विचार प्रधान उपन्यासो को और जीवन-दर्शन प्रधान उपन्यासो को एक ही कोटि मे रखकर उनका विश्लेषण करते है। परतु इन दोनो मे भिन्नता होती है। विचारो का सम्बन्ध लेखक की बौद्धिक तैयारी से होता है और जीवन दृष्टि के प्रतिपादन के अन्तर्गत लेखक का पूर्ण व्यक्तित्व आभासित होता है तथा सूक्ष्म मानसिक और अस्पष्ट प्रतिक्रियाओ का भी आभास होता है जो बौद्धिकता से चित्रित करना सम्भव नही है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने अपनी औपन्यासिक कृतियो मे विशिष्ट जीवन-दर्शन को प्रकट करने के उद्देश्य को अपने सम्मुख रखा है। उन्होने अपने उद्देश्य को प्रतिष्ठान के आमुख मे स्वय ही प्रकट किया है 'मेरा गन्तव्य जीवन का नैसर्गिक निर्माण है। नव निर्माण के लिए मैंने प्रकृति को निमत्रण दिया है। उसी से कला, सस्कृति और पुरुषार्थ का भी स्वाभाविक प्रस्फुटन और उन्नयन

होता है। इसी दृष्टि से मैंने काव्य मे छायावाद और जीवन मे गाधीवाद को प्रतिष्ठित किया है।' लेखक के तीनो उपन्यासो मे प्रमुख चरित्रो मे लेखक के ही प्रमुख गुण प्रतिभासित होते है एव उनके सामाजिक उपन्यास गाधीवादी विचारधारा से ओत-प्रोत है। उनके उपन्यासो मे भी जीवन के नव निर्माण के लिए प्रारम्भिक नैसर्गिक जीवन की आवश्यकता एव खादी के वास्तविक महत्व पर प्रकाश डाला गया है जो मानव को स्वावलम्बी एव श्रम सहयोग की प्रेरणा देता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने अपने उपन्यासो मे जो सन्देश दिया है वह पात्रो को सरल अकृत्रिम जीवन और आडम्बरविहीनता की दिशा मे अग्रसारित करता है। धर्म, राजनीति, सस्कृति, सभ्यता और शिक्षा के क्षेत्र मे द्विवेदी जी मानवीय भावनाओ और मानवतावादी दृष्टिकोण के कल्याणकारी पक्षो की प्रतिष्ठा करते है जो उनके दृष्टिकोण पर बुद्ध तथा गाधी के वैचारिक प्रभाव का परिचय देते हैं।

उद्देश्य तत्व का महत्व आधुनिक युग मे हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा सभी माध्यमो मे अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम माना जाता है। उपन्यासकार अपनी कृति मे विशिष्ट दृष्टिकोण का आश्रय लेकर मानव जीवन का मूल्याकन करने के साथ ही अपने जीवन-दर्शन को भी स्पष्ट करता है। अनेक आलोचको का मत है कि जीवन-दर्शन से रहित उपन्यास केवल एक शुष्क कृति ही रह जाती हैं। वस्तुत. उपन्यास मे उद्भुत विचारधारा बौद्धिकता के क्षेत्र मे एक नवीन उपलब्धि के रूप मे लेखक की महानता का परिचायक है। उपन्यास के स्वरूप और उसके उद्देश्य के तात्विक विकास के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि उपन्यास का ध्येय समय-समय पर भिन्न और परिवर्तित होता रहा है। द्विवेदी जी ने सामाजिक कुरीतियो के निवारण, सामाजिक नैतिकता के खोखलेपन, बौद्धिकता तथा यान्त्रिकता मे निहित कृत्रिमता आदि उद्देश्यो से उपन्यासो की रचना की है। अपने एकमात्र ऐतिहासिक सास्कृतिक उपन्यास 'चारिका' मे लेखक ने जीवन के उस शाश्वत स्वरूप की प्रतिष्ठा का सन्देश दिया है जो उदात्त जीवन मूल्यो की व्यावहारिक परिणति का प्रतीक है।

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी की उपलब्धिया

प्रस्तुत अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियो का हिन्दी उपन्यास की विकास रेखा और समकालीन औपन्यासिक प्रवृत्तियो की पृष्ठभूमि मे जो विश्लेषण किया गया है वह उनकी उपन्यास क्षेत्रीय कलात्मक उपलब्धियो के साथ-साथ इस क्षेत्र विशेष मे उनकी साहित्यिक प्रतिभा का भी परिचय देने मे समर्थ है। जैसा कि ऊपर सूचित किया जा चुका है श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास समकालीन हिन्दी उपन्यास के प्रचलित स्वरूप और अर्थ से पर्याप्त भिन्नता रखते है। यह वैभिन्न्य सैद्धातिक और व्यावहारिक दोनो ही दृष्टियो से स्पष्टत· सकेतित होता

है। उपन्यास के सैद्धान्तिक उपकरणो का जिस रूप मे निर्वाह आधुनिक साहित्य मे उपलब्ध होता है वैसा द्विवेदी जी के उपन्यासो मे नही। इसीलिए उपन्यास की स्थूल परिभाषा और स्वरूप का यदि कट्टर निर्वाह ही देखा जाय तो इन कृतियो को उपन्यास कहना सामान्य दृष्टि से अधिक सगत नही होगा। परन्तु द्विवेदी जी के उपन्यासो की स्वरूपगत यह अभिनवता ही उनकी कलात्मक उपलब्धियो का आधार है। इसके साथ ही इन उपन्यासो के सन्दर्भ मे जो लेखकीय वक्तव्य उपलब्ध होते है वे भी औपन्यासिक विधा के रूप मे इन कृतियो की सार्थकता और औचित्य का निदर्शन करते है। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो का अध्ययन और मूल्याकन मात्र शास्त्रीयता की कसौटी पर नही किया जा सकता वरन् उपन्यास के क्षेत्र मे शिल्पगत अभिनव प्रयोगात्मकता की कसौटी पर भी उनकी परख करना सगत है। स्वय लेखक ने इन कृतियो को शास्त्रीय विधा के रूप मे उपन्यास न कह कर मात्र औपन्यासिक रेखाकन कहा है। इसलिए भी इन उपन्यासो के शिल्पगत स्वरूप पर गौरव देना अपेक्षित है। हिन्दी उपन्यास के विकास की जो ऐतिहासिक रूपरेखा इस अध्याय के आरम्भ मे सक्षेप मे प्रस्तुत की गयी है उसका उद्देश्य इस तथ्य की ओर सकेत करना भी है कि किस युग विशेष मे इस प्रकार के शिल्प रूपो का प्रयोग उपन्यास साहित्य मे बहुलता से हुआ है और उसके फलस्वरूप उपन्यास साहित्य के रूप विकास की गति कैसे निर्धारित हुई है। प्रेमचन्द-युग तक हिन्दी उपन्यास का जो विकास हुआ वह मुख्यत कथा के प्रकार और वस्तु मे परिवर्तनशीलता का द्योतक है और इसी परिवर्तनशीलता के फलस्वरूप कथा के विविध शिल्प रूपो का भी जन्म हुआ है। भारतेन्दु युगीन हिन्दी उपन्यास से लेकर स्वातत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास तक जो तात्विक एव शिल्पिक विकास के चरण है उनसे यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि कथा वस्तु का निरन्तर सकोच हुआ है। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि कथावस्तु की दृष्टि से जो ह्रास हुआ है वही कथा-शिल्प के विकास का आधार है।

कथात्मकता के क्षेत्र मे उपर्युक्त प्रयोगात्मक विशेषताओ के साथ-साथ श्री शातिप्रिय द्विवेदी की कृतियो मे चरित्र चित्रण क्षेत्रीय अभिनव प्रयोग भी मिलते है। यहा पर इस तथ्य का उल्लेख करना असगत न होगा कि द्विवेदी जी के तीनो उपन्यास 'दिगम्बर', 'चारिका' तथा 'चित्र और चिन्तन' प्रधान रूप से चरित्र-प्रधान ही हैं। इनमे से प्रथम मे लेखक ने एक औपन्यासिक रेखाकन उपस्थित किया है जो वस्तुत एक साकेतिक व्यजना है। द्वितीय अध्यात्मपरक एव बुद्धिवादी पात्रो से सगठित रचना है। तृतीय कृति लोकनिरीक्षण और युग विश्लेषण का प्रस्तुतीकरण करने वाली रचना है जिसका आधार चारित्रिक योजना है। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि यह तीनो उपन्यास चरित्र-प्रधान हैं जिनके पात्र समाज के विभिन्न वर्गो का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'दिगम्बर' के पात्र यदि भारतीय सामाजिक वर्गो के प्रतिनिधि हैं तो 'चारिका' के

पात्र बुद्ध कालीन इतिहास का प्रतिनिधित्व करते है । 'चित्र और चिन्तन' के पात्र सामाजिक वर्गों के स्थान पर आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक वर्ग, भेद के प्रतिनिधि है । लेखक ने इन पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ की जो व्याख्या की है वह कथात्मक पृष्ठभूमि के अनुकूल है । 'दिगम्बर' के पात्रो का जो चरित्र चित्रण हुआ है वह मनो-विश्लेषणात्मक एव सकेतात्मक शैलियो के आधार पर है। इसका नायक निम्न मध्य वर्ग के एक परिवार की यथार्थ परिस्थितियो से प्रेरित होकर विशिष्ट चारित्रिक सम्भावनाओ का परिचय देता है । उपन्यास के अन्य पात्र भी निम्न मध्य वर्गीय समाज के पारिवारिक सगठन और आर्थिक सघर्ष मे अपनी वैयक्तिकता को विलीन कर देते हैं । 'चित्र और चिन्तन' मे लेखक का यही दृष्टिकोण किसी सीमा तक ऐति-हासिक सास्कृतिक सन्दर्भ मे आध्यात्मिक और धार्मिक वृत्ति प्रधान हो गया है । इसमे नायक के विचार अध्यात्मजनित विरक्ति और दर्शन जनित वितृष्णा का परिचय देते है । 'चारिका' की पात्र-योजना इन दोनो उपन्यासो से भिन्न है । इसमे बुद्ध कालीन इतिहास, धर्म, दर्शन और सस्कृति का जो निरूपण है वह गौतम बुद्ध के मानसिक विकास के सन्दर्भ मे क्रमश मूर्तिमान होता गया है । इस उपन्यास मे चरित्राकन की शैली मुख्यत व्याख्यात्मक है जो विभिन्न सन्दर्भो मे साकेतिक भी हो गयी है । सक्षेप मे द्विवेदी जी की औपन्यासिक कृतियो मे जो चरित्र योजना है वह कलात्मक तथा यथा-र्थात्मक दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण कही जा सकती है । लेखक ने जो पात्र चयन किया है वह समाज और इतिहास के विभिन्न वर्गो और युगो के प्रतिनिधित्व से युक्त है । उसमे कल्पनात्मकता और व्यावहारिकता का सम्मिश्रण है । इसी प्रकार से आदर्श और यथार्थ की सतुलित अभिव्यजना भी उसमे मिलती है । फलत इसमे शिल्पगत अभिनवता और कलात्मक परिष्कार भी मिलता है ।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उपन्यास मे सवाद-तत्व का समावेश कथानक के विकास, पात्रो के चारित्रिक विकास तथा लेखक के मन्तव्य की अभिव्यजना के उद्देश्य से किया जाता है । 'दिगम्बर', 'चारिका' तथा 'चित्र और चिन्तन' मे सम्वाद योजना प्रधानत इन्ही उद्देश्यो से हुई है । 'दिगम्बर' मे जो विविध विषयक प्रासगिक कथा सूत्र नियोजित हुए हैं उनके विकास का आधार सवाद तत्व ही है । 'चारिका' मे अनेक अर्थपूर्ण दृष्टान्त इसी तत्व के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं। 'चित्र और चिन्तन' मे भी सहायक कथा सूत्रो की योजना का आधार कथोपकथन ही है । द्वितीय उद्देश्य की दृष्टि से 'दिगम्बर' मे प्रधान तथा सहायक पात्रो के वे अन्तर्द्वन्द्व जो उनकी चारित्रिक विवृत्ति मे सहायक है इसी तत्व के माध्यम से निरूपित हुए है। जहा तक कथोपकथन के तीसरे उद्देश्य का सम्बन्ध है उसके अनुसार 'दिगम्बर' 'चारिका' तथा 'चित्र और चिन्तन' मे लेखक ने प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप मे अनेक ऐसे सकेत उपस्थित किए है जो उसके अभीष्ट की पूर्ति मे सहायक है और जिनके माध्यम से लेखक ने अतीत युगो की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे वर्तमान जीवन मे बढती हुई जड भौतिकवादिता, सह-

अस्तित्व, सहयोग, यान्त्रिकता तथा बौद्धिकता आदि का परिचय दिया है। इसके साथ ही उपयुक्तता, स्वाभाविकता, सक्षिप्तता, उद्देश्यपूर्णता, अनुकूलता, सम्बद्धता, मनोवैज्ञानिकता तथा भावात्मकता की दृष्टि से भी यह सवाद तत्वगत कलात्मकता एव परिपक्वता के द्योतक है।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव जिस युग मे हुआ था उसमे मुख्यत दो प्रकार की भाषा परम्पराएँ उपन्यास के क्षेत्र मे उपलब्ध होती हैं। प्रथम तो प्रेमचन्द की परम्परा के अनुसार मिश्रित भाषा अथवा सामान्य प्रयोग की भाषा और द्वितीय छायावादी भाषा। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की भाषा मे भी प्रमुखत. यही दो रूप उपलब्ध होते हैं। जैसा कि पिछले पृष्ठो मे उल्लिखित किया जा चुका है, द्विवेदी जी की भाषा का रूप वह है जिसे समन्वित भाषा कहा जा सकता है। इस प्रकार की भाषा के उदाहरण 'चित्र और चिन्तन' मे विशेष रूप से उपलब्ध होते है। सामान्य प्रयोग की जिस भाषा का समावेश उनकी कृतियो मे मिलता है वह समन्वित भाषा के स्वरूप से भिन्न है। इसमे विभिन्न भाषाओ के प्राय सभी प्रचलित शब्दो का समावेश मिलता है। इसके उदाहरण 'दिगम्बर' मे बहुलता से उपलब्ध होते हैं। जहा तक भाषा के ग्राम्य-प्रधान, उर्दू-प्रधान एव अग्रेजी-प्रधान रूपो का सम्बन्ध है वे द्विवेदी जी के उपन्यासो मे अनुपलब्ध है। यद्यपि इन भाषाओ के प्रचलित शब्द यत्र-तत्र अवश्य प्रयुक्त किये गये है। लोक भाषा के भी कतिपय उदाहरण उपलब्ध हो जाते है। द्विवेदी जी का कवि हृदय उनकी भाषा के काव्यमय स्वरूप का भी बोध कराता है। 'चारिका' मे अवश्य क्लिष्ट भाषा मिलती है जो दार्शनिक आध्यात्मिक तत्वो के निरूपण के ही सन्दर्भ मे प्रयुक्त हुई है। इस प्रकार से द्विवेदी जी के 'दिगम्बर', 'चित्र और चिन्तन' तथा 'चारिका' उपन्यासो की भाषा काव्यात्मक, बौद्धिक और कलात्मक होने के कारण प्रभावपूर्ण बन सकी है।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो मे उपन्यास के विभिन्न शास्त्रीय उपकरणो मे सबसे विशिष्ट शैली तत्व है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, यह तत्व हिन्दी के प्रारम्भिक कालीन उपन्यास साहित्य मे उपेक्षित रहा है। प्रेमचन्द युग तक जो उपन्यास लिखे गये उनमे प्राय वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग किया गया है जिसमे कथा का वर्णन तृतीय पुरुष के रूप मे किया जाता है। उपन्यास लेखन की अन्य शैलिया विशेष रूप से प्रत्यक्ष शैलिया उपेक्षित रही है। द्विवेदी जी के उपन्यासो मे वर्णनात्मक शैली के साथ-साथ विश्लेषणात्मक, डायरी, फ्लैश बैक, सवादात्मक, नाटकीय, कलात्मक शैली, लोक कथात्मक, आचलिक तथा मनोविश्लेषणात्मक शैलियो का समावेश भी मिलता है। किन्तु, इन शैलियो का सग्रथन कथा वस्तु के विकास के सन्दर्भ मे इस प्रकार से हुआ है कि यह उपन्यास शैली के क्षेत्र मे विशिष्टता और नवीनता के द्योतक है। इनमे शैली का प्रयोग कथानक को सम्बद्ध करने के लिए

केवल एक रेखाकन के रूप मे किया गया है जो इस क्षेत्र मे नवीनता, प्रयोगात्मकता और मौलिकता का द्योतक है ।

उपन्यास के शास्त्रीय उपकरणो मे देश-काल और वातावरण तत्व का भी विशिष्ट महत्व है । शातिप्रिय द्विवेदी ने अपने उपन्यासो मे इस तत्व का जो समावेश किया है, वह देश-काल के सैद्धान्तिक गुण, वर्णनात्मक सूक्ष्मता, विश्वसनीय कल्पनात्मकता, उपकरणात्मक सन्तुलन आदि से युक्त है । देश-काल के विभिन्न भेदो मे सामाजिक, प्राकृतिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक आदि का समावेश इन कृतियो मे विस्तार से हुआ है । देश-काल और वातावरण को प्रभाव युक्त बनाने के लिए उसमे लेखक ने स्थानीय रगो का समावेश भी किया है । इस दृष्टि से जो विशिष्ट स्थल है उनका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है । देश-काल मे आचलिक चित्रण का योग भी होता है जो साकेतिक रूप मे द्विवेदी जी के उपन्यासो मे विद्यमान है । देश-काल और लोक तत्व भी परस्पर सम्बद्ध है और इनकी साकेतिक निहिति इन उपन्यासो मे मिलती है । इन तत्वो के योग से देश-काल और वातावरण सृष्टि का सम्यक् और प्रभावात्मक रूप द्विवेदी जी की कृतियो मे सफलतापूर्वक समाविष्ट हुआ है ।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास उद्देश्य तत्व के समावेश की दृष्टि से भी वैशिष्ट्य रखते हैं । आधुनिक उपन्यास अपेक्षाकृत गम्भीरतर उद्देश्य से लिखा जाता है । उद्देश्यगत विभिन्न प्राचीन धारणाएँ विशेषत नीति शिक्षा, मनोरजन, कौतूहल सृष्टि, सुधार भावना, हास्य सृष्टि, समस्या चित्रण आदि के साथ-साथ अब इस क्षेत्र मे राजनैतिक एव बौद्धिक तत्वो से युक्त जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति का भी समावेश हो गया है । इनके उपन्यास आधुनिक यात्रिक जीवन की पृष्ठभूमि मे मानवीय चेतना का उद्बोधन करते है । युद्ध की विभीषिका से अभिशप्त मानव जीवन को इस समय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जिस शाति-दर्शन की अपेक्षा है उसकी व्यावहारिक परिणति द्विवेदी जी के उपन्यासो का उदात्तपरक उद्देश्य है । इस प्रकार से सैद्धान्तिक, वैचारिक एव कलात्मक दृष्टियो से शातिप्रिय द्विवेदी का उपन्यास साहित्य अपने स्वरूपगत वैशिष्ट्य का द्योतक है ।

शांतिप्रिय द्विवेदी का संस्मरण साहित्य

गद्य साहित्य की रचनात्मक विधाओ के क्षेत्र मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने 'पथ चिह्न', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' शीर्षक सस्मरणात्मक रचनाएँ भी प्रस्तुत की है। ये रचनाएँ निसर्गत आत्मव्यजना प्रधान है और इनमे लेखक ने जहा एक ओर अपने जीवन के विभिन्न सस्मरण प्रस्तुत किए है वहा दूसरी ओर इनके माध्यम से साहित्य, सस्कृति, कला और दर्शन विषयक अपनी वैचारिक मान्यताएँ भी सामने रखी। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है, द्विवेदी जी के गद्य साहित्य, विशेषत आलोचना, निबन्ध, उपन्यास तथा सस्मरण मे भी उनके कवि हृदय की कोमल अभिव्यजनाएँ प्रधान हो गयी है। 'पथचिह्न', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' मे सगृहीत विविध विषयक सस्मरण लेखक के सजग चिन्तन के द्योतक है।

द्विवेदी जी की सस्मरणात्मक कृतियो का परिचय एव वर्गीकरण

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य के अन्तर्गत 'पथचिह्न', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान', 'स्मृतिया और कृतिया' का उल्लेख किया गया है। ये कृतिया यद्यपि अनुभूत्यात्मकता और आत्मव्यजना की दृष्टि से परस्पर पूर्ण समानता रखती हैं परन्तु विषय क्षेत्र की दृष्टि से इनमे पर्याप्त वैविध्य है। उदाहरण के लिए यदि 'पथचिह्न' मे सस्कृति और कला के सन्दर्भ मे लेखक ने चिन्तनपरक सस्मरण प्रस्तुत किये है तो 'परिव्राजक की प्रजा' मे आत्मपरिचय प्रधान सस्मरण हैं। इसी प्रकार से यदि 'प्रतिष्ठान' मे जीवन और साहित्य के समन्वय का निदर्शन करने वाले सस्मरण है तो 'स्मृतिया और कृतिया' मे लेखक ने जीवन यात्रा के विविध पडावो पर दृष्टिपात करते हुए सस्मरणात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की है। यहा पर द्विवेदी जी के इन्ही सस्मरणात्मक रचनाओ का विषयवस्तु तथा अन्य विशेषताओ की दृष्टि से संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

[१] **'पथचिह्न'** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की सस्मरणात्मक रचना 'पथचिन्ह' मे आपने सस्कृति और कला के माध्यम से विश्व एव शक्ति की समस्याओ का स्पर्श किया है। प्रस्तुत पुस्तक की शैली आत्मपरिचयात्मक है जिसमे उनके भावुक मन तथा तत्पर बुद्धि का परिपाक हुआ है। इनकी समस्त कृतियो के सदृश ही इसमे भी उनकी लेखन शैली की नवीनता के साथ उनके रचनात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। लेखक ने इसमे अपनी एकमात्र स्वर्गीया बहिन को भारत माता की आत्मा के रूप मे स्वीकार करते हुए उनके व्यक्तित्व को केन्द्र विन्दु मान कर जीवन और युग की

समस्याओ का आलेखन किया है। द्विवेदी जी के मत मे आज यान्त्रिक युग मे सस्कृति निस्पन्द तथा कला निश्चेष्ट हो गयी है। सामाजिक जीवन की दैनिक चर्या मे सस्कृति और कला का समावेश अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए लेखक ने रचनात्मक कार्यक्रम की आवश्यकता पर जोर दिया है। अतएव इसमे लोक जीवन के निर्माण का पथ निर्देश है। प्रस्तुत पुस्तक भारतीय सस्कृति की प्रमुख विशेषता शाति पक्ष का प्रतिनिधित्व करती है। लेखक ने इसमे अपने चिन्तन के आधार पर इस अशात और अव्यवस्थित युग के उपरान्त जीवन के स्वाभाविक निर्माण के रूप मे भविष्य की कल्पना की है। द्विवेदी जी ने प्रस्तुत पुस्तक मे स्मृति चिन्तन, वह स्वर्गीय निधि, आहुति, अभिशापो की परिक्रमा, पर्यवेक्षण तथा अन्त सस्थान शीर्षको के अन्तर्गत अपने भावो एव विचारो को वर्णित किया है। 'स्मृति चिन्तन' मे श्री द्विवेदी जी ने भैयादूज के अवसर पर अपनी बाल-विधवा स्वर्गीया बहिन को स्मरण किया है। 'आहुति' सस्मरण मे भी बहिन की मृत्यु के समय तथा इसके उपरान्त उसके सपूर्ण जीवन का जो धधकती चिता के सदृश ही स्वय अन्दर-अन्दर जीवनपर्यन्त जलती रही थी, का चित्रण है। 'अभिशापो की परिक्रमा' सामान्य सस्मरण मे बहिन की मृत्यु के उपरान्त इस जगत् के अभिशापो से लेखक परिचित होता है। लेखक बचपन से ही एकाकी जीवन व्यतीत करता था। अपने परिचय के साथ ही लेखक ने अपने पिता का परिचय दिया है जिन्हे लोग दुर्बली महाराज के नाम से सम्बोधित करते थे। इस प्रकार लेखक ने स्वय के दैनिक जीवन और अपनी स्वच्छदात्मक प्रवृत्ति का भी परिचय दिया है। सामान्य सस्मरण 'पर्यवेक्षण' मे श्री द्विवेदी ने युग के यथार्थ रूप को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् मानव जीवन अन्धकार मे लडखडा रहा है। उसकी गति कुठित हो गयी है। इस युद्ध ने अन्न, धन तथा जन का अत्यधिक शोषण किया है। जीवन के सभी साधनो का अभाव हो गया है। प्रत्येक वर्ग दूसरे वर्ग के प्रति सन्दिग्ध तथा प्रतियोगी हो रहा है। सभी अपने स्वार्थ मे लगे हुए हैं। 'अन्त-सस्थान' शीर्षक सामान्य सस्मरण मे भी लेखक ने साहित्य सगीत और कला के अधीश्वरो को जनता मे नव चेतना जाग्रत करने के लिए सम्बोधित किया है जिनके कधो पर आज सन्तप्त जगत को आश्वासन देने तथा दिग्भ्रमित विश्व को दिग्दर्शन करने का भार है। आज मानव जिस अतृप्ति का अनुभव कर रहा है उसके पीछे भावुकता की माग अन्तर्निहित है जिसे ससार मे बिखरने के लिए कवीन्द्र-रवीन्द्र का आविर्भाव हुआ परन्तु उनकी भावधारा आकाश गगा के सदृश छायापथ तक ही सीमित रही। उसके उपरान्त गाधी और लेनिन का व्यावहारिक क्षेत्र मे आविर्भाव हुआ। परन्तु आज भी मानव जीवन सजलता नही प्राप्त कर सकी है। सेवाग्राम तथा अन्य सास्कृतिक कलाकेन्द्रो के माध्यम से भी जनता अनुदान न प्राप्त कर सकी है। लेखक ने जनता की व्यावहारिक सुरुचि की पुन स्थापना पर जोर दिया है। विश्व मे नव जागरण का सचार कलाकारो तथा कवियो के सहयोग से सम्भव है। इस

'पथचिन्ह' सस्मरणात्मक कृति मे श्री द्विवेदी ने अपने जीवन के कटु प्रहारो का विवेचन करते हुए अपने युग का विश्लेषण करने मे प्रस्तुत पुस्तक के समस्त सस्मरणो मे काव्य को भी प्रमुखता प्रदान की है। काव्य पक्तियाँ सस्मरण के प्रारम्भ मध्य एव अन्त तीनो मे ही विद्यमान मिलती हैं। इसके साथ ही इनकी शैली की नवीनता भी अपना अलग स्थान रखती है।

[२] **'परिव्राजक की प्रजा'** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत साहित्यिक आत्म कथात्मक पुस्तक मे लेखक ने जीवन मे क्षीण होती स्मृतियो को सजोने का प्रयत्न किया है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इसमे सन्यासी पिता की साहित्यिक सन्तान की आत्मकथा निहित है। प्रस्तुत पुस्तक के सस्मरणो मे कहानी और निबन्ध का गठबन्धन सा हुआ है और इस प्रकार वे 'पर्सनल ऐसे' मे रूपान्तरित प्रतीत होते है। इसमे लेखक के जीवन की धारा के प्रवाह का उल्लेख है जो सास्कृतिक परम्परा मे पला, ग्राम्य की प्राकृतिक गोद मे खेल कर नगर मे आकर साहित्य क्षेत्र मे प्रवेश कर जाता है। लेखक ने राजनीति की अपेक्षा सामाजिक सहयोग तथा ग्रामोद्योग को महत्व दिया है। वस्तुत वह सर्वोदय के समर्थक है। लेखक ने पूरी पुस्तक को दो भागो मे विभाजित किया है—बाल्यकाल और उत्तरकाल। बाल्यकाल मे लेखक के प्रारम्भिक जीवन से विद्याध्ययन तक के सस्मरणो को बहुत ही भावात्मक शैली मे व्यक्त किया है। इसे मुक्त पुरुष, सगुण शिशु, मातृविसर्जन, वनदेवी का अचल, साधना की साध्वी, बाल्य-क्रीडा, लीला और मेला, अप्रत्याशित निमत्रण, अन्त प्रस्फुटन और वातावरण, जीवन के तट पर तथा परिपाटी का परित्याग आदि शीर्षको से सम्बन्धित कर दिया गया है। उत्तरकाल मे विद्याध्ययन के पश्चात जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियो मे विचरण करते तथा विभिन्न कटु अनुभवो को आत्मसात् करते हुए लेखक अपने लक्ष्य पथ पर अडिग है। इसके साथ ही विभिन्न गण्यमान्य नेताओ और साहित्यिको आदि से हुए परिचयो को लेखक ने शब्द चित्र के माध्यम से अकित किया है। इसे भी विभिन्न शीर्षको से सम्बन्धित सस्मरणो से एक क्रमिक रूप प्रदान किया गया है। 'मुक्त पुरुष' मे लेखक ने अपने पिता का जीवन परिचय, उनका जन्मस्थान, उनकी जन्मभूमि का परिचय आदि दिया है। 'सगुण शिशु' मे जिस मोहल्ले मे लेखक इन दिनो रहता था उसका चित्रण किया है। घर मे चबूतरे के नीचे ही माझियो की छोटी बस्ती थी जहा से उन्हे प्यार दुलार एव स्नेह मिलता रहता था। 'मातृविसर्जन' मे इस परिवार के आश्रयदाता दुक्खू चाचा (प० दु खभजन मिश्र) थे जो दूसरो के दुखो को हर कर भी स्वय दुखी बने रहते थे। उनका हृदय बहुत उदार था लेकिन उनके बडे भाई निरजन मिश्र बडे बिगडैल स्वभाव के थे, वैसी ही उनकी स्त्री भी थी। लेखक के चारो ओर कहानियो का ही साम्राज्य छाया रहता था। इसके अतिरिक्त अक्षर ज्ञान के अभाव मे भी वह देववाणी सस्कृत के वायुमडल मे सास लेते थे। 'वन देवी का अचल' में बहिन काशी से देहात आयी। उनके साथ आप भी थे लेकिन बहिन पुन.

काशी लौट गयी और वह स्वय वही पर पाठशाला जाने लगे। उस सयुक्त परिवार मे केवल वृद्धा दादी ही उसकी खोज खबर रखती। उन्ही का स्नेह सम्बल उन्हे प्राप्त था। 'साधना की साध्वी' बहिन कल्पवती अपनी मा के अभाव को न भूल सकी। वह तेजस्विनी थी। किसी की दया का पात्र न बनना चाहती थी इसलिए उसने अपने जीवन यापन के लिए कलात्मक साधन गोटे की बुनाई को माध्यम बनाया। देहात के प्राकृतिक वातावरण से उसने ही द्विवेदी जी को सास्कृतिक वायुमडल मे बुला लिया। 'बाल्य क्रीडा' मे द्विवेदी जी के जीवन की धारा तीन दिशाओ मे त्रिपथगा बन गयी थी—घर, स्कूल और नगर। पढाई की अपेक्षा इनका मन खेलकूद मे अधिक लगता था। यहा पढाई के बाद जान्हवी की गोद मे ही समस्त बालक क्रीडा हेतु पहुँच जाते थे। वही पर तरह-तरह के खेल वह लोग खेलते थे। त्योहारो एव मेलो मे भी यह सब बच्चे सक्रिय भाग लेते थे। 'लीला और मेला' मे रामलीला से कृष्णलीला बालको के जीवन एव स्वभाव के अधिक निकट है। काशी मे हमेशा कोई न कोई धार्मिक उत्सव होता रहता था तथा मेला आदि भी लगता था। इनके अतिरिक्त भी वहा बच्चो के मनोरजन के अन्य साधन होते थे। काशी से उन्हे पुन किसी के विवाह मे ग्राम मे जाना पडा। विवाह के उपरान्त वह पुन ग्राम मे ही रह गए। लेकिन अब बच्चे बडे होकर कामो मे लग गये थे। 'अप्रत्याशित निमत्रण' मे द्विवेदी जी को अपनी छोटी बहिन के घर से निमत्रण मिला जिसका विवाह अमिला मे हुआ था। वहा विवश होकर उन्हे जाना पडा था। 'अन्त प्रस्फुटन और वातावरण' मे द्विवेदी जी ने बहिन के घर का प्रबन्ध तथा उन परिस्थितियो मे बहिन की स्थिति का चित्रण किया है। 'जीवन के तट पर' शीर्षक सस्मरण मे काशी आगमन के उपरान्त का जीवन चित्रित है। 'परिपाटी के परित्याग' मे द्विवेदी जी के स्कूल छोडने के साथ विद्या से हटने की घटना का निर्देश है। पुस्तक के द्वितीय खण्ड 'उत्तरकाल' के सस्मरणात्मक लेखो मे 'आधार की खोज मे' लेख मे लेखक ने विद्याध्ययन से परित्याग के उपरान्त अपने जीवन को चित्रित किया है। द्विवेदी जी अत्यन्त ही अन्तर्मुखी तथा भावुक थे। स्कूल छोडने से वह स्वय अपनी बहिन की कल्पना के विपरीत होते गये। 'नेताओ की झाकी' मे काशी विद्यापीठ के सस्थापन समारोह मे सम्मिलित होने वाले विभिन्न नेताओ के भाषण एव उनके व्यक्तित्व का चित्रण है। 'एक सामाजिक उद्यान' मे आर्य समाज भवन मे होने वाले विभिन्न कार्यक्रमो का लेखा-जोखा है। 'आनन्द परिवार' मे लेखक ने उपवास के महत्व का निर्देश किया है। अपने अभाव के कारण ही वह एकान्त से समाज की ओर आए। यह अभाव उनके लिए वरदान और अभि-शाप दोनो ही रूपो मे समक्ष आया। उन्होने सस्कार और स्वाध्याय को ही जीवन का सम्बल बनाया। 'छायावाद की स्थापना' मे कलकत्ते से पुन. काशी आने का चित्रण है जब कि वह पुन. आजीविका के लिए नि.सहाय घूमने लगे। कुछ वय किशोरो से उनका परिचय हुआ। इन्ही दिनो टाल्स्टाय की 'अन्ना' पर एक छोटा सा लेख

लिखा जो 'भारत' मे छप गया तथा प० केशवदेव शर्मा ने इन्हे 'भारत' के सपादकीय विभाग मे ले लिया। 'हमारे साहित्य निर्माता' का प्रकाशन इन्ही दिनो 'ग्रन्थमाला कार्यालय' से हुआ। यही उनका सर्वप्रथम आलोचनात्मक ग्रन्थ है। छायावाद की कविता का मर्मोद्घाटन सर्वप्रथम इसी मे हुआ। इसीलिए अन्य लोगो ने इससे प्रोत्साहन लिया। इसमे उन्होने छायावाद और रहस्यवाद को स्वच्छदतावाद न कह कर उसका वास्तविक स्पष्टीकरण किया है। 'कवि और काव्य' की प्रेरणा उन्हे कलकत्ते मे ही मिली। लीडर प्रेस की सीढियो पर उनका परिचय गगाप्रसाद पाडेय से हुआ। वह द्विवेदी जी के माध्यम से साहित्यकारो के सपर्क मे आना चाहते थे। अनिच्छा होते हुए भी उन्होने उनका परिचय कुछ साहित्याचार्यो से करवाया। १९३६ मे 'कवि और काव्य' के प्रकाशन से उन्हे कुछ आर्थिक सहयोग मिल गया। 'व्यक्ति और समाज' लेख मे लेखक के एकाकीपन का बहुत तीक्ष्ण अनुभव व्यक्त हुआ है। बहिन की मृत्यु पर अनेक सवेदनात्मक एव सहानुभूति पत्रो का इसमे उल्लेख है, जिसमे महादेवी वर्मा, गगाप्रसाद पाडेय तथा नरेन्द्र शर्मा आदि है। पाडेय जी ने उन्हे प्रयाग मे आमत्रित किया था लेकिन वहा भी वह प्रसन्न न हो सके। पन्त जी और नरेन्द्र शर्मा ने प्रयाग मे स्वय इनके पास उपस्थित होकर अपना मौन सवेदन व्यक्त किया। सन् १९३९ के मार्च मे बहिन की मृत्यु हुई, अप्रैल मे 'सचारिणी' प्रकाशित हुई। १९४० ई० मे 'युग और साहित्य' का प्रकाशन हुआ जिसमे उनका समाजवादी दृष्टि-कोण प्रतिबिम्बित हुआ है। 'रचनात्मक दृष्टिकोण' मे १९४१ मे 'कमला' छोडने तथा उसके बन्द होने का उल्लेख है। वह आर्थिक दृष्टि से फिर निरवलम्ब हो गए। इस समय द्वितीय महायुद्ध चल रहा था जिसमे प्रत्येक लाभान्वित हो रहा था। इसके उपरान्त महाप्राण हिटलर के व्यक्तित्व का चित्र अकित है। सन् १९४२ मे वह भटकते हुए लखनऊ आ पहुँचे जहा उन्हे श्री दुलारेलाल भार्गव का आश्रय मिला। इसके साथ ही उन्हे वहा स्नेह का वातावरण प्राप्त हुआ। लखनऊ प्रवास मे ही वह 'साम-यिकी' की रूपरेखा लेकर बनारस चले गए, वहा फिर उसी नीरस वातावरण मे वह घिर गए। 'युग और साहित्य' मे समाजवादी दृष्टिकोण की प्रधानता है लेकिन सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियो मे परिवर्तन के साथ 'सामयिकी' मे वह गौण हो गया। समाजवाद तथा प्रगतिवाद को ऐतिहासिक स्थान प्राप्त हुआ। 'साम-यिकी' लेखक की बहुत अस्वस्थता मे लिखी गयी है। इसके लेखन काल मे उनकी प्रवृत्ति भ्रमणशील थी। इसके उपरान्त वीणा के सपादन के लिए वह इन्दौर गये। यह यात्रा उनके शरीर के लिए लाभकर सिद्ध हुई। उनमे पुन नवीन कैशोर्य आ गया। 'वीणा' के सम्पादकीय स्तम्भो मे उन्होने अपनी शुचिता रुचिरता से सस्कृति और कला के व्यावहारिक पक्ष का निदर्शन किया। इन्दौर मे प्राकृतिक वातावरण स्वस्थकर होते हुए भी सामाजिक वातावरण निरानन्द था। वह पुन॰ बनारस चले आए। बनारस मे 'पथचिन्ह' सन् १९४६ मे प्रकाशित हुई। इसमे सस्कृति और कला

का स्वर प्रतिध्वनित हुआ है। इसके साथ ही इसमे गाधी जी के ग्रामोद्योग को भी सबद्ध किया गया है। इस प्रकार इसमे मानयोग और कर्म योग का समन्वय है। लेकिन 'धरातल' (१९४८) मे लेखक का दृष्टिकोण उद्योग, सस्कृति और कला मे पार्थक्य न रह कर अभिन्न और पर्याय हो गया है। इसका मूल आधार कृषि है। इसके उपरान्त 'ज्योति विहग' (१९५१) मे सौन्दर्य और सस्कृति के कवि पन्त जी की सपूर्ण कृतियो का अनुशीलन है। 'सौन्दर्य दर्शन' सस्मरणात्मक लेख मे सौन्दर्य के महत्व एव उसके चारुत्व का दिग्दर्शन किया है। वह स्वय के लिए लिखते हैं 'कृष्ण की तरह ही मैं मधुकर हूँ, वनमाली हूँ। सौन्दर्य के साथ खेलना भी चाहता हूँ और स्नेह से, सुरुचि से उसे सीचते भी रहना चाहता हूँ।' लेखक ने सौन्दर्य के मातृ अश का अनुभव किया है, जिससे शिशु का जन्म होता है। सौन्दर्य मे चेतना का चारुत्व विद्यमान है। यह मनुष्य की सस्कृति का ही सगुण रूप है। इसी पर मानव का स्वभाव अवलम्बित है। रज, तम और सत्व—इन गुणो के अनुसार ही मानव का रूप बनता है। 'स्मृति पूजन' मे बहिन के अन्तिम दिनो के निवास स्थानो को ही लेखक ने तीर्थ मान कर उनकी परिक्रमा की है।

[३] **'प्रतिष्ठान'** प्रस्तुत पुस्तक मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने जीवन और साहित्य का सस्थापन किया है। इसमे लेखक के रचनात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इसके लेखो मे लेखन शैली की विविधता दृष्टिगोचर होती है। पर्सनल एसे, निबन्ध, समीक्षा तथा सस्मरण आदि को इसमे सगृहीत किया गया है। इस दृष्टि से इसकी नवीनता दर्शनीय है। इसके साथ ही प्रस्तुत पुस्तक मे सगृहीत लेखो मे प्रकीर्णता न होकर सम्बद्धता है, इन अनेक लेखो मे अनुबन्धता है। यह क्रमबद्धता उनकी समस्त कृतियो मे किसी न किसी रूप मे परिलक्षित होती है। इस प्रकार लेखन की दृष्टि से नवीन होते हुए इसमे जीवन की रचनात्मक प्रक्रिया भी है। इन लेखो का भी एक सुनिश्चित ध्येय है। द्विवेदी जी का यही उद्देश्य उनके सपूर्ण साहित्य मे दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि उनके साहित्य मे हृदयपक्ष, कला-पक्ष के साथ ही आर्थिक-पक्ष का भी समन्वय किया गया है। इसमे चिन्तनशील मानव की धडकन है और है युग मन्थन। वस्तुत लेखक का दृष्टिकोण अपनी प्राचीन सस्कृति से सम्बन्धित होते हुए भी अभिव्यक्ति मे नवीनता है। लेखक अपनी उर्वर भूमि की ओर मानव को आकृष्ट कर कृषि को प्रोत्साहन देता है। इस कृति के सस्मरणात्मक लेखो मे 'बाल्य स्मृति' शीर्षक लेख आत्मचरितात्मक सस्मरण है जिसमे लेखक अपनी बाल्य-स्मृतियो को सजोना चाहता है। 'पथ सन्धान' शीर्षक आत्मचरितात्मक लेख मे द्विवेदी जी के देहात से नगर आगमन की चर्चा है। 'त्रिवेणी के अचल मे' शीर्षक साहित्यिक सस्मरण मे लेखक ने प्राक्कथन के साथ ही निराला, पन्त और महादेवी के सपर्क मे आने एव उनसे प्रेरणा प्राप्त करने का चित्र प्रस्तुत किया है। प्राक्कथन मे लेखक ने अपने समाज का, अपने युग का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। समाज मे दो

युद्धो की भयावनी भीषणता का आज राज्य है। छायावाद के उपरान्त साहित्य मे प्रगतिवाद की आवाज सुनाई देने लगी लेकिन प्रगतिवाद भी अन्त स्पर्शी तथा सत्वोद्रेक न होकर तामसिक विद्वेष और राजनीतिक राग द्वेषो से पूर्ण है। काग्रेसी सरकार के स्थायित्व पर साहित्यकारो ने भी अपने नारे बुलन्द किये और शासन मे साहित्यिको को भी स्थान मिल गया। लेखक की दृष्टि मे यह तुच्छ है। वह सस्ती प्रसन्नता के पीछे दौडना नही चाहते। उन्हे तो शाश्वत सुख एव प्रसन्नता से लगाव था। आज मानवता के क्षेत्र मे भी साहित्य मे न सवेदना है और न सेवा। केवल आत्मप्रदर्शन तथा आडम्बर मात्र ही दिखाई देता है। साहित्य के क्षेत्र मे भी शोषण आरम्भ हो गया है। महादेवी से द्विवेदी जी का परिचय सन् १९२९ मे हुआ था। १९३४ मे इलाहाबाद के प्रवास मे उनका सान्निध्य भी उपलब्ध हुआ। महादेवी के काव्य के धरातल तथा सामाजिक जीवन के धरातल मे भिन्नता है। एक मे कल्पना है तो दूसरे मे वास्तविकता। लेकिन उनके सपूर्ण साहित्य मे यह विरोधाभास अलग न होकर एक दूसरे से सम्बद्ध है। जहा उनके काव्य मे जगमग चेतना का अतीन्द्रिय सुख है वही सस्मरणो मे बुझते दीपक का करुण विलाप। जीवन की सपन्नता की प्रतिक्रिया स्वरूप ही उनमे मानवीय सवेदना है। तदनुरूप उनके काव्य मे वैष्णव तथा रहस्यवादियो की अतृप्त प्रेम वेदना अन्तर्निहित है। गगाप्रसाद पाडेय से परिचय के उपरान्त वह द्विवेदी जी से लाभ उठाकर महादेवी के समकक्ष पहुँचना चाहते थे जिसमे वह सफल भी हुए। लेकिन अपनी समुचित श्रद्धा न दे सकने के कारण ही वह महादेवी जी के सत्सग का समुचित सदुपयोग न कर पाये। सार्वजनिक क्षेत्र मे पदार्पण से पूर्व उनकी साहित्यिक और सामाजिक निकटता सुलभ थी। वह प्रत्येक के कष्ट से अनुप्राणित थी। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र मे पदार्पण करने पर वह दुर्लभ हो गयी। श्री श्रीप्रकाश जी वस्तुत अपनी पद-मर्यादा मे भी एक आदर्श नागरिक है। उनकी इस आदर्श नागरिकता की झलक उनके सेवको पर स्पष्ट लक्षित होती है। श्रीप्रकाश जी मे शालीनता, शिष्टता, सस्कारिता की छाप, आत्मीयता, सहानुभूति तथा सवेदनशीलता आदि गुण विद्यमान है। वह दूसरो को अपने स्नेह से आह्लादित कर देते है। महादेवी जी मे भी स्नेह, सवेदना और सहानुभूति है लेकिन अपनी ज्योत्स्ना से पुलकित करने की काति उनमे नही है। ऐसा ही व्यवहार दूसरे के प्रति उनके सेवको का भी है। वस्तुत आधुनिक युग मे साहित्यिक क्षेत्र मे राजनीतिक सकीर्णता का आभास द्विवेदी जी के समय से ही होने लगा था जिसमे व्यक्तिवाद को प्रधानता दी जाती है। महादेवी जी महिला विद्यापीठ, राज्य परिषद, साहित्यकार ससद, स्वाध्याय, मनन चिन्तन लेखन, अस्वास्थ्य, दिनचर्या तथा पारिवारिक और सामाजिक समस्याएँ आदि जीवन की सकुलताओ मे घिरी हुई हैं। ऐसे समय मे उनका सामीप्य न प्राप्त होना आश्चर्यजनक बात नही है। शातिप्रिय द्विवेदी जी के प्रयाग जाने पर यद्यपि छायावाद के तीर्थ स्तम्भ पन्त, निराला, महादेवी वही पर हैं लेकिन फिर भी अब उस वातावरण मे उल्लास

नही है। युग का प्रभाव सर्वत्र फैल रहा है। पन्त अपनी असमर्थता तथा महादेवी अपनी बहुव्यस्तता के कारण इनसे बहुत दूर है। द्विवेदी जी निराला जी के अधिक निकट है लेकिन वह भी जीवनमुक्त है। अतएव सगुण रूपान्तर छायावाद मे भी द्विवेदी जी निर्गुण के शून्य को ही आभासित करते है।

[४] **'स्मृतिया और कृतिया'** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की 'स्मृतिया और कृतिया' शीर्षक कृति मे सगृहीत सस्मरणात्मक लेख लेखक की भावुकता के साथ गद्य साहित्य मे उनकी पैठ को दर्शित करते है। इस कृति मे लेखक की तत्पर बुद्धि एव भावुक मन का सुन्दर समन्वय हुआ है। 'स्मृति के सूत्र' आत्मचरितात्मक सस्मरण के प्रारभ मे श्री द्विवेदी ने अपने जीवन के प्रारम्भिक क्षणो का स्मरण किया है। शैशव एव किशोरावस्था के उपरान्त साहित्य-क्षेत्र मे पदार्पण के उपरान्त द्विवेदी जी छायावादी कवियो मे पन्त और निराला से विशेष रूप से प्रभावित हुए। निराला के मुक्त छन्द तथा ओजस्वी स्वर ने उन्हे कविता के लिए उत्साहित किया। निराला के जीवन से अधिक साम्य होने पर भी भाव और स्वभाव की दृष्टि से वह पन्त के काव्य कोमल व्यक्तित्व की ओर मुखरित हुए। पन्त जी के बाद उनका परिचय महादेवी जी से हुआ। महादेवी की कविताओ से वह चमत्कृत हो उठे। उनमे द्विवेदी जी को अपनी बहिन की अन्तरात्मा का बोध हुआ। महादेवी की आत्मा भी जन्म जन्मान्तर से विर-हिणी प्रतिभासित होने लगी। प्रयाग से काशी आने पर उनका यह साहित्यिक सगम छूट गया तथा काशी मे उन्हे बहुत दारुण एव कष्टकर अनुभवो का ज्ञान हुआ। काशी प्रवास मे ही उनकी बडी बहिन कल्पवती की मृत्यु हो गयी। वह प्रयाग से काशी 'कमला' मे काम करने के लिए गये थे अतएव अपनी इस दारुण व्यथा मे भी कमला के काम मे मन लगाने का प्रयत्न करने लगे। बहिन के अभाव मे महादेवी जी अपनी लेखिनी के द्वारा उन्हे प्रोत्साहित करती रहती थी। कमला के सपादन काल मे ही उन्होने 'युग और साहित्य' का प्रारम्भ किया जिसमे बहिन के व्यक्तित्व से प्रभावित सास्कृतिक श्रद्धालु होने पर भी सामाजिक आधार के अभाव मे प्रगतिवादी दृष्टिकोण का आभास मिलता है। १९४० मे 'युग और साहित्य' प्रकाशित हुआ। इसी समय महादेवी जी उनसे रुष्ट हो गयी जिसके पीछे साहित्यिक कारण था और किसी की स्वार्थ भावना थी। वह स्वच्छन्दता की विरोधिनी थी और द्विवेदी जी उस समय नैतिक रूप से स्वच्छन्द थे। लेकिन निराला मे भी तो यही स्वच्छन्दता अत्यन्त प्रबल रूप मे थी जिन्हे उन्होने अपना भाई बना लिया था। लेखक ने उस समय की साहित्यिक गुटबन्दी की ओर सकेत किया है। उनके रुष्ट होने पर भी वह प्रयाग जाने पर उनसे भेट करने अवश्य जाते थे, वह मिले अथवा न मिले, क्योकि उनका विमुख होना उनके लिए अपनी बहिन की स्मृति से विमुख होने जैसा ही था।[१] 'प्रतिक्रिया'

---

१. 'स्मृतिया और कृतिया', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११।

भावात्मक सस्मरण मे द्विवेदी जी ने स्वीकार किया है कि उनमे काव्य स्रोत के सूख जाने का कारण वैयक्तिक प्रतिभा का अभाव न होकर सार्वजनिक था। शोषण तथा पीडा ने उन्हे विरस सा बना दिया था।[१] उन पर अपने परिव्राजक पिता तथा मीरा की सी साधिका बाल-विधवा बहिन की सस्कृति, कला और करुणा की छाप पडी। बाल्यकाल मे गुप्त जी की कविता से प्रभावित थे तथा गाधी के आदर्शों ने भी उनमे आदर्श के प्रति अनुराग जगा दिया। इसके अतिरिक्त ब्रह्मलीन स्वामी रामतीर्थ के मधुर अध्यात्म और स्वामी सत्यदेव के साहित्य से उन्हे उद्‌बोध तथा उत्साह प्राप्त हुआ।[२] 'प्रभात से सन्ध्या की ओर' भावात्मक सस्मरण मे लेखक ने स्वय सौन्दर्य के प्रति आकर्षण का दिग्दर्शन करते हुए स्वय के जीवन मे कल्पना की उडान भरी है। उनकी कुटिया मे गार्हस्थिक सम्बन्धो की कोई भी शृखला न थी। उनका जीवन विरस एव एकाकी हो गया था। इसके साथ ही जीवन के लिए अन्न एव अवलम्बन का भी अभाव ही था। उन्होने अपने जीवन की तुलना चार्ल्स लैम्ब से की है जो कल्पना मे ही अपने गार्हस्थिक क्षेत्र को विस्तृत करके उनमे बाल्य चपलता, ममता, स्नेह के आगार का रसास्वादन करता था। अपने दाम्पत्य सुख की लालसा मे लेखक भी जीवन मे कल्पना की उडान अपनी जाग्रतावस्था मे करता है। स्वप्नो मे बहिन के दर्शन उन्हे अवश्य ही हो जाते थे जो एक झलक दिखा कर गायब हो जाया करती थी। एक लम्बी अवधि तक साहित्य-क्षेत्र मे रहने पर भी अपने सूनेपन के कारण तथा सामाजिक विरुचिता के कारण इस उदरम्भि युग मे उनका लेखन कार्य बन्द हो गया। अपने जीवन के अभाव को वह समाज मे तथा अन्य परिवारो मे भी अनुभव करते। यही कारण है कि आज परिवार विशृंखल होते जा रहे हैं। मनुष्य आत्मद्रोही तथा समाजद्रोही होता जा रहा है। इसके साथ ही उसमे धार्मिक सवेदना का भी अभाव है। लेखक अपने निरवलम्ब जीवन के अन्तिम क्षणो के प्रति भी चिंतित हो उठा है। 'शेष सम्पदा' भावात्मक सस्मरण मे राष्ट्रकवि बाबू मैथिली-शरण गुप्त से परिचय एव उनसे प्राप्त अन्तिम पत्र का उल्लेख किया है। वही पत्र अब उनके अन्तिम सस्मरण रूप मे शेष सम्पदा है। गुप्त जी से उनका परिचय १९२५ मे हुआ था। गुप्त जी की जन्मभूमि चिरगाव जाने का उन्हे कभी अवकाश न मिला। लेकिन सन् १९३९ मे बहिन के देहावसान के उपरान्त निरवलम्ब हो जाने पर तथा निर्जनता एव उदासीनता के आधिक्य में प्रेरणा प्राप्त करने के लिए सवेदनशील गुरुजन गुप्त जी से परामर्श एव पथप्रदर्शन के लिए पत्र लिखा जिसके उत्तर मे उन्होने बहुत सक्षिप्त प्रेरणात्मक पत्र लिख कर उन्हे आमन्त्रित किया तथा अपनी शुभकामना उन्होने सन् १९६१ मे 'वासन्ती' के अभिनन्दन विशेषाक के लिए भेजी थी। 'युग सकट'

---

१ 'स्मृतिया और कृतिया', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १३।

२. वही, पृ० १४।

वैचारिक सस्मरण मे निराला के व्यक्तित्व की विचित्रता का अकन, उनकी साहित्यिक पृष्ठभूमि मे यथार्थ जीवन का तुलनात्मक रूप अकित हुआ है। वह प्रगतिशील नयी पीढी के उत्क्रान्त कवि थे जिनका जीवन सर्वथा अभावग्रस्त रहा। निराला जी के देहावसान के पूर्व वसन्त पचमी के अवसर पर काशी आने पर द्विवेदी जी उनके दर्शनार्थ गये। उस समय वह अस्वस्थ थे। इस अस्वस्थता ने उनके तेजस्वी मन को जर्जरित बना दिया था जो काव्य मे इतना ओजस्वी एव उच्छृखल है। जीवन के अभावो ने उन्हे अपनी अस्वस्थता से पूर्व ही मुर्दा बना दिया था। अपने आप से ऊब की प्रतिक्रिया स्वरूप ही उनका स्वभाव विचित्र था। उनके तेजोद्दीप्त व्यक्तित्व का यह जीवन्मृत रूप सम्भवत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सामाजिक व्यवधानो के फलस्वरूप ही था। छायवादी कवियो मे किसी का भी जीवन सुखमय न था। पन्त ने भी 'युग-वाणी' मे सूनेपन के अनुभव के कारण उसका बौद्धिक समाधान दिया। इसी प्रकार महादेवी ने भी अपने सूनेपन को आसुओ से धोकर अभिशापो को ही उज्ज्वल वरदान बना दिया। द्विवेदी जी की दृष्टि मे छायावादी कवि अपनी भावुकता के कारण ही विकल थे। वस्तुत 'राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और वैयक्तिक दिशाओ से युग-युग से कोई ऐसी ऐतिहासिक शून्यता (सहयोग शून्यता) चली आ रही है जिसने पुज-पुज पुजीभूत होकर कवियो, बुद्धिजीवियो और जनता के जीवन को रिक्त कर दिया है।[१] 'निराला जी की प्रथम स्मृति', 'निराला जी, मेरी दृष्टि मे' तथा 'निराला जी · जीवन और काव्य' आदि साहित्यिक सस्मरणो मे द्विवेदी जी ने निराला जी के प्रथम परिचय एव उनके व्यक्तित्व-कृतित्व की विवेचना का अपनी सूक्ष्म विश्लेषणात्मक दृष्टि के अनुसार निदर्शन किया है। 'अनमिल आखर पन्त जी और मैं' साहित्यिक सस्मरण मे द्विवेदी जी के बचपन की करुण अनुभूतियो के कारण पन्त की सुकुमार भावनाओ से आप्लावित एव प्रेरित होने का चित्रण है। सन् १९२६ मे द्विवेदी जी पन्त जी के दर्शनार्थ प्रयाग गए जहा वह अपने उद्देश्य मे सफल भी हुए। अपनी शारीरिक, मानसिक असमर्थता तथा सामाजिक विषमता के कारण द्विवेदी जी पन्त जी के सम्मुख अस्पष्ट से ही रहे, यद्यपि पन्त जी का व्यक्तित्व एव साहित्य उनके सामने स्पष्ट हो चुका था। युग परिवर्तन ने यद्यपि दोनो मे ही कुछ परिवर्तन ला दिया लेकिन विचार की दृष्टि से उनमे साम्यता थी। 'नेहरू जी की अन्तिम स्मृति' भावात्मक सस्मरण मे द्विवेदी जी ने नेहरू जी के निकट परिचय के अभाव मे भी उनकी आत्मीयता के बोध का वर्णन किया है। इसमे लेखक ने स्वय नेहरू जी के प्रत्यक्ष दर्शन का उल्लेख किया है जो सन् १९६३ मे विजयादशमी के अवसर पर रामलीला के मैदान मे सम्भव हो सका था।

---

१. 'स्मृतिया और कृतिया', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३०।

द्विवेदी जी के सस्मरण और हिन्दी सस्मरण साहित्य की पृष्ठभूमि

आधुनिक युग मे हिन्दी साहित्य की प्राय सभी प्रमुख गद्यात्मक विधाओ की भाति सस्मरण का उद्‌भव भी भारतेन्दु युग मे हुआ। भारतेन्दु काल मे स्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'एक कहानी, कुछ आप बीती कुछ जग बीती' शीर्षक से जो रचना आत्म-कथात्मक शैली मे प्रस्तुत की है वह भी मूलत सस्मरणात्मक तत्वो से युक्त है और उसमे समकालीन समस्याओ के प्रति व्यग्यात्मकता की भावना मिलती है। इस युग मे कुछ अन्य रचनाएँ विशेष रूप से कार्तिक प्रसाद खत्री लिखित 'दामोदर राव की आत्म कहानी' तथा श्री शालिगराम लिखित 'एक ज्योतिषी की आत्म कथा' जैसी रचनाएँ आत्मकथात्मक अथवा सस्मरणात्मक शैली मे ही लिखी गयी हैं। इस युग मे यद्यपि स्वतत्र रूप से सस्मरण साहित्य का लेखन नही हुआ परन्तु उपर्युक्त कृतिया उसका स्वरूपगत आभास देती है। प्रेमचन्द युग मे अनेक लेखको ने कहानी से मिलते-जुलते सस्मरण प्रस्तुत किए। इसके उपरान्त श्री शातिप्रिय द्विवेदी के रचनाकाल मे आत्मकथा, आत्मसस्मरण तथा यात्रा-सस्मरण के रूप मे अनेक लेखको ने स्वतत्र रचनाएँ प्रस्तुत की। इनमे से जो आत्म कथा प्रधान रचनाएँ हैं वे मुख्यत धार्मिक आचार्यो, राजनीतिक नेताओ, समाज सुधारको तथा लेखको के जीवन से सम्बन्धित हैं। आत्म-कथात्मक कोटि की रचनाओ मे श्री रामविलास शुक्ल लिखित 'मैं क्रान्तिकारी कैसे बना', राजाराम लिखित 'मेरी कहानी', घनश्याम दास बिडला लिखित 'डायरी के कुछ पृष्ठ', ओकार शरद लिखित 'मेरा बचपन', कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी की 'आधे रास्ते', 'सीधी चढान', 'आत्मकथा' (दो भाग) तथा 'स्वप्न सिद्धि की खोज मे', गुलाबराय लिखित 'मेरी असफलताएँ', चन्द्रभूषण लिखित 'अपनी-अपनी बात', जवाहरलाल नेहरू लिखित 'मेरा बचपन' तथा 'मेरी कहानी', देवव्रत शास्त्री लिखित 'साहित्यकारो की आत्मकथा', परमानन्द लिखित 'आप बीती' तथा 'काले पानी के कारावास कहानी', भवानी दयाल सन्यासी लिखित 'प्रवासी की कहानी' तथा 'प्रवासी की आत्मकथा', महादेव हरिभाई देसाई लिखित 'डायरी' (तीन भाग), मूलचन्द अग्रवाल लिखित 'पत्रकार की आत्मकथा', यशपाल लिखित 'सिहावलोकन' (तीन भाग), राजेन्द्र कुमार लिखित 'मेरा बचपन' तथा 'आत्मकथा', राहुल साकृत्यायन लिखित 'मेरी जीवन यात्रा', डा० श्यामसुन्दर दास लिखित 'मेरी आत्म कहानी' तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री लिखित 'मेरी आत्म कहानी' आदि उल्लेखनीय हैं। आत्म-सस्मरणात्मक रचनाओ के अन्तर्गत अनुग्रहनारायण सिह लिखित 'मेरे सस्मरण', अरुण लिखित 'महापुरुषो के सस्मरण', कन्हैयालाल मिश्र लिखित 'भूले हुए चेहरे', कपिल लिखित 'सूरते और सीरते', किशोरीदास वाजपेयी लिखित 'साहित्यिक जीवन के अनुभव और सस्मरण', क्षेमचन्द्र सुमन लिखित 'साहित्यिको के सस्मरण', गणेश प्रसाद लिखित 'पावन स्मृतिया', नागार्जुन लिखित 'साहित्यिको के सस्मरण', पद्मसिह शर्मा 'कमलेश' लिखित 'मैं इनसे मिला' (दो भाग), प्रकाशचन्द्र गुप्त लिखित 'पुरानी

स्मृतिया और नये स्केच', बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित 'सस्मरण', ब्रजलाल वियाणी लिखित 'जेल मे', भगवानदीन लिखित 'मेरे साथी', महादेवी वर्मा लिखित 'अतीत के चलचित्र', 'श्रृखला की कडिया' तथा 'स्मृति की रेखाएँ', महावीर प्रसाद अग्रवाल लिखित 'साहित्यिक सस्मरण', महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखित 'अतीत स्मृति', लक्ष्मी-नारायण गर्दे लिखित 'जेल मे चार साल', विजय लक्ष्मी पडित लिखित 'जेल के वे दिन', शचीन्द्र सान्याल लिखित 'बन्दी जीवन' (दो भाग), शिवरानी देवी लिखित 'प्रेमचन्द . घर मे', श्रीराम शर्मा लिखित '१९४२ के सस्मरण', सत्यदेव परिव्राजक लिखित 'नई दुनिया के मेरे सस्मरण' तथा 'यूरोप की सुखद स्मृतिया, सहजानन्द सरस्वती लिखित 'किसान सभा के सस्मरण', सीताराम सेक्सरिया लिखित 'स्मृति-कण', सोहनलाल लिखित 'अतीत की स्मृतिया', और हरिभाऊ उपाध्याय लिखित 'काव्य सस्मरण' तथा 'पुण्य सस्मरण' आदि कृतिया इस युग के सस्मरण साहित्य के अन्तर्गत परिगणित की जाती है।

यात्रा साहित्य से सम्बन्धित जो रचनाएँ उपलब्ध है उनमे पूरनचन्द नाहर का 'जैसलमेर', लाला सीताराम का 'चित्रकूट की झाकी,' वासुदेव शरण अग्रवाल का 'श्रीकृष्ण की जन्मभूमि', भवानीदयाल सन्यासी लिखित 'दक्षिण अफ्रीका के मेरे अनुभव', राहुल साकृत्यायन की 'मेरी तिब्बत यात्रा' तथा 'मेरी ईरान यात्रा', धरम-चन्द्र लिखित 'यूरोप मे सात मास', महेश प्रसाद की 'मेरी ईरान यात्रा', सत्यनारायण की 'रोमाचकारी रूस', अमृतलाल चक्रवर्ती की 'विलायत की चिट्ठी', कन्हैयालाल की 'हमारी जापान यात्रा', लाला कल्याण चन्द्र लिखित 'श्री बद्रीनाथ यात्रा', काका कालेलकर लिखित 'हिमालय की यात्रा', केसरीमल अग्रवाल लिखित 'दक्षिण तथा पश्चिम के तीर्थ स्थान', गणेश नारायण सोमण लिखित 'मेरी यूरोप यात्रा', गदाधर सिंह लिखित 'चीन मे तेरह मास', गोपालराम गहमरी की 'लका यात्रा का वर्णन', सेठ गोविन्द दास की 'पृथ्वी की परिक्रमा', 'जवाहरलाल नेहरू की 'आखो देखा रूस', जी०पी० जोशी लिखित 'साइकिल यात्रा', जैमिनी मेहता लिखित 'अमेरिका यात्रा' तथा 'श्याम देश की यात्रा', ठाकुर दत्त मिश्र की 'लन्दन की एक झलक', ठाकुर दत्त शर्मा दधीचि की 'चारो धाम की यात्रा', तोताराम सनाढ्य की 'फिजी मे मेरे इक्कीस वर्ष', दामोदर शास्त्री लिखित 'मेरी जन्मभूमि यात्रा', देवदत्त शास्त्री लिखित 'मेरी काश्मीर यात्रा', देवी प्रसाद खत्री लिखित 'बदरिकाश्रम यात्रा', धर्मचन्द्र सरावगी लिखित 'यूरोप मे सात मास', धर्मरक्षित भिक्षु लिखित 'नेपाल यात्रा' तथा 'लका यात्रा', धीरेन्द्र वर्मा लिखित 'यूरोप के पत्र', डा० भगवतशरण उपाध्याय लिखित 'कलकत्ता से पीकिंग', भगवानदास वर्मा लिखित 'लदन यात्रा', मगलानन्द पुरी 'सन्यासी' लिखित 'अफ्रीका की यात्रा', रामनारायण मिश्र तथा गौरीशकर प्रसाद लिखित 'योरूप यात्रा : छः मास', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'अरेयायावर रहेगा याद' तथा हरिकृष्ण झाझडिया लिखित 'मेरी दक्षिण भारत यात्रा'

आदि विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। जीवन साहित्य के अन्तर्गत रामनारायण मिश्र की 'महादेव गोविन्द रानाडे', माधव मिश्र की 'विशुद्धानन्द चरितावली', प० सत्यदेव की 'स्वामी श्रद्धानन्द', सत्यदेव विद्यालकार की 'लाला देवराज', गोपीनाथ दीक्षित की 'जवाहरलाल नेहरू', रघुवश भूषण 'शरण' की 'रूपकला प्रकाश', गौरीशकर चैटर्जी की 'कृर्ष वर्धन', विश्वेश्वरनाथ 'रेनु' की 'राजा भोज', गगाप्रसाद मेहता की 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य', गोपाल दामोदर 'तामस्कर' की 'शिवाजी की योग्यता', ब्रजरत्नदास की 'बादशाह हुमायूँ', हरिहरनाथ शास्त्री की 'मीरकासिम', चन्द्र शेखर शास्त्री की 'हिटलर महान्', सदानन्द भारती लिखित 'महात्मा लेनिन', नारायण प्रसाद अरोडा लिखित 'डी० वेलेरा', शिवकुमार शास्त्री की 'नेलसन की जीवनी', प्रेमनारायण अग्रवाल की 'भवानी दयाल सन्यासी', जगदीश नारायण तिवारी की 'सुभाषचन्द्र बोस', घनश्यामदास बिडला की 'श्री जमुनालाल जी', त्रिलोकीनाथ सिंह की 'स्टालिन', अक्षयकुमार मिश्र की 'सिराजुद्दौला', अक्षयवर मिश्र की 'दुर्गादत्त परमहस', अनूपलाल मडल की 'महर्षि रमण' तथा 'श्री अरविंद', इन्द्र विद्यावाचस्पति की 'जवाहरलाल नेहरू', ईश्वरी प्रसाद माथुर की 'तानसेन', ईश्वरी प्रसाद शर्मा की 'लोकमान्य बालगगाधर तिलक', उदयभानु शर्मा की 'देवी अहिल्याबाई', उमादत्त शर्मा की 'शकराचार्य', कमलधारी सिंह की 'भारत की प्रमुख महिलाएँ', कृष्ण रमाकात गोखले की 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' तथा 'वीर दुर्गादास', गगाप्रसाद गुप्त की 'दादा भाई नौरोजी' तथा 'रानी भवानी', चतुर्भुज सहाय की 'भक्तवर तुकाराम', दीनानाथ व्यास लिखित 'सरदार बल्लभ भाई पटेल', दुर्गाप्रसाद रस्तोगी लिखित 'माननीया श्रीमती पडित', देवदत्त शास्त्री लिखित 'चन्द्रशेखर आजाद', बाबूराव जोशी की 'तपोधन विनोबा', रामनाथ सुमन की 'हमारे नेता' तथा 'हमारे राष्ट्र निर्माता', लक्ष्मीसहाय माथुर की 'बेंजामिन फ्रेंकलिन', सत्यव्रत की 'एब्राहम लिंकन', शिवनन्दनसहाय की 'गौराग महाप्रभु', प्रभुदत्त की 'चैतन्य चरितावली', हरिरामचन्द्र 'दिवाकर' की 'सन्त तुकाराम', अगरचन्द नाहटा की 'जिनचन्द्र सूरि' एव मगल लिखिन 'भक्त नरसिंह मेहता' आदि कृतिया उल्लिखित की जा सकती हैं।

रिपोर्ताज घटना प्रधान होता है। उसमे भाव प्रणता एव विचारात्मकता का अभाव होता है। यही कारण है कि रिपोर्ताज शब्द रिपोर्ट पर आधारित है। वर्ण्य विषय के यथातथ्य वर्णन मे कलात्मक तथा साहित्यिक विशिष्टताओ का रूप अन्तर्निहित होने पर वह रिपोर्ताज कहलाता है। हिन्दी रिपोर्ताज लेखको मे प० श्रीनारायण चतुर्वेदी, डा० प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० रागेय राघव, डा० प्रभाकर माचवे तथा अमृतराय आदि साहित्यकारो के नाम विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। इससे यः स्पष्ट है कि श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने 'पथ चिन्ह', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' मे जो सस्मरण प्रस्तुत किये हैं वे समकालीन सस्मरण साहित्य की प्रायः सभी विशेषताओ से युक्त हैं। 'पथचिन्ह' के आत्मपरिचयात्मक

सस्मरणात्मक लेखो मे द्विवेदी जी ने अपना तथा अपनी एक मात्र स्वर्गीया बहिन के जीवन का परिचय दिया है। उनकी लेखन शैली का यह रचनात्मक प्रयास सर्वथा अपनी मौलिकता एव नवीनता मे अक्षुण्ण है। लेखक ने यह परिचय अत्यन्त ही कलात्मक रूप मे देते हुए आधुनिक जीवन के कटु यथार्थो का रूप प्रस्तुत कर जीवन मे कला और सस्कृति के अभाव की ओर सकेत किया है। 'स्मृतिचिन्तन' शीर्षक लेख मे लेखक ने अपनी बाल विधवा बहिन को स्मरण किया है जो लेखक की दृष्टि मे मूर्तिमती तपस्या, साक्षात् पवित्रता, जीवित करुणा, रामायण, गीता तथा गगाजली थी। लेखक के शब्दो मे 'बहिन, तुम कल्पवती थी, तुम युग-युग अजर-अमर हो, आज तुम्हारी करुणा अदेह होकर भी इस पृथ्वी के दुख दैन्य मे सदेह है। पृथ्वी के कोटि-कोटि दरिद्रनारायणो मे मैं तुम्हे प्रणाम करता हूँ। तुम उन्ही के बीच सुजलाम् सुफलाम् शस्यश्यामलाम् होकर उगो, मलयज शीतलाम् होकर उनके सन्तप्त हृदय का परस करो।'[१] 'पथचिन्ह' सस्मरण के 'वह स्वर्गीय निधि' तथा 'आहुति' शीर्षक लेखो मे भी आत्मपरिचयात्मकता का बोध होता है। इसमे लेखक ने अपनी अबोधता एव निरीहता का परिचय देकर अपनी मा, पिता, बहिन तथा परिवार के अन्य भाई बहिनो का साकेतिक परिचय दिया है। अपनी बाल-विधवा बहिन की धार्मिक परन्तु सामाजिक प्रवृत्ति की ओर सकेत करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है 'सत्य, श्रम, शिल्प यही उसके जीवन के धन थे। यो कहे, धर्म ही उसका सबसे बडा धन था। भगवान उसके साक्षी विनायक थे। धर्म पर अटल श्रद्धा रखते हुए भी वह धर्मभीरु नही धर्म प्राण थी। इसीलिए उसमे अन्तस् तेजस भी था। प्रकृति मे पार्वती की तरह कोमल और पौरुष मे रुद्राणी की तरह दुर्द्धर्ष थी। यदि वह शरद की सुरवाला थी, तो वही शिवानी भी थी। उसकी स्वावलम्बिनी और एकाकिनी आत्मा प्रकृति पुरुष स्वय हो गयी थी। इस द्वित्व व्यक्तित्व मे एकमात्र शिवत्व की शुभकामना के कारण वह सर्वमगला थी।'[२]

द्विवेदी जी के सस्मरणात्मक लेखो की प्रमुख विशेषता आत्मपरिचयात्मकता के साथ विचारो की प्रधानता तथा भावुकता है। उदाहरण के लिए 'पथचिन्ह' कृति का 'अभिशापो की परिक्रमा' लेख, 'परिव्राजक की प्रजा' कृति का 'स्मृति पूजन' लेख तथा 'स्मृतिया और कृतिया' सस्मरण कृति के 'प्रतिक्रिया', 'प्रभात से सन्ध्या की ओर', 'शेष सपदा' तथा 'नेहरू जी की अन्तिम स्मृति' आदि लेखो मे आत्मकथात्मक रूप के साथ लेखक की भाव-प्रवणता का भी परिचय मिलता है।

'परिव्राजक की प्रजा' कृति के 'स्मृति पूजन' शीर्षक लेख मे लेखक की भावुक कल्पना का परिचय मिलता है 'कितने दिन, कितने मास, कितने वर्ष बीत गये। बहिन

---

१. 'पथचिन्ह', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३।

२ वही, पृ० २६।

किसी दैवी ज्योति की तरह आयी और फिर उसी की तरह चली गई। इसकी स्मृति मेरी सास मे बस गई। शुक्रवार को ब्रह्म मुहूर्त मे बहिन अपने पार्थिव शरीर से विदा हुई थी। अन्तिम दिनो जहा-जहा उसने निवास किया था वहा-वहा मेरे लिए तीर्थ बन गये है। काशी मे जब रहता हूँ तब शुक्रवार के दिन पचक्रोशी के मार्ग मे अपनी तीर्थ परिक्रमा करता हूँ। .मन मे न जाने कितनी वेदनाएँ, कितनी भावनाएँ उर्म्मियो की तरह उमड कर उन्मथित हो उठती है। उस दिशा को प्रणाम करता हूँ जिस दिशा मे बहिन ने महाप्रस्थान किया था।'[1] अपनी बहिन के अभाव मे द्विवेदी जी विक्षुब्ध हो उठे तथा इस नामसिक ससार से मुक्ति का मार्ग खोजते रहे। परन्तु 'उसके अभाव मे चिर परिचित विश्व अपरिचित-सा जान पडने लगा था। मन न हर्षित-सा, न विमर्षित-सा, हो गया था। ससार ज्यो का त्यो था किन्तु इसमे मेरा केवल शरीर ही था, चेतना लोकान्तरिस हो गयी थी। चेतना उसी अतीन्द्रिय ज्योति का अनुसरण करती हुई सूक्ष्म मे विलीन हो गयी थी जो अभी कल तक अपनी देह के दीपक मे भी जगमगा रही थी ..धीरे-धीरे जब चेतना आकाश चारिणी सिहगिनी की तरह अपने विश्व नीड मे लौट आयी तब प्रतिभासित हुआ कि विश्व की मूल ज्योति तो चली गयी किन्तु वह अपनी लौ इस दीपक मे भी लगा गयी है।'[2] लेखक ने अपने सामाजिक जीवन के प्रभावस्वरूप जीवन मे हुई प्रतिक्रिया एव अपने जीवन का भावुक परिचय देते हुए लिखा है 'आप्त युगो का आस्थावान होते हुए भी मुझे जीवन कुछ ऐसा मिला कि मैं भी सर्वहारा की सतह पर आ गया। जीवन तो विटनिको का-सा मिला किन्तु उसके साथ बीटल गायको जैसा सगीत मानो मुक्त छन्द के साथ गीतिकाव्य की तरह लोकपथ पर चलता रहा, गद्य को राग से लयमान करता रहा, ऊबड-खाबड पथ को चादनी से स्निग्ध बनाता रहा, गति को आरोह अवरोह का तालमेल देता रहा, लडखडाते कदमो को सभालने के लिए गीति की टेक लेता रहा। किन्तु वह सब भी तो भावना और कल्पना की तरह भुलावा था, हवा मे गुब्बारे की तरह तैरना, जीवन तो जस का तस एकरस नीरस था, स्मशान की तरह अवसन्न था। आश्चर्य है कि अब तक मुझमे प्रतिक्रिया नही उत्पन्न हुई थी किन्तु इस असह्य स्थिति ने एकाएक मेरे भीतर ऐसी उथल-पुथल मचा दी कि मैं अन्तर्द्वन्द्व से अत्यन्त आन्दोलित हो उठा। मेरा स्वप्न ही भग नही हो गया, मेरी मान्यताओ का मान भी भग हो गया।'[3]

लेखक के सस्मरण साहित्य मे वैचारिक विशिष्टता का गुण भी अन्तर्हित है। लेखक ने आधुनिक युग के विभ्रमित मानव जीवन के विभिन्न पहलुओ पर अपने

---

१ 'परिव्राजक की प्रजा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २७५।

२ 'पथचिन्ह', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३९।

३ 'स्मृतिया और कृतिया', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १७।

विचारो का प्रतिपादन किया है। स्वय लेखक भी जीवन की इस आधुनिकता से त्रस्त हो उठता है । लेखक सस्कृति, कला एवं सगीत को मानव जीवन मे व्यावहारिक रूप मे प्रतिफलित होते देखना चाहता है । यही कारण है कि द्विवेदी जी गाधी जी के सेवाग्राम, खादी तथा उनके अनेक सिद्धान्तो से सहमत है । इस दृष्टि से लेखक ने युग सकट को प्रत्यक्ष किया है । विचार प्रधान लेखो की दृष्टि से 'पथचिन्ह' के 'पर्यवेक्षण' तथा 'अन्त सस्थान' शीर्षक लेख, 'परिव्राजक की प्रजा' का 'सौन्दर्य दर्शन' लेख तथा 'स्मृतिया और कृतिया' कृति का 'युग सकट' शीर्षक लेख आदि वैचारिक है । इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी के निबन्धात्मक सस्मरण मे भी उनके विचारो की ही प्रधानता है । निबन्धात्मक सस्मरण के अन्तर्गत 'परिव्राजक की प्रजा' कृति के 'युग और समाज' तथा 'रचनात्मक दृष्टिकोण' शीर्षक लेख तथा 'प्रतिष्ठान' कृति के 'प्रकृति, सस्कृति और कला', 'युग निर्माण की दिशा', 'छायावाद का प्राकृतिक दर्शन', 'सस्कृति की साधना' तथा 'समकालीन साहित्य' आदि मे लेखक के विभिन्न क्षेत्रीय विचारो का प्रतिपादन हुआ है तथा लेखक की मौलिक चिन्तनपरक विशेषता का निदर्शन हुआ है । लेखक की दृष्टि मे 'मनुष्य अपनी वाह्य आकृति-प्रकृति, रहन-सहन के ढग एव वेशभूषा से ही सास्कृतिक एव कलात्मक नही प्रतीत होता प्रत्युत् वह अपने स्वभाव एव व्यवहार को भी सजीवता एव सचेतनता प्रदान करे । मनुष्य को मात्र प्रदर्शन प्रिय और निर्जीव न होकर उसे सजीवता के गुणो से विभूषित होना चाहिए । वस्तु मे, व्यवस्था मे, स्वभाव मे, व्यवहार मे, आहार मे, विहार मे, जो सुरुचि है वही है सुन्दरता, वही है प्राणी मे प्राणित्व की चेतना, उसी की अभिव्यक्ति है कला, उसी की परिणति है सस्कृति। चेतना मे, कला मे, सस्कृति मे जो कुछ जीवन के विकास के लिए अनिवार्य है उसी का धारण है धर्म ।'[1]

इस दृष्टि से लेखक ने मानव जीवन की इन विशेषताओ के आधार पर जनशक्ति एव मानव मूल्यो को निर्धारित कर आधुनिक जीवन की विभिन्न सास्कृतिक, धार्मिक एव कलात्मक आवश्यकताओ की ओर निर्देश किया है । लेखक ने अदार्शवाद, यथार्थवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, गाधीवाद तथा समाजवाद के समन्वयात्मक रूप मे विभिन्न वादो की विडम्बना एव युग द्वन्द्वो की ओर सकेत किया है तथा भावी सम्भावनाओ पर भी अपने विचार प्रकट किये है 'हमारा अब तक का शरीर (समाज) एकदम सड गया है, जिसके भीतर चेतना पीडा से छटपटा रही है । फिर भी उसकी विवर्ण मुखाकृतियो (साहित्य, कला, सगीत, सभ्यता) मे ही हम उसके भाव और सस्कृति का सौन्दर्य और माधुर्य देखते आ रहे हैं, मानो युग-युग की पीडा के साथ क्रीडा कर रहे हैं । साहित्य और कला के नाम पर एक बहुत बडी छलना लेकर हम जीवन का मिथ्या अभिनय कर रहे हैं । अब इस प्रवचना का अन्त होना चाहिए ।

१. 'पथचिन्ह', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९७ ।

युग-युग की पीडित चेतना को उसके रुग्ण शरीर से मुक्ति देनी चाहिए। भावी युग मे आत्मा (छायावाद और गाधीवाद) की अभिव्यक्तिया (भाव और सस्कृति) भी चेतना का प्रकाश बन कर प्रस्फुटित होती रहेगी, किन्तु वे समाजवादी मानव के उत्फुल मुखमडल पर ही स्वस्थ मुद्राएँ अकित कर सकेगी, अभी तो ये मुरझाये मुखो पर फूलो की म्लान छवि जैसी है।'[१] लेखक ने आधुनिक युग की विभिन्न समस्याओ पर विचार किया है जो वस्तुत वैज्ञानिक कारणो से उत्पन्न हुई है। आधुनिक युग मे विज्ञान प्रकृति पर विजय प्राप्त करना चाहता है। यही कारण है कि वह अपने मानवोचित गुणो से इतर होता जा रहा है। कृषि से दूर जा रहा है। आज टकसाली सिक्को का महत्व दिनोदिन बढता जा रहा है तथा मनुष्य पशु से पशुतर होता जा रहा है. 'समस्या वाणिज्य की नही, कृषि की है (अकाल ग्रस्त देशो मे प्रत्यक्ष रूप से, धनाढ्य देशो मे प्रछन्न रूप से)। कृषि और वाणिज्य का असह्य भार पड जाने के कारण सामाजिक जीवन मे गत्यावरोध उत्पन्न हो गया है। वही गत्यावरोध आर्थिक दुष्परिणामो मे प्रकट हो रहा है। आज मनुष्य सामाजिक प्राणी नही बल्कि आर्थिक प्राणि है। समाज नाम की कोई वस्तु है ही नही। आर्थिक हानि-लाभ को लेकर परस्पर जुडने-टूटने वाले सम्बन्धो का नाम ही समाज रह गया है। निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक सभी एक ही पूँजीवादी टाइप फाउन्डरी मे ढले हुए हैं। टकसालो मे ढले हुए छोटे-बडे सिक्के यदि मानव-आकार धारण कर एक दूसरे से स्वार्थ सघर्ष कर बैठे तो उस सघर्ष का जो रूप होगा वही आज शोषित तथा शोषको तथा दीनो और सपन्नो के सघर्ष का है। सिक्को के सघर्ष से द्रव्यागार मे जो अशाति फैलती, वही अशाति आज वर्गो के सघर्ष से समाज मे फैली हुई है।'[२] स्पष्ट है कि आज मानव मे सस्कृति का सर्वथा अभाव होता जा रहा है। सस्कृति के पुनर्जागरण के लिए भी रचनात्मक कार्यो की आवश्यकता है, सैद्धान्तिक विश्लेषण की नही। आजकल भवनो, सग्रहालयो तथा सास्कृतिक केन्द्रो के होते हुए भी जन-मन का परिष्कार नही हो रहा है। इसके साथ ही विशिष्ट जन भी प्राय जीवन के उसी धरातल पर अवस्थित जान पडते हैं। सभी दूषित, कुत्सित तथा असस्कृत है। इसके लिए जनता मे सास्कृतिक चेतना की आवश्यकता है, इसके लिए मानव के आन्तरिक सुधार की आवश्यकता है जो आदेशो-निषेधो और किसी विधि विधानो से नही हो सकता। 'आवश्यकता इस बात की है कि कर्तव्य के प्रति मनुष्य की अन्त प्रेरणा जगाई जाय। हमे नागरिकता नही, सस्कारिता चाहिए। नागरिकता मे पारस्परिक स्वार्थों का सामूहिक सगठन है, सस्कारिता मे सामाजिक चेतना का अन्त प्रस्फुटन। संस्कारिता के बिना नागरिकता पुलिस, वकील, जज आदि सरकारी अथवा अर्द्ध सरकारी पदाधिकारियो की कृत्रिम

१. 'परिव्राजक की प्रजा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २४५।
२. 'प्रतिष्ठान', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४५-४६।

कर्तव्यपरायणता की तरह है। पुलिस की परेड, सेना की कवायद और कालेजो-युनिर्वसिटियो मे सैनिक शिक्षा से अधिक आवश्यक है सस्कारिता जगाना। सरकस की ट्रेनिग से हमारा काम नही चलेगा। हमे मनुष्य को मानसिक स्नान करा कर दुष्प्रवृत्तियो का परिष्कार करना है। सस्कारिता का अकुर जनता के अत करण से फूटना चाहिए। सडको पर झाडू लगाने और हरिजनो का उद्धार करने से जन-मन का परिष्कार नही हो सकेगा। बाहर की गन्दगी तो लाक्षणिक है सबसे बडी गन्दगी मनुष्य के भीतर उसकी दुष्प्रवृत्तियो मे है।'[1] इसके लिए लेखक ने जीवन मे कला और सस्कृति के प्रति मानव मे अनुराग जाग्रत करने की प्रेरणा पारिवारिक तथा सामाजिक शिक्षा के माध्यम से माना है। लेखक ने जनता के स्वावलम्बन के लिए गाधीवाद एव कृषि को महत्व दिया है।

लेखक के सस्मरण साहित्य की अन्यतम विशेषता उसके साहित्यिक सस्मरण है। इस दृष्टि से 'परिव्राजक की प्रजा' के प्राय अधिकाश लेख साहित्यिक आत्म-कथात्मक रूप मे है। साहित्यिक आत्मकथात्मकता का रूप इस पुस्तक के दूसरे खड उत्तरकाल मे परिलक्षित होता है जब कि इसके प्रथम खड बाल्यकाल मे लेखक ने आत्मपरिचयात्मक लेखो को सगृहीत किया है। 'परिव्राजक की प्रजा' के अतिरिक्त इस कोटि के लेख 'प्रतिष्ठान' कृति का 'त्रिवेणी के अचल मे' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' के 'निराला जी की प्रथम स्मृति', 'निराला जी . मेरी दृष्टि मे', 'निराला जी जीवन और काव्य', 'अनमिल आखर पन्त जी और मैं' आदि है जिनमे लेखक का साहित्यिक परिचय प्रतिभासित होता है। साहित्यिक आत्मकथा प्रधान लेखो मे द्विवेदी जी ने अपने जीवन परिचय के अतिरिक्त विभिन्न साहित्यकारो से साक्षात्कार, उनका अपने जीवन तथा अपने साहित्य पर प्रभाव को स्पष्ट किया है। लेखक ने अपने जीवन मे हुए विभिन्न सुखद और कटु अनुभवो को भी प्रत्यक्ष किया है। 'परिव्राजक की प्रजा' सस्मरणात्मक कृति मे 'मुक्त पुरुष', 'सगुण शिशु', 'मातृ-विसर्जन', 'वनदेवी का अचल', 'साधना की साध्वी', 'शल्य क्रीडा', 'लीला और मेला', 'अप्रत्या-शित निमत्रण', 'अन्त प्रस्फुटन और वातावरण', 'जीवन के तट पर', 'परिपाटी का परित्याग', 'आधार की खोज मे', 'कुतूहल और प्रेरणा', 'नेताओ की झाकी', 'अलक्षित भविष्य की ओर', 'एक सामाजिक उद्यान', 'आत्मपरिणति', 'सस्कृति की आत्मा' तथा 'बहिन का बलिदान' आदि आत्मपरिचयात्मक सस्मरण के अन्तर्गत आते है, तथा 'आनन्द परिवार', 'आकाक्षा के पथ पर', 'रोमैन्टिक अनुभूति', 'मानसिक स्थिति', 'भावना का केन्द्रीकरण', 'अध्ययन और अनुभव', 'छायावाद की स्थापना', 'नीरव और हिमानी', 'योगायोग' तथा 'वह सुखमय प्रवास' आदि साहित्यिक आत्मकथात्मक सस्मरण के अन्तर्गत आते हैं।

---

१ 'प्रतिष्ठान', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८६-८७।

द्विवेदी जी ने सस्मरण साहित्य मे अपनी इन अनेक विशिष्टताओ के अतिरिक्त अपनी नवीन मौलिकता तथा रचनात्मक प्रवृत्ति का द्योतन करते हुए 'प्रतिष्ठान' सस्मरण कृति मे, जिसमे जीवन और साहित्य का सस्थापन हुआ है, एक रिपोर्ताज भी सगृहीत किया है जो यात्रा सस्मरण के अन्तर्गत ही अभिहित किया जा सकता है। 'मिथिला की अमराइयो मे' शीर्षक लेख मे लेखक ने यात्रा सस्मरण तथा रिपोर्ताज के समन्वयात्मक रूप की प्रतिस्थापना की है। द्विवेदी जी ने इसमे जनकपुर धाम की अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए उस विशेष स्थल को प्राकृतिक, राजनीति और सस्कृति, वर्षा मगल आदि के अन्तर्गत मिथिला की अमराइयो मे बसी जनकनन्दिनी की पावन जन्मभूमि जनकपुर धाम के विभिन्न सास्कृतिक, कलात्मक, प्रकृति सुषमा एव उसके उन्मुक्त वातावरण के साथ उसके नैसर्गिक सौन्दर्य का चित्र प्रस्तुत किया है। वस्तुत यह लेख लेखक की रचनात्मक प्रवृत्ति के साथ ही अपने मे लेखक की कोमल भावनाओ को भी आत्मसात् किये हुए है।

द्विवेदी जी के सस्मरण और समकालीन प्रवृत्तिया

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी का रचनाकाल प्रेमचन्दोत्तर युग से सम्बन्धित है। इस युग मे ही वस्तुत सस्मरण के कलात्मक स्वरूप का आविर्भाव और विकास हुआ। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है, द्विवेदी जी के सस्मरण प्राय. उन सभी प्रवृत्तियो का स्वरूप उपस्थित करते है जो समकालीन सस्मरण साहित्य के क्षेत्र मे विद्यमान थी। यद्यपि इसके पूर्व युग मे जो सस्मरण लिखे गये वे या तो कहानी की कोटि के थे और या निबन्धो की कोटि के। द्विवेदी जी के सस्मरण इनके विपरीत निबन्धात्मक, आत्मचरितात्मक, साहित्यिक, यात्रा विवरणात्मक होने के साथ-साथ विशुद्ध सस्मरणो के रूप मे भी उपलब्ध होते हैं। नीचे सस्मरण की समकालीन प्रवृत्तियो की पृष्ठभूमि मे द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

[१] **साहित्यिक संस्मरण** . श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य मे साहित्यिक सस्मरणो की प्रवृत्ति स्पष्टत परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी अपने जीवन काल मे जिन साहित्यकारो से परिचित हुए एव जिनका उन पर विशेष प्रभाव पडा है प्रायः ऐसे समस्त सस्मरण उसी कोटि के अन्तर्गत रखे जा सकते है। इस दृष्टि से 'परिव्राजक की प्रजा' सस्मरण के उत्तर काल खड के अनेक लेख इस कोटि के अन्तर्गत परिगणित किये जा सकते है जिनमे 'आनन्द परिवार', 'आकाक्षा के पथ पर', 'रोमैन्टिक अनुभूति', 'मानसिक स्थिति', 'भावना का केन्द्रीकरण', 'अध्ययन और अनुभव', 'छायावाद की स्थापना', 'वह सुखमय प्रवास' आदि मुख्य हैं। 'प्रतिष्ठान' सस्मरण मे 'त्रिवेणी के अचल मे' शीर्षक साहित्यिक सस्मरण मे लेखक ने निराला, पन्त और महादेवी आदि शीर्षको मे छायावादी कवियो से परिचय एव स्वय पर उनके

पडे प्रभावो को स्वीकार करते हुए जीवन मे हुए प्रत्यक्ष अनुभवो को सस्मरण रूप मे प्रस्तुत किया है। इसके पूर्व लेखक ने इसी लेख के प्राक्कथन मे अपने अबोध और सरल जीवन के साथ समाज के सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियो से त्रस्त मानव जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हुए विभिन्न साहित्यिक वादो के यथार्थ रूप को प्रत्यक्ष किया है। इसके अतिरिक्त 'स्मृतिया और कृतिया' सस्मरण मे 'निराला जी की प्रथम स्मृति', 'निराला जी मेरी दृष्टि मे', 'निराला जी जीवन और काव्य' तथा 'अनमिल आखर पन्त जी और मैं' शीर्षक साहित्यिक सस्मरणो मे लेखक ने निराला जी से हुए प्रथम परिचय को स्मृति मे साकार करते हुए उनके जीवन और काव्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त लेखक की दृष्टि मे निराला जी के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण को भी यह लेख प्रस्तुत करते है। 'निराला जी · मेरी दृष्टि मे' लेख मे निराला जी के महाप्रयाण के उपरान्त तरुणावस्था मे हुए उनके विधुर तथा आर्थिक अभावो से पूर्ण जीर्ण-शीर्ण जीवन मे लेखक अपने जीवन का साम्य पा जाता है। परन्तु पन्त जी की काव्यात्मक एव सुकुमार कोमल भावनाओ के काव्याकाश मे लेखक को अपनी मानसिक तृप्ति का आभास हुआ। समय के व्यवधान तथा युग-परिवर्तन के साथ द्विवेदी जी और पन्त जी मे व्यावहारिक रूप मे यद्यपि अधिक परिवर्तन हो चुके है परन्तु विचारो मे वह 'अनमिल आखर' ही सदैव बने रहे।

[२] **आत्मपरिचयात्मक सस्मरण** · लेखक का अपने जीवन से सम्बद्ध वर्णन आत्मकथात्मक सस्मरण कहलाता है। इसमे लेखक अपने अतीत जीवन और यहा तक कि जन्म से अपने जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि मे विस्मृत पृष्ठो को उद्घाटित करता है। आत्मपरिचयात्मक सस्मरण मे लेखक के अपने जीवन का महत्व दर्शित रहता है, तथा लेखक अपने जीवन के सुखद और कटुकर घटनाओ को अत्यन्त ही रोचक एव विवेकपूर्ण ढग से व्यक्त करता है। इस कोटि की रचनाओ मे कथा का प्रमुख पात्र लेखक स्वय होता है। वस्तुत इसमे घटनाओ और परिस्थितियो का केवल वही रूप वर्णित होता है जो उसके जीवन क्रम को प्रभावित, सचालित या नियन्त्रित करता है। आत्मपरिचयात्मक संस्मरण लेखन के मूल मे लेखक की कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा अवस्थित होती है। डायरी, जर्नल आदि इसी के स्फुट रूप है। हिन्दी के सर्वप्रथम आत्मकथात्मक सस्मरण मे जैन कवि बनारसीदास की 'अर्धकथा' परिगणित की जाती है। सपूर्ण हिन्दी साहित्य मे इसका रूप यत्र-तत्र बिखरा हुआ दृष्टिगोचर होता है परन्तु आत्मकथात्मक सस्मरण का व्यवस्थित रूप आधुनिक युग की देन है। अद्यतन युग मे गद्य के अन्य रूपो के साथ इस रूप का भी प्रादुर्भाव हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'कुछ आप बीती, कुछ जग बीती', स्वामी दयानन्द के पूना व्याख्यान के अन्तर्गत अपने जीवन से सम्बद्ध सस्मरण, स्वामी श्रद्धानन्द का 'कल्याण पथ का पथिक' तथा अम्बिका दत्त व्यास का 'निज वृत्तान्त' आदि इसी कोटि के अन्तर्गत परिगणित

किये जाते है। अद्यतन युग मे अनेक सम्बद्ध और स्फुट आत्मपरिचयात्मक सस्मरण लिखे गये है। सम्बद्ध रूप मे लिखे आत्मकथात्मक सस्मरणो मे श्यामसुन्दर दास की 'मेरी आत्म कहानी' तथा 'राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' आदि है तथा स्फुट रूप मे लिखी महावीर प्रसाद द्विवेदी की आत्मकथा, सियारामशरण गुप्त की 'झूठ सच' तथा 'बाल्य स्मृतिया' आदि उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त आत्मपरिचयात्मक शैली मे लिखे बनारसीदास चतुर्वेदी के 'सस्मरण' और 'हमारे अपराध', महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' तथा रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' आदि भी इसी कोटि के अन्तर्गत उल्लिखित की जाती है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य मे आत्मपरिचयात्मक सस्मरणो की प्रवृत्ति सर्वत्र दृष्टि-गोचर होती है। सम्बद्ध रूप मे 'पथचिन्ह' तथा 'परिव्राजक की प्रजा' मे लेखक का आत्मपरिचयात्मक दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित हुआ है। स्फुट रूप मे 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' आदि सस्मरण कृतियों मे भी इस कोटि की रचनाएँ सगृहीत हैं। 'परिव्राजक की प्रजा' लेखक की साहित्यिक आत्मकथा है अतएव इसके बाल्यकाल और उत्तरकाल के अधिकाश लेख इसी कोटि के अन्तर्गत रखे जा सकते है। 'पथचिन्ह' मे भी लेखक का अपना व्यक्तित्व ही उभरा है परन्तु लेखक अपनी बाल-विधवा बहिन को विस्मृत नही कर सका है। 'पथचिन्ह' के प्रारम्भिक लेखो मे उसी का व्यक्तित्व अकित है। 'प्रतिष्ठान' सस्मरण के 'बाल्य स्मृति' और 'पथ सन्धान' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' के सस्मरण खड के 'स्मृति के सूत्र' आदि आत्म परिचयात्मक रचनाओ मे स्वय लेखक का जीवन परिचय तथा विभिन्न पारिवारिक घटनाएँ निहितहैं। इन रचनाओ मे लेखक ने जीवन मे घटित घटनाओ एव विभिन्न परिस्थितियो मे अपने भावो की अभिव्यक्ति मे स्वाभाविकता, निष्कपट आत्मप्रकाशन तथा सहृदयता का परिचय दिया है। अपने जीवन परिचय के माध्यम से लेखक ने अपने युग का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। इन समस्त रूपो मे लेखक का भावुक हृदय तथा विश्लेषणात्मक दृष्टि उद्भासित हुई है।

[३] **भावात्मक सस्मरण** सामान्य सस्मरण से भिन्न भावात्मक सस्मरण मे रागात्मकता की भावना की प्रधानता है। यद्यपि सस्मरण मे बुद्धि और हृदय का परिपाक होता है परन्तु भावात्मक सस्मरण मे बुद्धि की अपेक्षा हार्दिक भावनाओ के माध्यम से आत्मानुभूति की सफल व्यजना होती है। इस कोटि के सस्मरण आत्मानु-भूति की तीव्रता के साथ ही आगे बढते है तथा अपनी सजीवता और रोचकता के लिए प्रसिद्ध होते है। कभी-कभी लेखक अतीत जीवन की विभूतियो एव श्रेष्ठ पात्रो को स्मरण करते हुए तथा अपने जीवन मे उनके प्रभावो को स्वीकार करते हुए भावानुभूति से पूर्ण अपने हार्दिक भावो मे ही विचरण करने लगता है। ऐसे समय मे वह अपने उन क्षणो को सजीव कर लेता है तो समाप्तप्राय होते है। इसके अति-रिक्त अपने जीवन के ऐतिहासिक वातावरण का चित्र भी प्रस्तुत करता है। इस

कोटि के सस्मरणो मे श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' की 'भूले हुए चेहरे' शीर्षक रचना परिगणित की जा सकती है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य मे सगृहीत अनेक लेखो मे भावात्मक सस्मरण की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। 'पथचिन्ह' कृति का 'अभिशापो की परिक्रमा' शीर्षक लेख, 'परिव्राजक की प्रजा' सस्मरण कृति का 'स्मृति पूजन' शीर्षक सस्मरण तथा 'स्मृतिया और कृतिया' सस्मरण कृति के 'प्रतिक्रिया', 'प्रभात से सध्या की ओर', 'शेष सम्पदा' और 'नेहरू जी की अन्तिम स्मृति' आदि सस्मरणो मे भावात्मक सस्मरण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। लेखक के इन सस्मरणो मे बुद्धि पक्ष की अपेक्षा हृदय पक्ष की प्रधानता है। 'अभिशापो की परिक्रमा' मे द्विवेदी जी ने अपने जीवन का परिचय भावात्मक तथा आत्मकथात्मक शैली मे दिया है। इसमे उन्होने ग्रामीण जीवन और अपने बाल्य काल के वर्णन के माध्यम से प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य मे अपनी भावुक कल्पना को प्रतिबिम्बित किया है। 'स्मृति चिन्तन' मे द्विवेदी जी ने अपनी एकमात्र बाल विधवा बहिन की स्मृतियो को सजोया है। जीवन के अन्तिम क्षणो के निवास स्थलो को लेखक ने तीर्थ मान कर उनकी वन्दना पूजन आदि की है। अपने चित्त की एकाग्रता मे भी लेखक उस सच्चिदानन्द स्वरूप बहिन मे ही एकाग्र होता है। 'प्रतिक्रिया' शीर्षक भावात्मक सस्मरण मे लेखक ने युग सकट के प्रति अपने जीवन एव कार्यों के द्वारा प्रतिक्रिया की ओर भावात्मक स्तर पर चित्रण किया है। 'प्रभात से सध्या की ओर' मे लेखक ने अपनी रागात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया है। लेखक ने अपने जीवन प्रभात के सौन्दर्याकर्षण तथा सौन्दर्यानुराग से पूर्ण हृदय का जीवन के सान्ध्य बेला की ओर अग्रसर होने पर जीवन के यथार्थ की कठोर भूमि का चित्र प्रस्तुत करते हुए अपने जीवन की तुलना चार्ल्स लैम्ब से की है जो अपने काल्पनिक परिवार के सदस्यो से व्यवहार एव वार्तालाप करता था और जिसने अपना काल्पनिक गृह बसा लिया था। लेखक चार्ल्स लैम्ब मे अपने जीवन का साम्य प्राप्त करके स्वय भी वैसे स्वप्न देखता है परन्तु क्षणिक। यथार्थ मे लेखक के जीवन मे एक रागात्मक सूनापन छा जाता है। लेखक ने इसमे अपने जीवन के सूनेपन से पूर्ण क्षणो, साहित्य के क्षेत्र से निष्क्रिय तथा उदासीन होने आदि का भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। 'शेष सम्पदा' भावात्मक सस्मरण मे लेखक ने अपनी अनुभूत्यात्मक प्रवृत्ति का परिचय देते हुए राष्ट्र कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त से परिचय तथा उनसे प्राप्त सवेदनात्मक एव सहानुभूति से पूर्ण पत्रो का उल्लेख किया है। लेखक के पास उनकी एकमात्र शेष सम्पदा के रूप मे केवल १९६१ के 'वासन्ती' के अभिनन्दन विशेषाक के लिए भेजी गयी शुभकामना से पूर्ण कविता ही रह गयी। 'युग सकट' सस्मरण मे लेखक ने छायावादी कवियो के जीवन के दुखद एव अस्वस्थ क्षणो का आभास तथा काव्य के माध्यम से उनके जीवन का परिचय प्राप्त किया है। कवियो, बुद्धिजीवियो और जनता के जीवन मे इसी के

माध्यम से लेखक ने युग सकट का बोध किया है। 'नेहरू जी की अन्तिम स्मृति' मे लेखक ने नेहरू जी के प्रत्यक्ष अन्तिम दर्शन को भावचित्र रूप मे प्रस्तुत किया है।

[४] **यात्रा विवरणात्मक सस्मरण** यात्रा सस्मरण का सम्बन्ध मानव की स्वच्छन्द यायावरी प्रवृत्ति, सौन्दर्य बोध की सूक्ष्मता तथा साहित्यिक मनोवृत्ति से है। मानव अपने इन विविध गुणो के कारण ही यात्रा करता हुआ उन्हे साहित्य की सामग्री के रूप मे अकित करता है। साहित्यिक मनोवृत्ति से पूर्ण मानवो के इस साहित्य सृजन मे उनकी आत्मिक प्रेरणा कार्य करती है और यही कारण है कि यात्रा सस्मरण मे सवेदनशीलता एव भावुकता का भी आशिक रूप मे समावेश होता है। यात्रा सस्मरण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमे लेखक केन्द्र मे होकर भी अपने व्यक्तित्व को नही उभरने देता प्रत्युत् वह यात्रा के मध्य आकर्षित करने वाले तत्वो को ही प्रमुखता देता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य मे यात्रा-विवरण लेख रूप मे भारतेन्दु काल से ही अवलोकित होते हैं परन्तु अद्यतन युग मे गद्य साहित्य की यह विधा भी अपने प्राजल रूप मे प्रत्यक्ष हो रही है। यात्रा साहित्य के अन्तर्गत यात्रोपयोगी साहित्य मे राहुल साकृत्यायन की 'हिमालय परिचय' तथा 'मेरी यूरोप यात्रा', स्वामी प्रणवानन्द की 'कैलास मानसरोवर', शिवनन्दन सहाय की 'कैलास दर्शन', गोपाल नेवटिया की 'भूमडल यात्रा' तथा भिक्षु धर्मरक्षित की 'नेपाल यात्रा' और 'लका यात्रा' उल्लेखनीय है। देश-विदेश के व्यापक जीवन के सपूर्ण परिप्रेक्ष्यो के उभारने वाले साहित्य के अन्तर्गत सत्यनारायण की 'आवारे की यूरोप यात्रा' यशपाल की 'लोहे की दीवार के दोनो ओर', जगदीश चन्द्र जैन की 'चीनी जनता के बीच', राजबल्लभ ओझा की 'बदलते दृश्य' तथा गोविंद दास की 'सुदूर दक्षिण पूर्व' आदि उल्लिखित हैं। लेखक पर पडे प्रभावो, प्रतिक्रियाओ तथा सवेदनाओ से पूर्ण यात्रा सस्मरण साहित्य के अन्तर्गत भगवतशरण उपाध्याय की 'वो दुनिया', अमृतराय की 'सुबह के रग', रागेय राघव की 'तूफानो के बीच' तथा रामवृक्ष बेनीपुरी की 'पैरो मे पख बाधकर' और 'हवा पर' आदि, प्राकृतिक सौन्दर्य प्रधान यात्रा साहित्य मे काका कालेलकर की 'हिमालय यात्रा', हसकुमार तिवारी की 'भूस्वर्ग कश्मीर', श्रीनिध की 'शिवालक की घाटिया' आदि, उत्कृष्ट यात्रा सस्मरण साहित्य मे समग्र जीवन की अभिव्यक्ति की कसौटी पर आने वाले लेखको मे अज्ञेय का 'अरे यायावर रहेगा याद', देवेशचन्द्र दास के 'यूरोप' और 'रजवाडे' तथा मोहन राकेश की 'आखिरी चट्टान तक' आदि विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। अन्तिम कोटि के यात्रा साहित्य मे वस्तुत. 'महाकाव्य और उपन्यास का विराट् तत्व, कहानी का आकर्षण, गीतिकाव्य की मोहक भावशीलता, सस्मरणो की आत्मीयता, निबन्धो की मुक्ति, सब एक साथ मिल जाते हैं। उत्कृष्ट यात्रा साहित्य ऐसा ही होता है।'[१] इसके अतिरिक्त भावुक

---

१. 'हिन्दी साहित्य कोश', स० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ६१० ।

शैली मे लिखे यात्रा सस्मरण मे देवेन्द्र सत्यार्थी की 'क्या गोरी क्या सावरी', और 'रेखाएँ बोल उठी', भदन्त आनन्द कौसल्यायन की 'जो न भूल सका' तथा 'जो लिखना पडा' आदि भी इसी कोटि मे परिगणित किए जा सकते है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य मे यात्रा सस्मरण का रूप यत्र-तत्र लक्षित होता है। उत्कृष्ट यात्रा सस्मरण की समस्त विशिष्टताएँ द्विवेदी जी के यात्रा सस्मरण लेखो मे विद्यमान है। उदाहरणार्थ 'प्रतिष्ठान' सस्मरणात्मक कृति के 'मिथिला की अमराइयो मे' शीर्षक यात्रा सस्मरण लेख मे आकर्षण, भाव प्रवणता, आत्मीयता तथा उन्मुक्त चित्रण आदि गुणो का समावेश हुआ है। इसमे लेखक ने मौलिक रचनात्मक प्रवृत्ति का परिचय देते हुए गद्य साहित्य की अन्यतम नवीन विधा रिपोर्ताज का भी आश्रय लिया है।

[५] **निबन्धात्मक सस्मरण** सस्मरण साहित्य की एक प्रवृत्ति उसका निबन्धात्मक रूप है। कुछ सस्मरण ऐसे भी होते है जिनमे लेखक विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियो से उत्पन्न समस्याओ को निबन्ध रूप मे प्रस्तुत करता हुआ अपने विचारो का प्रतिपादन करता है। निबन्ध की मुक्तता-वस्था का इसमे आवास होता है। इन सस्मरणो मे आत्मीयता एव वैयक्तिक आत्म-निष्ठ दृष्टिकोण होने के साथ इसमे लेखक के विचारो की प्रगल्भता, अनुभवशीलता, प्रौढता तथा अभिव्यक्ति की मार्मिकता का गुण विद्यमान रहता है। लेखक इस कोटि के सस्मरणो मे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आश्रय लेता है। इन सस्मरणो मे निबन्ध की स्वच्छन्दता, सरलता, घनिष्ठता, आडम्बर हीनता तथा उन्मुक्त चित्रण सभी गुणो का समावेश होता है। निबन्धात्मक सस्मरणो की कोटि मे डा० गुलाब राय की 'मेरी असफलताएँ' उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इस कोटि मे पदुमलाल पुन्नालाल बखशी के 'रामलाल पडित' और 'कुजबिहारी', सियारामशरण के 'हिमालय की झलक', जैनेन्द्र कुमार के 'ये और वे', रामवृक्ष बेनीपुरी के 'गेहूँ और गुलाब', डा० प्रभाकर माचवे के 'खरगोश के सीग' मे सगृहीत निबन्धो की विशेषता से युक्त सस्मरण, भदन्त आनन्द कौसल्यायन के 'रेस का टिकट' मे सगृहीत कुछ लेख, डा० कैलाश-नाथ काटजू के 'मैं भूल नही सकता' तथा डा० पद्मसिह शर्मा 'कमलेश' के 'मैं इनसे मिला' आदि इसी कोटि के सस्मरण माने जा सकते है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य मे इस प्रवृत्ति के दर्शन होते है। 'पथचिन्ह' मे सगृहीत 'व्यक्ति और समाज', 'रचनात्मक दृष्टिकोण' और 'सौन्दर्य दर्शन', 'प्रतिष्ठान' मे सगृहीत 'प्रकृति, सस्कृति और कला', 'युग निर्माण की दिशा', 'छायावाद का प्राकृतिक दर्शन', 'सस्कृति की साधना' और 'समकालीन साहित्य' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' मे सगृहीत 'युग सकट' आदि लेखो में लेखक की निबन्धात्मक सस्मरण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। निबन्धात्मक सस्मरण की समस्त विशिष्टिताएँ इसमे दर्शित होती है। 'पथचिन्ह' के 'पर्यवेक्षण' शीर्षक लेख मे प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न विभिन्न विभीषिकाओ को ज्वलत प्रश्न के रूप मे लेखक ने समकालीन सकट की ओर

सकेत किया है। आधुनिक युग की व्यापारिक एव आर्थिक मनोवृत्ति का चित्र प्रस्तुत करते हुए द्विवेदी जो ने मानव की पशु प्रवृत्ति के निराकरण मे सस्कृति, कला के जीवन मे सामजस्य को महत्वपूर्ण माना है। 'अन्त सस्थान' मे भी द्विवेदी जी ने साहित्य, सगीत और कला के अधीश्वरो को सम्बोधित कर देश की जागरूकता एव उत्थान मे सहयोग की प्रेरणा दी है। देश की विभिन्न क्षेत्रीय उन्नति के लिए द्विवेदी जी ने अपने विचारो का प्रतिपादन किया है। 'परिव्राजक की प्रजा' के 'व्यक्ति और समाज', 'रचनात्मक दृष्टिकोण' मे द्विवेदी जी ने अपनी वैयक्तिक समस्याओ को निबन्ध की पृष्ठभूमि मे प्रस्तुत किया है। इसमे लेखक ने युग की यथार्थता एव उसकी कटु कठोर भूमि की ओर सकेत किया है। द्विवेदी जी ने तत्कालीन अनेक समस्याओ को प्रत्यक्ष करते हुए अपनी प्रतिकूल परिस्थितियो की ओर सकेत किया है। द्विवेदी जी ने कृषि, ग्रामोद्योग आदि को जीवन की अनिवार्यता के रूप मे इगित किया है जिससे विभिन्न समस्याओ का समाधान हो सकता है। 'सौन्दर्य दर्शन' मे लेखक की वैचारिक मनोवृत्ति के दर्शन होते है। लेखक ने आधुनिक कुरूपता, रहन-सहन से उत्पन्न समस्याओ आदि के निराकरण मे सौन्दर्य, कला, सस्कारिकता, रज-तम-सत्व आदि मानवीय प्रवृत्तियो के साथ सत्यम् शिव सुन्दरम् का जीवन मे महत्व आदि पर अपने वैचारिक मतो का प्रतिपादन किया है। 'प्रतिष्ठान' के लेखो मे द्विवेदी जी ने जीवन मे प्रकृति, सस्कृति और कला के महत्व, कृषि, पृथ्वी के प्रति अनुराग, गाधी जी के ग्रामोद्योग आदि पर आधुनिक अशान्तमय जीवन के परिप्रेक्ष्य मे विचार किया है। गाधी जी के सर्वोदय, ग्रामोद्योग और कृषि तथा पृथ्वी की उर्वरा शक्ति को सामाजिक जीवन की आवश्यकता के रूप मे मानते हुए लेखक ने युग निर्माण की दिशा मे पूँजीवाद तथा मानव की व्यापारिक एव आर्थिक प्रवृत्ति को बाधक माना है। लेखक ने जीवन मे सस्कृति की साधना के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन करके स्वराज्य के रचनात्मक कार्यो को महत्व प्रदान किया है। 'स्मृतिया और कृतिया' सस्मरण के 'युग सकट' शीर्षक लेख मे साहित्यकारो के जीवन पर विभिन्न समस्याओ आर्थिक, सामाजिक आदि के रूप को प्रत्यक्ष किया है। मानव समाज का प्रत्येक प्राणी आधुनिक युग की आर्थिक, व्यापारिक, सामाजिक सभी समस्याओ से प्रभावित है।

द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य का सैद्धान्तिक विश्लेषण

सिद्धान्तत. सस्मरण रूपी साहित्यिक विधा कथात्मक दृष्टि से उपन्यास तथा कहानी के, वैचारिक दृष्टि से निबन्धो के तथा भावात्मक दृष्टि से कविता के निकट है। उपन्यास तथा कहानी के निकट यह इसलिए होता है क्योकि इसमे समान रूप से कथात्मकता का रूप विद्यमान रहता है। यदि कोई कहानी या उपन्यास आत्मपरक होती है और उसमे काव्यानुभूति की मुख्य रूप से अभिव्यक्ति होती है तो उसे सस्मरणात्मक कहा जाता है। इसी प्रकार से यदि कोई सस्मरण कलात्मक रोचकता से

परिपूर्ण होता है तो वह कहानी के निकट हो जाता है। इसी प्रकार से जो आत्म-चरितात्मक सस्मरण होते है वे आत्मकथा के रूप मे लेखक के अतीत जीवन का सिहावलोकन प्रस्तुत करते है। जो सस्मरण निबन्धात्मक होते है वे विचार प्रधान होते है। जो सस्मरण काव्यात्मक अधिक होते है वे भावात्मक सस्मरणो की कोटि मे रखे जाते है। इस दृष्टि से अनुभूत्यात्मकता अथवा स्वानुभूति की प्रधानता, वर्णनात्मकता, विवरणात्मकता, वैचारिकता, भावात्मकता, यथार्थता, कल्पनात्मकता, आदि के साथ विषय-क्षेत्र, भाषा तथा शैली आदि तत्व ही शेप सस्मरण की कसौटी होती है। यहा पर इन्ही के आधार पर द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य का सैद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

[१] **वैचारिकता** द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य मे अनेक स्थलो पर गम्भीर विचार तत्वो की निहिति मिलती है जो उनके चिन्तनशील व्यक्तित्व की परिचायक है। इस प्रकार के तत्व द्विवेदी जी के आलोचना, निबन्ध तथा उपन्यास साहित्य मे भी समाविष्ट मिलते हैं। सस्मरण साहित्य के अन्तर्गत इस प्रकार के अश जहा-जहा आये है वहा उनसे सस्मरण के सहज रचनात्मक प्रवाह मे बाधा नही आई है। यह कलात्मकता की दृष्टि से इनकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। 'पथचिन्ह' मे सगृहीत 'पर्यवेक्षण' शीर्षक सस्मरण से ऐसा एक उदाहरण यहा उद्धृत किया जा रहा है जो लेखक के अतीत जीवन की पृष्ठभूमि मे उनके सहज विचार प्रवाह का द्योतक है "जीने के साधन तो समाप्त हो गये है, किन्तु पृथ्वी के अवशिष्ट अश से सभी अपना-अपना स्वार्थ पुष्ट कर लेने के लिए उतावले हैं। प्रत्येक वर्ग एक दूसरे के प्रति सन्दिग्ध और प्रतियोगी हो गया है। प्रत्येक एक दूसरे को आवश्यकताग्रस्त समझ कर उसकी विवशता से मनमाना लाभ उठा लेना चाहता है। यही कारण है कि अन्न और धन ही नही, गृह और जन भी दुर्लभ हो गये है। खोजने पर मकान नही मिलते, कर्मचारी नही मिलते। असल मे सामाजिकता (सहयोगिता) टूटती जा रही है, व्यापारिकता (आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा) तीव्र होती जा रही है। उसकी तीव्रता अपने ही वेग के आधिक्य से समाप्त हो जाने के लिए है...आज जीवन कितना शून्य हो गया है, इसका परिचय सिनेमाघरो की भीड देख कर मिल जाता है। क्या निर्धन, क्या धनिक, क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित, सभी अपने-अपने अभावो को छायापट पर परछाई की तरह मिटती हुई तसवीरो से भर लेना चाहते है। इस प्रकार जीवन के खोखलेपन को सिनेमा देख-देख कर भुलाया जा रहा है। आज सभी वर्गो के जीवन की एकमात्र परिणति है निर्जीवता।"[१]

[२] **वर्णनात्मकता** · द्विवेदी जी के सस्मरणो मे वर्णनात्मकता का तत्व उनकी सहज और स्मृतिपरक अनुभूतियो की पृष्ठभूमि मे विद्यमान मिलता है। यह

१. 'पथचिन्ह', जी शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७०-७१।

गुण उनके कवि हृदय की सहज भावनाओ की अभिव्यजना का भी साकेतिक परिचय देता है। यो तो इसके अनेक उदाहरण उनके विभिन्न सस्मरणो मे उपलब्ध होते है परन्तु यहा पर उनके लिखे हुए 'मिथिला की अमराइयो मे' शीर्षक सस्मरण से एक अश उद्धृत किया जा रहा है जो लेखक की वैयक्तिकता और स्वभाव से भी सामजस्य रखता है . "बगल मे सडक पर एक सार्वजनिक ट्यूबवैल झरने की तरह चौबीसो घटे झरता रहता था, उससे जल की बडी सुविधा हो गयी। सोना मैं छत पर चाहता था, किन्तु सीढी नही थी। ब्रह्मशकर ने बिजली के खम्भो जैसी लम्बी एक पुरानी सीढी का जीर्णोद्धार कर मानो स्वर्ग का सोपान तैयार कर लिया। मेरे लिए जगल मे ही मगल हो गया। छत पर खडे होकर देखने से जुगनुओ जैसी क्षीण ज्योति मे जगमगाते हुए चारो ओर के दृश्य किसी स्वप्नजगत की तरह अपना छायाभास देते थे। घर, द्वार, बाग, तालाब, खेत सब किसी मायावी की मायापुरी जैसे मनमोहक जान पडते थे। दिन मे बरामदे के सामने अन्तरिक्ष को छूता हुआ दूर तक फैला खेतो का मैदान प्रकृति के मुक्त हृदय जैसा सुखद लगता था। फुर-फुर बहती शीतल हवा तन-मन की तपन हर लेती थी। इतना सुन्दर स्थान मुझे बडे भाग्य से ही मिल गया था। जनकपुर धाम मेरे लिए प्रकृति धाम हो गया।"[१]

[३] **विवरणात्मकता** द्विवेदी जी के अनेक सस्मरण उनके अतीत जीवन के उस काल से सम्बन्धित है जो उनके साहित्यिक जीवन का विशेष सघर्ष काल था। यह सस्मरण इस तथ्य की ओर सकेत करते है कि समकालीन वैचारिक पृष्ठ-भूमि मे द्विवेदी जी की साहित्यिक धारणाओ की निर्मित इस काल मे हो रही थी। उदाहरण के लिए सन् १९४१ मे जब उन्होने 'कमला' पत्रिका से विच्छेद किया तब उनके सामने अनेक आर्थिक समस्याएँ आयी। इसका एक प्रमुख कारण द्वितीय विश्व-युद्ध भी था। 'रचनात्मक दृष्टिकोण' शीर्षक सस्मरण से एक अश यहा उद्धृत किया जा रहा है जो विवरणात्मकता की दृष्टि से उल्लेखनीय है "सन् १९४१ मे 'कमला' छोड कर फिर आर्थिक दृष्टि से निरवलम्ब हो गया। मेरे छोडते ही 'कमला' बन्द हो गयी। दूसरा महायुद्ध चल रहा था। व्यापारियो को खूब लाभ हो रहा था। उनकी आय कई गुना बढ गई थी। किन्तु मेरे जैसे हिन्दी लेखक की स्थिति न सावन सूखा, न भादो हरा थी।...महायुद्ध के आकाश मे छाये हुये धुये के बादलो मे बिजली की कौंध की तरह एक जाज्वल्यमान व्यक्तित्व दमक उठता था। वह था महाप्राण हिटलर जो विश्व के राजनीतिक रगमच पर प्रलयकर ताडव कर रहा था। बोलता था तो भूकम्प गूज उठता था, चलता था तो तूफान पदध्वनि बन जाता था। मस्तक पर तरुणो जैसा केश-कलाप, वक्षस्थल पर अमृत पुत्रो का स्वस्तिक चिन्ह, ओठो पर झल्लाये हुए शिशु का दृढ असन्तोष, जिह्वा पर काल भुजगम का विक्षुब्ध आक्रोश,

---

१. 'प्रतिष्ठान', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६९।

पलको पर उज्ज्वल भविष्य का विजय स्वप्न । कैसा था वह कोमल कराल क्रान्तिकारी ।"[1]

[४] **यथार्थात्मकता** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की विचारधारा पर समकालीन विचार दर्शनो मे प्रगतिवाद का भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगत होता है। आधुनिक काल मे योरप के प्रसिद्ध राजनैतिक विचारक कार्ल मार्क्स के क्रान्तिकारी सिद्धान्तो के फलस्वरूप साम्यवाद का विशेष प्रचार हुआ और उसी के समानान्तर साहित्य मे यथार्थवाद की प्रवृत्ति विकसित हुई। द्विवेदी जी के विविध विषयक साहित्य मे यत्र-तत्र यथार्थवाद के जो तत्व समाविष्ट मिलते है वे इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। आधुनिक युग के यान्त्रिक जीवन की स्वार्थपरता और विरूपता से युक्त जीवन एक अभिशाप की भाति विभत्स, अशोभन और जुगुप्साजनक हो गया है। इसी भावना से युक्त अनेक प्रसग द्विवेदी जी के सस्मरणो मे उपलब्ध होते है। यहा पर 'पथचिन्ह' मे सगृहीत 'अभिशापो की परिक्रमा' शीर्षक सस्मरण से एक अश उद्धृत किया जा रहा है जो इस दृष्टि से उल्लेखनीय है "सच तो यह है कि रूप-कुरूप, पाप-पुण्य, सद्-असद्, विपत्-सम्पद् सब कुछ चिरन्तन से अभिशप्त होता चला जा रहा है।... वर्तमान काल युगो की ऐतिहासिक विकृतियो का पुजीकृत युग है। इस युग मे राजनीति और अर्थशास्त्र अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। सभी की भीतरी मुखाकृतियाँ स्वार्थ के आर्थिक ढाचे मे जघन्य हो गयी है। आज बालक के ओठो पर भी भोलापन नही है। जीवन केवल पाशविक व्यापार मात्र रह गया है। पुण्य भी पण्य बन गया है। प्रत्येक केवल अपने ही अहम् की चिन्ता से त्राहि-त्राहि कर रहा है।"[2]

[५] **भावात्मकता** द्विवेदी जी के अनेक सस्मरण जहा एक और कथात्मक रोचकता से परिपूर्ण है वहा दूसरी ओर पद्यात्मक भावात्मकता भी उनमे प्रचुर रूप से विद्यमान मिलती है। ऐसे स्थलो पर अतुकान्त कविता की भाति कवि अपनी भावनाओ को अभिव्यजना प्रधान करता चला जाता है। 'पथचिन्ह' मे सगृहीत 'अभिशापो की परिक्रमा' शीर्षक सस्मरण से इस विशेषता से युक्त एक उद्धरण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है "अहा, वे दिन भी कितने सुन्दर थे। अणु-अणु, कण-कण, जन-जन, सारा अग-जग ही कितना प्यारा लगता था। रूप-कुरूप सब एक ही परम चेतना से उद्भासित होकर चादनी मे सम-विषम धरातल की तरह सरल-कोमल-मधुर मनोहर हो गये थे। सारी सृष्टि अभेद की तन्मयता मे एकाकार हो गयी थी। . मन सब ओर खिला-खिला रहता था। सुकुमार भीमाकार सभी आकार-प्रकार के प्राणियो को देख कर उनसे मिलने के लिए हृदय ललक-पुलक उठता। काल भुजग भी अपने फण पर नृत्यमच जान पडता था।...जिससे मिलता, वह मुझे अपनी ही आत्मा की

---

१. 'परिव्राजक की प्रजा', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २५२।
२. 'पथचिन्ह', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६५।

आवृत्ति सा लगता था। जिस किसी के गले मे हाथ डाल देता, जान पडता, मै अपने ही को भेट कर रहा हूँ। जन समाज को देख कर स्वामी राम की तरह मैं भी बोल उठता था—इन विविध रूपो मे शोभायमान मेरे ही ब्रह्मन्।"[१]

[६] **अनुभूत्यात्मकता** श्री शातिप्रिय द्विवेदी के साहित्य के विभिन्न रूपो के अध्ययन के सन्दर्भ मे विगत अध्यायो मे पृथक-पृथक रूप से यह सकेत किया जा चुका है कि वे आत्मव्यजना प्रधान है। इसका कारण उनके साहित्य की आत्मानुभूतिपरकता है। द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य के सन्दर्भ मे भी यही बात सत्य है। उनमे विभिन्न प्रसगो मे गम्भीर चिन्तन मनन के साथ ही लेखक की कोमल काव्यात्मक अनुभूतिया नैसर्गिक रूप मे आत्म व्यजनात्मक हो गयी है। 'स्मृतिया और कृतिया' मे सगृहीत 'प्रतिक्रिया' शीर्षक सस्मरण मे इस प्रकार के अनेक अश दृष्टिगत होते है जिनमे से एक यहा पर उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है: "घोर उदासी मे मेरे सामने यह विषण्ण प्रश्न उठ खडा हुआ कि जिस खादी, सस्कृति, कला और उससे प्रभावान्वित केश मे अपना अन्तर्बाह्य रूप लेकर युग यात्रा कर रहा हूँ नवजीवन पाने के लिए उनमे से किसे छोडूँ?.. किसी एक को छोडना सबको छोडना है, क्योकि ये अन्योन्य और अनन्य है। प्रश्न का उत्तर मुझे उस पितृपक्ष मे मिला जिसमे श्रद्धालु हिन्दु अपने केश मुँडवा देते है। लीजिये, जीवन के शोक पर्व (युग सकट) मे मैने भी केश मुँडवा दिये। क्या यह केवल प्रतिक्रिया मात्र है, इसमे भी कोई प्रक्रिया नही है? मैं यदि वीतराग सन्यासी नही हूँ तो मेरे केश फिर उगेंगे। मुझमे राग अभी शेष है, तभी तो मुझमे अब अन्तर्द्वन्द्व भी आ गया है। गृहस्थ नही, वानप्रस्थ नही, सन्यासी नही, चिर कुमार हूँ। यदि काल की निष्ठुरता से अस्तमित नही हो गया तो मेरे नये केशो मे फिर कैशोर्य लहरायेगा।"[२]

[७] **भाषा** श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की भाषा के सम्बन्ध मे प्रस्तुत प्रबन्ध के विगत अध्यायो मे भी विचार किया जा चुका है। द्विवेदी जी की भाषा की समृद्धि उनके आलोचना साहित्य निबन्धो तथा उपन्यासो के माध्यम से भी स्पष्ट होती है। जैसा कि इन विधाओं के सन्दर्भ मे सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी की भाषा के अनेक रूप हैं जिनमे विशेष रूप से सस्कृति गर्भित, मिश्रित भाषा, काव्यात्मक भाषा, लोक भाषा, मुहावरेदार भाषा तथा अलकारिक भाषा आदि रूप मिलते है। भाषागत रूप वैविध्य के द्योतक उदाहरण द्विवेदी जी के 'पथचिन्ह', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' आदि मे सगृहीत सस्मरणो मे बहुलता से उपलब्ध होते हैं। अनपेक्षित विस्तार भय से इनमे से प्रत्येक के विश्लेषण का प्रयत्न यहा नही किया जा रहा है वरन् केवल सकेत रूप मे कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए

---

१. 'पथचिन्ह', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६०।

२. 'स्मृतिया और कृतिया', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १७-१८।

जा रहे है जो द्विवेदी जी की भाषा क्षेत्रीय उपर्युक्त विशेषताओ से युक्त है

"ऐसे गाढे मौके पर निष्ठुर न होते हुए भी उनकी रुक्षता उन्हे जड बना देती है। जिनके पास दो चार पैसे होते भी है वे अगल-बगल के पडोसियो को अथवा किसी अन्य गाव के गरजमन्दो को सूद दर सूद के हिसाब से कर्ज देकर जमीदारो और महाजनो की तरह शोषण करने लगते है।"[1]

"सृष्टि मे जो कुछ शुभ्र-स्निग्ध-सरस-सुमगल है उसी के समावेश से यह धर्म अमृत हो गया है। इस धर्म का ध्येय प्रकृति की कल्याणकारिता और रमणीयता से सवलित कर मनुष्य को उस स्वरूप (आपो ज्योती रसोऽमृतम् ब्रह्म भूभुर्व स्वरोम्) से तपद्रू कर देना है।"[2]

"जाडो मे खेतो की शोभा अठखेलिया करने लगती। मृदु मन्द समीर के स्पर्श से पौधे न जाने किस विश्व उल्लास का आभास पाकर आनन्द से थिरक उठते।"[3]

"लोगो मे जो खलबली मच गयी उसका साथ देने के लिए प्रकृति भी ललक पडी। घनघोर घटा घिर आयी, बिजली चल-चल चमकने लगी। पानी बरसने के पहिले ही मैं अपने निवास पर चला आया। सोचा—सभा तो अब क्या होगी, लोग भीगेगे खूब।.. बरामदे मे दीवाल से टिक कर बैठते ही झम झम झम झम पानी बरसने लगा। वर्षा की फुहार बिना गुलाब जल के ही सर्वांग को तरावट देने लगी।"[4]

[८] शैली श्री शातिप्रिय द्विवेदी की भाषा के सदृश ही शैली के सम्बन्ध मे भी प्रस्तुत प्रबन्ध के विगत अध्यायो मे विवेचन किया जा चुका है। द्विवेदी जी की शैली की विविधता एव समृद्धता उनके आलोचना, निबन्धो तथा उपन्यासो के माध्यम से स्पष्ट होती है। जैसा कि इन विधाओ के सन्दर्भ मे सकेत किया जा चुका है, द्विवेदी जी की शैली के भी अनेक रूप उपलब्ध होते है जिनमे विशेष रूप से वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, भावात्मक, विचारात्मक, निर्णयात्मक तथा उद्‌बोधनात्मक शैली आदि मुख्य हैं। शैलीगत वैविध्य के द्योतक अनेक उदाहरण द्विवेदी जी के 'पथचिन्ह', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' आदि मे सगृहीत सस्मरणो मे मिलते हैं। अनपेक्षित विस्तार भय से इनमे से प्रत्येक के विश्लेषण का प्रयत्न यहा नही किया जा रहा है वरन् केवल सकेत रूप मे कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है जो द्विवेदी जी की शैली गत विशिष्टताओ

---

१. 'पथचिन्ह', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३३।
२. वही, पृ० २९।
३ वही, पृ० ४८।
४. 'प्रतिष्ठान', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७५।

से परिपूर्ण है

"अकस्मात् दूर क्षितिज मे अम्बर-डम्बर के बीच विरल उज्ज्वल नक्षत्र की तरह लीलामच पर वे दिखायी पडे—खादी के धवल विमल परिधान मे शारदी आत्मा जैसे। उस समय विदेशी पत्रकारो, पर्यटको, अतिथियो, और लीला के पात्रो एव कार्यकर्ताओ की रेल-पेल मे टहलते हुए नेहरू जी ऐसे रिलमिल गये थे मानो वे भी उन्ही के अग हो। फिर भी अपनी बाल सुलभ प्रसन्नता से मुस्कराते हुए वे सबसे अलग पहिचाने जा सकते थे।"[1]

"कृषि है सामाजिक साधना, वाणिज्य है राजनीतिक व्यवसाय। यह व्यवसाय अपने अति लाभ के लिए अनुचित उचित सभी साधनो से काम लेने लगा। मानवीय सामर्थ्य (स्वाभाविक शक्ति) का ह्रास हो जाने पर उसका स्थान यन्त्रो को मिल गया। यन्त्रो ने मनुष्य का प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया।"[2]

"जीवन मे सामाजिक सुख मुझे कभी मिला नही। जिस बडी बहिन का स्नेह सम्बल मेरे अस्तित्व का आधार है उसका तो ससार ही सूना था। और यह मझली बहिन मुझमे अपने को उडेल कर भी किसी की पराधीन पत्नी ही थी। छूटे हुए गाव मे भी कोई गृह सुख नही था, वहा तो मेरी स्थिति ह्यूगो के 'ला मिजराबुल' की 'कासेट' जैसी थी।"[3]

"उसके अभाव मे चिरपरिचित विश्व अपरिचित सा जान पडने लगा था। मन 'न हर्षित सा, न विमर्षित सा' हो गया था। ससार ज्यो का त्यो था, किन्तु इसमे मेरा केवल शरीर ही था, चेतना लोकान्तरित हो गयी थी। चेतना उसी अतीन्द्रिय ज्योति का अनुसरण करती हुई सूक्ष्म मे विलीन हो गयी थी जो अभी कल तक अपनी देह के दीपक मे भी जगमगा रही थी। ..धीरे-धीरे जब चेतना आकाशचारिणी विह-गिनी की तरह अपने विश्व नीड मे लौट आयी तब प्रतिभासित हुआ कि मूल ज्योति तो चली गयी किन्तु वह अपनी लौ इस दीपक मे भी लगा गयी थी।"[4]

"राजनीतिक जागृति से अधिक आवश्यक है मनुष्य की अन्त सज्ञा जिसके बिना उसका सारा कार्यकलाप जीवनमृत व्यापार हो गया है। ..सस्कृति और कला का काम मनुष्य की उसी विलुप्त अन्त.सज्ञा (अन्तश्चेतना) को पुनर्जीवित करना है .. सच तो यह है कि मनुष्य को पुन काव्य की मनोभूमि पर लाकर अनुप्राणित करना है। मनुष्य के हृदय की सास कविता की ही सास है, उसी से वह जीवित रहता है। किन्तु कट्टर राजनीतिज्ञ इस सत्य को स्वीकार नही करते, क्योकि वे

---

१. 'स्मृतिया और कृतिया', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५१।
२ 'प्रतिष्ठान', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३९।
३. 'पथचिन्ह', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५१।
४. वही, पृ० ३९।

नकली फेफडो से भी जीने का प्रयास करते हैं।...सस्कृति और कला काव्य की ही प्राण शिराएँ है। भाव उनका मर्म स्पन्दन है।"[1]

"हिंसा, लोलुपता, लम्पटता ये सब अमानुषिक उद्योगो की व्याधिया है। ग्रामोद्योगो मे अनावश्यक उत्पादन और आर्थिक शोषण की गुजाइश न होने के कारण मानवीय प्रवृत्तियो का स्वाभाविक विकास होता है। मनुष्य अपने आयास-प्रयास मे प्रकृतिस्थ एव स्थितप्रज्ञ हो जाता है। गाधी जी के एकादश व्रत को सार्वजनिक सफलता ग्रामोद्योगो से ही मिल सकती है। जिओ और जीने दो यह होगी, अहिंसा, जीने के जो सरल नियम (सामाजिक नियम) है वही होगे सत्य। सभी श्रेणियो और सभी सद्वृत्तियो का सर्वोदय ग्रामोद्योगो से होगा।"[2]

[९] **विषय वैविध्य** श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य की एक विशेषता उसका विषयगत वैविध्य और विस्तार है। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है, द्विवेदी जी के सस्मरण मुख्यत साहित्यिक, आत्मपरिचयात्मक, भावात्मक, यात्रा विवरणात्मक तथा निबन्धात्मक कोटियो के है। 'पथचिन्ह', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' मे सगृहीत सस्मरण मुख्यत उपर्युक्त वर्गो मे विभक्त किये जा सकते है। इनमे साहित्यिक सस्मरणो के अन्तर्गत लेखक ने श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, श्री सुमित्रानन्दन पन्त तथा श्रीमती महादेवी वर्मा आदि के सानिध्य के फलस्वरूप अनेक प्रसगो का उल्लेख किया है। आत्मपरिचयात्मक सस्मरणो मे लेखक ने अपने साहित्यिक जीवन के विभिन्न युगो के सघर्षो के साथ-साथ बाल्यावस्था से सम्बन्धित पारिवारिक प्रसगो का भी उल्लेख किया है जो अभिव्यजना शैली की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक है। भावात्मक सस्मरणो के अन्तर्गत लेखक ने मुख्य रूप से उन स्मृतियो को सस्मरणबद्ध किया है जो उनके जीवन के करुणापूर्ण प्रसगो से सम्बन्धित हैं। यात्रा विवरणात्मक सस्मरणो के अन्तर्गत लेखक ने वे रचनाएँ प्रस्तुत की है जो उनकी विभिन्न यात्राओ विशेषत मिथिला प्रदेश के अन्तर्गत विभिन्न रमणीक स्थलों के भ्रमण से सम्बन्धित है। निबन्धात्मक सस्मरणो के अन्तर्गत लेखक ने वे रचनाएँ प्रस्तुत की है जो समकालीन साहित्यिक गतिविधियो से सम्बन्धित है। इस प्रकार से द्विवेदी जी के सस्मरण आत्मव्यजनात्मक और वैयक्तिक अनुभूतिपरक होते हुए भी विषय वैविध्य और विस्तार से भी युक्त है।

हिन्दी सस्मरण साहित्य को द्विवेदी जी की देन

प्रस्तुत अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य का जो विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है वह इस क्षेत्र मे उनकी देन का परिचय देने मे समर्थ

१. 'पथचिन्ह', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८५।
२. 'प्रतिष्ठान', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४८।

है। जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ मे सकेत किया जा चुका है, द्विवेदी जी के सस्मरण 'पथचिन्ह्', 'परिव्राजक की प्रजा', तथा 'स्मृतिया और कृतिया' मे सगृहीत है। यह सस्मरण जहा एक ओर लेखक की इस क्षेत्र विशेष मे उपलब्धियो की द्योतक हैं वहा दूसरी ओर वैचारिकता एव काव्यात्मकता का भी परिचय देते है जो द्विवेदी जी के आलोचक व्यक्तित्व और कवि हृदय के सूचक हैं। इन सस्मरणो मे लेखक ने मुख्य रूप से अपने अतीत जीवन पर दृष्टिपात करते हुए उन प्रसगो का उल्लेख किया है जो वास्तविक अर्थ मे उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के नियामक हे। इसके साथ ही साहित्य, समाज, धर्म, सस्कृति, सभ्यता और राजनीति से सम्बन्धित समकालीन समस्याओ का पर्यालोचन भी इनमे मिलता है। 'पथचिन्ह्' मे सगृहीत सस्मरण इसी कोटि के है अर्थात् उनमे वैचारिकता और वैयक्तिकता का समन्वय है। इसमे लेखक ने समकालीन जीवन का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत किया है। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता हे कि यह सस्मरण द्वितीय विश्वयुद्ध कालीन परिस्थितियो का सिंहावलोकन सा प्रस्तुत करते है। 'परिव्राजक की प्रजा' मे जो सस्मरण सगृहीत हे वे अपेक्षाकृत अधिक वैयक्तिक है। उनमे लेखक ने अपने परिवार के व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रसग प्रस्तुत किये है। इसके द्वितीय खड मे जो सस्मरण है वे साहित्यिको से सम्बन्धित है। यह भी समकालीन साहित्यिक जीवन का पर्यालोचन सा प्रस्तुत करते है। सौन्दर्य-शास्त्र, सस्कृति, कला और साहित्य से सम्बन्धित अनेक सकेत भी लेखक ने इस कोटि के सस्मरणो मे प्रस्तुत किये हे। 'प्रतिष्ठान' मे जो सस्मरण सगृहीत है वे लेखक के रचनात्मक दृष्टिकोण के परिचय के साथ उनकी रचना शैली के वैविध्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इसमे लेखक ने जीवन-मूल्यो और साहित्यिक मान्यताओ का समन्वय प्रस्तुत किया है, जो लेखक के उदात्तपरक दृष्टिकोण का परिचायक है। बाल्य स्मृतियो से सम्बन्धित जो सस्मरण इस पुस्तक मे सगृहीत है वे मुख्यत आत्मचरितात्मक और अतिशय रूप से मर्मस्पर्शी है। साथ ही इनसे लेखक की साहित्यिक चेतना और वैयक्तिकता का भी आभास मिलता है। शोषण के इस यात्रिक युग मे एक कल्पना-प्रिय सहज हृदय कितना तिरस्कृत और उपेक्षित हो सकता हे, यह इनमे स्पष्ट हुआ हे। वैचारिक दृष्टि से द्विवेदी जी का सम्बन्ध जिन आधुनिक विचारान्दोलनो से हुआ उनकी प्रेरणा और प्रभावो का भी सकेत इन सस्मरणो से मिलता है। वास्तव मे यह द्विवेदी जी के साहित्य रचना की प्रक्रिया के नियामक सूत्र रहे है। अपने चतुर्थ सस्मरण सग्रह 'स्मृतिया और कृतिया' मे द्विवेदी जी ने जो आत्मचरितात्मक सस्मरण प्रस्तुत किए है वे उनके जीवन के शैशव और कैशोर्य से सम्बन्धित है। साहित्य सृजन के क्षेत्र मे भी यह उनका आरम्भिक काल कहा जा सकता है जिसमे उन्हे अनेक सूत्री प्रेरणाएँ प्राप्त हुई तथा विविध साहित्यिक विचारान्दोलनो का उन पर प्रभाव पडा। इसी प्रसग मे उन्होने अपने समकालीन साहित्यकारो, विशेष रूप से मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रा नन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा महादेवी वर्मा आदि से सम्बन्धित

घटनाएँ भी वर्णित की है। इसी प्रसग मे आधुनिक युग के प्रसिद्ध राजनीतिक, सामाजिक नेता जवाहरलाल नेहरू से सम्बन्धित कुछ उद्‌गार भी उन्होने व्यक्त किये है। द्विवेदी जी के रचना काल के विषय मे ऊपर यह सकेत किया जा चुका है कि मुख्य रूप से साहित्यिक, आत्मपरिचयात्मक, भावात्मक, यात्रा विवरणात्मक तथा निबन्धात्मक सस्मरण लिखे जा रहे थे। इन क्षेत्रो मे जो प्रमुख लेखक क्रियाशील थे उनके द्वारा रचित साहित्य की पृष्ठभूमि मे द्विवेदी जी ने सस्मरणो की परिचयात्मक व्याख्या की है। इस अध्याय मे यह भी सकेत किया गया है कि उन्होने प्राय सभी समकालीन सस्मरणात्मक प्रवृत्तियो के क्षेत्र मे अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य के विश्लेषण के सन्दर्भ मे इस तथ्य को ध्यान मे रखना चाहिए कि उनका स्वरूप सपूर्णात्मक है। सिद्धान्तत सस्मरण रूपी साहित्यिक विधा कहानी के निकट कथात्मक दृष्टि से, निबन्ध के निकट वैचारिक दृष्टि से तथा कविता के निकट भावात्मक दृष्टि से कही जा सकती है। द्विवेदी जी के सस्मरण भी इन्ही रूपो का समन्वय है अर्थात् उनमे वे ही विशेषताएँ विद्यमान है जो इन तीनो साहित्यिक विधाओ की स्वतत्र विशेषताए मानी जाती है। इस दृष्टि से यदि द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य का सैद्धान्तिक विश्लेषण किया जाय तो इस तथ्य की अवगति होगी कि वे अनुभूत्यात्मकता, वर्णनात्मकता, विवरणात्मकता, वैचारिकता, भावात्मकता, यथार्थता तथा कल्पनात्मकता आदि के गुणो से युक्त है। वैचारिकता का तत्व जो उनमे समाविष्ट मिलता है, वह द्विवेदी जी के चिन्तन प्रधान व्यक्तित्व के कारण है। परन्तु उससे उनके सस्मरणो मे रचनात्मक प्रवाह मे क्षेत्रीय बाधकता नही आयी है। इसी प्रकार से वर्णनात्मकता का तत्व भी उनमे समाविष्ट मिलता है जो मुख्यत उन प्रसगो मे है जो सामान्यत विभिन्न स्मृतिपरक वृत्तातो पर आधारित हैं। जो सस्मरण यात्रा वृत्तातो के रूप मे है उनमे विवरणात्मकता का तत्व भी बहुलता से विद्यमान मिलता है जिसकी सोदाहरण व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। द्विवेदी जी की विचारधारा पर जिन समकालीन विचारान्दोलनो का प्रभाव पडा है, उनमे यथार्थवाद अथवा प्रगतिवाद मुख्य है। आधुनिक युग के जीवन मे यान्त्रिकता और वैज्ञानिकता के फलस्वरूप जो अमानवीयता की द्योतक भावनाएँ बढ गयी है उनकी ओर भी इसी प्रसग मे सकेत किया गया है। जैसा कि अनेक स्थलो पर इगित किया गया है, द्विवेदी जी की भावनाएँ मूलत काव्यात्मक है और इसके प्रभाव स्वरूप भावात्मकता के तत्व भी उनके सस्मरण साहित्य मे समाविष्ट हुए है। आत्मव्यजना प्रधान होने के कारण द्विवेदी जी की काव्यात्मक अनुभूतिया भी नैसर्गिक रूप मे इन सस्मरणो मे दृष्टिगत होती है। द्विवेदी जी की भाषा अन्य साहित्यिक विधाओ की भाति इस क्षेत्र मे भी बहुरूपात्मक है जिसके अन्तर्गत प्रमुखत सस्कृत गर्भित, मिश्रित, काव्यात्मक, लोकपरक और आलकारिक रूप मिलते हैं जिनका उदाहरण सहित उल्लेख ऊपर किया गया है। इसी प्रकार से

शैलीगत बहुलता भी इन सस्मरणो की एक उल्लेखनीय विशेषता है जिसके विभिन्न रूपो की ओर सकेत किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य की एक उल्लेखनी विशेषता उनकी विषयगत वैविध्य और विस्तार है। इनका क्षेत्र आत्मव्यजनात्मक, भावात्मक, यात्रा विवरणात्मक, निबन्धात्मक तथा साहित्यिक सस्मरणो तक प्रशस्त है। इस रूप मे ये सस्मरण साहित्य के इस रूप विशेष के क्षेत्र मे लेखक की प्रतिभा और सामर्थ्य का द्योतन करते है। इस प्रकार से इस अध्याय मे द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य का जो विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है वह विगत अध्यायो मे विश्लेषित आलोचना साहित्य, निबन्ध साहित्य तथा उपन्यास साहित्य के साथ ही साथ सस्मरण साहित्य के क्षेत्र मे भी उनकी मौलिक प्रतिभा, रचनात्मक सामर्थ्य और विशिष्ट देन का परिचय देने मे समर्थ है।

शांतिप्रिय द्विवेदी का काव्य साहित्य

प्रस्तुत प्रबन्ध के विगत अध्यायो मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के गद्य साहित्य का अध्ययन किया गया है जिसके अन्तर्गत मूलत: उनका आलोचना, निबन्ध, उपन्यास तथा सस्मरण साहित्य आता है। इस अध्याय मे द्विवेदी जी के काव्य साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। जैसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी के लिखे हुए विविध विषयक् गद्य साहित्य मे जो सवेदनशीलता और भावनात्मकता विद्यमान है वह उनके कवि हृदय की द्योतक है। परन्तु उनकी कोमल कल्पना अपने जिस रूप मे उनके लिखे हुए काव्य साहित्य मे दृष्टिगत होती है वह सरल अनुभूतियो की सहज अभिव्यजना की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है। यद्यपि द्विवेदी जी की लिखी हुई स्फुट कविताओ के केवल दो स्वतन्त्र सग्रह उपलब्ध होते है परन्तु इनसे ही उनकी काव्य प्रतिभा का सम्यक् परिचय मिल जाता है। इस अध्याय मे विशेष रूप से इन्ही दोनो सग्रहो 'नीरव' तथा 'हिमानी' को आधार बना कर द्विवेदी जी के काव्य साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। उपर्युक्त दो कृतियो के अतिरिक्त द्विवेदी जी की अन्य काव्य कृतियो मे 'मधु सचय' और 'परिचय' का उल्लेख भी मिलता है परन्तु 'मोतियो की लडी' का उल्लेख केवल एक प्रकाशन सूची मे मिलता है और यह अप्राप्य है। 'मधु सचय' तथा 'परिचय' मे कवि ने क्रमश. ब्रजभाषा के विशिष्ट शृगारिक कवियो की कविताओ तथा 'परिचय' मे छायावादी कवियो की कविताओ को सकलित किया है। 'मधु सचय' का प्रकाशन हिन्दी पुस्तक भन्डार (लहरिया सराय) से हुआ है तथा 'परिचय' का प्रकाशन सन् १९२६ मे साहित्य सदन, चिरगाव, झासी से हुआ। 'परिचय' काव्य सकलन मे कवि ने एक मौलिक प्रयास किया है। उन्होने उसमे कवियो की काव्यात्मा का भावात्मक परिचय देते हुए उनकी कविताओ का सकलन किया है। 'परिचय' के विषय मे द्विवेदी जी के एक मित्र का कथन था कि 'कारावास भी इससे सुखमय हो जायगा'।

द्विवेदी जी की काव्य कृतियो का परिचय एव वर्गीकरण

[१] **'नीरव' :** भारती भडार-लीडर प्रेस, काशी से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की 'नीरव' काव्य कृति एक लघु काव्य-सग्रह है जिसमे कवि की सन् १९२४ से १९२९ तक की रचनाएँ सगृहीत है। इसका प्रकाशन काल सवत् १९८६ अर्थात् सन् १९२९ ई० है। प्रस्तुत काव्य-सग्रह के प्रकाशन से पूर्व ही इसकी अधिकाश रचनाएँ अपने समय के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होकर द्विवेदी जी के लिए साहित्य में

स्थान निर्दिष्ट कर रही थी। द्विवेदी जी प्राणी की अनादिकालीन प्रवृत्ति से प्रेरित होकर ही काव्य जगत मे प्रविष्ट हुए है। यही कारण है कि उनके 'नीरव' काव्य-सग्रह मे विभिन्न मानवीय मनोवृत्तियो का परिचय मिलता है। प्रस्तुत काव्य-सग्रह मे लेखक की सैंतीस कविताएँ सगृहीत है जिनमे शृगार रस के अतिरिक्त शान्त, करुण और वात्सल्य रस का भी परिपाक हुआ है। 'उपक्रम' कविता मे कवि ने अपनी उल्लासमयी सौन्दर्यपरक प्रवृत्ति का आभास देते हुए वेदना के अगीकार की स्वीकृति दी है। 'मलयानिल' शीर्षक कविता मे कवि ने मलय समीर को सम्बोधित करते हुए परोक्ष रूप मे सृष्टि के कण-कण की सुन्दरता का अनुभव किया है तथा समीर की चचलता का चित्रण किया है। 'अधखिली कली से' शीर्षक कविता मे मुक्त छन्द के माध्यम से कवि ने चिर शैशव एव कैशोर्यावस्था को दुलराया है। 'पद-अक' शीर्षक कविता मे भी कवि ने अपनी विपुल वेदना मे नीरव पद अक को सम्बोधित करते हुए उससे तादात्म्य स्थापित किया है। 'तितली' शीर्षक कविता मे कवि प्रकृति की एक निश्च्छल, चचल एव कोमल प्राणी तितली-सा स्वय अपने हृदय को उन्मुक्त करना चाहता है परन्तु वह केवल बालिका रूप ही ग्रहण करना चाहता है उसका दग्ध यौवन नही, जिसमे केवल वेदना ही वेदना है। 'स्वागत फूल' शीर्षक लघु कविता प्रश्नोत्तर रूप मे है। यौवन मे मदमस्त प्रियतमा अपने प्रिय के आगमन पर खुशी की उत्तेजना मे स्वागत के वास्तविक रूप को भी भूल जाती है परन्तु तथ्य यह है कि वह अपनी भ्रू लतिका पुष्पो के द्वारा ही अपने प्रिय का स्वागत करती है। 'मनोवेग' शीर्षक कविता मे प्रेमिका रूप मे एक नवोढा नववधू ने अपने हृदय के भावो को व्यक्त किया है जो सुहाग लाज से सिमट सी जाती है। 'रगीली तितली' शीर्षक कविता मे कवि तितली के सौन्दर्य पर विमुग्ध हो उसकी चचलता से प्रफुल्लित हो उठता है। 'निवेदन' शीर्षक कविता मे कवि अपने सपूर्ण समर्पण भाव की ओर सकेत करके जीवन की नश्वरता का बोध कराता है। 'लता सुहागिन' शीर्षक कविता मे कवि ने ग्रामवासिनी बाल-सगिनी को सम्बोधित करके मानव व्यापारो का चित्रण किया है। 'अरुण तितली' मे पुनः तितली के रक्तिम रग तथा चचलता पूर्वक इधर-उधर मडराने एव छिपने पर कवि की कल्पना उसकी लज्जाशीलता की ओर आकर्षित होती है। 'निराशा' शीर्षक कविता मे कवि ने प्राकृतिक व्यापारो का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। 'प्रतीक्षा' शीर्षक कविता मे कवि ने प्रकृति के प्रणय मिलन मे अपने अभावो एव वेदना से विह्वल हृदय को निहित किया है। 'स्नेह स्मृति' शीर्षक कविता मे कवि प्रकृति के क्रिया कलापो मे अपने प्रिय के दर्शनों की अभिलाषा करता है और प्रकृति के कण-कण मे उसे अपने प्रिय के स्वरो की गूँज सुनाई पडती है। 'विज्ञापन' शीर्षक कविता मे कवि के हृदय की वेदना मुखरित हुई है जो उसके सपूर्ण जीवन मे व्याप्त है, उस वेदना के परिष्कार के लिए कवि का करुणाकलित हृदय अनुनयबद्ध है। 'दीवाली' शीर्षक कविता मे प्रकृति के सुकुमार सुन्दर चित्र के साथ कवि ने दीवाली की उत्फुल्लता का भी निर्देश किया

है जिसका हास प्रकृति मे व्याप्त है। 'सशय' कविता मे कवि का करुण हृदय मा के सम्बोधन के द्वारा प्रकृति के क्रियाकलाप को देख कर सशय करता है और स्वय अपने जीवन के सशयो मे भटक जाता है। 'आकाक्षा' शीर्षक कविता के दो खड है। प्रथम मे कवि की आकाक्षा है कि वह स्वय की आभा से प्रज्ज्वलित होकर, स्वय को क्षीण करके भी ससार मे शशि विराजमान रहे। दूसरे खड मे कवि अपने कलुषित और कालिमापूर्ण जीवन मे भी उज्ज्वलता की कामना करता है। कवि की सर्वोच्च आकाक्षा यही है कि सताप से दग्ध प्राणी उसके जीवन से शीतलता का अनुभव करे। 'शरच्चन्द' कविता मे कवि की जिज्ञासा की भावना मुखरित हुई है। 'निर्झरणी की स्वतत्रता' कविता प्रकृति के एक उपाग निर्झर की स्वतत्रता के माध्यम से मानव को महान् सन्देश देती है। 'पथिक' शीर्षक कविता मे वीर रस का सयोजन है। 'खादी' कविता मे भी कवि के हृदय की मूल भावना का चित्र प्रस्तुत हुआ है। 'छिद्र' लघु कविता मे तुच्छ मानव के सरस महान् गुणो की ओर सकेत किया गया है जो उसमे अन्तर्निहित रहते हैं। 'याचना' शीर्षक कविता मे ईश्वर से प्रार्थना की गयी है। 'उत्सर्ग' शीर्षक कविता मे मानव जीवन मे सुख के साथ दुख को भी सजाने की ओर सकेत है। 'वेदना से' शीर्षक कविता कवि के वेदनामय जीवन की ओर दृष्टिपात करती है। वेदना कवि की प्रियतमा है जिससे वह चित्र आलिगनबद्ध होकर परस्पर भार वहन करना चाहता है। 'सताप' कविता भी कवि-हृदय के रुदन को प्रस्तुत करता है। 'व्यथित वशी' कविता मे कवि अपने हृदय की व्याकुलता मे वशी के छिद्रो से उत्पन्न उसकी पीडा एव व्यथा को अनुभव करता है जो पीडित होते हुए भी दूसरो के लिए मधुर गान एव सगीत छेडती है। 'मौन विषाद' मे वाह्य सुन्दरता एव प्रसन्नता मे मौन विषाद बार-बार आकर लौट जाती है। 'बालुके' शीर्षक कविता मे कवि ग्रीष्मकालीन तपती हुई बालू के प्रति भी सवेदनशील होकर उसकी तपन, रुदन एव व्यथा को आभासित करता है। 'विकल समीर' मे कवि वायु की तीव्रता मे किसी विरहिणी, दीन की व्यथा-व्याकुलता का आभास करता है। 'मुरझे फूल से' शीर्षक कविता मे कवि सुख की नश्वरता का भास खिले हुए पुष्प से करता है जो क्षण भर मे अपना सौरभ बिखेर कर मुरझा जाता है। 'तरु-पात' शीर्षक कविता मे जीवन की अस्थिरता एव क्षण-भगुरता का चित्र तरु एव लघु तरु के माध्यम से चित्रित हुआ है। 'विजन मे' कविता के प्रथम खड मे ससार के वास्तविक चित्र को प्रस्तुत कर प्रतिध्वनि को ही विजन मे अपना साथी माना है जो ससार की तरह दुख मे हसती नही है। 'कोलाहल' शीर्षक कविता मे कवि ने कोलाहल का व्यापक अर्थो मे मूल्याकन करते हुए उसकी सर्वत्र व्याप्त ध्वनि को स्वीकार किया है। 'मा' शीर्षक कविता मे कवि सवत्र प्रसन्नता एव प्रफुल्लता की कामना करता है। मा के मन्दिर मे सभी समान रूप से निर्द्वन्द्व स्वच्छदता से विचरण करे, उनमे बन्धुत्व की भावना का उद्रेक हो, कवि की यही कामना है।

[२] **'हिमानी'** . श्री शातिप्रिय द्विवेदी का दूसरा काव्य-सग्रह 'हिमानी'

हिन्दी मन्दिर प्रेस, प्रयाग से मार्च सन् १९३४ मे प्रकाशित हुआ। यह भी कवि की भावुकता एव बाल-सुलभ चपलता से ओत-प्रोत स्फुट कविताओ का सग्रह है। प्रस्तुत काव्य-सग्रह मे केवल इक्कीस कविताएँ सगृहीत है। इसमे द्विवेदी जी की सन् १९२९ से १९३४ तक की लिखी कविताएँ सगृहीत हे। 'हिमानी' शीर्षक कविता मे कवि प्रकृति के परिवर्तित रूपो मे माँ हिमानी के स्मित हास का अनुभव करता है जो कवि को काव्य-सृजन की प्रेरणा प्रदान करता है। प्रकृति के प्रत्येक स्पन्दन मे कवि को सगीत का आभास होता है। प्रस्तुत काव्य-सग्रह की दूसरी कविता मे मानव जीवन के सुख-दुख उस चिर सुन्दर तथा अलौकिक व्यक्ति की साधना के साधन मात्र है। तीसरी कविता मे सरिता के गति प्रवाह के माध्यम से कवि ने मानव जीवन की गति की ओर सकेत किया है जो निरन्तर प्रवाहित होता हुआ अनिर्दिष्ट लक्ष्य मे भी अपने मन के निज साधन को प्राप्त कर लेता है। चौथी कविता मे कवि के प्राणो का उच्छ्वास निहित है जो प्रकृति पुष्पो के रूप मे एक दूसरे को देख कर प्रारम्भ मे आकर्पित होकर उच्छ्वास छोडते हैं और अन्त मे स्वतत्र होकर एक दूसरे से मिल जाते है। काव्य-सग्रह की पॉचवी कविता मे कवि अपनी आन्तरिक वेदना को विश्व व्याप्त प्रकृति मे आभासित करता है। छठी कविता मे भी कवि हृदय की वेदना मुखरित हुई है। सातवी कविता 'शिशु' मे कवि ने शैशव सौन्दर्य को अभिव्यजित करते हुए उसके भावी रूपो का चित्रण किया है जो अपने प्रकाश से ज्योतिर्मान होकर विश्व मे सर्वत्र ज्योति फैला देगा। आठवी कविता 'जुगनू की बात' मे कवि ने जुगनू के हृदय के भावो को प्रत्यक्ष किया है। नवी कविता 'भिखारिणी' मे कवि ने मानव समाज से प्रताडित की गई तथा अपने बोझिल हृदय भार से द्रवित भिखारिणी के के प्रति सवेदना प्रकट की है तथा कवि उसका परिचय प्राप्त करना चाहता है। दसवी कविता मे प्रिय के आगमन की बात तथा उनकी अगवानी के निमित्त खाली हाथो की ओर सकेत है। ग्यारहवी कविता मे कवि ने प्रकृति मे व्याप्त शैशव को देख कर स्वय अपने शैशव को प्रदर्शित किया है। बारहवी कविता मे अपने प्रिय से एकाकार की भावना निहित है जो अनजाने ही गतिशील रहता है। तेरहवी कविता 'भिखारिणी' मे कवि उस भिखारिणी को पुन. प्रकृति के प्रागण मे लौट चलने को प्रेरित करता है। चौदहवी कविता मे कवि विहगकुमार को सम्बोधित करते हुए विश्व के सुख-दुख मे ही जीवन यापन का सदेश देता है। पन्द्रहवी कविता का शीर्षक 'अधे का गान' है। सोलहवी कविता मे विश्व के काल-चक्र एव मानव की नश्वरता को व्यक्त किया गया है। कवि ने इसमे ताजमहल के स्मरण मे एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए प्रेमालिगन मे बद्ध मानव का रूप अकित किया है। 'गगन के प्रति' शीर्षक कविता मे कवि ने प्रकृति के क्रिया कलाप मे उसकी वेदना को व्यक्त किया है। गगन मे अनादि काल का इतिहास सचित है। विश्व के समस्त सुखो-दुखो का वही आगार है। मेघ गर्जन तथा वर्षा मे कवि का संवेदनशील हृदय उसकी करुणा तथा करुणा की तीव्रता

का अनुभव करता है जो मेघो के माध्यम से अश्रुधार के रूप मे प्रवाहित होता है। अठारहवी कविता मे कवि देवता तथा नन्दन-कानन को तुच्छ कह कर मानव-जगत तथा मानव-मन को अगीकर करने की आकाक्षा व्यक्त करता है। उन्नीसवी कविता मे कवि प्रकृति के समक्ष स्वय के लघुतम रूप को प्रदर्शित करता है। बीसवी कविता भावुकता से पूर्ण है। 'हल्दी घाटी' शीर्षक कविता कवि के वीर-भावो से ओतप्रोत है। प्रस्तुत कविता ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे मौन, उदास हल्दी घाटी के चित्र के रूप मे प्रस्तुत की गयी है।

कवि द्विवेदी जी और हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी की काव्य सपत्ति प्राचीन ब्रजभाषा कविता थी अतएव प्राचीनता की रूढियो को मानने वाले कवियो ने ब्रजभाषा मे अपनी प्राचीन परिपाटी के अनुरूप ही कविता रची परन्तु भारतेन्दु युग मे मानव चेतना के नव-जागरण तथा राष्ट्र-प्रेम की भावना का उद्रेक हुआ। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा की दृष्टि से खडी बोली को साहित्य मे स्थान मिला। अतएव कविता के क्षेत्र मे भी खडी बोली को अपनाया जाने लगा। ब्रजभाषा के अतिरिक्त अवधी भाषा मे भी काव्य साहित्य की रचना हुई। यद्यपि इस युग मे विषय वस्तु एव शैलीगत विशिष्टता की दृष्टि से प्राचीन परिपाटी का ही अधिक अनुगमन किया गया है परन्तु जो कविगण प्राचीन परिपाटी और रीतिकाल के विरुद्ध एक प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण से पूर्ण थे उन्होने काव्य मे नवीन चेतना एव राष्ट्र प्रेम से सम्बन्धित विषयो का निरूपण किया। इस युग मे खडी बोली को जन-भाषा के रूप मे मानने के लिए अनेक आन्दोलन हुए। इसके अतिरिक्त विभिन्न सस्थाओ ने राजनीति के क्षेत्र मे अपना प्रमुख एव महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्राचीन परिपाटी का अनुकरण करने वाले प्रमुख कवियो मे भारतेन्दु, द्विजदेव मन्नालाल, सेवक, रघुराज सिह, भुवनेश, ललित किशोरी आदि कवि उल्लेखनीय है। इनमे भारतेन्दु जी का हिन्दी काव्य साहित्य एव आधुनिक युग मे अन्यतम स्थान है। उन्होने ब्रजभाषा मे काव्य का प्रणयन करते हुए भी काव्य मे खडी बोली को स्थान दिया। भारतेन्दु के काव्य साहित्य मे काव्य के प्राचीन रूपो के अतिरिक्त उनमे राष्ट्र प्रेम तथा नव-जागरण का सन्देश भी निहित है। नवीन परिपाटी का अनुसरण करने वाले कवियो ने काव्य मे नवीनता को ग्रहण किया अत-एव इस युग का काव्य यथार्थवाद प्रधान है जिसमे देशभक्ति, सामाजिक और धार्मिक पुनर्निर्माण, मातृभाषा उद्धार, राजनीतिक चेतना, साम्राज्यवादी नीति, आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोह का स्वर तथा भारत की स्वतत्रता का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। इस युग के विशिष्ट कवियो मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रचित 'भक्ति सर्वस्व', 'विजय वल्लरी', 'जातीय सगीत', 'मूक प्रश्न' आदि कृतियाँ, ठाकुर जगमोहन सिंह के 'प्रेम सम्पति लता', प्रतापनारायण मिश्र लिखित 'मन की लहर', 'लोकोक्ति शतक', राधा-

चरण गोस्वामी की 'भारत सगीत', रामकृष्ण वर्मा की 'समस्या पूर्ति प्रकाश' कृति, राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा', 'जुबली', बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' रचित 'कजली कादम्बिनी', दादा सुमेर सिंह रचित 'सुन्दरी तिलक', तथा राव कृष्णादेव शरण सिंह 'गोप' रचित 'प्रेम सदेसा', 'मान चरित्र' तथा 'दोहावली' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भारतेन्दु युगीन कवियो मे महेश नारायण, लक्ष्मी प्रसाद, हाथरसी चिरजीलाल, नथाराम, लाला गोविन्द राम, मातादीन चौबे, विजयानद त्रिपाठी, शिवरत्न शुक्ल 'सिरस', आदि के नाम उल्लेखनीय है।

हिन्दी काव्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियो एव विकास के आधार पर आगामी काल विशेष को दूसरे शब्दो मे द्विवेदी युग अथवा पुनरुत्थान काल का द्वितीय चरण अथवा परिष्काल काल के नाम से भी सम्बोधित किया गया है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस युग मे हिन्दी साहित्य की विविध विधाओ का परिष्कार एव परिमार्जन हुआ। इस क्षेत्र मे महावीर प्रसाद द्विवेदी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनके समकालीन कवियो एव लेखको पर उनके साहित्यादर्शो का अत्यधिक प्रभाव पडा। इस काल मे साहित्य की विविध विधाओ के अतिरिक्त भाषा के क्षेत्र मे आमूल परिवर्तन हुए तथा कला की दृष्टि से भी शैलियो का विकास हुआ। इस काल मे महाकाव्य, खडकाव्य, आख्यानक काव्य, प्रेमाख्यानक काव्य और गीतिकाव्य की रचना हुई जिनका भारतेन्दु युग मे प्राय अभाव सा ही था। खडी बोली का समुचित विकास हुआ, परन्तु ब्रजभाषा की प्राचीन काव्य परम्परा का रूप भी परिलक्षित होता है। इस युग के कवियो ने रीति कालीन विविध परम्पराओ, अतिशय नियमबद्धता तथा पाडित्य प्रदर्शन का विरोध कर उन्होने प्रकृति, मानव और जीवन के सन्दर्भ मे नवीन दृष्टिकोणो का प्रतिपादन किया। इस युग का काव्य अपनी समसामयिक विशिष्ट परिस्थितियो से अत्यधिक प्रभावित है। विभिन्न सस्थाओ के अनेक आन्दोलनो के फलस्वरूप मानव की सुप्त चेतना जाग्रत हुई जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय काव्यधारा की प्रवृत्ति का इस युग मे समुचित विकास हुआ। द्विवेदी युग के अन्य कवियो मे श्रीधर पाठक की 'कश्मीर सुषमा', 'भारत गीत' तथा 'स्वर्गीया वीणा' आदि, नाथूराम शर्मा 'शकर' के 'अनुराग रत्न', 'शकर सर्वस्व' तथा 'कलित कलेवर', अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'रसिक रहस्य', 'प्रिय प्रवास', 'कर्मवीर', पद्यप्रसून', 'चोखे चौपदे', 'वैदेही बनवास', 'रसकलश' आदि, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' की 'मृत्युजय' तथा 'वसन्त वियोग' आदि, रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित चिंतामणि', रामनरेश त्रिपाठी के काव्य ग्रन्थो मे 'मिलन', 'पथिक', 'मानसी', 'स्वप्न' आदि, दुलारे लाल भार्गव का 'दुलारे दोहावली', मैथिलीशरण गुप्त की अनेक कृतियो मे 'किसान', 'वीरांगना', 'साकेत', 'विरहिणी व्रजागना', 'यशोधरा', 'भारत भारती', 'जयद्रथ वध', 'द्वापर', 'पचवटी' तथा 'प्रदक्षिणा' आदि, गोपालशरण सिंह की 'माधवी', 'कादबिनी' तथा 'जगदालोक' आदि काव्य कृतियाँ, गुरु भक्तसिह 'भक्त' की 'सरस सुमन', 'कुसुम

कुज, 'प्रमद वन' तथा 'नूरजहाँ' आदि, हरदयालु सिंह की 'दैत्यवश', 'रावण महाकाव्य', वियोगीहरि की विभिन्न कृतियो मे 'साहित्य विहार', 'भावना', 'प्रेम पथिक', 'वीर-वाणी', 'सतवाणी', 'बुद्धवाणी', 'श्रद्धा कण' तथ 'तरगिनी' आदि, डा० बलदेव प्रसाद मिश्र 'राजहस' की अनेक कृतियो मे 'शकर दिग्विजय', 'मानस माधुरी', 'साकेत सत' तथा 'मानस मथन' आदि, गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' की 'तारक वध', मोहनलाल महतो 'वियोगी' की काव्य कृतियो मे 'निर्माल्य', 'धुधले चित्र', 'कल्पना' आदि तथा 'आर्यावर्त' महाकाव्य, द्वारिकाप्रसाद मिश्र का महाकाव्य 'कृष्णायन' तथा केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' लिखित 'ज्वाला', 'कम्पन', 'कैकेयी', 'स्वर्णोदय', 'तप्तगीत' आदि सग्रह विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है ।

गाँधीवाद का समकालीन छायावाद युग हिन्दी साहित्य के विकासात्मक इतिहास मे प्राय प्रथम विश्वयुद्ध से द्वितीय महायुद्ध तक सीमित किया जाता है । इसे हिन्दी साहित्य का उत्कर्ष काल कहा जाता है । छायावाद के सम्बन्ध मे विभिन्न मत-मतान्तर है तथा उनके प्रवर्त्तको के सन्दर्भ मे भी विभिन्न विद्वानो का दृष्टिकोण भिन्न भिन्न है । परन्तु सर्वसम्मत से इस बात की पुष्टि होती है कि छायावाद युग बगला एव अँग्रेजी साहित्य से प्रभावित है तथा उसके प्रवर्तक जयशकर प्रसाद जी है । छायावाद युगीन काव्य सौदर्य और प्रेमाभिव्यक्ति की प्रवृत्ति से पूर्ण है तथा इसमे रवीन्द्र काव्य की आध्यात्मिकता अथवा लोकपरक मानववादिता का भी समावेश हुआ है । इसमे मानव-जीवन के वैयक्तिक पक्षो का ही अधिक उद्घाटन हुआ है । छायावाद की परिभाषा भी विभिन्न विचारको ने विविध रूप से दी है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों मे किया है । प्रथम रहस्यवाद के सकुचित अर्थ मे तथा द्वितीय वाक्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थों मे । परतु उनकी दृष्टि मे यह काव्य की एक नवीन शैली मात्र है । श्री शातिप्रिय द्विवेदी के मत मे द्विवेदी युग ने काव्य को नये छन्द, नये कठ, नये विषय, नये आलम्बन, नये चित्रपट, नये विचार तथा नये परिवेश के माध्यम से उसे एक नया शरीर दिया । द्विवेदी युग ने जिस नवीन काव्य शरीर को गढा था उसमे प्राण प्रतिष्ठा का श्रेय छायावाद युग को है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद को भावुकता, साकेतिकता, रहस्य, दुरूहता, कोमलकात पदावली, प्रकृति प्रेम तथा उच्छृखलता आदि तत्वो से परिपूर्ण माना है । डा० देवराज के मत मे छायावादी काव्य मे तीन मुख्य तत्व विद्यमान है—धूमिलता या अस्पष्टता, गुम्फन की सूक्ष्मता तथा काल्पनिकता और काल्पनिक वैभव। विश्वम्भर मानव ने प्रकृति मे मानवीय भावो और चेतना के आरोप को छायावाद माना है। छायावाद के प्रमुख स्तम्भ जयशकर प्रसाद जी ने छायावाद की तीन विशेषताओ की ओर मुख्य रूप से सकेत किया है—स्वानुभूति की विवृति या आत्मव्यजकता, सौन्दर्य प्रेम तथा अभिव्यक्ति की भगिमा या साकेतिकता । डा० नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह माना है । उसी के व्यापक अर्थ मे महादेवी वर्मा ने इस

काव्य प्रवृत्ति को इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध मनुष्य की कोमल और सूक्ष्म भावनाओ का विद्रोह माना है। इसके अतिरिक्त श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने इसे एक आधुनिक आन्दोलन कहा है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि छायावाद युगीन काव्य साहित्य मे सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक बन्धनो और रूढियो से विद्रोह तथा उन्मुक्त प्रेम की प्रवृत्ति के साथ ही साथ इसमे आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति, कल्पना की अतिशयता, सौन्दर्य के प्रति आकर्षण एव विस्मय की भावना आदि विशेषताएँ परिव्याप्त है। इन प्रमुख तत्वो के समावेश के प्रभावस्वरूप ही छायावादी काव्यधारा मे मानव मनोभावो के परिवर्तन रूप मे अहम् भावना, वैयक्तिकता एव ऐकान्तिकता आदि तत्वो का भी समावेश हो गया है। छायावादी युग के प्रमुख कवि जयशकर प्रसाद की 'लहर', 'आँसू', 'झरना' और महाकाव्य 'कामायनी' के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट कवियो मे सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'परिमल', 'अणिमा', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'अनामिका', 'बेला', 'नये पत्ते', 'कुकुरमुत्ता' तथा 'अपरा' आदि उल्लेखनीय है। निराला जी के साहित्य मे छायावाद के उत्तरार्द्ध के दर्शन होते हैं। इनकी कुछ काव्य कृतियो मे प्रगतिशील मानव चेतना का भी आभास मिलने लगता है जो आगे की प्रगति का सूचक है। इसके अतिरिक्त निराला की 'अर्चना' और 'आराधना' काव्य कृतियाँ भी इस युग के काव्य साहित्य मे परिगणित की जा सकती हैं। श्री सुमित्रानन्दन पन्त इस युग के तृतीय स्तम्भ है जिनकी कुछ काव्य कृतियो मे गाँधी और अरविन्द के विचारो का रूप परिलक्षित होता है। पन्त जी की प्रतिनिधि काव्य कृतियो मे 'उच्छ्वास', 'ग्रन्थि', 'वीणा', 'पल्लव', 'गुजन', 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'युगपथ', 'उत्तरा', 'अमिता', 'वाणी', 'कला और बूढा चाँद' के अतिरिक्त 'आधुनिक कवि', 'पल्लवनि', रश्मिबन्ध', 'चिदम्बरा' आदि सकलन के साथ ही 'लोकायतन' महाकाव्य आदि भी उल्लेखनीय है। पन्त जी के सपूर्ण साहित्य के विश्लेषण से उनकी विचारधारा के क्रमिक विकास का परिचय मिलता है। छायावाद की अन्यतम कवयित्री महादेवी वर्मा की काव्य कृतियो मे 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्यगीत' और 'दीपशिखा' आदि मे महादेवी वर्मा के काव्य की विशिष्टता वेदना की चरम अभिव्यक्ति तथा दार्शनिक काल्पनिकता स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। इसके अतिरिक्त अतिरजित भावना, सुन्दर शब्द विन्यास तथा एक अनन्त की खोज इनकी कविताओ के प्रमुख तत्व हैं। प्रमुख छायावादी कवियो के अतिरिक्त अन्य कवियो मे रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, उदयशकर भट्ट, नरेन्द्र शर्मा, अचल, हरिकृष्ण 'प्रेमी', मोहन लाल महतो 'वियोगी', जानकी वल्लभ शास्त्री, सुमित्राकुमारी सिन्हा, विद्यावती कोकिल, हसकुमार तिवारी, गोपाल शरण सिंह 'नेपाली' तथा बच्चन आदि भी उल्लेख्य हैं।

छायावाद के उत्तरार्द्ध मे ही कवियो की विचारधारा मे परिवर्तन लक्षित होने लगा था तथा छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन स्पष्ट हो

रहे थे जो छायावाद के प्रतिक्रियात्मक रूप की सूचना देते है। छायावाद की प्रतिक्रिया मे प्रगतिवाद एक समकालीन आवश्यकता थी जो साम्यवादी तथा मार्क्सवादी विचारो के समर्थन मे हुए आन्दोलन के रूप मे परिगणित किया जाता है। छायावाद युग की कल्पनात्मक भावभूमि के विरुद्ध यथार्थ की कठोर व्यावहारिकता के आधार पर विचारको की चिन्तन शक्ति केन्द्रित हुई। मानव की आर्थिक आवश्यकताओ तथा समाज की आर्थिक असमानता ने भी कवियो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया और फलस्वरूप हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे प्रगतिवादी आन्दोलनो का सूत्रपात हुआ। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी काव्य साहित्य मे इसका प्रारम्भ १९३६ मे हुआ। समकालीन सामाजिक, साम्प्रदायिक विभिन्न समस्याओ का स्वर प्रगति युग के कवियो ने उठाया। इसमे कुछ छायावादी कवि और कुछ प्रयोगवाद को महत्व देने वाले कवि थे जिन्होने प्रगतिशीलता को महत्ता प्रदान करते हुए काव्य साहित्य मे भी उसे स्वीकार किया। समसामयिक समस्याओ से प्रेरित होने के कारण प्रगति युग का काव्य जन सामान्य के अधिक निकट है। भाषा की दृष्टि से साहित्यिक खडी बोली के साथ सामान्य बोलचाल के शब्द भी इनमे प्रयुक्त हुए तथा मुक्तक छन्दो को प्रधानता मिली। इस युग के प्रमुख कवियो मे श्री सुमित्रानन्दन पन्त की काव्य कृति 'युगान्त' और 'युगवाणी' के अतिरिक्त सम्पादक रूप मे 'रूपाभ' पत्रिका मे भी उनका विद्रोही रूप स्पष्ट हुआ। 'ग्राम्या', 'स्वर्ण धूलि', 'स्वर्ण किरण' तथा 'अमिता' तक की काव्य कृतियो मे कवि का जीवन दर्शन एक स्पष्ट रूप ग्रहण कर लेता है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की तीसरे दशक मे लिखी कविताओ मे प्रगतिशील विचारधारा का सकेत मिलता है परन्तु उसका सुनियोजित रूप चौथे दशक की कविताओ मे मिलता है। 'कुकुरमुत्ता' मे कवि के प्रगतिशील विचारो का कविता रूप सगृहीत है जिसमे यथार्थ के प्रति व्यग्यात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। श्री भगवतीचरण वर्मा की भी अनेक कविताओ मे प्रगतिवादी विचारधारा के दर्शन होते है। डा० रागेय राघव के 'पिघलते पत्थर' काव्य-सग्रह, श्री नरेन्द्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' तथा 'अग्निशय्य' काव्य-सग्रह, रामधारी सिंह 'दिनकर' की काव्य कृतियो मे 'इतिहास के आसू', 'धूप का धुआ', शिवमगल सिह 'सुमन' की 'पर आखे नही भरी' काव्य कृति, श्री केदारनाथ अग्रवाल की 'नीद के बादल' तथा 'युग की गगा', त्रिलोचन का सर्वप्रथम सग्रह 'धरती', डा० महेन्द्र भटनागर की काव्य कृतियो मे 'अभिमान', 'जिजीविषा', 'टूटती शृखलाएँ', 'तारो के गीत', 'नई चेतना', 'बदलता युग', 'मधुरिमा', 'विहान' तथा 'सतरण' आदि विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त रामेश्वर शुक्ल 'अचल' तथा नागार्जुन की अनेक कविताओ मे प्रगतिशील तत्व विद्यमान है तथा उनमे परम्परागत रूढियो और मान्यताओ के विरोध मे नवीन चेतना का आह्वान है। आधुनिक युग की काव्य क्षेत्रीय इसी पृष्ठभूमि मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव हुआ। अपनी समकालीन काव्य प्रवृत्तियो से उन्होने किस रूप मे प्रेरणा तथा प्रभाव ग्रहण किया, इसका विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

द्विवेदी जी का काव्य और समकालीन प्रवृत्तिया

भारतीय काव्य शास्त्र मे काव्य के अत्यन्त व्यापक अर्थ को लिया गया है जिसके अन्तर्गत गद्य और पद्य के रूपो की व्याख्या एव भेद-प्रभेद को निरूपित किया गया है। काव्य के इस व्यापक अर्थ की दृष्टि से काव्य का प्रमुख कार्य कल्पना और अनुभूति से प्रेरित विचारो को सजीवता, आकर्षक तथा स्मरणीय अभिव्यक्तियो के आधार पर जीवन्त रूप प्रदान करना है। डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार "काव्य मे कल्पना और अनुभूति के माध्यम से गृहीत सत्य का निरूपण किया जाता है परन्तु इसमे गृहीत के साथ-साथ ही उसकी अभिव्यजनागत विशेषता भी महत्व रखती है।"[१] काव्य के सक्षिप्त अर्थो मे भारतीय काव्य शास्त्र मे काव्य के लक्षणो के आधार पर सस्कृत के प्रकान्ड विद्वानो ने काव्य के स्वरूप एव अर्थ को स्पष्ट किया है जो स्वय मे स्वत· एकागी होते हुए भी अपनी समग्रता मे काव्य के विविध स्वरूपो एव तत्वो का बोध कराता है। 'अग्निपुराण' मे उपलब्ध काव्य की प्राचीन परिभाषा के अनुसार इष्टार्थ, सक्षिप्त वाक्य, अलकार, गुण और दोष के आधार पर काव्य की वाह्य रूपरेखा को स्पष्ट किया गया है। आचार्य भामह ने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' के आधार पर शब्द-अर्थ के सयोग को काव्य माना है। लक्षणो पर आधारित परिभाषाएँ काव्य की आत्मा को स्पर्श करती है और इस दृष्टि से सस्कृत साहित्याचार्य विश्वनाथ की 'वाक्य रसात्मकम् काव्यम्' तथा पडितराज जगन्नाथ की परिभाषा 'रमणीयार्थं प्रतिपादक शब्द काव्यम्' को मान्यता प्रदान की गयी है। डा० भगीरथ मिश्र ने भी 'शब्द, अर्थ अथवा दोनो की रमणीयता से युक्त वाक्य रचना को काव्य माना है।' आधुनिक युग मे काव्य के पर्याय रूप मे कविता और पद्य शब्द का प्रयोग होता है। इसमे बहुत कम भिन्नता होती है अतएव यह शब्द समानार्थी माने जाते है। पद्य मे विचारो को छन्दबद्ध रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पाठक या श्रोता के मन को आनन्दित करनेवाली प्रभावशाली रचना को कविता माना है। आपका मत है कि 'अन्त करण की वृत्तियो के चित्र का नाम कविता है।'[२] श्री जयशकर प्रसाद जी ने काव्य को 'आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति' मानते हुए उसे श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा माना है। आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति को स्पष्ट करते हुए उन्होने लिखा है 'आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व मे सहसा ग्रहण कर लेती है काव्य मे सकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है।'[३] इस दृष्टि से काव्य मे सत्य के पूर्ण सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है। कवि अपने वस्तु जगत के सत्य को अनुभूति मे ग्रहण कर शब्द, छन्द, शैली आदि

---

१ 'काव्य शास्त्र', डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ४७।

२ 'रसज्ञरजन', श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० ५०।

३ 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध', श्री जयशकर प्रसाद, पृ० ३८।

काव्य के वाह्य उपकरणो के माध्यम से अपनी कल्पना को काव्य चित्र रूप मे प्रकट करता है। कल्पना कला का अन्त पक्ष है जो भावो का सूक्ष्म शरीर है और हृदय से सम्बन्धित है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की धारणा के अनुसार "काव्य कल्पना के पख, जहा तितली की अनुरागिनी आत्मा का नही, बल्कि केवल उसके अनुरजित वाह्य कलेवर की रगसाजी का ही प्रदर्शन करते है वहा वे हमारे वाह्य नेत्रो को ही लुभा कर रह जाते है, परन्तु कविता जब अपने मधुप के से स्वर्ण पख फैला कर, कसक के काटो'''काटो मे छिप कर शब्दो के पल्लव-पल्लव मे छिप कर अनुभूतिपूर्ण मधुमय जीवन गुजार करती है, तब वह हमारे कानो तक ही नही, मर्मस्थल तक भी पहुँच जाती है। कल्पना मे केवल भावना की उडान ही नही, बल्कि उसकी विदग्धता भी आपेक्षित है।"[१]

[१] **राष्ट्रीय काव्य की प्रवृत्ति** भारतीय सस्कृति मे प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय चेतना की जागृति का आभास समय-समय पर होता रहा है। आधुनिक युग से पूर्व भी देश प्रेम और राष्ट्रीय चेतना भारतीय सस्कृति की विशिष्टता रही है। आधुनिक युग मे राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति अधिक जागरूक रही है तथा यह प्रवृत्ति काव्य के क्षेत्र मे भी विकासशील रही है। 'राष्ट्रीयता के मूलभूत तत्वो के रूप मे भौगोलिक एकता, जातीय एकता, सास्कृतिक एकता'[२] आदि को मान्यता प्राप्त है। सन् १८५७ ई० मे भारतीय स्वतन्त्रता के लिए हुई क्रान्ति से मानव मे सोई राष्ट्रीय चेतना का जागरण हुआ। जिसका प्रभाव समाज मे हुए विभिन्न सामाजिक सुधारो एव शिक्षा पर पडा। राजाराममोहन राय, महादेव रानाडे, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द आदि ने राष्ट्रीय चेतना से अभिभूत हो सामाजिक क्षेत्र मे नव जागरण, अछूतो का उद्धार, सास्कृतिक एव जातीय एकता एव सुप्त राष्ट्रीय चेतना के जागरण के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य किए। यद्यपि भारतेन्दु युग से पूर्व ही स्फुट रूप से राष्ट्रीय काव्य की प्रवृत्ति लक्षित होने लगी थी लेकिन एक सुस्पष्ट परम्परा का रूप भारतेन्दु युग मे ही विकासशील हुआ। भारतेन्दु युग के प्रमुख राष्ट्रीय भावना प्रधान काव्य रचना करने वालो मे बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाकृष्ण गोस्वामी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाकृष्णदास, वालमुकुन्द गुप्त तथा प्रतापनारायण मिश्र आदि विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। इन्होने भौगोलिक एकता, प्राकृतिक सौन्दर्य, सास्कृतिक गौरव, धार्मिक उच्चता तथा गौरवपूर्ण अतीत की प्रशस्ति के माध्यम से राष्ट्रीय भावना का जन-जीवन मे सचार किया।

भारतेन्दु युग के पश्चात द्विवेदी युग भी राष्ट्रीय प्रवृत्ति से ओतप्रोत रहा है। इस युग मे यह प्रवृत्ति भारतेन्दु युग की तुलना मे अधिक विकसित हुई। बीसवी

---

१. 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १३।

२. 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास', डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० ३१७।

शताब्दी के प्रारम्भिक चरणो मे स्वतन्त्रता की आवाज अत्यधिक तीव्र थी। बीसवी शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश मे प्रथम महायुद्ध के दुष्परिणामो के प्रभावस्वरूप मानवतावादी विचारको ने गम्भीर चिन्तन के आधार पर ठोस कदम उठाये। द्विवेदी युग मे राष्ट्रीय एव स्वदेशी आन्दोलन मे उग्रता आ गई तथा महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे भारतीय जनता नवीन उत्साह एव लगन से राष्ट्रीय हित के कार्यो मे लिप्त हुई। ऐसे उथल-पुथल एव क्रान्तिकारी युग मे साहित्यकार और कवियो की लेखिनी ने भी अपना वही क्षेत्र चुना। उसमे से भी राष्ट्रीय भावना से पूर्ण ओजपूर्ण गीत नि सृत हुए। इस युग के प्रमुख कवियो मे श्रीधर पाठक, नाथूराम शकर, गोपालशरण सिह, मैथिलीशरण गुप्त, सत्यनारायण कविरत्न, ठाकुर प्रसाद शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिह उपाध्याय तथा रामदेवी प्रसाद पूर्ण आदि कवियो ने राष्ट्रीय भावना प्रधान काव्यो की रचना की जिन्होने आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्र मे व्याप्त दुर्व्यवस्था एव उनके कारणो की ओर सकेत करते हुए भारतवासियो को राष्ट्र के प्रति सचेत किया तथा उन्हे नवीन दृष्टिकोण से चिंतन करने के लिए उत्साहित किया।

द्विवेदी युग के पश्चात् प्रसाद तथा उनके परवर्ती युग के कवियो मे राष्ट्रीय भावना का और भी अधिक प्रखर एव प्राजल रूप हिन्दी साहित्य मे प्रत्यक्ष हुआ। विश्व युद्धो की प्रतिक्रिया का प्रभाव साहित्य एव साहित्यकारो पर भी पडा तथा अनेक अहिंसात्मक आन्दोलनो का प्रारम्भ हुआ। स्वराज्य की माग, समाज मे भौतिक प्रभावो से ग्रसित, दुर्भिक्ष से पीडित जनता की करुण दशा तथा राष्ट्र के लिए सत्याग्रह आदि समाज मे परिव्याप्त तत्वो की प्रतिक्रिया साहित्य मे भी लक्षित हुई तथा इस युग मे अनेक राष्ट्रीय भावना से पूर्ण काव्य रचनाये प्रकाशित हुईं। इस युग के अनेकानेक कवियो मे सियारामशरण गुप्त, जयशकर प्रसाद, सुभद्रा कुमारी चौहान, सुमित्रानन्दन पन्त, रामधारी सिह 'दिनकर', मोहनलाल महतो 'वियोगी', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सोहनलाल द्विवेदी, गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश', डा० रामकुमार वर्मा, गोपालशरण सिह 'नेपाली', माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवशराय 'बच्चन', 'हरिकृष्ण 'प्रेमी', नरेन्द्र शर्मा, शिवमगल सिह 'सुमन', भगवतीचरण वर्मा, डा० रागेय राघव, शमशेर बहादुर सिह, रामेश्वर शुक्ल 'अचल', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', त्रिलोचन शास्त्री, जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द', उदयशकर भट्ट, श्यामनारायण पान्डेय तथा गगाप्रसाद पान्डेय आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अतएव हम देखते है कि राष्ट्रीय काव्य धारा आधुनिक हिन्दी साहित्य मे उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरणो से प्रारम्भ होकर बीसवी शताब्दी मे वर्तमान काल मे प्रवाहशील मिलती है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न युगो के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय कविता की यह प्रवृत्ति नवीन नही, प्रत्युत् यह युगो-युगो से प्रवाहमान है तथा समय-समय पर इसका रूप परिवर्तित होता रहता है। वर्तमान काल मे राष्ट्रीय भावना के क्षेत्र मे द्विवेदी युग

तथा उसके परवर्ती युगो मे इस भावना की क्रियाशीलता अत्यधिक आभासित होती है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने भी इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत 'खादी' तथा 'पथिक' जैसी कविताएँ प्रस्तुत की है, जो उनकी राष्ट्रीय भावनाओ का परिचय देने मे समर्थ है।

[२] **छायावादी काव्य की प्रवृत्ति** आधुनिक हिन्दी साहित्य मे छायावादी काव्य प्रवृत्ति बीसवी सदी के दूसरे दशक से परिलक्षित होती है। हिन्दी काव्य पर पाश्चात्य साहित्य की देन के रूप म छायावादी प्रवृत्ति को माना जाता है। छायावादी काव्य प्रवृत्ति हिन्दी काव्य मे बगला और अँग्रेजी के प्रभावस्वरूप आविर्भूत हुई है। कुछ विद्वानो ने काव्य मे छायावाद के जन्म का कारण द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध विद्रोह के फलस्वरूप माना है। कुछ विचारक इसे 'आधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध लौकिक चेतना का विद्रोह' तथा कुछ इसे 'स्थूक के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' मानते है। आधुनिक हिन्दी कविता मे छायावाद से तात्पर्य उस कविता से हे जो द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता को त्याग कर नवीन छन्दो मे प्रतीक पद्धति तथा चित्रभाषा की शैली मे प्रवाहित हुई है। वस्तुत इस छायावादी काव्य धारा मे यथार्थता से पलायन, प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण, मानव-प्रेम, आत्माभिव्यजना, नीति विद्रोह, दुखवाद तथा रहस्यवाद की विशिष्टता आदि प्रवृत्तियाँ प्रतिभासित होती है। आधुनिक हिन्दी काव्य धारा मे छायावाद का प्रादुर्भाव केवल पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव की देन है, यह तथ्य असगत ह, कारण आधुनिक हिन्दी साहित्य प्राचीन भारतीय साहित्य एव भारतीय परम्परा से भी प्रभावित हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि छायावादी युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित तथा बगाल की नवीन काव्यधारा से परिचित होने के साथ-साथ अपनी प्राचीन भारतीय रहस्यवाद की परम्परा से भी अवगत था। यही कारण है कि छायावाद मे सूक्ष्म की सौन्दर्यानुभूति एव रहस्यवादिता की अभिव्यक्ति हुई है। छायावादी काव्य प्रवृत्ति की विभिन्न विद्वानो ने विविध रूप से परिभाषा करने का प्रयत्न किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद शब्द का दो अर्थों मे प्रयोग किया है। प्रथम अर्थ मे उन्होने रहस्यवाद को छायावाद के अन्तर्गत माना है जिसकी अभिव्यक्ति अत्यन्त चित्रमयी सूक्ष्म व्यजनात्मक भाषा मे होती है और दूसरे अर्थ के अन्तर्गत शुक्ल जी न वाक्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थों मे प्रयुक्त किया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के मत मे छायावाद मे भावुकता, साकेतिकता, रहस्य, दुरूहता, कोमल कान्त पदावली, प्रकृति प्रेम, उच्छृखलता आदि समाविष्ट है। डा० नगेन्द्र ने तो छायावाद को भावात्मक स्तर पर एक भाव पद्धति ही मान लिया है। डा० देवराज ने छायावादी काव्य को ही विभिन्न नामो यथा गीति काव्य, प्रकृति काव्य, प्रेम काव्य तथा रहस्यवादी आदि कहा है। श्री विश्वम्भर मानव के विचार से तो प्रकृति मे मानवीय भावो का आरोप ही छायावाद है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने 'छायावाद मे ब्रजभाषा के माधुर्य, खडी बोली के ओज और प्रकृति की अतीन्द्रिय

अनुभूति का समन्वय' माना है ।

छायावादी कवियो मे श्री जयशकर प्रसाद, श्री सुमित्रानन्दन पन्त' श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा श्रीमती महादेवी वर्मा का नाम विशिष्ट रूप से उल्लिखित किया जाता है । छायावाद के प्रमुख प्रवर्तक श्री जयशकर प्रसाद जी ने काव्य मे वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति को छायावाद के नाम से अभिहित किया । प्रसाद जी के मत मे 'ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ है । अपने भीतर से मोती के पानी की तरह अन्तर स्पर्श करके भाव-समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कान्तिमयी होती है ।' प्रसाद जी के साहित्य मे छायावादी काव्य की समस्त विशेषताएँ निहित है । उनके साहित्य मे अनुभूत्यात्मक वेदना की अतिशयता, प्रेम व्यापार की सूक्ष्माभिव्यक्ति, फलस्वरूप उसकी गम्भीर प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाएँ, प्रकृति मे चेतन सत्ता का आरोपण तथा प्रतीक विधान आदि विशेषताएँ परिलक्षित होती है । इसके अतिरिक्त 'कामायनी' महाकाव्य मे आध्यात्मिक और दार्शनिक तथ्यो के निरूपण के साथ उनके जीवन-दर्शन का भी स्पष्टीकरण हुआ है । श्री सुमित्रानन्दन पन्त छायावादी काव्य धारा के प्रमुख स्तम्भो मे एक हैं । उन्होने छायावाद को एक आधुनिक आन्दोलन माना है तथा उसके सौन्दर्य बोध एव कल्पना मे पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव को स्वीकार किया है । युग चिन्तन के अनुरूप पन्त जी की विचारधारा मे युग प्रभाव के फलस्वरूप क्रमिक परिवर्तन उनके सपूर्ण साहित्य मे परिलक्षित होता है । अतएव काव्य मे एक विकासशीलता का सकेत मिलता है । उन पर गाधी तथा अरविन्द दर्शन का विशेष प्रभाव है । प्रकृति तथा नारी सौन्दर्य के चित्रण मे विशिष्टता है । भाषा को गढने मे वह सिद्धहस्त है अतएव भाषा एव शैली के नवीन एव मौलिक रूपो का आभास भी उनके साहित्य मे होता है । उन्हे सौन्दर्य और सस्कृति का सुकुमार कवि कहा जाता है । काव्य कला की दृष्टि से उन्होने नवीन प्रयोग किए है । युग प्रभाव के कारण उनके काव्य मे छायावादी काव्य की विशिष्टताओ के अतिरिक्त समकालीन अन्य प्रवृत्तियो का प्रभाव भी परिलक्षित होता है । उनके साहित्य मे चेतन प्रकृति का प्रखर रूप, मानव और सौन्दर्य का चित्रण, प्रकृति मे मानवीय चेतना की सहज अभिव्यक्ति, कलात्मक विशिष्टता, सुकुमार एव कोमल भावनाओ आदि की चित्रबद्धता का रूप चित्रित हुआ है ।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के साहित्य मे छायावादी प्रवृत्तियो के साथ आधुनिक काव्य की अन्य प्रवृत्तिया और विशेषत. प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आदि के तत्व भी विद्यमान है । निराला जी के साहित्य मे भाषा, भाव छन्द, अभिव्यजना तथा प्रतीकों के नवीन प्रयोग हुए हैं । उन्हे मुक्त छन्द का सफल कवि माना जाता है । उनके साहित्य मे आधुनिक नवीन विशेषताओ के अतिरिक्त छायावादी विशेषताए भी प्रखर रूप मे मिलती है । उन्होने मानवतावादी दृष्टिकोण के आधार पर कटु

यथार्थ के प्रति व्यग्यात्मक दृष्टि को अपनाया। यही भाव उनके सपूर्ण साहित्य मे परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से उनके साहित्य मे एक विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का भी आभास होता है। प्रयोगात्मकता की दृष्टि से उनकी काव्य उपलब्धिया स्तुत्य है। श्रीमती महादेवी वर्मा के साहित्य में वेदना की चरम अभिव्यक्ति के साथ दार्शनिक कल्पना भी व्यक्त हुई है। आपने भी छायावादी काव्य प्रवृत्ति को इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध मानव की कोमल और सूक्ष्म भावनाओ के प्रति विद्रोह माना है। आपके साहित्य मे छायावादी विशिष्टताओं के साथ प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य मे परोक्ष सत्ता का आभास तथा प्रवृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य मे मानवीय चेतना का आरोपण भी लक्षित होता है। महादेवी वर्मा जी के मत मे 'छायावाद और रहस्यवाद के अन्तर्गत सूक्ष्मतम अनुभूतियो के कोमलतम मूर्त रूप, भावना के हल्के रगो का वैचित्र्य, वेदना की गहरी रेखाओ की विविधता, करूणा का अतल गाम्भीर्य और सौन्दर्य का असीम विस्तार'[1] आदि विशिष्टताएँ अवलोकित होती है। इन उपर्युक्त विशिष्टताओ के अतिरिक्त महादेवी जी के काव्य मे गीतो की भी अपनी विशिष्टता है। उनके गीतो मे कोमल कल्पना, भावो की मोहक अभिव्यक्ति, लाक्षणिकता, माधुर्य एव मार्मिकता आदि विशेषताएँ भी परिलक्षित होती है। उपर्युक्त चार प्रमुख कवियो के अतिरिक्त इस प्रवृत्ति के अन्य गणमान्य साहित्यिकों मे डा० रामकुमार वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, अचल, गोपालशरण सिंह नैपाली, बच्चन, भगवतीचरण वर्मा तथा शातिप्रिय द्विवेदी आदि के नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होने छायावादी काव्यधारा का पोषण किया है। शातिप्रिय द्विवेदी आरम्भ मे इस विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। उनकी लिखी हुई छायावादी शैली से युक्त अनेक कविताएँ 'नीरव' मे सगृहीत हैं, जिनका आगे विवेचन किया जायगा।

[३] **प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्ति** आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्ति उत्तर छायावादी काव्य प्रवृत्ति के रूप मे उल्लेख की जाती है। तीसरे दशक के मध्य से हिन्दी काव्य साहित्य पर मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के परिणामस्वरूप हिन्दी काव्य साहित्य मे परिवर्तन परिलक्षित होने लगा तथा इस युग मे विभिन्न प्रवृत्तियो का जन्म हुआ। मार्क्सवाद से प्रभावित इन विशिष्ट प्रवृत्तियो को ही प्रगतिवाद के नाम से अभिहित किया गया। छायावादी कल्पनात्मक भावभूमि के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप मे प्रगतिवाद का आविर्भाव हुआ। जीवन के प्रति दृष्टिकोण मे परिवर्तन से साहित्यकार भी उससे प्रभावित हुआ तथा साहित्य मे एक नवीन आन्दोलन का जन्म हुआ। भारत मे होने वाली इस युग की राजनीतिक, सामाजिक तथा प्राकृतिक घटनाओ का प्रभाव साहित्य मे पड़ा और काव्य मे सामाजिक यथार्थवाद के रूप मे एक साहित्यिक आन्दोलन का जन्म हुआ। इसी को प्रगतिवाद के नाम से भी आख्यायित किया गया। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य मे इसका प्रचार

१. 'आधुनिक कवि', श्रीमती महादेवी वर्मा, (अपने दृष्टिकोण से), पृ० ३०।

सन् १९३६ मे हुआ । इसी वर्ष लखनऊ मे मुशी प्रेमचन्द के सभापतित्व मे प्रगतिशील लेखक सघ का अधिवेशन हुआ जिसमे प्रेमचन्द जी ने कला और साहित्य की सामाजिक उपयोगिता को मान्यता प्रदान की । प्रगतिवाद के उद्देश्य की ओर 'हिन्दी साहित्य कोष' मे सकेत किया गया है—'प्रगतिवाद का उद्देश्य था साहित्य मे उस सामाजिक यथार्थवाद को प्रतिष्ठित करना जो छायावाद के पतनोन्मुख काल की विकृतियो को नष्ट करके एक नये साहित्य और नये मानव की स्थापना करे और उस सामाजिक सत्य को, उसके विभिन्न स्तरो को साहित्य मे प्रतिपादित होने का अवसर प्रदान करे । वर्ग सघर्ष की साम्यवादी विचारधारा और उस सन्दर्भ मे नये मानव, 'नये हीरो' की कल्पना इस साहित्य का उद्देश्य था ।'[१] वस्तुत इस काल मे छायावादी प्रवृत्तियो का प्राय ह्रास हो चुका था, उसका आशिक रूप ही विद्यमान था । आधुनिक युग के प्रारम्भिक क्षणो स ही राष्ट्रीय काव्य प्रवृत्ति मे प्रगतिवादी तत्वो का समावेश परोक्षत मिलता है । सन् १९३६ से साहित्यकारो की रचनाओ मे प्रगतिशील युग का आभास होने लगा परन्तु उसमे प्रगतिवादी दर्शन की पूर्णत स्थापना न हो सकी थी । इस दृष्टि से पन्त जी की 'युगवाणी' को ही प्रथम प्रगतिवादी काव्य ग्रन्थ का श्रेय प्राप्त हुआ ।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी की 'युगवाणी' तथा उसके अनन्तर की काव्य रचनाओ म प्रगतिवादी तत्व विद्यमान हैं तथा प्रगतिवादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हं । 'युगान्त' मे कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण 'युगवाणी' मे समन्वयात्मकता की ओर परिलक्षित होता हे । पन्तजी की प्रगतिवादी नवीन विचारधारा 'स्वर्णधूलि', 'स्वर्णकिरण' तथा 'अमिता' तक आते-आते एक जीवन दर्शन रूप मे उपलब्ध होती है । इसमे अभिव्यक्ति की प्रौढता एव काव्यात्मक विकास के रूप मे सामाजिक चेतना का नवीन रूप परिलक्षित होता है । कवि की आगे की रचनाओ मे दार्शनिक बोझिलता न होकर प्रयोगात्मकता, प्रौढता तथा बौद्धिकता के दर्शन होते है । श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के काव्य-सग्रहो मे भी प्रगतिवादी विचारधारा के तत्व है तथा हिन्दी साहित्य की इस प्रवृत्ति ने उनके काव्य-सग्रहो मे सगृहीत यथार्थवादी कविताओ से प्रेरणा ग्रहण की । प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत 'कुकुरमुत्ता' मे सगृहीत अधिकाश रचनाएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है जो अपने नवीन रूप की ओर सकेत करती है । 'निराला' जी का दृष्टिकोण यथार्थ के प्रति व्यग्य प्रधान है तथा यथार्थ से समझौता न होने पर उनका निराशावादी दृष्टिकोण भी अभिव्यक्त हुआ है ।

उत्तर छायावाद युग के कवि श्री भगवतीचरण वर्मा की कविताओ मे प्रगतिवादी तत्वो की प्रधानता है । इसके अतिरिक्त प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्ति की दृष्टि से डा० रागेय राघव के 'पिघलते पत्थर' काव्य-सग्रह मे जन क्रान्तिकारी विचारधारा के

---

१ 'हिन्दी साहित्य कोश', प्रधान सपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ४६८ ।

रूप मे जन चेतना का आह्वान किया गया है। श्री नरेन्द्र शर्मा के 'अग्निशष्य' शीर्षक काव्य-सग्रह मे समकालीन जीवन की यथार्थता के प्रति जागरूकता तथा नये युग की नयी समस्याओ की ओर सकेत किया गया है। श्री रामेश्वर शुक्ल 'अचल' की कविताओ मे परम्परागत रूढियो और मान्यताओ के विरुद्ध नवीन चेतना का आह्वान है तथा नये युग का स्वर मुखर हुआ है। श्री रामधारी सिह 'दिनकर' के 'इतिहास के आँसू' 'धूप, और धुँआ' आदि काव्य-सग्रहो मे प्रयोगात्मकता के साथ मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन हुआ है। डा० शिवमगल सिह 'सुमन' के 'पर आँखे नही भरी' शीर्षक काव्य-सग्रह मे सगृहीत कविताओ मे कवि का क्रान्तिकारी स्वर मुखरित हुआ है। श्री केदारनाथ अग्रवाल की 'नीद के बादल' तथा 'युग की गगा' शीर्षक काव्य-सग्रह, श्री नागार्जुन का कृषक और श्रमिको से सम्बन्धित समस्या प्रधान काव्य-सग्रह, श्री त्रिलोचन का 'धरती' काव्य-सग्रह, डा० महेन्द्र भटनागर का 'अभियान', 'जिजीविषा', 'टूटती शृखलाएँ', 'तारो के गीत', 'नई चेतना', 'बदलता युग', 'मधुरिमा', 'विहाग' तथा 'सतरण' आदि काव्य-सग्रह भी प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत उल्लिखित किये जा सकते है। उपर्युक्त कवियो के अतिरिक्त भी अनक ऐसे कविगण है जिन्होने प्रगतिशील काव्य प्रवृत्ति मे अपना समर्थ योगदान दिया है। उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह आभासित होता है कि प्रगतिवाद युगीन काव्य साहित्य मे जन जीवन की प्रमुख समस्याएँ, समसामयिक परिस्थितियो का चित्रण, कविता मे बौद्धिक तत्व की प्रधानता, क्रान्ति एव परिवर्तन की सशक्त भावना, सास्कृतिक समन्वय, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना, मानवतावाद की महत्ता, स्त्री स्वतत्रता, काव्य मे कला पक्ष का नवीन रूप आदि प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियो का समावेश हुआ है। ये तत्व श्री शातिप्रिय द्विवेदी लिखित 'भिखारिणी' जैसी कविताओ मे बहुलता से विद्यमान मिलते हैं, जिनका आगे उल्लेख किया जायगा।

द्विवेदी जी के काव्य साहित्य का सैद्धान्तिक विश्लेषण

सिद्धान्तत काव्य के विश्लेषण का आधार रस, अलकार, भाषा, शैली, छन्द, प्रकृति वर्णन, प्रेम भावना, यथार्थात्मकता तथा अनुभूत्यात्मकता आदि तत्व होते हैं। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी ने जो कविताएँ लिखी है वे प्रधानत 'नीरव' तथा 'हिमानी' मे सगृहीत है। इन दोनो का रचना काल द्विवेदी जी के गद्य साहित्य की भाँति लगभग चार दशक का प्रसार नही रखता है। इसके विपरीत यह समस्त कविताएँ द्विवेदी जी ने अपने साहित्य रचना के प्रारम्भिक लगभग दस वर्षो मे ही लिखी है। इसलिए जहाँ एक ओर इनमे कवि की कोमल कल्पनाएँ और सरल भावनाएँ सहज रूप मे अभिव्यजित हुई है वहाँ दूसरी ओर वैचारिक प्रौढता का स्पष्ट अभाव भी इनमे मिलता है। नीचे विभिन्न काव्य तत्वो के आधार पर द्विदीवे

जी के काव्य का जो सैद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है उससे यह कथन स्पष्ट हो जायगा कि द्विवेदी जी के काव्य मे अनुभूत्यात्मकता की विशेष रूप से प्रधानता है।

[१] रस योजना प्राचीन आचार्यो ने रस को काव्य की आत्मा माना है तथा इसे ब्रह्मानन्द सहोदर के रूप मे स्वीकार किया है। रस की निष्पत्ति विभाव अनुभव तथा व्यभिचारी भावो के सयोग से होती है। दृश्य अथवा श्रव्य काव्य मे व्यक्ति रसानुभूति की अलौकिकता मे प्रवेश कर आत्मलीन हो उठता है, उसमे रस की परिल्पना की जाती है। द्विवेदी जी ने अपने काव्य साहित्य मे रस को स्थान दिया है। उनके सपूर्ण काव्य साहित्य मे उनकी प्रकृति के प्रति अनुरागिनी प्रवृत्ति के दर्शन होते है। उनके काव्य साहित्य मे शृगार, शान्त और करुण रस की योजना अधिकता से हुई हे परन्तु यत्र-तत्र वात्सल्य और वीर रस की कविताएँ भी मिलती है। शृगार रस की कविताओ मे कवि ने सयोग शृगार की अपेक्षा वियोग शृगार को प्रधानता दी है। सयोग शृगार मे भी कवि ने सीमा का अतिक्रमण नहीं किया है। कही भी अश्लीलता नही दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति के विभिन्न व्यापारो से प्रभावित मनोभावो के अनुकूल ही कही सयोग और कही वियोग शृगार का रूप अकित हुआ है। कवि की शान्त रस से पूर्ण कविताओ मे उनकी बोझिल दार्शनिकता प्रतिबिम्बित हुई है। कवि का रुझान आध्यात्मिकता की ओर हुआ है।

सयोग शृगार निर्निमेष दोनो के लोचन
छोड रहे दोनो उच्छ्वास
पखडियो के पख खोल
उड गये प्राण बन मधुर सुवास ! (हिमानी ४)

वियोग शृगार बढते ही जाते है सखि !
मेरे ये जले फफोले
मैं इनकी तीव्र जलन को
कैसे शीतल कर पाऊँ ? (नीरव २८)

शान्त रस दो हृदयो मे शात भाव से
करता है जो प्रेम निवास
वही अचल है, भले सचल हो
रवि शशि का भी अमिताभास ! (नीरव १०)

करुण रस कहाँ गई अब इन अधरो की
कलियो सी प्यारी मुस्कान !
शुष्क कठ मे आज कहाँ सखि
जीवन का मधु गुजित गान ! (हिमानी ९)

वात्सल्य रस तुम्ही विश्व के भावी गायक
तुम्ही सृष्टि के कवि छविमान

इस अस्फुट तुतली वाणी मे
जीवन के चिरमगल गान । (हिमानी ७)

वीर रस इसी शून्य मे कभी हुआ था वीरो का वह पद सचार
जिससे कातर प्राणो से भी निकल उठा भीषण हुकार !
मिला यही था अर्घ्य भैरवी को शोसित की धारो से
भैरव राग बजा था शस्त्रो की झनझन झनकारो से ! (हिमानी २१)

[२] **अलकार योजना :** भाषा के अलकरण, उसकी पुष्टि एव राग की परिपूर्णता तथा भावो की यथार्थ अभिव्यक्ति मे अलकारो का प्रयोग कवियो के चेतन मस्तिष्क की परिचायक है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे अलकारो का प्रयोग बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के सयत रूप मे हुआ है। अनुप्रास अलकार का प्रयोग अधिकता से हुआ है परन्तु वह भावो की सुन्दरता को सुन्दरतर रूप प्रदान करता है। छायावाद से प्रभावित होने के कारण द्विवेदी जी के काव्य मे छायावादी विशेषताएं भी लक्षित होती हैं जो वस्तुत पाश्चात्य प्रभाव के रूप मे मान्य है। यही कारण है कि उनके काव्य साहित्य मे विभिन्न अलकारो, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, शब्द शक्तियो के साथ मानवीकरण तथा विशेषण विपर्यय का रूप प्रतिबिम्बित हुआ है। उनमे प्रस्तुत मे अप्रस्तुत विधान की भी सुन्दर योजना हुई है। द्विवेदी जी की कविताओ मे अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, उपमा अन्योक्ति तथा स्मरण अलकारो का प्रयोग हुआ है।

अनुप्रास वही गीत अकित है, नीरव
ओसो के उज्ज्वल मन मे
उसको ही दुहराते खग कुल
पुलका कुल कल कुजन मे ! (हिमानी १)

रूपक अरी अनाचिनि ! अरी विषादिनि !
क्षुब्ध न हो तू यो तत्काल
भाग्य चन्द्र की शीतल किरणे
कभी करेगी तुझे निहाल ! (नीरव ३१)

उत्प्रेक्षा मेरे चुम्बन के सिचन से
खिले तुम्हारा कोमल गात
ज्यो दिनकर से चुम्बित होकर
खिल खिल उठते है जलजात ! (हिमानी ७)

उल्लेख तुम्ही विश्व के भावी गायक
तुम्ही सृष्टि के कवि छविमान ! (हिमानी ७)

अतिशयोक्ति महाबली हो महाकाल ! तम
विश्व तुम्हारा कारागार

मुक्त हो गया किन्तु कौन यह
बन्दी बना तुम्हे लाचार ?

अमर प्रेम का विहग देख लो,
तोड तुम्हारे पिंजर द्वार,
मुक्त देश मे, मुक्त पख से
करता है स्वच्छद विहार ! (हिमानी १६)

विरोधाभास सजल हृदय मे चमक रही ये
ज्वालाये क्यो बारम्बार ?
सघन स्वरो मे घहर रहा यह
किस पीडा का हाहाकार ? (हिमानी १७)

उपमा तुम पग पग पर पडे हुये हो
मेरे प्रिय के दूत समान । (नीरव ४)

फैला देता है शशि अपनी
धुली चाँदनी का साया
युगल प्रेमियो की समाधि पर
मानो करुणा की छाया ! (हिमानी २०)

अन्योक्ति . बेसुध हो किस मधु मदिरा मे
यह कैसा है मनोविकार ?
चार दिनो की चटक चाँदनी
उस पर हो क्यो यो बलिहार ?

लोहे तक को जग लगाकर
कुटिल काल कर देता नाश
फिर, फूलो सी कोमल छवि की
कितने दिन रखते हो आस ? (नीरव १०)

स्मरण निरखता हूँ जब प्रात.काल
अरुण रवि की मृदु छटा विशाल
तुम्हारी अरुण काति का ध्यान
मुझे आ जाता तब तत्काल ! (नीरव १५)

मानवीकरण : अहो तुम भी रोती हो आज, व्यथा के गाकर व्याकुल गान
कहो किस निर्दय ने सुकुमारि ! तुम्हारे बेधे है ये प्रान ?
व्यथा मे भी है भरी मिस, तभी तो मृदु मधुमय है गान
बसी की क्रन्दन ध्वनि भी हाय, सुरीली बन जाती है तान !
(नीरव २९)

विशेषण विपर्यय इन्ही आखो मे नित निरुपाय
उमड आते है नीरव गान । (नीरव २९)

विशेषण निपर्यय का रूप द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे अन्यत्र भी परिलक्षित होता है । कवि ने प्रकृति चित्रण एव मनोभावो की अभिव्यक्ति मे उपमानो के चयन मे कही अपनी नवीनता प्रिय प्रवृत्ति का परिचय दिया है और कही रूढिग्रस्त परम्परा का ।

[३] **भाषा, शैली एव छद** श्री शातिप्रिय द्विवेदी मूलत छायावाद युग के कवि हैं । अतएव उनके काव्य मे इस युग की विशेषताएँ नि सर्गत विद्यमान मिलती है । छायावाद के प्रमुख कवियों विशेष रूप से पन्त के काव्य के समान भाषा-शैलीगत विशेषताए मिलती हैं । द्विवेदी जी की धारणा है कि काव्य मे भाषा मुख्यत भावो की अभिव्यक्ति का साधन है । इस दृष्टि से उसे भावो के समान ही समृद्ध होना चाहिए । उनकी धारणा है कि भाषा का निर्माण मनुष्य के द्वारा होता है जब कि भावो की सृष्टि का आधार प्रकृति होती है । एक कवि अपनी भावात्मक विविधता के अनुसार भाषा को सामर्थ्य बनाता है , यदि वह इसमे सफल होता है तब उसके काव्य का कलात्मक सौन्दर्य बढ जाता है । इस सन्दर्भ मे यदि द्विवेदी जी की काव्य-भाषा पर विचार किया जाये तो यह ज्ञात होगा कि उनकी भाषा मे शब्द योजना मे चित्रात्मकता, स्वरमयता, माधुर्य और ध्वन्यात्मकता के गुण विद्यमान है । बहुत सजग भाव से द्विवेदी जी ने ऐसे शब्दो का बहिष्कार किया है जो काव्य मे रुक्षता, नीरसता अथवा दुरूहता उत्पन्न करते है । सस्कृत के शब्दो का प्रयोग उन्होने अवश्य किया है परन्तु यह वही हुआ है जहाँ भावात्मक गम्भीरता अपेक्षित होती है । अन्यथा कवि ने अधिकाशत कोमल कान्त शब्दावली का ही प्रयोग किया है । कही-कही पर भाषा चित्रात्मक हो गयी है और कवि की कल्पना को पाठक के समक्ष चित्रबद्ध रूप मे उपस्थित कर देती है । इस दृष्टि से 'हिमानी' मे सगृहीत सरिता से सम्बन्धित कविता यहाँ पर उल्लिखित की जा सकती है जिसमे कवि ने मानवीकरण के आधार पर आध्यात्मिक दृष्टिकोण को व्यजित किया है । यह कविता भाव तथा व्यजना की दृष्टि से सुमित्रानन्दन पन्त लिखित 'नौका विहार' जैसी कविताओ से पर्याप्त साम्य रखती है । इसमे भी सरल शब्द चयन ने भावात्मक सौन्दर्य मे वृद्धि कर दी है । उदाहरणार्थ—

वह टलमल टलमल सरिता रे
बहती रहती है अविरल
वह कल कल छल छल सरिता रे
गाती रहती है प्रतिपाल

नही जानती वह किस पथ से
बहता किस दिशि मे जीवन
नही जानती वह किस प्रिय से
मिलने जाता उसका मन !

सगीतात्मकता के प्रभाव से युक्त लालित्यपूर्ण शब्द योजना के साथ सूक्ष्म सकेतात्मक और प्रतीकात्मक शैलियो के सम्मिश्रण ने द्विवेदी जी की कविता को प्रभावशाली स्वरूप प्रदान किया है। जहाँ तक छन्द योजना का सम्बन्ध है, द्विवेदी जी के विचार से भावो की गति भी छन्द मे सहायक होती है। उन्होने जहाँ एक ओर 'उपक्रम', 'पद अक', 'तितली' तथा 'शरच्चन्द' जैसी कविताओ मे तुकान्त छन्दो का प्रयोग किया है वही दूसरी ओर 'अधखिली कली से' 'यमुने' तथा 'मनोवेग' जैसी कविताओ मे मुक्त छन्दो को ध्वनि मुक्त न करके केवल लय प्रवाह से मुक्त किया है, क्योकि उनकी धारणा है कि मुक्त छन्द भावनाओ के सहज उद्रेक मे सहायक होते है।

[४] **प्रकृति वर्णन** काव्य मे प्रकृति चित्रण की परम्परा आदि काल से परिलक्षित होती है परन्तु प्रकृति के निरन्तर बदलते रूपो के साथ कवियो के मानस एव अभिव्यक्ति की पद्धतियो मे भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। आधुनिक युग के काव्य मे प्रकृति चित्रण का रूप अपनी पूर्व पीठिका से सर्वथा भिन्न है। आधुनिक युग के कवियो के समक्ष प्रकृति अपने विभिन्न रूपो मे अवतरित हुई है। उनकी दृष्टि मे प्रकृति मानव की चिरसगिनी है, वह मानव भावनाओ के साथ ही हसती खेलती तथा वेदना से उद्वेलित भी होती है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी प्रकृति से प्रभावित होकर उसके प्रति एक जिज्ञासा, कौतूहल, भावुकता तथा उत्कण्ठा के अतिरेक एव मानवीय प्राकृतिक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर काव्य जगत् मे आविर्भूत हुए। प्रकृति उन्हे निरन्तर अपनी ओर आकृष्ट करती रहती थी। उन्होने सकेत किया है कि 'मेरी वृत्ति कोमला है। बचपन मे प्रकृति की जिस निर्द्वन्द्वता और प्रफुल्लता के वातावरण मे खेलता था उसे ही कवि और काव्य मे देखना चाहता था।' अपनी इसी कोमल, सरस और हार्दिक मनोवृत्ति के कारण द्विवेदी जी हिन्दी साहित्य के काव्य जगत मे सबसे पहले आए। उनके काव्य मे छायावाद की विभिन्न विशेषताओ के दर्शन होते है। कवि शैशव के सारल्य एव किशोरावस्था की उमगो से अधिक अभिभूत हुआ है और प्रकृति के माध्यम से उसने अपनी इन वृत्तियो का प्रत्यक्षीकरण किया है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे प्रकृति चित्रण के विभिन्न रूपो के दर्शन होते है, कही उन्होने प्रकृति को विशुद्ध आलम्बन के रूप मे गृहीत किया है तो कही उद्दीपन के रूप मे। आलम्बन के रूप मे कवि ने बहती हुई सरिता का शुद्ध रूप से यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है·

वह टलमल टलमल सरिता रे
बहती रहती है अविरल
वह कल कल छल छल (सरिता) रे
गाती रहती है प्रतिपल।[१]

द्विवेदी जी ने प्रकृति के उद्दीपन रूप को अपने काव्य साहित्य मे विशिष्ट स्थान दिया है।

---

१. 'हिमानी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० ३, पृ० १३।

कवि ने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन रूपो के अतिरिक्त प्रकृति को निर्जीव न मानकर उसे सजीव चेतन तथा मानव क्रियाओ से पूर्ण माना है। काव्य मे प्रकृति मे नानव के मनोभावो की अभिव्यक्ति है। कवि ने प्रकृति के मानवीकरण के द्वारा अमूत को मूर्त रूप देने का अत्यन्त सजीव एव मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है—

उस सूखे सूने तट पर
बिखरे है बालू के कण
क्या टूटे हुए हृदय से
गिनते वे जीवन के क्षण ?
व्याकुल समीर मे बहता
उनके प्राणो का क्रन्दन
पतझड की सासो सा ही
उनके उर मे भी स्पन्दन ।[1]

प्रस्तुत मे अप्रस्तुत का विधान छायावादी कवियो की प्रमुख विशेषता है। द्विवेदी जी ने भी अपने काव्य-सग्रह 'हिमानी' मे इस विधान को अपनाया है। 'हिमानी' मे 'जुगनू की बात' इस तथ्य का प्रमुख उदाहरण है, जिसमे कवि जुगनू के माध्यम से अपने हार्दिक भावो को अभिव्यक्त करता है

नदिया तो पीछे लहराती
लौट चलूँ फिर क्या आली !
पर पथ तो मैं भूल गयी हूँ
औ अधियारी है काली ।
लौट चलू तो कलश कहा है
कैसे भर लूगी पानी
रीते हाथो अब सखि कैसे
होगी प्रिय की आगवानी ?[2]

द्विवेदी जी ने प्रकृति मे उस अलौकिक शक्ति का आभास किया जो प्रकृति के कण-कण मे तथा मानव जीवन मे अपने गीत लिख कर अपनी प्रतिष्ठा कर जाती है। कवि ने उस अलौकिक शक्ति से पूर्ण प्रकृति को कही नारी के रूप मे रूपायित किया तो कही पुरुष के रूप मे। नारी रूप मे कवि ने मा का रूप श्रेष्ठ माना है। प्रकृति पुरुप के रूप होने पर कवि स्वय नारी हो जाता है। प्रकृति के पुरुप रूप को कवि ने अपनी अनेक कविताओ मे स्थान दिया है जिसमे 'हिमानी' की दसवी और ग्यारहवी कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मा रूप मे प्रकृति कवि के मानस मे श्रद्धा की

---

१. 'गगन के प्रति' (हिमानी), श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० १७, पृ० १६।
२ 'हिमानी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० १०, पृ० २७।

पाती है जो प्रकृति के जड-चेतन मे अपने गीतो को लिख जाती है। 'हिमानी' की उन्नीसवी कविता मे मा का अत्यन्त प्राजल रूप व्यक्त हुआ है। कवि उससे तादात्म्य स्थापित कर उसमे लय होकर केवल उसी की महिमा के गीत गाना चाहता है। अन्यत्र कवि प्रकृति मे ईश्वर को आभासित करता है .

तुम आती हो फिर धीरे से
गोधूली की बेला मे
वही गीत लिख-लिख जाती हो
जगमग उडगन स्पन्दन मे।

अर्द्ध निशा मे तपस्विनी भी
लहरा निज नीरवपन मे
वही गीत भर देती, मेरे
सूने स्वप्निल जीवन मे।[1]

कवि प्रकृति के प्रति विशेष रूप से मोहासिक्त है। वह प्रकृति से ही जीवन मे चेतना का सचार करना चाहता है। कवि मानव के प्राकृतिक जीवन की ओर अनुरक्त है। प्रकृति वर्णन मे कवि ने प्रकृति के करुण एव उज्ज्वल रूपो को ही प्रस्तुत किया है।

[५] प्रेम-भावना : द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे प्रेम के लौकिक एव अलौकिक दोनो रूप सर्वत्र व्याप्त है। कवि ने स्थूल प्रेम का चित्र केवल प्रकृति के मनोरम दृश्यो को कल्पना की उडान से अभिव्यजित कर के प्रस्तुत किया है परन्तु कवि के इस पार्थिव मनोभाव मे अश्लीलता का आभास नही होता है। प्रकृति चित्रण मे कवि ने सयोग शृंगार तथा वियोग शृगार के माध्यम से स्थूल प्रेम का रूप अकित किया है। सयोग शृगार के प्रेम गीतो मे अनेक मानवीय क्रियाओ, सकोच, लज्जा आदि, के बाद मधुर मिलन का वातावरण प्रस्तुत किया गया है वही वियोग शृगार मे निराश हृदय का असफल प्रेम, अश्रु, उच्छ्वास, निराशा आदि का मार्मिक एव हृदयद्रावक रूप व्यजित हुआ है। अधिकाश कविताओ मे कवि ने अलौकिक प्रेम का चित्र अकित किया है। यही कारण है कि कही पुरुष रूप मे और कही स्त्री रूप मे कवि का मानस कभी अपने प्रियतम और कभी अपनी प्रेयसी से मिलन के लिए उल्लसित हो उठता है। 'हिमानी' मे 'लता कुज से झाँक रही है, एक सुमन बाला सुकुमार' से कवि की प्रेम भावना का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वह छायावादी कवियो विशेषत. सुमित्रानन्दन पन्त से पर्याप्त साम्य रखता है। इसी काव्य में ग्यारहवी कविता मे कवि ने अपने प्रिय को सम्बोधित करके उसकी स्मृति के आधार पर जो प्रेम भावनाअभिव्यक्त की है वह अनुभूत्यात्मकता की दृष्टि से जयशकर प्रसाद के 'आँसू' से पर्याप्त साम्य रखती है। इसकी

---

१. 'हिमानी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० १०।

तुम आये प्रिय ! हाँ ले आये
वह मेरा सुख स्वप्न विलास
मेरी आँखो मे फिर उमडा
नव शोभामय नव उल्लास !

किन्तु हाय, क्यो दो दिन मे ही
तुम भी मुरझा चले अहो
किस विषाद से, किस अभाव से
मुझसे भी कुछ कहो कहो !

जैसी पक्तियाँ 'आँसू' मे अभिव्यजित भावनाओ के समान ही प्रकृति की मानव रूप मे चेतन सत्ता को मुक्त करती है । इस सग्रह की आगामी कविता मे भी कवि ने लौकिक प्रेम व्यजना के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिक परिणति की ओर भी सकेत किया है जिसमे वह अपने प्रिय के साथ शरीर उन्मन से एकाकार होने की अभिलाषा अभिव्यक्त करता है । शातिप्रिय द्विवेदी के काव्य साहित्य मे अभिव्यजित प्रेम भावना का एक अन्य रूप 'नीरव' मे भी दृष्टिगत होता है जो मुख्यत. विशुद्ध आध्यात्मिक स्तर पर व्यक्त हुआ है और जिसमे अदृष्ट की ओर सकेत करते हुए कवि ने निरासक्ति से मुक्त भावनाएँ व्यक्त की हैं । 'नीरव' मे सगृहीत 'निवेदन' तथा 'लता सुहागिन' जैसी कविताओ मे इसे स्पष्टत लक्षित किया जा सकता है ।

[६] **यथार्थात्मकता** श्री शातिप्रिय द्विवेदी के काव्य-सग्रह मे यथार्थ की दृष्टि से रचित अनेक कविताएँ हैं जिनमे कवि ने मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है ।

ससार मे दूसरो की आह और आँसू सब तुच्छ है, परिहास सदृश हैं । इसीलिए कवि ने 'भिखारिणी' शीर्षक कविता मे दीन स्त्री का चित्र प्रस्तुत करके उससे अपने जीवन का सामजस्य स्थापित किया है :

जगती के निर्मम पथिको से
सखि ! रखती हो कैसी आस ?
अपने नीले अचल मे तुम
पाओगी केवल उपहास ।

छोडो उनकी मिथ्या आशा
आओ चले प्रकृति के देश
वही पूर्ण होगी अभिलाषा
जग को दे दो जग का क्लेश ।[1]

अपने तात्कालिक समय के अनुरूप कवि जहाँ प्रकृति प्रागण मे कल्लोल करना चाहता

---

१. 'हिमानी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० १३, पृ० ३३ ।

है वही विश्व-प्रेम और देश-प्रेम को भी विस्मृत नही कर देता है ·

उसे दिया है दिव्य भेट सा
छोहमयी जिस माता ने
अपने को तू अर्पित कर दे
उसके दुख मे, मस्ताने ।

अहो देखता नही कभी क्या
जन्मभूमि यह रोती है
तेरे जैसे वीरो से ही
अपनी चिन्ता खोती है ।[1]

कवि अपने समय की गाधीवादी विचारधारा का पोषक एव समर्थक था । कवि खादी की रुचिता, शुचिता तथा उज्ज्वलता से अधिक प्रभावित होकर खादी के धागो की एकता की कामना वह भारतवासियो से करने लगता है

सरल गरीबो के आँसू सी
खादी तू है शुचि निर्मल
शीतल है तू सन्त हृदय सी
चैत चाँदनी सी उज्ज्वल

तू अपनी निर्मलता से कर
कलुषित हृदयो को निर्मल
औ अपनी उज्ज्वलता से कर
भारत की भावी उज्ज्वल ।[2]

[७] **दार्शनिकता** सस्कृति के आरम्भिक चरणो से ही मानव प्रकृति के अज्ञात रहस्यो के प्रति जिज्ञासु रहा है । इन रहस्यो के उद्घाटन मे ही वह निरन्तर कर्मशील एव प्रयत्नशील होकर उनके गूढ रूपो से आत्मसात् कर सुख का अनुभव करता है । अपने इन्ही सतत् प्रयत्नो के द्वारा वह अपनी उत्कण्ठा को शात कर अनेक तात्विक ग्रन्थियो को प्रत्यनक्ष करता है । कवि प्रकृति के उस अलौकिक सौदर्य एव उसमे किसी अलौकिक शक्ति को आभासित कर उसके प्रति अनुरक्त हो उसी मे लीन हो जाना चाहता है । यह तात्विक ग्रन्थियाँ ही 'दर्शन' के रूप मे प्राचीन काल से साहित्य मे अपने अस्तित्व को बनाये हुए है । परन्तु कालक्रमानुसार परिवर्तित दृष्टिकोण एव परिवर्तित परिस्थितियो के कारण दार्शनिक चिन्तन मे मौलिक अन्तर आता रहा है । हिन्दी साहित्य मे भी इस अन्तर को प्रत्यक्ष लक्षित किया जा सकता है । उदाहरणार्थ मध्ययुगीन सन्तो एव भाक्तो के दार्शनिक चिन्तन तथा आधुनिक युग के छायावादी

---

१ 'नीरव', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० २२ (पथिक)
२ वही, कविता स० २३ (खादी)

कवियो के दार्शनिक चिन्तन मे पर्याप्त वैषम्य परिलक्षित होता है। अपनी प्राचीन रूढि, परम्परागत मान्यताओ से छायावादी कवि मुक्त है। आधुनिक युग की सजग सामाजिक परिस्थिति के कारण इन कवियो की व्यापक जीवन दृष्टि तथा मानववाद की भावना ही अधिक मुखर हुई है। छायावादी कवि ने दर्शन के अवलम्बन पर मानव समाज की समस्याओ का निराकरण करने का प्रयत्न किया है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी भी काव्य के क्षेत्र मे छायावाद से प्रभावित है तथा उन्हे छायावाद के अन्य कवियो के के साथ उल्लिखित किया जा सकता है। कवि ने मानव कल्याण की कामना हेतु काव्य मे दर्शन को एक साधन बनाया है। कवि ईश्वर की ज्योति को सर्वत्र व्याप्त देखकर मानव जीवन की शाश्वत गति को स्वीकार करता है। परन्तु मानव जीवन दुख और सुख से आप्लावित है। वह सुख मे प्रसन्न तथा दुख मे द्रवित हो उठता है, परन्तु कवि का मन्तव्य है कि सुख दुख दोनो को एक रूप मे ही स्वीकार करना चाहिए, कारण

अरे सुख दुख का यह ससार
चाहता सुख दुख का उपहार
बैठ कर किसी प्रेम की डार
सुना दे एक मधुर उद्‌गार।[1]

आत्मा और परमात्मा से सम्बन्धित विचारो को भी कवि अपने काव्य मे स्वीकार करता है। भगवान, सत् चित्त और आनन्दस्वरूप हैं तथा आत्मा उसी का एक अशमात्र है जिसमे ईश्वर अपने रूप मे अवस्थित है। मनुष्य व्यर्थ ही ससार की माया प्रवचना मे उस अलौकिक ईश्वर को खोजता रहता है

तेरे प्रभु का क्रीडागार
तेरे ही मन मन्दिर मे रे,तेरे प्रभु का क्रीडागार।
माया के इस लीलागृह मे खोल विश्व के नेत्र अपार
स्वय छिप गया चतुर खिलाडी, पलक यवनिका के उस पार।
निखिल नयन थक गये खोज कर, मिला न पर उसका आभास
व्यर्थ हो गया रवि शशि ग्रह का राशि राशि यह स्वर्ग प्रकाश !
नेत्रहीन ! क्या तू प्रकाशमय ? तेरा ही तो भाग्य महान्
देख-देख तेरे ही मन मे खेल रहे तेरे भगवान।[2]

कवि ने जहाँ ईश्वर को एक ओर प्रियतम के रूप मे मान कर सुख और दुख को प्रियतम का घन माना है तथा उनसे तादात्म्य होने के लिए स्वय को अनुगामिनी छाया रूप मे माना है—

१. 'हिमानी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० १४, पृ० ३६।
२. वही, पृ० ३८।

जीवन के इस एक तार मे
मेरे भाव अकेले
कहो तुम्हारे बिना बजेगे
कैसे ऐ अलबेले !

मुझे छोड कर जाते हो तुम
कितनी दूर, कहा बोलो,
मै तो हूँ अनुगामिनी छाया
मुझको भी निज सग ले लो ।[१]

वही कवि ने प्रकृति के उदात्त वैभव परम चेतन शक्ति को माँ रूप मे भी निरूपित किया है । ईश्वर के समक्ष मानव उसी का एक लघु रूप है । प्रकृति के प्रत्येक व्यापार मे कवि अपने उस प्रिय रूप ईश्वर को आभासित करता है परन्तु वह ससार से विमुख नही, उसी मे रह कर वह मानवता के उच्च शिखर मे पहुँचना चाहता है । उसे उस देवता की आकाक्षा नही जो नित्य अपने पूजन अर्चन की कामना करता है । कवि कह उठता है—

चिर पाप पुण्य मय है मानव
चिर हास-अश्रु मय जीवन
मानव रह कर मानव से मैं
जोडूँगा चिर अपनापन ।[२]

कवि के समक्ष इस नश्वर और मिथ्या ससार का रूप स्पष्ट है । वह इसी मे लय नही हो जाना चाहता क्योकि समय के अन्तराल मे सभी कुछ नष्ट हो जायेगा ।

[८] **वेदना वाद** . श्री शातिप्रिय द्विवेदी के काव्य साहित्य मे वेदना तथा करुणा का अत्यन्त सूक्ष्म और मार्मिक विश्लेषण हुआ है । उनके गद्यवत शुष्क जीवन मे उनका करुणा-कलित-काव्य हृदय ही मरुस्थल मे ओएसिस के सदृश था अतएव काव्य मे करुणा की धारा प्रवाहित हुई है । कवि के काव्य साहित्य मे वेदना दो रूपो मे अभिव्यक्त हुई है—व्यक्तिगत और समष्टि रूप मे । व्यष्टि रूप में कवि अपने विदग्ध हृदय का भार प्रकृति प्रागण मे ही समाहित करना चाहता है । उसे प्रकृति मे अपना सा-ही निराधार रूप दृष्टिगोचर होता है—

सूने दिगन्त मे बार-बार
मैं रह-रह कुछ उठता पुकार

निज व्यथित हृदय का व्यथित भार
रे, किसके उर मे दू उतार ?

---

१. 'हिमानी' श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० १२, पृ० ३१-३२ ।
२ वही, कविता स० १८ ।

उस पार खडे वे तरु अपार
है मुझे रहे अपलक निहार
इस पार भग्न है यह कगार
मुझसा ही मानो निराधार ।[१]

प्रकृति के वभिन्न कार्य व्यापारो की मानव अपने मनोभावो के अनुरूप ही अभिव्यजना करता है । छायावादी कवियो की यह एक प्रमुख विशेषता है कि प्रकृति भी उनके दुख-सुख के साथ हर्षित, उन्मादित तथा दुखित रूप मे आभासित होती है । 'नीरव' की 'अधखिली कली से' शीर्षक कविता मे कवि ने विकसित फूल की मादकता एव मुरझाये फूलो की विदग्धता के चित्रण के माध्यम से अपने जीवन की करुण अनुभूतियो को अभिव्यक्त किया है .

झझा के झोको मे उडकर
भरती तू क्यो दीर्घ उसास ?
तुझे स्नेह से आलिगन कर
चलती कैसी दग्ध वतास ?[२]

परन्तु व्यथित और सिसकते हुए प्राणो से नि सृत गान ही ससार के लिए सुमधुर तथा सुरीले हो जाते है । समष्टि रूप मे कवि 'भिखारिणी' के प्रति करुणा से प्लावित हो जाता है और 'गगन के प्रति' भी उसका हृदय द्रवित हो उठता है जिसमे युगो-युगो के दुखो का इतिहास अकित होता है । वह व्यथित हो उठता है—

हाय तुम्हारे उर दर्पण मे
छाई क्या जग की छाया ?
सुख-दुख के मधु औ, निदाघ ने
उसको विकसा झुलसाया ।[३]

प्रकृति मानव के मनोभावो की अभिव्यक्ति मे सहायक होती है । कवि सृष्टि के कण-कण मे अपने व्यथित हृदय की वेदना का आभास पाता है । वेदना की इस विस्तृत रूपरेखा से वह रोमाचित हो वेदना को अपनी प्रिया रूप मे ही देखने लगता है

तू मेरी है प्रिया, वेदने ! मै तेरा चिर प्रियतम
बालकाल से परिचित है हम जो तम से दिन, दिन से तम ।
बीत गया वह बाल काल आलि ! अब यौवन का छाया राग,
आ, कुसुमो सा हृदय कुज मे सज अपने नूतन शृगार
प्रिये ! परस्पर आलिगन कर वहन करे हम जीवन भार ।[४]

---

१. 'हिमानी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० ६, पृ० १८ ।
२ 'नीरव', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० ३१ (बालुके) ।
३ 'हिमानी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० १७ (गगन के प्रति), पृ० ४३ ।
४ 'नीरव', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० २७ (वेदना से) ।

कवि ने मानव जीवन मे सुख-दुख के समन्वय को स्वीकार किया है। मानव सुख मे पुलकित तथा दुख मे द्रवित एव पीडित हो उठता परन्तु कवि की दृष्टि मे सुख-दुख उस चिर सुन्दर ईश्वर की अमर साधना के साधन मात्र है। इसीलिए तो कवि सुख और दुख मे अपने प्रियतम के मनोभावो के अनुरूप ही छवि को आभासित करता है—

दुख मे आता है वह प्रियतम
फैला कर निज करुणा कर
सुख मे गाता है वह निरुपम
अधरो पर निज मुरलीधर।
मेरे सुख मे सुन्दर की छवि
उज्ज्वलतर से उज्ज्वलतर
मेरे दुख मे प्रियतम की छवि
कोमलतर से कोमलतर।[1]

इस प्रकार द्विवेदी जी ने जहा अपने काव्य साहित्य मे विदग्धहृदय की भावुकता, व्याकुलता तथा परिणामस्वरूप करुणा की ओजस्विनी धारा को प्रवाहित किया है वही दूसरी ओर उन्होने सासारिक मानव जीवन मे सुख-दुख के अस्तित्व को स्वीकार कर उसकी समन्वयात्मकता एव समरसता से ग्रहण करने की प्रवृत्ति को निर्दशित किया है।

शातिप्रिय द्विवेदी की काव्य क्षेत्रीय उपलब्धियाँ

प्रस्तुत अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी की काव्य कृतियो का समकालीन हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि मे जो विश्लेषण किया गया है वह इस क्षेत्र मे उनकी उपलब्धियो के साथ प्रतिभा वैशिष्ट्य का परिचय देने मे समर्थ है। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी का आविर्भाव आधुनिक हिन्दी काव्य के छायावाद युग से सम्बन्धित है। इस काल मे जो कवि साहित्य रचना कर रहे थे उनकी विचारधारा पर छायावाद की ही प्रधानता है। द्विवेदी जी की कविता मे जहाँ एक ओर छायावाद के प्रभावस्वरूप कल्पना तत्वो का अधिकता से समावेश हुआ है वहाँ दूसरी ओर वैयक्तिक और सामाजिक चेतना के स्वर भी निहित है। इस दृष्टि से द्विवेदी जी की अधिकाश कविताएँ छायावादी वस्तु तथा शिल्प से न्यूनाधिक रूप से साम्य रखते हुए भी उससे पर्याप्त भिन्न कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी के गद्य साहित्य मे जो सवेदनशीलता और भावनात्मकता विद्यमान है वह उनके कवि हृदय की कोमलता का ही कारण है। ऊपर द्विवेदी जी के काव्य साहित्य के रचना काल के विषय मे इस तथ्य का उल्लेख किया जा चुका है कि वह उनके गद्य साहित्य के पूर्व

१. 'हिमानी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, कविता स० २, पृ० १२।

का कृतित्व है । यद्यपि द्विवेदी जी की लिखी हुई काव्य कृतियो मे 'नीरव', 'हिमानी', 'मधुसचय' और 'परिचय' का उल्लेख मिलता है परन्तु उनकी मौलिक कविताओ के सकलन प्रथम दो ही है । इनमे 'नीरव' मे कवि की १९२४ से लेकर १९२९ तक के मध्य लिखी कविताएँ सगृहीत है जो इस सग्रह मे प्रकाशित होने के पूर्व पृथक रूप से अनेक पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित और प्रशमित हो चुकी थी । 'नीरव' की कविताएँ कवि की प्रारंभिक कालीन कविताएँ होने के कारण कवि की सहज जिज्ञासा, उत्कठा, उत्सुकता, कौतूहल तथा भावुकता से परिपूर्ण है । इनमे विभिन्न मानवीय मनोवृत्तियो की अभिव्यजना है । अधिकाश कविताएँ शृगारिक है परन्तु यत्र-तत्र शात, करुण और वात्सल्य रसो का भी समावेश उनमे मिलता है । 'मलयानिल' तथा 'यमुने' जैसी कविताएँ प्रकृति चित्रण की सौंदर्यमयी भावना को प्रस्तुत करती है तो 'विज्ञापन', 'आकाक्षा' और 'खादी' जैसी कविताएँ आधुनिक जीवन के सन्दर्भ मे कवि के जागरूक चिन्तन की परिचायक हे । इसकी उत्तरकालीन रचनाएँ 'हिमानी' मे सगृहीत है जो विषय विस्तार की दृष्टि से अधिक प्रशस्त कही जा सकती है । प्रकृति चित्रण और सौदर्य भावना के साथ-साथ इसकी अनेक कविताएँ ऐतिहासिक सन्दर्भ मे लिखी गयी है । 'हल्दीघाटी' इसी कोटि की कविता है । इनकी कुछ रचनाएँ जैसे 'अन्धे का गान' इत्यादि दार्शनिक आध्यात्मिक तत्व भी निरूपित करती हैं । द्विवेदी जी की कविताओ का विषयगत वैविध्य समकालीन काव्य प्रवृत्तियो के अनुरूप ही कहा जा सकता है क्योकि इसमे जहाँ एक ओर छायावाद की कोमल कल्पनाएँ एव सौदर्यपरक भावनाएँ अभिव्यजित हुई है वहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध के काल मे भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए किये गये राजनीतिक और क्रान्तिकारी आन्दोलन के सन्दर्भ मे नवीन चेतना के स्वर भी बोलते है । दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि श्री शातिप्रिय द्विवेदी की कविताओ मे छायावाद की भावुकता, साकेतिकता, कोमलता तथा प्रकृति प्रेम आदि तो दृष्टिगत होता है परन्तु धूमिलता, दुरूहता, रहस्यात्मकता आदि का अभाव है । स्वय द्विवेदी जी के विचार से छायावाद की प्रमुख विशेषता यही है कि उसमे हमे सृष्टि के कण-कण मे निहित अन्तरचेतना की अनुरागिनी छाया का आभास मिलता है । इनका यह भी विचार है कि छायावाद मे मध्यकालीन शृगारिक काव्य से रसात्मकता तथा भक्ति काल से आत्मा की तन्मयता लेकर आधुनिक कविता को सरसता प्रदान की है । इस रूप मे छायावाद केवल काव्य कला ही नही है वरन् दार्शनिक अनुभूतियो का निरूपक होकर एक प्राण और एक सत्य भी है, वह एक श्रेष्ठतर अभिव्यक्ति भी है । छायावाद की कविता प्रकृति की मौन भाषा को समझने मे सहायक है तथा वह प्रकृति से मानव के रागात्मक सम्बन्धो को भी परिपुष्ट करती है । द्विवेदी जी की कविता मे प्रमुख छायावादी कवियो की भाँति प्रकृति के नैसर्गिक सौदर्य के मोहक स्वरूप के साथ-साथ एक शारीरिक प्रणय सम्बन्धो की प्रतीक मानवीयता भी मिलती है जिसके कारण सुमित्रानन्दन पन्त के समान उन्हे वह प्रेयसि रूप मे आकृष्ट करती है । छायावादी

कविताओ के साथ ही इस विचारधारा की प्रतिक्रिया रूप मे जन्मे प्रगतिवादी चिन्तन की यथार्थात्मकता ने भी द्विवेदी जी को प्रभावित किया है । यह प्रभाव 'भिखारिणी' जैसी कविताओ के सन्दर्भ मे स्पष्टत लक्षित होता है । यहाँ पर इस तथ्य की ओर सकेत करना असगत न होगा कि द्विवेदी जी की कविताओ मे प्रकृति का चित्रण वात्सल्य और ममता की मूर्ति के रूप मे भी हुआ है जहाँ कवि ने प्रकृति मे नारी को मा के रूप मे देखा है । यह भावना 'हिमानी' की अनेक कविताओ मे दृष्टिगत होती है । सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भी द्विवेदी जी की अधिकाश कविताएँ विभिन्न तत्वो की कसौटी पर कलात्मकता से युक्त प्रतीत होती है । द्विवेदी जी की अधिकाश कविताएँ मुख्यत श्रृगारपरक हैं , परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उनमे वात्सल्य, शात, करुण और वीर रसो का परिपाक भी हुआ है । जहाँ तक अलकार योजना का सबध है द्विवेदी जी ने मुख्यत अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, उपमा, अन्योक्ति, स्मरण, मानवीकरण तथा विशेषण विपर्यय अलकारो का प्रयोग अपनी अनेक कविताओ मे किया है । भाषा के सम्बन्ध मे द्विवेदी जी की धारणा है कि काव्य मे भाषा मुख्यत भावाभिव्यक्ति का साधन होती है और इसलिए उसे भावो के समान ही समृद्ध होना चाहिए। द्विवेदी जी की काव्य भापा मे चित्रात्मकता, स्वर-मयता, माधुर्य और ध्वन्यात्मकता का गुण विद्यमान है तथा रुक्षता, नीरसता एव दुरूहता का अभाव है । द्विवेदी जी की काव्य शैली मे सगीतात्मकता, सकेतात्मकता तथा प्रतीकात्मकता के गुण विद्यमान है । 'उपक्रम', 'पदअक' तथा 'तितली' जैसी कविताओ मे द्विवेदी जी ने यदि तुकात छन्दो का प्रयोग किया है तो 'अधखिली कली से', 'यमुने' तथा 'मनोवेग' जैसी कविताओ मे मुक्त छन्द प्रयुक्त किये हैं। प्रकृति चित्रण के कलात्मक रूप छायावादी कवियो की रचनाओ मे बहुलता से मिलते है । द्विवेदी जी ने 'गगन के प्रति' जैसी कविताओ मे प्रकृति का मानवीकरण करते हुए उसकी बहुरूपात्मक अभिव्यजना की है । छायावादी रोमान्टिकता प्रधान काव्य होने के कारण द्विवेदी जी की कविताओ मे प्रेम के लौकिक और अलौकिक दोनो रूपो की व्यजना मिलती है । द्विवेदी जी की धारणा है कि कवि यथार्थ जगत के कटु अनुभवो के सत्य को, अपने मन और हृदय के सौदर्य को काव्य मे व्यक्त करता है । उनकी यह भी धारणा है कि कवि मानवीय सौन्दर्य से प्रभावित होकर ही प्रकृति के सौदर्य की ओर उन्मुख हुआ है । द्विवेदी जी के काव्य मे प्रेम भावना और सौदर्य भावना का आधार भी द्वयात्मक है और उसे लौकिक तथा ईश्वरीय सौदर्य मे व्यक्त किया गया है । छायावादी विचारधारा के इस प्रभाव के साथ-साथ द्विवेदी जी की कविताओ मे प्रगतिवाद के प्रभावस्वरूप यथार्थ चेतना की निहिति भी मिलती है । यह विशेष रूप से 'विज्ञापन' तथा 'भिखारिणी' जैसी कविताओ मे मिलती हैं । इस युग मे चूकि गाँधी-वादी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर विशेष रूप से प्रभाव पडा है इसलिए 'पथिक' तथा 'खादी' आदि कविताओ के माध्यम से कवि ने इसी जीवन दर्शन को अभिव्यक्त

किया है। छायावाद मे जो दार्शनिकता पूर्णरहस्यमयता मिलती है वह भी द्विवेदी जी की कविताओ मे दृष्टिगत होती है। 'कोलाहल', 'अन्धे का गान', 'बालूके', 'याचना' तथा 'मलयानिल' आदि कविताओ मे दार्शनिकता और रहस्यमयता के साथ आध्यात्मिकता का भी समन्वय मिलता है। सुमित्रानन्दन पन्त आदि छायावादी कवियो के समान द्विवेदी जी की कविताओ मे भी प्रकृति के बहुरूपीय चित्रण का आधार करुण एव वेदनामय भावनाएँ ही हैं। कवि जीवन की करुण और दुखद अनुभूतियो से सवेदनशील बन जाता है और उसके मानस मे मूक करुणा निरन्तर रुदन करती है। इस मन स्थिति मे उसे प्रकृति के विभिन्न कार्य व्यापार समरूप प्रतीत होते है जो उसके दुख मे दुखित भी होते है। यह भावना जयशकर प्रसाद के 'आसू' काव्य मे अभिव्यजित वेदना भाव से साम्य रखती है। इस प्रकार से द्विवेदी जी की काव्य कला और भाव पक्षो की दृष्टि से युगीन पृष्ठभूमि मे वैशिष्ट्य रखता है। छायावाद और प्रगतिवाद के अनेक कवियो से प्रभावित होते हुए भी द्विवेदी जी की काव्य प्रतिभा ने अपने विकास के लिए स्वतन्त्र मार्ग की खोज की है। इस क्षेत्र मे जहाँ अनेक काव्य तत्वो की दृष्टि से उनका काव्य परम्परानुगामी है वहा दूसरी ओर छन्दात्मकता की दृष्टि से उसमे पर्याप्त नवीनता भी मिलती है। द्विवेदी जी ने सहज-रूप मे कविता की परिपूर्णता के लिए भाषा, भाव और रस की अनिवार्यता निर्दशित की है। उनकी इस कसौटी पर भी उनका काव्य खरा सिद्ध होता है। उनकी यह भी धारणा है कि कवि अपने मार्ग का स्वय निर्देश करता है और यह सत्य है कि अनेक प्रेरणाओ और प्रभावो के होते हुए भी द्विवेदी जी ने एक कवि के रूप मे अपने मार्ग का स्वय निर्देश किया है और पूर्व स्थापित स्वार्थों से असम्बद्ध रह कर नवीन रचनात्मक दृष्टि से उसे प्रशस्त किया है। इस दृष्टि से भी उनका काव्य मनुष्य के प्रेम, सहानुभूति, करुणा और ममता आदि आदर्शवादी सद्गुणो का प्रतीक कहा जा सकता है जिसमे यन्त्रवाद के विपरीत मानवीय चेतना का उद्रेक और सचार दृष्टिगत होता है।

उपसंहार : द्विवेदी जी की हिन्दी साहित्य को देन

प्रस्तुत प्रबन्ध के विगत अध्यायो मे किये गए अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर आते है कि श्री शातिप्रिय द्विवेदी की साहित्य क्षेत्रीय उपलब्धियाँ अनेक दृष्टियो से विशिष्टता रखती है। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि हिन्दी के अनेक महान् साहित्यकार द्विवेदी जी के महत्व के विषय मे एकमत हैं और उनकी साहित्यिक उपलब्धियो को स्वीकार करते है। महाकवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने द्विवेदी जी के विषय मे अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि "साहित्य के अतिरिक्त द्विवेदी जी के चिन्तक का रूप भी अपनी एक विशेपता रखता है। ग्राम जीवन के स्वच्छ सरल परिवेश से प्रभावित होने के कारण उनके सस्कारो मे खादी के सूतो की सी एक शुद्धता और सर्वोपयोगिता मिलती है।" आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के विचार से वे "शान्त, निच्छल, बुद्धिजीवी थे। प्रत्येक साहित्यिक को वे अपनी बिरादरी का सदस्य मानते थे और उसके साथ स्नेहसपृक्त बिरादराना व्यवहार करते थे। हिन्दी-सेवियो की वह पीढी और उनकी वह भूमिका अब समाप्त प्राय है। वे उन व्यक्तियो की माला की अन्तिम गुरिया थे।" सरल और सहज व्यक्तित्व वाले प० दुर्गादत्त त्रिपाठी ने उनके विषय मे जो उद्गार प्रकट किये हैं वे उन्होने प्रस्तुत प्रबन्ध की लेखिका को भेजे गए एक पत्र मे लिखे है जिसे परिशिष्ट के अन्तर्गत उद्धृत किया जा रहा है। कविवर डा० शिवमगल सिंह 'सुमन' ने उनके महत्व का स्वीकरण करते हुए लिखा है कि " 'हिन्दी साहित्य के नवोन्मेषी जागरण काल के सवाहको मे शान्तिप्रिय जी का नाम अग्रगण्य है। जीवन साधन की समुचित सुविधाओ से वचित रहने पर भी कणादि की भाँति उन्होने प्राचीन कवियो की परम्परा को पुनर्जीवित और प्रतिष्ठित किया है। उनकी वाणी मे ऋचाओ की पवित्रता और आरती की समुज्ज्वलता है।" वयोवृद्ध साहित्य और कला चिन्तक श्री रायकृष्ण दास ने द्विवेदी जी का हिन्दी साहित्य मे स्थान निर्धारण करते हुए बताया है कि "भारतेन्दु काल से आज तक हिन्दी मे एक से एक लेखक हुए है और हो रहे हैं, होते रहेगे। तभी तो हिन्दी कहाँ से कहाँ पहुँच गई और दिन-दिन उठती ही जायगी। किन्तु लेखको के इन भारी समुदाय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी का स्थान अद्वितीय है। उन्हे अन्य किसी देशी या विदेशी भाषा का सम्बल नही, उनकी उपज्ञा ही उनका निर्माण करती आई है। ऐसे मौलिक विचार वाले साहित्यिक विरले ही होते है।" कविवर डा० हरवशराय बच्चन ने द्विवेदी जी का हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे महत्व निर्दिष्ट करते हुए लिखा है कि "द्विवेदी जी मेरे प्रिय लेखको मे से है। इसमे कोई अतिशयोक्ति नही है कि

हिन्दी समालोचना को सृजन की सरसता देने का सर्वप्रथम कार्य द्विवेदी जी ने ही किया है ।" हिन्दी के मूर्धन्य समालोचक डा० नगेन्द्र ने द्विवेदी जी की साहित्य मर्मज्ञता के विषय मे लिखा है कि "शातिप्रिय जी को साहित्य के मर्म की जैसी परख है वैसी कम आलोचको को है । परिमाण और गुण दोनो की दृष्टि से हिन्दी आलोचना के विकास मे उनका योगदान अक्षुण्ण है । उनकी मार्मिक रचनाओ के अभाव मे छायावादी काव्य का रूप हिन्दी के सहृदय समाज तक सप्रेषित न हो पाता । ऐसे आलोचक कम हैं जिनकी समीक्षा शैली भी आलोच्य काव्य और आलोचक के हृदय रस से इस प्रकार मधुसिक्त हो उठती है ।" और इन सबसे ऊपर आधुनिक युगीन हिन्दी काव्य के स्तम्भ स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने द्विवेदी जी के विषय मे जो उद्‌गार व्यक्त किये हैं वे मर्मपूर्ण हैं "शातिप्रिय, सकुशल रहो तुम काटो के फूल, मधु सौरभ तुमने दिये लिए सहज सौ शूल ।" इन मन्तव्यो का पारायण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी जी के साहित्य के अध्ययन की हिन्दी मे अत्यधिक आवश्यकता थी । लेखिका को इस बात का सतोष है कि उसके द्वारा इस दिशा मे सर्वप्रथम प्रयास किया जा रहा है, भले ही वह नगण्य हो ।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के जीवन वृत्त का उल्लेख करते हुए पीछे यह सकेत किया जा चुका है कि उनका जीवन अनेक सघर्षों मे व्यतीत हुआ । काशी मे उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा साहित्यिक वातावरण इस प्रकार का था कि उनके सस्कार भी उसी प्रकार के बन गए । बडी बहिन के वात्सल्य की जो आचलिक छाया द्विवेदी जी के शैशव काल से ही रही थी, द्विवेदी जी ने 'पथचिन्ह' तथा 'परिव्राजक की प्रजा' मे उनके प्रति जो आभार और कृतज्ञता ज्ञापित की है वह उस काल की मर्मस्पर्शी स्मृतियो का प्रभावशाली चित्राकन करती है । द्विवेदी जी ने अपने जीवन से सम्बन्धित जो वृत्तात प्रस्तुत किया है उसमे प० रामनारायण मिश्र का भी उल्लेख आवश्यक है जिन्होने उनका शातिप्रिय नाम रखा, जिसे द्विवेदी जी ने नतमस्तक होकर आशीर्वाद के साथ शिरोधार्य किया और इसी नाम से वह साहित्य के क्षेत्र मे विख्यात हुए । वास्तव मे यह नाम द्विवेदी जी के गुणो के भी अनुकूल था । द्विवेदी जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि बचपन मे नगर और ग्राम मे निरन्तर आवागमन के कारण उन पर नागरिक और ग्रामीण वातावरण का सयुक्त प्रभाव पडा है । एक ओर उनके व्यक्तित्व पर काशी के गम्भीर, साहित्यिक वातावरण का प्रभाव पडा तो दूसरी ओर प्रकृति के प्रागण मे किसी अदृश्य शक्ति एव चेतना के अस्तित्व के सकेत भी आभासित हुए । परन्तु इस सब के होते हुए भी स्वाभाविक निश्छलता और जीवन के कठोर यथार्थ के वैरूप्य ने उनके स्वास्थ्य को खोखला बना दिया । उदर रोग की भयानक अवस्था ने उन्हे जर्जर बना दिया और यही उनकी मृत्यु का भी कारण बना । उनका सारा जीवन साहित्य प्रेम और आदर्श का प्रतीक है । आत्म तल्लीनता उनके आत्म व्यजना प्रधान दृष्टिकोण का कारण है । द्विवेदी जी का साहित्यिक जीवन छायावाद काल से

सम्बन्धित है। उनके सुकुमार स्नायुओ को कोमल कविताओ के गुनगुनाने से प्रेरणा मिली और उनका काव्यानुराग जाग्रत हुआ। प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी के सपर्क से यह वृत्ति निरन्तर विकसित होती रही। इनके अतिरिक्त द्विवेदी जी ने अन्य अनेक महानुभावो से भी प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया। अपने जीवन काल मे द्विवेदी जी ने जिन विविध विषयक कृतियो का प्रणयन किया उनमे 'परिचय', 'नीरव', 'हिमानी', 'मधुसचय', 'मोतियो की लडी', 'हमारे साहित्य निर्माता', 'साहित्यिकी', 'सचारिणी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'पथचिन्ह', 'जीवन-यात्रा', 'ज्योति विहग', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान', 'दिगम्बर', 'साकल्य', 'धरातल', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'चारिका', 'वृन्त और विकास', 'समवेत', 'कवि और काव्य', 'परिक्रमा', 'चित्र और चिन्तन' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो आलोचना, निबन्ध, उपन्यास, सस्मरण तथा काव्य के क्षेत्र मे उनकी रचनात्मक प्रतिभा की मौलिकता और पाडित्य की निदर्शक है।

द्विवेदी जी की हिन्दी आलोचना को देन

हिन्दी आलोचना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे द्विवेदी जी के स्थान निर्धारण के साथ द्विवेदी जी की आलोचनात्मक कृतियो के आधार पर उनकी आलोचनात्मक मान्यताओ एव सिद्धान्तो का परिचय भी पीछे दिया जा चुका है। द्विवेदी जी के आलोचनात्मक साहित्य मे 'हमारे साहित्य निर्माता', 'ज्योति विहग', 'सचारिणी', 'कवि और काव्य' तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' आदि परिगणित की जाती है। जैसा कि द्वितीय अध्याय मे सकेत किया जा चुका है, उपर्युक्त आलोचनात्मक कृतियो मे 'ज्योति विहग' द्विवेदी जी के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षात्मक चिन्तन का समग्र स्वरूप प्रस्तुत करती है तथा 'हमारे साहित्य निर्माता', 'सचारिणी', 'कवि और काव्य' एव 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' जैसी रचनाओ के द्वितीय वर्ग को समीक्षात्मक निबन्धो के सग्रह के अन्तर्गत रखा गया है। यद्यपि द्विवेदी जी के सपूर्ण गद्य साहित्य मे स्फुट रूप मे उनकी समीक्षात्मक प्रवृत्ति स्पष्ट होती है परन्तु उसका अन्यत्र समीक्षा प्रधान निबन्धो के अन्तर्गत विश्लेषण हुआ है। इस अध्याय मे उपर्युक्त कृतियो के आधार पर ही उनके सैद्धान्तिक विचारो का विश्लेपण प्रस्तुत किया गया है। यह कृतिया द्विवेदी जी के आलोचक व्यक्तित्व पर समकालीन प्रवृत्तियो के प्रभाव को इंगित करती है। आलोचना के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की दृष्टि उनकी रसग्राहिणी शक्ति की भी द्योतक है। प्राचीन सस्कृत साहित्य मे रस की मान्यता काव्य की आत्मा के रूप मे हुई है। द्विवेदी जी ने काव्य का आदि रस शृगार माना है जिसमे हृदय का आकर्षण माधुर्य रूप मे परिणत होकर अनेकता मे एकता का बोध कराता है। उनके विचार से मनुष्य अभावमय जीवन मे ही भावो से उद्वेलित होता है और विरह का अनुभव करता है। उसके यही विरोधोद्‌गार और विरोध भाव काव्य रूप मे अभि-

व्यजित होते है। शृगार, भक्ति, शात, करुण और वात्सल्य रसो को द्विवेदी जी ने कोमल रसो की कोटि मे रखा है जब कि रौद्र, बीभत्स और भयानक आदि रस मनुष्य के पाशव अश के सूचक है। काव्य और साहित्य मे शब्द और छन्द योजना का महत्व इगित करते हुए द्विवेदी जी ने यह निर्देश किया है कि भावो को व्यक्त करने मे समुचित एव सुनियोजित शब्दो की आवश्यकता होती है और भावो की गति मे छन्द सहायक होते हैं। साथ ही शब्दो के रसानुकूल निर्वाह के लिए रस-विदग्धता की भी आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से काव्य मे शब्द, छन्द और रस का वही स्थान है जो पुष्पो मे विभिन्न सुगन्धो का। छन्द तत्व के शास्त्रीय महत्व को स्वीकार करने के साथ द्विवेदी जी ने मुक्त छन्द के प्रयोग का भी काव्य मे अनुमोदन किया है। उनकी धारणा है कि अतुकान्त से काव्य गद्य-काव्य हो जाता है और मुक्त छन्द मे उद्गार को स्वतत्रता मिली रहती है। इसी प्रकार से उन्होने काव्य मे भावो को स्पष्ट रूप से नियोजित करने मे अलकार को एक साधन माना है क्योकि उनके मत से अलकारो का वास्तविक सम्बन्ध सौदर्य बोध से होता है। काव्य मे त्रिगुण, त्रिमूर्ति और त्रिवाणी के शाश्वत् महत्व का निदर्शन भी उन्होने किया है। काव्य की भाषा को द्विवेदी जी ने भावो की अभिव्यक्ति का साधन माना है। कविता की परिपूर्णता के लिए भाषा, भाव और रस का सम्यक् नियोजन आवश्यक होता है। काव्य मे कल्पना तत्व और अनुभूत्यात्मकता के विषय मे द्विवेदी जी की धारणा है कि कवि वास्तविक जगत के माध्यम से इस ब्रह्माड मे व्याप्त अदृश्य झाकियो, अदृश्य चेतन भावों को काव्य मे रूप-रग और स्वर देकर लौकिक जीवन मे चेतना का सचार करता है। वेदनानुभूति का स्वरूप निर्दशित करते हुए द्विवेदी जी ने यह बताया है कि उससे प्रभावित होकर मनुष्य अपने क्षुद्र अह की भावना को विस्मृत कर राग द्वेषो से अलग एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करता है और इस रूप मे वेदना ही मानव-जीवन की मूल रागिनी सिद्ध होती है। काव्य मे सौदर्य बोध के सम्बन्ध मे द्विवेदी जी ने अपनी इस धारणा को व्यक्त किया है कि कवि यथार्थ जगत मे कटु अनुभवो के सत्य को काव्य मे अपने मन एव हृदय के सौदर्य से स्निग्ध करके व्यक्त करता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य मे छायावादी काव्यान्दोलन के प्रतिनिधि कवि सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य के मूल्याकन के सन्दर्भ मे द्विवेदी जी ने सास्कृतिक चेतना का स्वरूप भी स्पष्ट किया है। उनकी धारणा है कि पन्त कृत 'गुजन' मे जो कविताएँ सगृहीत है वे नव चेतना के जागरण की ओर सकेत करती है। 'ज्योतिविहग' मे काव्य के विभिन्न तत्वो के आधार पर द्विवेदी जी ने सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य का जो समग्र रूपात्मक विश्लेषण किया है वह उनके आलोचनात्मक सिद्धान्तो की व्यावहारिक परि-णति है। साहित्य मे आदर्श और यथार्थ के विषय मे विचार करते हुए द्विवेदी जी ने बताया है कि आदर्शवाद मानव के प्रेम, सहानुभूति, करुणा और ममता आदि मान-वीय गुणो का प्रतीक है। वह मनुष्यता की तरह विस्तृत एव आत्मा की तरह व्या-

पक है। यथार्थ के बिना आदर्श गति रहित है और आदर्श के बिना यथार्थ जीवन रहित है। रहस्यवाद और छायावाद के सम्बन्ध मे द्विवेदी जी की धारणा है कि रहस्यवाद पार्थिव और अपार्थिव कोटि का है। इनमे से प्रथम के अन्तर्गत सगुणोपासक कवियो को रखा जा सकता है और द्वितीय के अन्तर्गत छायावादी कवियो को। रहस्यवाद मे केवल अलौकिकता और भगवत् भक्ति है जब कि छायावाद मे लौकिकता और अलौकिकता का समन्वय है। इस रूप मे छायावाद मे आत्मा का आत्मा के साथ सन्निवेश है परन्तु रहस्यवाद मे आत्मा का परमात्मा से सन्निवेश है। एक मे आत्मानुभूति की प्रधानता है और दूसरे मे विश्वव्यापी परम चेतन की रहस्यानुभूति है। इसी प्रकार से प्रगतिवाद उपयोगितावाद का दूसरा रूप है जिसका आधार कार्ल मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद है। इस रूप मे वह केवल आर्थिक साम्य पर ही बल देता है। द्विवेदी जी की धारणा है कि कविता मे वस्तु जगत और स्वप्न जगत दोनो ही की बाते होती है। साहित्य मे कला का अर्थ एक साधन के रूप मे है। विभिन्न प्रसगो मे अपने आलोचना साहित्य के अन्तर्गत द्विवेदी जी ने विभिन्न काव्य-रूपो की भी व्याख्या की है। उनका विचार है कि गीति काव्य किसी युग का प्रतिनिधित्व नही करता वरन् वह कवि की हार्दिक रसार्द्रता पर निर्भर करता है। उसमे काव्य साधना की अपेक्षा आत्म साधना की अधिक आवश्यकता होती है। उसमे वस्तुत मानव स्वय को विस्मृत कर आत्मलीन हो जाता है और इस प्रकार वह रस मात्र मे अपने अस्तित्व को विलीन कर देता है। गीति काव्य का ही एक नवीन रूप प्रगीत काव्य है जिसकी सृष्टि गीति और दृश्य के सयोजन से होती है। इन सिद्धान्तो और वैचारिक मान्यताओ की पृष्ठभूमि मे यदि हिन्दी आलोचना को द्विवेदी जी के योगदान के विषय मे विचार किया जाए तो हम इस निष्कर्ष पर आयंगे कि अपनी विभिन्न आलोचनात्मक कृतियो मे द्ववेदी जी ने गद्य और पद्य साहित्य का सर्वेक्षण करने के साथ अन्य भाषाओ के साहित्य पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस सन्दर्भ मे उन्होने जो मौलिक स्थापनाएँ की है वे उन मानव मूल्यो की वास्तविक प्रसारक हैं जो जीवन के सास्कृतिक विकास का उत्कर्ष करते है। हिन्दी साहित्य के विविध विकास युगो के साहित्य और समस्याओ की पृष्ठभूमि मे परम्परानुगामिता और आधुनिकता का विवेचन करते हुए उन्होने अपने जिस व्यापक अध्ययन और जागरूक दृष्टिकोण का परिचय दिया है वे एक सफल आलोचक के रूप मे उन्हे प्रतिष्ठित करते है। जैसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है, द्विवेदी जी की विभिन्न आलोचनात्मक कृतियो मे ऐतिहासिक, शास्त्रीय, तुलनात्मक, छायावादी तथा प्रगतिवादी आलोचना पद्धतियो का समावेश है जो उनकी रचना काल की प्रमुख प्रवृत्तियां हैं। एक आलोचक के रूप मे अपने समकालीन समीक्षको से द्विवेदी जी मे प्रमुख अन्तर यह है कि उनका दृष्टिकोण आत्मपरक है। एक भावुक, सहृदय, रस सिद्ध और प्रबुद्ध आलोचक होने के कारण उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण मे वह सकुचितता

नही है जो आलोचना को सीमित और दोषपूर्ण बना देती है। इसके विपरीत उन्होने साहित्य के अन्तरग और बहिरग के सम्यक् परीक्षण के साथ जहाँ एक ओर आलोच्य साहित्य मे रस, छन्द, अलकार, कल्पना, भाव और भाषा के परम्परागत उपकरणो का विश्लेषण किया है तो दूसरी ओर अनुभूत्यात्मकता, सवेदनशीलता, बौद्धिकता, दार्शनिकता एव सास्कृतिक चेतना के निदेशक सूत्रो का भी परीक्षण किया है। इस प्रकार से द्विवेदी जी का आलोचनात्मक दृष्टिकोण समकालीन रूढ और शास्त्रीय समीक्षा से पृथक होने के साथ अशास्त्रीय अथवा आधुनिकतावादी उच्छृखलता से भी मुक्त है। हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे उनकी देन इसलिए विशिष्ट और महत्वपूर्ण है क्योकि उन्होने आत्म व्यजना प्रधान अथवा आत्मपरक आधार पर आलोचना का एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जिसमे शास्त्रीय और आधुनिक समीक्षात्मक दृष्टियो का समन्वय है।

द्विवेदी जी की हिन्दी निबन्ध को देन

द्विवेदी जी की निबन्धात्मक कृतिया विषयगत विस्तार, रचनात्मक उत्कृष्टता तथा वैचारिक परिपक्वता की दृष्टि से निबन्ध साहित्य के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। द्विवेदी जी की निबन्धात्मक कृतियो मे मुख्यत 'जीवनयात्रा', 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास', 'समवेत' तथा 'परिक्रमा' आदि हैं जो द्विवेदी जी के बहुक्षेत्रीय चिन्तन एव रचनात्मक क्रियाशीलता की परिचायक हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ये निबध कृतिया निबध साहित्य के इतिहास मे शुक्लोत्तर युग से सबधित हैं अतएव इसमे लेखक की समकालीन वैचारिक जागरूकता के साथ अपने पूर्ववर्ती प्रवृत्तियो से प्रभावित होने की ओर भी सकेत करती है। निबधो के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की दृष्टि विषयगत विविधता लिए हुए है। वह कही आत्मपरक रूप मे वैयक्तिक है तो सिद्धात रूप मे सैद्धान्तिक। द्विवेदी जी सदैव निबन्धो के विषय को रसज्ञता एव मर्मज्ञता से स्पष्ट करते है। फलत उनमे बौद्धिकता और भावुक हृदय का समन्वय हो जाता है। द्विवेदी जी ने दार्शनिक निबन्धों मे मानव जीवन के यथार्थ रूप की अभिव्यक्ति मे सासारिक मृग तृष्णा, जीवन के वास्तविक मूल्यो आदि पर अपने विचारात्मक परन्तु भावुकता से ओतप्रोत मूल्यो का निदर्शन किया है। द्विवेदी जी की दृष्टि मे पार्थिव ससार के क्षुब्ध मनुष्यो की मुक्ति का एकमात्र उपाय आत्मबोध एव मानव की आत्मप्रज्ञा शक्ति है जिसे विस्मृत कर मानव निरर्थक भटक रहा है। द्विवेदी जी मानव स्वार्थ के परिपूरन मे 'अति' को विश्व कल्याण तथा मानव कल्याण की दृष्टि से बाधक मानते हैं। स्वार्थ के इस 'अति' रूप के त्याग के उपरान्त ही पीडित एव उपेक्षित मानव की करुण पुकार स्पष्ट होती है। समसामयिक समस्या के रूप मे नारी जीवन की विभिन्न विडम्बनाओ एव मानव के वीभत्सतापूर्ण कार्यों के

प्रति द्विवेदी जी अपनी छिद्रान्वेषणी दृष्टि के कारण सजग हैं। वर्तमान जीवन के विविध पहलुओ की ओर द्विवेदी जी का चेतन मस्तिष्क जागरूक है। विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एव आर्थिक परिस्थितियो के यथार्थ रूप तथा मानव-त्राहि से मुक्ति के मार्ग को भी निर्दशित किया है। द्विवेदी जी काव्य के क्षेत्र मे छायावाद युगीन साहित्य से प्रभावित थे परन्तु निबन्ध के क्षेत्र मे वह यथार्थ की कठोर भूमि मे खडे हुए है। समाजवाद, गाँधीवाद के वह प्रशसक है। गाँधी जी की रचनात्मक क्रियाशीलता एव उनके सिद्धान्त द्विवेदी जी की दृष्टि मे स्तुत्य एव प्रशसनीय हैं। अपने पुरातन सास्कृतिक मानवीय गुणो के प्रत्यक्षीकरण के आधार पर लेखक पुन अपने नैसर्गिक एव प्राकृतिक जीवन का आह्वान करता है। द्विवेदी जी की दृष्टि मे मानव जीवन का रसात्मक इतिहास कविता और कहानी मात्र मे अवस्थित हो गया है। आधुनिक मानव की दिनचर्या मे सस्कृति का लोप हो गया है। सस्कृति मनुष्य के जीवन को सयत और सुसगत बनाती है। वह प्रकृति के साहचर्य मे प्राण और काया को अन्विति देती है। मानव जीवन मे सास्कृतिक एव प्राकृतिक अभाव का कारण वर्तमान युग की विभिन्न समस्याएँ, आहार-विहार तथा यत्र-युग का प्रभाव है जिसमे राजनीति का विशिष्ट स्थान है। भाषा की दृष्टि से द्विवेदी जी ने भाषा को मानव जीवन की यात्रा, प्रवृत्तियो, अनुभूतियो आदि के दिग्दर्शन का साधन माना है तथा भाषा, समाज एव सस्कृति के समन्वित रूप को समाज के व्यावहारिक पक्ष मे श्रेष्ठ निर्दशित किया है। विश्व कल्याण का एकमात्र आधार सस्कृति है जिसका सम्बन्ध कृषि की परिष्कृति एव मानव की आत्मपरिष्कृति से है। दोनो के परिष्कार एव परिमार्जन से ही मानव समाज एव विश्व का कल्याण सम्भव है। मानव कल्याण के लिए उठाई गयी आवाज, अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय, द्विवेदी जी की दृष्टि मे अवसरवादियो का खेल है। द्विवेदी जी मानव की सजीवता एव चेतन मे यात्रिक साधनो तथा औद्योगिक माध्यमो को निरर्थक मानते है। यात्रिक युग का ही प्रभाव है कि अब मानव मे सवेदनात्मक भावना का अभाव हो गया है, मानव स्वय यात्रिक बन गया है। मानव अर्थलिप्सित हो गया है। इसका समाधान औद्योगिक क्रान्ति मे न होकर मानव के प्राकृतिक एव स्वाभाविक जीवन के कर्मक्षेत्र के सुधार मे केन्द्रित है। द्विवेदी जी ने मानव मे मौलिकता के प्रतिमानो के रूप मे उसे चेतन के सदृश ही अन्तर्व्याप्त सूक्ष्म सत्ता माना है जो मानव मे अवस्थित होती है। द्विवेदी जी ने नयी पीढी और नये साहित्य के सदर्भ मे भी अपने विचारो के प्रतिपादन के माध्यम से अपनी स्वाध्याय प्रवृति, मननशीलता एव जागरूकता का उद्‌बोधन किया है। उन्होने नई और पुरानी पीढी के मध्य के अन्तराल मे आदर्श और यथार्थ तथा सस्कृति और विकृति को स्थापित किया है। साहित्य, सगीत और कला मे कला का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है तथा यह मानव-मात्र मे केन्द्रित न होकर चेतन-मात्र की सद्‌वृत्ति है। लेखक के मत मे सौदर्य की रचनात्मक वृत्ति आचरण की दृष्टि से संस्कृति का रूप है और इसी से कला की उत्पत्ति एव

विकास होता है। आधुनिक औद्योगिक वैज्ञानिक युग मे मानव अपने नैसर्गिक जीवन से, प्रकृति से निरन्तर दूर होता जा रहा है। परिणामत उसके जीवन मे तथा उसके सृजित काव्य मे रागात्मकता की प्रवृत्ति का अभाव-सा हो गया है। यही कारण है कि आज मानव मे स्वार्थ के कारण ममता सवेदना शून्य हो गयी है, उसमे गति, रस और राग का अभाव है, वह यन्त्र बनता जा रहा है। प्रगति से सस्कृति प्रादुर्भूत होगी तभी मानव प्रगति पथ पर जीवन्त रूप मे गतिमान हो सकता है। उसके लिए गाँधी जी के सिद्धातो—कुटीर, शिल्प, भाषा, अछूतोद्धार, हिन्दु मुस्लिम एकता, विश्व-मानवता, अहिंसा आदि—को मान्य करने एव उस पर कठोरता से चलने पर मानव पुन अपने नैसर्गिक सुख-शाति का आभास कर सकता है। सममामयिक समस्याओ की दृष्टि से लिखे निबन्ध प्रचलित मनोवृत्तियो एव जीवन मे व्याप्त असन्तुलित कर्म तथा उच्छृखलता आदि के परिचायक है। आज विश्व की प्रत्येक समस्या के पीछे विज्ञान, औद्योगिक महामारी, मानव की अर्थलिप्सा तथा स्वार्थ की भावना आदि के साथ सामर्थ्यवान मनुष्यो की क्रियाशीलता मे ह्रास एव अकर्मण्यता आदि का महत्व-पूर्ण योगदान है। जीवन के इस आक्रान्तकालीन परिस्थितियो मे मानवीय सहयोग, सद्भावना, सम्वेदना तथा आत्मीयता आदि मानवीय मनोवृत्तियाँ जीवन की लौकिक और आत्मिक शान्ति के लिए आवश्यक हैं जो मानव को पुन उसी चिर मौलिक स्थान स्वरूप अपने नैसर्गिक जीवन मे प्रविष्ट करा सकती है। अपने समसामयिक विचारात्मक आन्दोलनो—रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, यथार्थवाद और आदर्श-वाद—का प्रभाव द्विवेदी जी के मानसिक एव बौद्धिक क्षेत्र मे पडा और परिणामत निबन्धात्मक रूप मे लेखक की मौलिक रचनात्मकता का परिचय एव महत्व प्रतिपादित हुआ। अपनी समसामयिक प्रवृत्तियो से प्रभावित द्विवेदी जी का निबन्धकार व्यक्तित्व अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण तथा प्रखर है। उनका यही व्यक्तित्व, भाषा-शैली की दृष्टि से प्रौढता का द्योतन करता है तो दूसरी ओर उनके व्यक्तित्व की जागरूकता और चेतन सम्पन्नता का भी आभास देता है। द्विवेदी जी के निबन्ध सग्रहो की विषयगत वैविध्यता तथा अभिव्यक्तिगत मौलिकता का समन्वय द्विवेदी जी के समकालीन निबन्धकारो मे विशिष्ट स्थान निर्धारण की क्षमता रखता है। दार्शनिक और आध्या-त्मिक पृष्ठभूमि मे लिखे गये निबन्ध निबन्धकार के व्यक्तित्व की आत्मकेन्द्रता के परिचायक है। द्विवेदी जी का व्यक्तित्व आत्मचिन्तन और आत्मविश्वास के आधार पर निर्मित हुआ है। अत उनकी दृष्टि मे मानव अपनी क्षमता पर विश्वास करके ही प्रगति के पथ पर अग्रसित हो सकता है। वस्तुत. यह तथ्य लेखक के व्यक्तित्व के विशिष्ट गुणो सरलता, आदर्शमयता, आध्यात्मिकता और स्वावलम्बनप्रियता की प्रवृत्ति के परिचायक है। विषय-वैविध्य की दृष्टि से द्विवेदी जी ने दर्शन, सस्कृति, परम्परा, आधुनिकता, ज्ञान-विज्ञान, समाज शास्त्र, राजनीति, साहित्य और जीवन-दर्शन के मूल्यो से सम्बन्धित विषयो पर निबन्ध रचना की है जो लेखक के गम्भीर

चिन्तन प्रवाह के परिचायक हैं। द्विवेदी जी ने विभिन्न राजनैतिक और साहित्यिक वादो के सन्दर्भ मे अपने मौलिक चिन्तन से ओतप्रोत मन्तव्यो को व्यक्त किया है। छायावाद मे द्विवेदी जी ने सगुण रोमान्टिकता की भावना को विद्यमान माना है जो भक्तिकालीन सगुण पौराणिकता के अधिक निकट है। दोनो मे ही सगुण रूप मे सपूर्ण सृष्टि के साथ एकात्मकता अथवा ईश्वरता और अनुभूति की विशदता अथवा विश्व व्यापकता है। अन्तर रूप मे मध्ययुगीन सगुण मे आलम्बन नर रूप नारायण पुरुष है जबकि छायावाद युगीन आलम्बन नारी रूप नारायणी प्रकृति है। अतएव छायावाद मे प्रकृति स्वय मे पूर्ण एव सतुष्ट है। वह योगमाया है जिसकी साधना ही राग साधना है। मार्क्सवाद और विश्लेषणवाद के रूप मे प्रगतिवाद और प्रयोगवाद से छायावाद सर्वथा भिन्न है। यह भेद आर्थिक और औद्योगिक दृष्टिकोणगत विरोध के ही कारण है। राजनीतिक जीवन-दर्शन से प्रभावित मतवादो मे द्विवेदी जी ने गाँधीवाद और समाजवाद को मान्यता दी है। उन्होने गाँधीजी के सर्वोदय और समाजवाद मे अर्थिक और सास्कृतिक दृष्टिकोण पर बल दिया है। उनकी दृष्टि मे दोनो रूपात्मकता रखते है। उनकी धारणा है कि गाँधीवाद के अन्तर्गत खादी का प्रयोग और ग्रामोद्योग को प्रोत्साहित करना व्यक्ति के श्रमगत स्वावलम्बन को उन्मेषित करता है। द्विवेदी जी की दृष्टि मे व्यक्तिवाद और पूजीवाद से मुक्ति केवल आत्मचेतना के परिनिष्ठित स्वरूप पर बल देने वाले गाँधीवाद के द्वारा ही सम्भव है। लेखक की भाषा और शैली पर समसामयिक साहित्यिक आदोलनो का प्रभाव पडा है। उन्होने समकालीन समस्याओ पर विचार करते हुए वर्तमान जीवन और उसके विविध पक्षों के विश्लेषण के साथ प्राचीन भारतीय जीवन के गौरवमय आदर्शों के अनुगमन तथा आधुनिक जीवन मे सन्तुलन की आवश्यकता पर बल दिया है। इस दृष्टि से गाँधीवाद और छायावाद की तुलना मे समाजवाद की एक नवीन आर्थिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया है जो तार्किक पुष्टता से भी युक्त है। इस प्रकार द्विवेदी जी का निबन्ध साहित्य उनकी विचारधारा और जीवन-दर्शन के स्पष्टीकरण के साथ उनकी चिन्तन क्षेत्र की व्यापकता और विषयगत विविधता के कारण निबन्ध साहित्य मे उनकी पैठ की ओर सकेत एव महत्व का प्रतिपादन करता है। निबन्ध के सैद्धान्तिक स्वरूप और तात्विक कलापूर्णता मे द्विवेदी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व की प्रखरता का आभास होता है। निबन्ध जैसी नीरस साहित्य विधा मे द्विवेदी जी की अभिव्यक्तिगत मौलिकता के परि-णामस्वरूप आई सजीवता एव चेतना ही उनकी निबन्धो के क्षेत्र मे विशिष्ट उपलब्धि एव उनके महत्व का परिचायक है।

द्विवेदी जी की हिन्दी उपन्यास को देन

द्विवेदी जी के उपन्यास सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे लिखे गये हैं जो उपन्यास के प्रचलित स्वरूपो से सर्वथा भिन्नता रखते है। इस दृष्टि से वह द्विवेदी

जी की मौलिक प्रतिभा एवं नवीन रचनात्मक प्रवृत्ति के परिचायक हैं। द्विवेदी जी के उपन्यासो मे 'दिगम्बर' तथा 'चित्र और चिन्तन' कलात्मक विशिष्टता की दृष्टि से केवल औपन्यासिक रेखाकन है तथा 'चारिका' एतिहासिक पौराणिक पृष्ठभूमि मे लिखी आख्यायिका है। शिल्प-विधान की दृष्टि से औपन्यासिक रेखाकन उपन्यास का ही एक अन्य विकसित एव मौलिक रूप कहा जा सकता है जिसमे रेखा चित्रो के रूप मे एक क्रमबद्ध कथानक का औपन्यासिक विन्यास है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे लिखे उपन्यासो को छोडकर अन्य औपन्यासिक कृतिया आत्मकथात्मक शैली मे लिखी गयी हैं। द्विवेदी जी के उपन्यास साहित्य मे मध्यवर्गीय भारतीय सामाजिक जीवन की ग्रामीण और नागरिक पृष्ठभूमि मे कथानक के नायक का भावात्मक किन्तु यथार्थपरक चित्रण किया गया है। जन-जीवन की बदलती हुई मान्यताएँ, प्राचीन नैतिक स्तर, आधुनिक राजनीति की विरूपताएँ, अदृष्ट विडम्बनाएँ, मानवीय कुठाएँ एव मनोवैज्ञानिक विकृतियो का अत्यन्त सूक्ष्म निरूपण स्वातत्र्योत्तर विकास युग की देन है और इस दृष्टि से द्विवेदीजी के उपन्यास साहित्य मे उपर्युक्त विभिन्न विडम्बनाओ का अत्यन्त ही सूक्ष्म एव मार्मिक विश्लेषण हुआ है। उपन्यास साहित्य के इतिहास के स्वातत्र्योत्तर विकास युग मे प्रचलित विभिन्न सामयिक समस्याओ एव प्रवृत्तियो से प्रभावित द्विवेदी जी का उपन्यास साहित्य अपनी मौलिक विशिष्टता के कारण उनके महत्व एव उनकी विशिष्ट देन का परिचायक है। द्विवेदी जी के सामाजिक उपन्यास आधुनिक औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि मे आर्थिक समस्या तथा श्रमिक जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याओ से प्रभावित है। उनके उपन्यास सामाजिक जीवन की वैयक्तिक अनुभूतियो के प्रभावशाली चित्रण मे समर्थ है। द्विवेदी जी के उपन्यासो के सैद्धान्तिक विश्लेषण की दृष्टि से उपन्यास का प्रथम मूल उपकरण कथानक तत्व है। द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासो मे घटनाओ को प्रमुखता न देकर विशेष चरित्र के चारो ओर घटनाओ का सयोजन किया है। उपन्यास के नायक नायकत्व के विशिष्ट गुणो से आभूषित न होकर यथार्थ मानव समाज के मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। इस दृष्टि से वह समाज का जीता जागता जीवन रूप प्रस्तुत करने मे समर्थ हैं। कथानक की पृष्ठभूमि मे उपन्यास का पात्र समाज के यथार्थ जीवन को प्रत्यक्ष करके वहाँ की विभिन्न विडम्बनाओ, मानव की अर्थ लोलुप दृष्टि तथा कुत्सित व्यवहारो को निर्दशित करता है। समाज के गतिशील जीवत की भाँति कथानक मे भी एक सूक्ष्म गतिशीलता है जिसमे अनेक प्रासगिक कथाएँ समाविष्ट हुई हैं और ये प्रासगिक कथाएँ कथानक की गति मे व्यवधान न होते हुए भी कथा-शिल्प की दृष्टि से उपन्यास के कथानक को क्षीणता प्रदान करती हैं और इसका प्रमुख कारण यह है कि द्विवेदी जी ने यथार्थपरक चित्रण मे मानवीय मनोवृत्तियो का भी परिचय दिया है। कथानक के विशिष्ट गुण पारस्परिक सम्बद्धता का प्राय अभाव है। कथानक के अन्य गुणो वैचारिक मौलिकता, घटनात्मक सत्यता, शैलीगत निर्माण-कौशल, वर्णनात्मक रोचकता,

आदि का द्विवेदी जी के उपन्यासो मे समावेश हुआ है । द्विवेदी जी के तीनो उपन्यास कथानक की दृष्टि से 'शिथिल वस्तु प्रधान उपन्यास' वर्ग के अन्तर्गत आते है । परन्तु अपने मौलिक रूप मे कथानक मे सगठन और सूत्रबद्धता का अभाव उपन्यास मे निहित गम्भीर चिन्तन प्रणाली एव शिल्प विधान के रचनात्मक रूप को प्रस्तुत करता है जो लेखक के रचनात्मक उद्‌बोधन का प्रतीक है । सामाजिक उपन्यासो के नायक बुद्धि-जीवी है जो समाज के विभिन्न कटु अनुभवो को यथाथ रूप मे साकार कर देते है । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से पात्रो के चयन मे लेखक की सजगता प्रतिबिम्बित होती है । द्विवेदी जी के उपन्यास के पात्र कल्पित न होकर व्यावहारिक जगत से सम्बन्धित है । प्रमुख पात्र भावनापरक, अन्तर्द्वन्द्व प्रधान, बौद्धिक एव कलात्मक सौदर्य का अनु-गमन करने वाले है जो अपनी विशिष्ट परिस्थितियो मे बौद्धिक स्तर पर जीवन पथ पर सामजस्य स्थापित कर लेते है । द्विवेदी जी ने अपने औपन्यासिक पात्रो के चित्रा-कन मे विश्लेपणात्मक, अभिनयात्मक, स्वगत कथनात्मक, आत्म कथात्मक, सवादात्मक, विवरणात्मक, सकेतात्मक और मनोवैज्ञानिक विधियो का प्रयोग किया है । विमल, वैष्णवी, मालती, इन्दुमोहन, यमुना, कमल, कुमुदिनी, गौतम बुद्ध, यशोधरा, शुद्धोदन, प्रसेनजित तथा आम्रपाली आदि पात्र-पात्रियो के चरित्राकन का आधार उपर्युक्त विधिया ही हैं । द्विवेदी जी के उपन्यासो मे कथोपकथन तत्व का समावेश मुख्यत कथानक का विकास करने, पात्रो की व्याख्या करने तथा लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करने की दृष्टि से हुआ है । इनमे उपयुक्तता, स्वाभाविकता, सक्षिप्तता, उद्देश्यपूर्णता, अनुकूलता, सम्बद्धता, मनोवैज्ञानिकता तथा भावात्मकता आदि गुण विद्यमान है । समन्वित भाषा, सामान्य प्रयोग की भाषा, उर्दू प्रधान भाषा, अँग्रेजी प्रधान भाषा, मिश्रित भाषा, लोक भाषा, सस्कृत प्रधान भाषा, काव्यात्मक भाषा तथा क्लिष्ट भाषा के रूप द्विवेदी जी के उपन्यासो मे मिलते हैं । शैली के क्षेत्र मे वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक, डायरी, पत्रात्मक, स्मृतिपरक, सम्वादात्मक, नाटकीय, लोककथात्मक, आचलिक तथा मनोविश्लेषणात्मक शैलियो का प्रयोग द्विवेदी जी के उपन्यासो मे हुआ है । देश-काल अथवा वातावरण के चित्रण मे द्विवेदी जी ने सामा-जिक, धार्मिक, राजनीतिक, आचार-विचार, रूढियो, प्रथाओ, रीति-रिवाजो तथा समाज की अन्य अनेक कुरीतियो एव विशिष्टताओ की पृष्ठभूमि मे यथार्थ समाज का चित्र प्रस्तुत किया है । देश-काल के विभिन्न गुणो वर्णनात्मक सूक्ष्मता, विश्वसनीय कल्पनात्मकता तथा उपकरणात्मक सन्तुलन आदि का भी निर्वाह इनमे हुआ है । सामाजिक, प्राकृतिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और आचलिक वातावरण प्रसग के अनुसार इनमे चित्रित हुए है । उपन्यास के उद्देश्य तत्व का जहाँ तक सम्बन्ध है, द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासो मे गाँधीवादी चिन्तन से सहमति प्रकट करते हुए यह सन्देश प्रस्तुत किया है कि जीवन के नवनिर्माण के लिए मनुष्य को स्वावलम्बी बनना होगा । धर्म, राजनीति, सस्कृति, सभ्यता, शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी

मानवीय भावनाओ और मानवतावादी दृष्टिकोण के कल्याणकारी पक्ष की प्रतिष्ठा करते हैं। द्विवेदी जी के उपन्यासो मे सामूहिक कुरीतियो के निवारण, सामाजिक नैतिकता के खोखलेपन, बौद्धिकता, यान्त्रिकता और कृत्रिमता आदि के विरुद्ध नैसर्गिक और सरल जीवन का सन्देश दिया है। यह उनके उदात्त जीवन मूल्यो की व्यावहारिक परिणति का प्रतीक है।

द्विवेदी जी को हिन्दी सस्मरण की देन

सस्मरण साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी ने 'पथचिन्ह', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतिया और कृतिया' शीर्षक रचनाएँ प्रस्तुत की है। ये रचनाएँ आत्मव्यजना प्रधान हैं। इनमे लेखक ने जहाँ एक ओर अपने जीवन के विभिन्न सस्मरण प्रस्तुत किये है वहाँ दूसरी ओर इनके माध्यम से साहित्य, सस्कृति, कला और दर्शन विषयक् अपनी वैचारिक मान्यताएँ भी सामने रखी है। द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य मे उनके सपूर्ण जीवन वृत्त के रूप मे उनके सघर्षमय जीवन तथा मानव-जीवन के विविध रूपो एव उनकी मनोवृत्तियो की ओर भी सकेत किया है। इस दृष्टि से द्विवेदी जी के इन सस्मरणो मे अनेक विशेषताओ के साथ आत्मचिन्तन और आत्मव्यजना का जो स्वरूप परिलक्षित होता है वह लेखक के मीठे कड़ुवे अनुभवो की रोचकता से पूर्ण है। सस्मरण की प्राथमिक विशेषता आत्मानुभूति प्रधान होने के कारण उसकी आत्मपरकता है। द्विवेदी जी के सस्मरण निबन्धात्मक, आत्मचरितात्मक साहित्यिक, भावनात्मक और यात्रा विवरणात्मक हैं। साहित्यिक सस्मरण विशेष रूप से द्विवेदी जी के समकालीन साहित्यकारो के सम्बन्ध मे हैं। आत्म-परिचयात्मक सस्मरणों के अन्तर्गत उन्होने अपने जीवन मे घटित घटनाओ तथा विभिन्न परिस्थितियो मे अपनी प्रतिक्रियाओ को व्यक्त करते हुए सहज स्वाभाविकता, निष्कपट आत्म प्रकाशन तथा सहृदयता का परिचय दिया है। भावात्मक सस्मरणो मे अनुभूति की प्रधानता है तथा विशेष रूप से वे प्रसग है जो सवेदनशील क्षणो से सम्बन्धित है। यात्रा विवरणात्मक सस्मरणो मे 'मिथिला की अमराइयो मे' जैसी रचनाएँ आती हैं जिनमे आकर्षण, भाव-प्रवणता, आत्मीयता तथा उन्मुक्त चित्रण आदि विशेषताओ का समावेश हुआ है। निबन्धात्मक सस्मरण मुख्य रूप से समकालीन जीवन से सम्बन्धित समस्याओ पर आधारित हे। सिद्धान्तत सस्मरण की सफलता का आधार जो उपकरण होते हैं वे अनुभूत्यात्मकता अथवा स्वानुभूति की प्रधानता, वर्णनात्मकता, विवरणात्मकता, वैचारिकता, भावात्मकता, यथार्थता तथा कल्पनात्मकता आदि है। इनमे से वैचारिकता की दृष्टि से 'पर्यवेक्षण', वर्णनात्मकता की दृष्टि से 'मिथिला की अमराइयो मे', विवरणात्मकता की दृष्टि से 'रचनात्मक दृष्टिकोण', यथार्थात्मकता की दृष्टि से 'अभिशापो की परिक्रमा', भावात्मकता की दृष्टि से 'पथचिन्ह', अनुभूत्यात्मकता की दृष्टि से 'प्रतिक्रिया' आदि सस्मरण विशेष रूप से उल्लिखित किये जा सकते है। भाषागत

वैविध्य, शैलीगत प्रवाहमयता तथा विषयगत विविधता इन सस्मरणो की अन्य विशेषताएँ है। द्विवेदी जी के सस्मरणो मे सस्कृत-गर्भित, मिश्रित, काव्यात्मक, लोकपरक, आलकारिक तथा मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है। इनमे शैलीगत अनेकरूपता ही विद्यमान है और वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, भावात्मक, विचारात्मक, निर्णयात्मक तथा उद्बोधनात्मक शैलियो का प्रयोग हुआ है। विपयगत विस्तार की दृष्टि से यह सस्मरण इसलिए महत्व रखते है क्योकि इनमे साहित्यिक सस्मरणो के अन्तर्गत लेखक ने सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त तथा श्रीमती महादेवी वर्मा के (सान्निध्य) के द्योतक अतीत के प्रसगो का उल्लेख किया है। आत्मपरिचयात्मक सस्मरणो मे लेखक ने अपने साहित्यिक जीवन के विभिन्न युगो के सघर्षों के साथ-साथ बाल्यावस्था से सम्बन्धित उन पारिवारिक प्रसगो का भी उल्लेख किया है जो अभिव्यजना शैली की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक है। भावात्मक सस्मरणो मे वे स्मृतिया सम्बद्ध है जो करुणापूर्ण प्रसगो पर आधारित है। यात्रा सस्मरण रमणीय स्थलो के भ्रमण से सम्बन्धित है। इस प्रकार से यह सस्मरण आत्मव्यजनात्मक और वैयक्तिक अनभूतिपरक होते हुए भी विषय वैविध्य और विस्तार मे युक्त है। यह सस्मरण जहाँ एक ओर लेखक की इस क्षेत्र विशेष मे उपलब्धियो के द्योतक हैं वहाँ दूसरी ओर उनके आलोचक व्यक्तित्व और कवि हृदय की सूचक वैचारिकता और काव्यात्मकता से भी युक्त हैं। इनमे लेखक ने अपने अतीत जीवन पर दृष्टिपात करते हुए उन प्रसगो का उल्लेख किया है जो उसके साहित्यिक व्यक्तित्व के नियामक हैं। इनमे साहित्य, समाज, धर्म, सस्कृति, सभ्यता और राजनीति से सम्बन्धित समकालीन समस्याओ का भी विश्लेषण है। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है, सिद्धान्ततः सस्मरण रूपी साहित्यिक विधा कथात्मक दृष्टि से कहानी के निकट, वैचारिक दृष्टि से निबन्ध के निकट तथा भावात्मक दृष्टि से कविता के निकट है। इस दृष्टि से द्विवेदी जी के सस्मरण इन तीनो विधाओ की विशेषताओ से युक्त है और उनकी मौलिक प्रतिभा, रचनात्मक सामर्थ्य और विशिष्ट देन का परिचय देने मे समर्थ है।

द्विवेदी जी की हिन्दी काव्य को देन

द्विवेदी जी का साहित्यिक जीवन छायावाद काल से सम्बन्धित है। द्विवेदी जी अनेक छायावादी कवि कलाकारो से प्रभावित हुए, परिणामत. उन्हे काव्यानुराग एव काव्य-सृजन की प्रेरणा मिली। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य के अतिरिक्त उनके सपूर्ण गद्य साहित्य मे भी सवेदनशीलता और भावनात्मकता के रूप मे उनके कवि हृदय का परिचय मिलता है। द्विवेदी जी की काव्य रचनाओ मे 'नीरव' तथा 'हिमानी' दो मौलिक काव्य कृतिया हैं। इनके अतिरिक्त उन्होने दो काव्य कृतियो मे विशिष्ट ब्रज भाषा काव्य के शृगारिक कवियो एव छायावादी कवियो की कविताओ का सकलन किया है, उनके नाम क्रमश 'मधुसचय' और 'परिचय' है। 'परिचय' मे कवि

ने काव्य सकलन के अतिरिक्त विभिन्न कवियों की काव्यात्मा का भावात्मक परिचय भी दिया है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे कवि का सौंदर्योपासक हृदय अभिव्यजित हुआ है। कवि प्रकृति के विभिन्न रूपो मे एक सुन्दरता का आभास एव उसके प्रति आकर्षण अनुभव करता है। कवि ने प्रकृति के माध्यम से सासारिक प्रणय कथा एव उससे उत्पन्न वेदना का चित्र भी प्रस्तुत किया है। कवि शैशवावस्था एव किशोरावस्था के प्रति अधिक ममत्वपूर्ण तथा अनुरक्त है। शैशवावस्था की उन्मुक्तता, निश्च्छलता, चचलता एव कोमलता कवि को प्रिय है। प्रकृति के माध्यम से कवि ने मानवीय प्रवृत्तियो का सजीव एव मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। प्रकृति के सौदर्य मे अनुरक्त कवि हृदय सासारिक जटिलताओ एव जीवन की नश्वरता का आभास करता है। वह तरु एव लघु तरु मे भी जीवन की अस्थिरता एव क्षणभगुरता का आभास करता है। कवि ने अपनी कविताओ मे दार्शनिक पक्ष को भी स्पष्ट किया है। वह प्रकृति के विभिन्न क्रिया कलाप मे अपने प्रिय के स्वरो की गूँज सुनता है। 'निर्झरिणी की स्वतत्रता' के माध्यम से कवि ने मानव को स्वतत्रता के वास्तविक महत्व का निदर्शन करते हुए महान् सदेश प्रतिपादित किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने यथार्थ धरातल मे अपनी जन्मभूमि के प्रति अनुराग तथा कठोर भूमि पर चलने के लिए प्रोत्साहित करते हुए मानव मे वीरता की भावना का सचार किया है। कवि का ममत्व खादी के प्रति भी है। खादी कवि के मानस एव वाह्य रूप मे जीवन की सादगी, उज्ज्वल एव निर्मल जीवन का प्रतीक तथा देश के प्रति अनुरक्त भावना का परिचायक है। इन कविताओ मे कवि ने देश-प्रेम के प्रति निर्द्वन्द्व एव स्वच्छद भावना के साथ विश्वबन्धुत्व की भावना का भी उद्रेक किया है। मानवता की पृष्ठभूमि मे कवि ने भिखारिणी के प्रति सवेदना प्रकट करते हुए उसे पुन प्रकृति प्रागण मे चलने की प्रेरणा देता है। कवि का मानवीय हृदय उस भिखारिणी के सहयोग से जग की कलुपताओ से परे पुन अपने प्राकृतिक जीवन को प्राप्त करना चाहता है जहा शैशव का सारल्य, मधुयौवन का उच्छ्वास तथा शरत्चन्द्रिका का सास्निग्ध प्रकाश विद्यमान है। दार्शनिक पृष्ठभूमि मे कवि प्रभु का क्रीडागार मानव मन तथा उसकी अन्तरात्मा को मानता है जिसके लिए मानव व्यर्थ ही इधर-उधर भटकता रहता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे कवि ने ताजमहल के स्मरण के आधार पर विश्व के कालचक्र एव मानव नश्वरता का रूप अकित करते हुए अनन्य प्रेम को निर्दशित किया है। कवि ने मौन, उदास हल्दीघाटी के चित्र को रूपायित कर मानव को जीवन के सार तत्व से परिचित कराया है। हल्दीघाटी की स्मृति ज्वाला से निसृत उच्छ्वासो को सुनकर कवि उसके पूर्व वैभव तथा वीरो के कर्तव्यो एव बलिदानो का स्मरण कराता है। मानवता की पृष्ठभूमि मे कवि मानव जगत तथा मानव मन को अगीकार करने की आकाक्षा करता है, देवता तथा नन्दन कानन की नही। मानव अपने पुरुषार्थ तथा मानवीय गुणों के द्वारा ही कष्टो, दुखो मे भी मानव से अपनापन जोड कर तादात्म्य

स्थापित करता है। मानव जीवन को श्रेष्ठ मानते हुए भी कवि प्रकृति मे स्वय लघु-तम रूप मे लय हो जाने की तथा प्रकृति पूजा मे अर्पण होने की कामना करता हे। इस प्रकार कवि ने अपने काव्य साहित्य मे जहाँ एक ओर छायावाद से प्रभावित हो प्रकृति के माध्यम से अपने सौदर्यपरक भावो को व्यक्त किया है वही दूसरी ओर सम-सामयिक वातावरण से प्रभावित होकर गाँधीवादी विचारधारा के प्रति भी अपनी आस्था व्यक्त की है, और इसी के माध्यम से कवि ने एक राष्ट्रीय कवि की भाँति देश-प्रेम के द्वारा देश की जागरूकता का आह्वान किया है, और इस दृष्टि से द्विवेदी जी का काव्य लोकपरक मानवतावाद के अधिक निकट है। द्विवेदी जी के काव्य मे उनकी समकालीन प्रवृत्तियो का प्रभाव परिलक्षित होता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के काव्य साहित्य के सैद्धान्तिक विश्लेषण की दृष्टि से रस योजना के अन्तर्गत शृगार, करुण, शात, वात्सल्य तथा वीर रस से पूर्ण कविताओ का सचयन हुआ है। कवि के सपूर्ण काव्य साहित्य मे प्रकृति के प्रति अनुरागिनी प्रवृत्ति के रूप मे जहाँ एक ओर कवि की कोमल कल्पनाएँ एव सरल भावनाएँ व्यज़ित हुई है वहाँ दूसरी ओर कवि की वैचा-रिक प्रौढता का स्पष्ट अभाव भी इनमे परिलक्षित होता है और इसका मुख्य कारण यह है कि द्विवेदी जी का काव्य साहित्य गद्य साहित्य की भाँति चार दशक तक प्रसा-रित न होकर केवल साहित्य रचना के प्रारम्भिक दस वर्षों मे ही केन्द्रित है। अलं-कार योजना की दृष्टि से जहाँ कवि ने भारतीय काव्यालकारो को सहज रूप मे अपने काव्य मे अभिव्यजित किया है वही दूसरी ओर अपने भावो के प्रकटीकरण मे कवि ने ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, शब्द शक्तियो के साथ मानवीकरण तथा विशेषण-विपर्यय आदि का भी आश्रय लिया है। काव्यालकारो के द्वारा कवि ने प्रस्तुत मे अप्रस्तुत विधान की योजना भी की हैं। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे (प्रमुखत.) अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, उपमा, अन्योक्ति तथा स्मरण अलकारो का प्रयोग हुआ है जो भाषा के अलकरण, उसकी पुष्टि एव राग की परिपूर्णता तथा भावो की यथार्थ अभिव्यक्ति मे सक्षम है। विशेषण-विपर्यय तथा मानवीकरण का रूप द्विवेदी जी के काव्य मे यत्र-तत्र भी उपलब्ध होता है। कवि ने प्रकृति चित्रण एव मनोभावो की अभिव्यक्ति के लिए उपमानो के चयन मे कही अपनी नवीनता प्रिय प्रवृत्ति का परिचय दिया है और कही रूढिग्रस्त परम्परा का। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे छायावाद के शीर्षस्थ कवियो मे पन्त और निराला के काव्य के समान भाषा-शैलीगत विशिष्टताएँ मिलती है। द्विवेदी जी की दृष्टि मे भाषा भावो की अभिव्यक्ति का साधन है तथा यह मानव द्वारा निर्मित है परन्तु भावो की सृष्टि मे प्रकृति का हाथ है अतएव भाषा को भी भावो की तरह ही सामर्थ्यवान एव समृद्ध होना चाहिए। द्विवेदी जी का मत है कि भावात्मक विविधता के अनुसार भाषा को समृद्ध बना कर ही कवि कलाकार काव्य के कलात्मक सौदर्य की वृद्धि मे सहायक होता है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे शब्द चयन के प्रति जो सजगता

विद्यमान है वह कवि की सुरुचिपूर्ण परिष्कृत प्रवृत्ति की द्योतक हैं। भाषा की दृष्टि से द्विवेदी जी के काव्य की भाषा मे रुक्षता, नीरसता तथा दुरूहता का अभाव है। इसके साथ ही काव्य की शब्द योजना मे चित्रात्मकता, स्वरमयता, माधुर्य तथा ध्वन्यात्मकता आदि के गुण विद्यमान है। भाषा की दृष्टि से कवि ने कोमल कान्त शब्दावली का प्रयोग किया है। लालित्यपूर्ण शब्द योजना मे सगीतात्मकता के गुण के साथ ही सूक्ष्म सकेतात्मक तथा प्रतीकात्मक शैलियो का भी मिश्रण हुआ है जो कविता के प्रभावशाली रूप व्यक्त करने मे सहायक है। द्विवेदी जी ने भावो की विविधता एव अभिव्यक्ति की तीव्रता मे समुचित तथा सुनियोजित शब्दो की आवश्यकता के साथ छन्दो को भी महत्व दिया है। शब्द योजना मे कवि ने तुकान्त और मुक्त छन्दो को स्थान दिया है, क्योकि अतुकान्त छन्दो के प्रयोग से काव्य गद्य-काव्य हो जाता है और मुक्त छन्द भावनाओ के सहज उद्रेक मे सहायक होता हैं। कवि ने मुक्त छन्दो को ध्वनि मुक्त न करके केवल लय प्रवाह से मुक्त किया है। कवि ने प्रकृति को मानव की चिरसगिनी माना है जो मानव भावनाओ के साथ ही हँसती खेलती तथा वेदना से उद्वेलित होती हैं। कवि शैशव के सारल्य एव किशोरावस्था की उन्मुक्त उमगो से अभिभूत है। प्रकृति मे उसे अपनी इन्ही प्रवृत्तियो का आभास होता है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन—दोनो रूप प्रकट हुए है। आलम्बन मे कवि विशुद्ध यथार्थ रूप मे प्रकृति के चित्र को प्रस्तुत करने के पक्ष मे है। उद्दीपन रूप मे प्रकृति मानव के भावो का उद्दीपन करती है तथा मानवीय भावनाओ की अभिव्यक्ति मे भी सहायक होती है। द्विवेदी जी ने प्रकृति के नारी और पुरुष दोनो रूपो मे उसके प्राजलतम रूप को प्रतिबिम्बित कर उससे तादात्म्य स्थापित किया है। कवि उसी मे ईश्वर को आभासित कर उसी मे लय हो जाना चाहता है। इस दृष्टि से कवि मानस मे प्रकृति का कोमल, मनोरम, सुन्दर तथा मर्मज्ञ रूप ही है, उसका भयावह और भीषण रूप नही। प्रकृति के उज्ज्वलतम रूप को कवि ने अभिव्यजित किया हैं। कवि ने स्थूल प्रेम के चित्रो को प्रकृति के मनोरम एव अभिसारिक दृश्यो मे अपनी कल्पनात्मक प्रतिभा के द्वारा व्यक्त किया है। अधिकाशत कवि ने अलौकिकता के प्रति अपनी प्रेम-भावना को व्यक्त किया है। लौकिक प्रेम व्यजना की आध्यात्मिक परिणति को भी कवि ने प्रकट किया है। इसके अतिरिक्त अभिव्यजित प्रेम मे उसका तृतीय रूप विशुद्ध आध्यात्मिक स्तर पर निरासिक्त युक्त भावनाएँ आदि कवि मानस की विशालता एव भावुक प्रकृति के परिचायक है। द्विवेदी जी ने मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रतिपादन मे यथार्थ की अभिव्यक्ति की है तथा उसके निराकरण मे कवि ने अपने शान्त मस्तिष्क के परिचायक रूप मे उग्रता के स्थान पर शातिपूर्वक अपने प्राकृतिक जीवन को पुन आत्मसात करने की प्रेरणा दी है। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित कवि की दृष्टि मे मानव अपने नैसर्गिक जीवन मे ही सुखी रह सकता हैं। अत खादी को द्विवेदी जी ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इसके

अतिरिक्त कवि ने मानव-जीवन के प्रति अनुरक्त होने तथा देश-प्रेम की भावनाओ को भी व्यक्त किया है। द्विवेदी जी ने मानव कल्याण की कामना हेतु काव्य मे दर्शन को एक साधन बनाया है। इस दृष्टि से कवि ने सुख और दुख को एक रूप मे स्वीकार करने के साथ ही उसे प्रियतम का साधन माना है जो सुख और दुख मे अपने उज्ज्वलतम रूप मे तथा करुणाकर रूप मे मानव के सम्मुख आता है। कवि की दृष्टि मे 'ईश्वर अश जीव अविनाशी' सदृश ही ईश्वर सत्‌चित,आनन्दस्वरूप है, आत्मा उसी का अशमात्र है। यथार्थत मानव के अन्तरतम मे ही ईश्वर का वास होता है। जीवन के अमूल्य क्षणो मे ही उसे उपलब्ध किया जा सकता है। वेदना के दो रूप व्यक्तिगत और समष्टिगत मे कवि अपने विदग्ध हृदय के भार को प्रकृति प्रागण मे समाहित करने की कामना करता है। ससार की मगलकामना हेतु कवि रूप द्विवेदी जी गगन के प्रति करुणा कलित होकर भी अपने निज उद्‌गारो के रूप मे उसे अपने नयनामृत बरमाने को प्रोत्साहित करते है। द्विवेदी जी की काव्य क्षेत्रीय उपलब्धियो की दृष्टि से उनका काव्य साहित्य कवि की विशिष्ट प्रतिभा एव करुणा कलित, रसज्ञतापूर्ण हृदय का द्योतन करती हे। द्विवेदी जी अपने हार्दिक मानस जगत मे कवि रूप मे सहज जिज्ञासा, उत्कठा, उत्सुकता, कौतूहल एव भावुकता से परिपूर्ण अपने काव्य साहित्य मे भी इसी रूप मे अवतरित होते है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य का विषय सकुचित न होकर विस्तृत है। उन्होने ऐतिहासिक, सामाजिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय एव सौदर्योपासना की पृष्ठभूमि मे काव्य-सृजन कर हिन्दी काव्य साहित्य मे अपने महत्व को प्रतिपादित किया है। द्विवेदी जी ने छायावाद की प्रमुख विशेषता सृष्टि के कण-कण मे परिव्याप्त अनुरागिनी छाया का आभास माना है। उन्होने छायावाद को मध्यकालीन शृगारिक रसात्मकता तथा भक्तियुगीन आत्मा की तन्मयता का समन्वित रूप माना है। तात्कालिक प्रभाव के कारण द्विवेदी जी प्रगतिवादी यथार्थात्मकना से भी प्रभावित है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य के विभिन्न प्रसगो मे यह धारणा स्पष्ट हुई है कि कवि मानवीय सौदर्य से प्रभावित होकर ही प्रकृति के सौदर्य की ओर उन्मुख होता है। अतएव उनके काव्य साहित्य मे व्यक्त प्रेम भावना और सौदर्य भावना द्वयात्मक है। द्विवेदी जी का हिन्दी काव्य साहित्य मे महत्व काव्य के भाव एव कला पक्ष की दृष्टि से युगीन पृष्ठभूमि मे वैशिष्ट्य रखता है। कवि ने छायावाद और प्रगतिवाद के मध्य अपने विकासात्मक स्वतन्त्र मार्ग की खोज की। यद्यपि अन्य तत्वो के आधार पर उनका काव्य साहित्य परम्परानुगामी है परन्तु छन्दात्मकता की दृष्टि से उसमे पर्याप्त नवीनता परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी की दृष्टि मे कविता की परिपूर्णता मे भाषा, भाव तथा रस की अनिवार्यता है। हिन्दी काव्य साहित्य मे द्विवेदी जी का महत्व इसलिए भी मान्य है क्योकि उन्होने अनेक प्रेरणाओ एव प्रभावो के होते हुए भी कवि रूप मे अपने नवीन मार्ग को निर्दिष्ट किया है और पूर्व स्थापित स्वार्थो से असम्बद्ध होकर नवीन रचनात्मक दृष्टि से

मनुष्य-प्रेम, सहानुभूति, करुणा, ममता आदि आदर्शवादी सद्गुणो के रूप मे अपने मार्ग को प्रशस्त किया है ।

अध्ययन का निष्कर्ष

इस प्रकार से प्रस्तुत प्रबन्ध हिन्दी के एक सर्वथा उपेक्षित परन्तु मौलिक प्रतिभा से सम्बद्ध साहित्यकार के जीवन और साहित्य के अध्ययन की दिशा मे सर्वप्रथम प्रयत्न है। हिन्दी के महान् साहित्यकारो मे सुमित्रानन्दन पन्त ने उनकी साहित्य क्षेत्रीय सेवाएँ सदैव स्मरणीय घोषित की है । आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उन्हे शान्त, निश्छल और बुद्धिजीवी साहित्यकार के रूप मे मसिजीवी साहित्य साधक के रूप मे मान्य किया है । डा० रामकुमार वर्मा ने स्पष्ट रूप से घोषित किया है कि वे हिन्दी समालोचना जगत मे सबसे मौलिक थे । डा० शिवमगल सिह 'सुमन' ने अपने उद्गारो मे बताया है कि वे भारत की ग्रामीण सस्कृति के प्रतीक थे । इन महानुभावो के वभिन्न वक्तव्यो की पृष्ठभूमि मे यदि इस अध्ययन का निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाय तो यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होगा कि गद्य और पद्य साहित्य के क्षेत्र मे श्री शातिप्रिय जी की उपलब्धिया यथार्थ मे विरल है । हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे द्विवेदी जी ने समकालीन रूढ और शास्त्रीय दृष्टिकोण से युक्त तथा अशास्त्रीय अथवा आधुनिकतावादी आलोचनात्मक दृष्टि की उच्छृखलता से रहित मानदड सामने रखे । तथ्यत यह मानदड आत्मव्यजना अथवा आत्मपरक आधार पर आलोचना की एक ऐसी दृष्टि प्रस्तुत करता है जिसमे शास्त्रीय और आधुनिक दृष्टियो का समन्वय है । निबन्ध साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की रचनाएँ उनकी विचारधारा और जीवन-दर्शन की सुस्पष्टता का द्योतन करने के साथ-साथ उनके चिन्तन क्षेत्र की व्यापकता और विषयगत विविधता का भी परिचय देती है । सैद्धान्तिक तत्वो के सम्यक् निर्वाह के साथ द्विवेदी जी के निबन्धो मे अभिव्यक्तिगत मौलिकता का भी समन्वय मिलता है । दर्शन, सस्कृति, परम्परानुगामिता, आधुनिकता, ज्ञान विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति, साहित्य तथा जीवन मूल्यो आदि का विविध पक्षीय मूल्याकन करते हुए द्विवेदी जी ने जो निबन्ध प्रस्तुत किये हैं वे परिनिष्ठित अभिव्यजना तत्वो से युक्त है। उनके निबन्धो की भाषा समकालीन प्रभावो से युक्त है और विषयानुरूप परिवर्तित होती रही है । रागात्मक, रूपात्मक, सश्लिष्ट, आलकारिक, भावात्मक, विचारात्मक, आलोचनात्मक, निर्णयात्मक, उद्बोधनात्मक, वर्णनात्मक और व्यग्यात्मक शैलियो का प्रयोग विविधता, कलात्मकता और प्रौढता का भी निदर्शक है । उपन्यास साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की कृतिया समकालीन औपन्यासिक स्वरूप से भिन्न है और इसलिए उनके उपन्यासो का अध्ययन और मूल्याकन मात्र शास्त्रीय तत्वो की कसौटी पर नही किया जा सकता वरन् उपन्यास के क्षेत्र मे शिल्पगत अभिनव प्रयोगात्मकता की कसौटी पर करना सगत है क्योकि स्वय लेखक ने इन्हे उपन्यास न कह कर मात्र औपन्यासिक

रेखाकन कहा है। कथात्मकता की दृष्टि से इन कृतियो मे कल्पनात्मकता और व्यावहारिकता का सम्मिश्रण है और आदर्श और यथार्थ की सन्तुलित अभिव्यजना भी उसमे दृष्टिगत होती है। उनके चरित्र विशिष्ट है और उनका चित्रण मनोवैज्ञानिकता से युक्त है। कथोपकथन अपनी सैद्धान्तिक विशेषताओ अर्थात उपयुक्तता, स्वाभाविकता, सक्षिप्तता, उद्देश्यपूर्णता आदि से युक्त है और इनके माध्यम से लेखक ने अतीत युगो की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे यान्त्रिकता तथा भौतिकवादिता का निरूपण किया है। उपन्यासो की भाषा काव्यात्मक तथा बौद्धिक अभिव्यजना शक्ति से युक्त है। इनमे विभिन्न शैलियो का सग्रथन प्रयोगात्मकता और मौलिकता का आभास देता है। द्विवेदी जी के उपन्यास आधुनिक यात्रिक जीवन की पृष्ठभूमि मे मानवीय चेतना का उद्‌बोधन करते है। युद्ध की विभीषिका से अभिशप्त मानव जीवन को इस समय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जिस शाति-दर्शन की अपेक्षा है उसकी व्यावहारिक परिणति द्विवेदी जी के उपन्यासो का उदात्तपरक उद्देश्य है। हिन्दी सस्मरण साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी ने जो रचनाएँ प्रस्तुत की है.वे मुख्यत· उन प्रसगो पर आधारित है जो वास्तविक अर्थ मे उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के नियामक है। द्विवेदी जी के सस्मरण विषयगत वैविध्य और विस्तार से युक्त होते हुए भी आत्मव्यजनात्मक, भावात्मक, यात्रा विवरणात्मक, निबन्धात्मक तथा साहित्यिक कोटियो के है। द्विवेदी जी की भावनाएँ मूलत काव्यात्मक हैं और इसके प्रभावस्वरूप उनके सस्मरण भावना तथा अनुभूति प्रधान हो गये हैं। भाषा तथा शैलीगत परिपक्वता ने भी इन्हे कलात्मक समृद्धि प्रदान की है। काव्य साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की रचनाएँ कवि की सहज जिज्ञासा, उत्कठा, उत्सुकता, कौतूहल तथा भावुकता से परिपूर्ण है। इनमे विभिन्न मानवीय मनोवृत्तियो की अभिव्यजना है। अधिकाश कविताएं शृगारिक हैं जिनमे यत्र-तत्र शात, करुण, वात्सल्य और वीर रसो का भी समावेश मिलता है। द्विवेदी जी की कविता मे अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, उपमा, अन्योक्ति, स्मरण, मानवीकरण तथा विशेषण-विपर्यय आदि अलंकार उपलब्ध होते हैं। उनकी काव्य भाषा चित्रात्मकता, स्वरमयता, माधुर्य तथा ध्वन्यात्मकता के गुणो से युक्त है। उनकी काव्य शैली सगीतात्मक, सकेतात्मक तथा प्रतीकात्मक है जो छन्द बद्ध भी है और छन्द रहित भी। उनके काव्य में प्रेम भावना और सौदर्य भावना का आधार भी द्वयात्मक है और उसे लौकिक एव ईश्वरीय सन्दर्भ मे व्यक्त किया गया है। इस रूप मे द्विवेदी जी का काव्य कला और भाव पक्षों की दृष्टि से युगीन पृष्ठभूमि मे विशिष्टता रखता है। अनेक प्रेरणाओ और प्रभावो के होते हुए भी द्विवेदी जी ने एक कवि रूप मे अपने मार्ग का स्वय निर्देश किया है और पूर्व स्थापित स्वार्थों से असम्बद्ध रह कर नवीन रचनात्मक दृष्टि से उसे प्रशस्त किया है। इस प्रकार से, द्विवेदी जी का साहित्य मनुष्य के प्रेम, सहानुभूति, करुणा और ममता आदि सद्‌गुणो का प्रतीक है और उसमे मानवता के उन्नयन के सकेत निहित हैं।

परिशिष्ट : सहायक ग्रन्थ-सूची

१	आधान	शातिप्रिय द्विवेदी
२	आधुनिक कविता मे विरह भावना	डा० मधुमालती सिंह
३	आधुनिक काव्य धारा	डा० केसरी नारायण शुक्ल
४	आधुनिक समीक्षा	डा० देवराज
५.	आधुनिक साहित्य	डा० प्रतापनारायण टडन
६	आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
७	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास	डा० बेचन
८.	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान	डा० देवराज उपाध्याय
९.	आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रतीक विधान	डा० नित्यानन्द शर्मा
१०.	आधुनिक हिन्दी कविता मे विषय और शैली	डा० रागेय राघव
११.	आधुनिक हिन्दी कविता मे शिल्प	डा० कैलाश वाजपेयी
१२.	आधुनिक हिन्दी काव्य कृति और विधा	डा० सुरेन्द्र माथुर
१३.	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	कृष्ण शकर शुक्ल
१४	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	डा० श्रीकृष्ण लाल
१५	आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास	डा० वेंकट शर्मा
१६	आलोचक की आस्था	डा० नगेन्द्र
१७	आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त	डा० एस० पी० खत्री
१८.	आलोचना के सिद्धान्त	व्योहार राजेन्द्र सिंह
१९	आलोचना तथा काव्य	डा० इन्द्रनाथ मदान
२०	आस्था के चरण	डा० नगेन्द्र
२१.	कवि और काव्य	शातिप्रिय द्विवेदी

२२.	कविता के नये प्रतिमान	डा० नामवर सिंह
२३.	काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध	जयशंकर प्रसाद
२४	काव्य के रूप	डा० गुलाब राय
२५	काव्य शास्त्र	डा० भगीरथ मिश्र
२६.	कुछ विचार	श्री प्रेमचन्द
२७.	चारिका	शांतिप्रिय द्विवेदी
२८.	चित्र और चिन्तन	शांतिप्रिय द्विवेदी
२९	छायावाद	डा० उदयभानु सिंह
३०.	छायावाद	डा० नामवर सिंह
३१	छायावादोत्तर हिन्दी गद्य साहित्य	डा० विष्णुनाथ तिवारी
३२.	छायावाद काव्य और दर्शन	डा० हरनारायण सिंह
३३.	जीवन यात्रा	शांतिप्रिय द्विवेदी
३४	ज्योति विहग	शांतिप्रिय द्विवेदी
३५.	तुलनात्मक साहित्य शास्त्र इतिहास तथा समीक्षा	डा० विष्णुदत्त राकेश
३६	दिगम्बर	शांतिप्रिय द्विवेदी
३७.	धरातल	शांतिप्रिय द्विवेदी
३८.	नवजीवन (दैनिक)	स० सत्यदेव शर्मा
३९.	भव्य हिन्दी समीक्षा	डा० कृष्ण बल्लभ जोशी
४०.	निबन्ध निचय	ब्रजकिशोर मिश्र
४१	निराला का कथा साहित्य	कुसुम वार्ष्णेय
४२.	नीरव	शांतिप्रिय द्विवेदी
४३.	पथचिन्ह	शांतिप्रिय द्विवेदी
४४.	पद्मनाभिका	शांतिप्रिय द्विवेदी
४५.	परिक्रमा	शांतिप्रिय द्विवेदी
४६.	परिचय	शांतिप्रिय द्विवेदी
४७	परिव्राजक की प्रजा	शांतिप्रिय द्विवेदी
४८.	प्रगतिवाद	डा० शिवकुमार मिश्र
४९	प्रगतिशील इतिहास	रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव
५०.	प्रगतिशील साहित्य के मानदन्ड	डा० रांगेय राघव
५१.	प्रतिष्ठान	शांतिप्रिय द्विवेदी
५२.	प्रसाद का जीवन और साहित्य	डा० रामरतन भटनागर
५३.	प्रेमचन्द	डा० प्रतापनारायण टंडन
५४.	भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा	डा० नगेन्द्र

५५. भारतेन्दु युग — डा० रामविलास शर्मा
५६. मिश्रबन्धु विनोद — मिश्रबन्धु
५७ मूल्य और मूल्याकन — डा० रामरतन भटनागर
५८. युग और साहित्य — शातिप्रिय द्विवेदी
५९. रस सिद्धान्त — डा० नगेन्द्र
६०. रहस्यवाद — डा० राममूर्ति त्रिपाठी
६१ राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य — रामेश्वर शर्मा
६२. विचार और निष्कर्ष — डा० सरनाम सिंह शर्मा
६३ वृन्त और विकास — शातिप्रिय द्विवेदी
६४. सचारिणी — शातिप्रिय द्विवेदी
६५. सस्कृत आलोचना — आचार्य बलदेव उपाध्याय
६६. सस्कृत साहित्य का इतिहास — आचार्य बलदेव उपाध्याय
६७. समवेत — शातिप्रिय द्विवेदी
६८. समीक्षा और मूल्याकन — डा० हरीचरन शर्मा
६९ समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तिया — डा० प्रतापनारायण टडन
७०. समीक्षा के मानदड — राजेन्द्र शर्मा
७१ समीक्षा के सिद्धान्त — डा० सत्येन्द्र
७२. समीक्षा लोक — डा० भगीरथ दीक्षित
७३. समीक्षाशास्त्र — डा० दशरथ ओझा
७४. सरस्वती (पत्रिका) — स० प० श्रीनारायण चतुर्वेदी
७५. साकल्य — शातिप्रिय द्विवेदी
७६ सामयिकी — शातिप्रिय द्विवेदी
७७. साहित्य और सस्कृति — डा० देवराज
७८. साहित्य का उद्देश्य — श्री प्रेमचन्द
७९. साहित्य की मान्यताएँ — श्री भगवतीचरण वर्मा
८०. साहित्य के तत्व — डा० गणपति चन्द्र गुप्त
८१ साहित्य चिन्ता — डा० देवराज
८२. साहित्य मीमासा — डा० इन्द्रनाथ मदान
८३. साहित्यालोचन — डा० श्याम सुन्दर दास
८४. साहित्यिकी — शातिप्रिय द्विवेदी
८५. स्मृतिया और कृतिया — शातिप्रिय द्विवेदी
८६ हमारे साहित्य निर्माता — शातिप्रिय द्विवेदी

८७ हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास — डा० भगवत्स्वरूप मिश्र

८८ हिन्दी आलोचना ' स्वरूप और विकास — डा० रामदरश मिश्र

८९. हिन्दी उपन्यास — श्री शिवनारायण श्रीवास्तव

९०. हिन्दी उपन्यास — डा० सुषमा धवन

९१ हिन्दी उपन्यास . एक सर्वेक्षण — महेन्द्र चतुर्वेदी

९२. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद — डा० त्रिभुवन सिंह

९३ हिन्दी उपन्यास कला — डा० प्रतापनारायण टडन

९४ हिन्दी उपन्यास का उद्भाव और विकास — डा० प्रतापनारायण टडन

९५ हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास — डा० प्रतापनारायण टडन

९६. हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता — डा० सुखदेव शुक्ल

९७ हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास — डा० श्रीमती ओम शुक्ल

९८ हिन्दी उपन्यास पृष्ठभूमि और परपरा — डा० बदरीदास

९९ हिन्दी उपन्यास मे कथा शिल्प का विकास — डा० प्रतापनारायण टडन

१०० हिन्दी उपन्यास मे लोक तत्व — डा० इन्दिरा जोशी

१०१ हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय अध्ययन — डा० चन्डी प्रसाद जोशी

१०२. हिन्दी उपन्यास साहित्य — श्री ब्रजरत्न दास

१०३ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन — डा० गणेशन्

१०४ हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन — डा० श्रीनारायण अग्निहोत्री

१०५. हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा — डा० माखनलाल शर्मा

१०६. हिन्दी कथा साहित्य — पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

१०७	हिन्दी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठको की रुचि का प्रभाव	डा० गोपाल राय
१०८	हिन्दी कविता मे युगान्तर	डा० सुधीन्द्र
१०९	हिन्दी का गद्य साहित्य	डा० रामचन्द्र
११०	हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास	डा० भगीरथ मिश्र
१११	हिन्दी काव्य शैलियो का विकास	डा० हरदेव बाहरी
११२	हिन्दी का सामयिक साहित्य	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
११३	हिन्दी की गद्य शैली का विकास	डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
११४	हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा	डा० लक्ष्मी नारायण दुबे
११५	हिन्दी के आलोचक	श्रीमती शचीरानी गुर्टु
११६	हिन्दी के प्रतिनिधि लेखको की गद्य शैलिया	श्री कमलेश्वर प्रसाद भट्ट
११७	हिन्दी के स्वच्छदतावादी उपन्यास	डा० कमल कुमारी जौहरी
११८.	हिन्दी गद्य काव्य	डा० पद्मसिह शर्मा 'कमलेश'
११९.	हिन्दी गद्य शैली और विधाओ का विकास	डा० अमरनाथ सिन्हा
१२०	हिन्दी गद्य साहित्य	शिवदान सिंह चौहान
१२१	हिन्दी गद्य साहित्य एक सर्वेक्षण	डा० जगदीश चन्द्र जोशी
१२२.	हिन्दी निबन्ध का विकास	डा० ओकारनाथ शर्मा
१२३	हिन्दी भाषा तथा साहित्य	डा० उदयनारायण तिवारी
१२४	हिन्दी साहित्य एक परिवृत्त	शिवनन्दन प्रसाद
१२५	हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति	डा० विजयेन्द्र स्नातक
१२६.	हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल	डा० जयकिशन प्रसाद
१२७.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१२८	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
१२९.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	विजयानन्द शर्मा
१३०.	हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास	जार्ज गियर्सन
१३१	हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास	डा० प्रतापनारायण टडन
१३२.	हिन्दी साहित्य का विकास	डा० वासुदेव शर्मा
१३३	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	डा० गणपति चन्द्र गुप्त

१३४. हिन्दी साहित्य की भूमिका — डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
१३५. हिन्दी साहित्य कोश, भाग एक — डा० धीरेन्द्र वर्मा
१३६. हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो — डा० धीरेन्द्र वर्मा
१३७. हिमानी — शातिप्रिय द्विवेदी
१३८. हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष — डा० ओकार नाथ श्रीवास्तव
१३९. हिन्दी साहित्य पिछला दशक — डा० प्रतापनारयण टडन
१४०. हिन्दी साहित्य प्रकीर्ण विचार — डा० शान्तिस्वरूप गुप्त
१४१ हिन्दी साहित्य; बीसवी शताब्दी — आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
१४२. हिन्दी साहित्य· युग और प्रवृत्तिया — डा० शिवकुमार शर्मा
१४३. हिन्दी साहित्य शोध और समीक्षा — डा० कृष्ण दिवाकर